डॉ० ओमवती सक्सेना

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष

श्रद्धेय गुरुवर
श्री देवीप्रसाद गुप्त
को सादर.....

प्राक्कथन

गद्य विधाओं में उपन्यास का स्थान सर्वोपरि है। कलात्मक गौरव और जीवन-दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियों की दृष्टि से औपन्यासिक सरचना महाकाव्यो-चित गरिमा के अनुरूप होती है। सम्भवतः इसीलिए रैल्फ-फॉक्स ने उपन्यास-कार को नये समाज का महाकवि कहा था। श्री रामधारीसिंह दिनकर ने भी स्वीकार किया है कि—जो काम पहले महाकाव्य करते थे वही काम बाद के नाटकों और उपन्यासो द्वारा किया जाने लगा। अतएव हम देखते हैं कि बाद के साहित्य मे बहुत से नाटककार और उपन्यासकार ऐसे हुए जो यदि कवि होते तो उनका स्थान रामायण और महाभारत, इलियड और ओडेसी के रचयिताओं के समकक्ष होता। नाटककार इब्सन और बर्नार्ड शॉ, उपन्यास लेखक रोमारोला और गोर्की, इनमे से प्रत्येक ने अपने समय की महान् समस्याओं के भीतर बैठकर उनका निदान खोजने की कोशिश की है और प्रत्येक ने अपने क्षेत्र में वही काम किया है जो महाकवि किया करते थे।"[1] उपर्युक्त कथन के आलोक मे उपन्यास को नवयुग का महाकाव्य कहा जा सकता है। उपन्यास समकालीन लेखन की सर्वप्रिय विधा के स्वरूप मे भी अभिस्वीकृत हो चुका है। जिस तरह से गत अर्द्धशताब्दी मे उपन्यासो का सृजन हुआ है। उसी के अनुरूप हिन्दी उपन्यासो पर शोध-कार्य भी हुआ और हो रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि आधुनिक साहित्यिक सरचना मे उपन्यास विधा के सबसे अधिक पाठक, अध्येता और अनुसधानकर्ता है। प्रारम्भ से ही हिन्दी और अंग्रेजी उपन्यासो की अहर्निश जिज्ञासु पाठिका होने के नाते गद्य पद्य की विविध विधाओं मे शोध कार्य करने की दृष्टि से उपन्यास की ओर ही मेरा ध्यान आकृष्ट हुआ। शोध विषय का निर्णय करने से पूर्व मैंने हिन्दी उपन्यास साहित्य पर सातवें दशक तक सम्पन्न हुए शोध-कार्य का सर्वेक्षण किया और एतद्विषयक सभावनाओं को खोजा। सन् १९६६ और ६७ में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से मैंने रूसी भाषा में 'सर्टिफिकेट' एवं 'डिप्लोमा' परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थी, तभी कार्लमार्क्स, आफनासेव, लेनिन, स्तालिन, एँजिल्स प्रभृति रूसी लेखकों

---

[1] अर्धनारीश्वर—रामधारीसिंह दिनकर, पृ० ४७

की मूल कृतियों को पढ़ने का भी सुयोग प्राप्त हुआ। इस अध्ययन-क्रम में मार्क्सवादी चिन्तन के अन्तर्गत 'वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त' ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया। यह विलक्षण संयोग है कि इसी अनुक्रम में उपन्यासों को पढ़ते समय वर्ग-संघर्ष के मूलभूत कारणों, स्थितियों एवं प्रतिक्रियाओं के सहज सन्धान की दृष्टि का निरंतर विकास होता रहा।

उल्लिखित पृष्ठभूमि के साथ शोध-जिज्ञासा लेकर जब मैंने आदरणीय निर्देशक महोदय डॉ० देवीप्रसाद गुप्त तथा राजस्थान विश्वविद्यालय के तत्कालीन हिन्दी-विभागाध्यक्ष डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय से विचार-विमर्श किया तो हिन्दी उपन्यास पर अद्यावधि सम्पन्न हुए शोध-कार्य के परिप्रेक्ष्य में 'प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष' विषय सर्वथा अछूता सिद्ध हुआ और मैंने रुचिकर विषय पाकर पूर्ण निष्ठा एवं परिश्रम से कार्य प्रारम्भ कर दिया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में वर्ग-संघर्ष को मार्क्सवादी एवं समाजशास्त्रीय दोनों ही परिसदर्भों में व्याख्यायित किया गया है। मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य उभरा है तो सामाजिक-यथार्थवादी, ऐतिहासिक और आंचलिक उपन्यासों में वर्ग-गत संघर्ष का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य द्रष्टव्य है। दोनों ही परिसदर्भों में पूँजीपति और सर्वहारा तथा शोषक और शोषित वर्गों की सरचना के मौलिक कारणों का सधान करते हुए वर्ग-संघर्ष की प्रेरक परिस्थितियों एवम् प्रवृत्तियों का विवेचन किया गया है। तदनन्तर वर्ग-संघर्ष के भयावह परिणामों और लोमहर्षक प्रतिक्रियाओं का निरूपण किया गया है। पूँजीवादी शोषक प्रवृत्तियों के फलस्वरूप अद्भुत वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियाओं में आर्थिक शोषण, साम्प्रदायिक वैमनस्य, अभिशप्त वर्ण-व्यवस्था, नारी शोषण, यौन-विकृतियाँ, सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक रूढ़िवाद, पारिवारिक विघटन, राजनीतिक भ्रष्टाचार, आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ, सांस्कृतिक पतन उल्लेखनीय हैं। इन सब बिन्दुओं को आलोच्य उपन्यासों के कथासदर्भों एवं उपन्यासकारों की मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में उभारा गया है। इसी प्रकार वर्ग-गत संघर्ष के समाजशास्त्रीय परिदृश्य में सामाजिक जीवन की विसगतियों, ग्राम्यांचलों में व्याप्त निरक्षरता, निर्धनता, बेकारी और यौन-विकृतियों को संघर्षजन्य प्रतिक्रियाओं के रूप में उजागर किया गया है। इस दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास सरचना में मार्क्सवादी चिन्तन और समाजशास्त्रीय जीवन-दृष्टि से उद्भूत वर्ग-वैषम्य समन्वित रूप में संघर्ष की आधार-भूमि प्रस्तुत करता है। प्रेमचन्दोत्तर युग के कथाकार पराधीन और स्वतंत्र भारत में आर्थिक शोषण से सत्रस्त जनमानस के करुण क्रन्दन से सचेतन स्तर पर मर्माहित हुए हैं और उनकी रचनाधर्मी आस्थाएँ पूँजीवादी शोषण के कुचक्र को ध्वस्त करने के लिए

सकल्पबद्ध हुई हैं। इस दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी उपन्यास सरचना निश्चय ही सार्थक एव अभिनन्दनीय है।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासो के विशाल भण्डार मे से लगभग दो सौ उपन्यासो को प्रस्तुत शोध-कार्य के लिए चुना गया है और उन्हे प्रबन्ध व्यवस्था के अनुरूप मार्क्सवादी चेतना, सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक, आचलिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के रूप मे वर्ग सघर्ष विवेचन की दृष्टि से वर्गीकृत किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे 'उपसहार' के अतिरिक्त सात अध्याय हैं।

"वर्ग सघर्ष सैद्धान्तिक स्वरूप विश्लेषण" शीर्षक प्रथम अध्याय म 'वर्ग-सघर्ष' के सैद्धान्तिक स्वरूप का विवेचन किया गया है। 'वर्ग' और 'सघर्ष' शब्दो की व्याख्या, वर्गों की स्थिति एव वर्ग के समानार्थक शब्दो की व्याख्या की गयी है। तदुपरान्त 'वर्ग सघर्ष' का पारिभाषिक स्वरूप विवेचन करते हुए विभिन्न पाश्चात्य एव भारतीय विद्वानो के मतो का समीक्षात्मक निरूपण किया गया है। पाश्चात्य विद्वानो में कार्ल मार्क्स, मैकाइवर तथा पेज, स्पटर तथा हार्ट, सी० एच० कूले, फैडरिक एजिल्स, वी० अफनास्येव, एल० लियोन्तीव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतीय विद्वानो म 'वर्ग सघर्ष' के अधिकारी, व्याख्याता श्री श्रीपाद डांगे ने भारत की आदिम साम्यावस्था से लेकर दास-प्रथा तक का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया है। डॉ० जनेश्वर वर्मा ने "हिन्दी काव्य मे मार्क्सवादी चेतना" शीर्षक शोध प्रबन्ध मे मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य मे काव्य विवेचन किया है। डॉ० धर्म मिश्र, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० पी० डी० शर्मा, भगवतशरण उपाध्याय, श्री हीरालाल पालित, डॉ० सम्पूर्णानन्द, डॉ० वीरवेश्वर प्रसाद सिंह, आर० एल सिंह, यशपाल आदि विद्वानो ने मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य मे अपने मतो को अभिव्यक्त किया है—शोध प्रबन्ध में इन अधिकारिक विद्वानो के मतो की समीक्षा की गयी है। भारत म आदिम साम्यावस्था के पाश्चात् विकास के फलस्वरूप वर्गों की स्थापना हुई। दासता का युग, सामन्ती युग तथा पूँजीवादी युग सभी मे आर्थिक सघर्ष का पहलू विद्यमान रहा है। इसी क्रम म 'वर्ग-सघर्ष' के उद्भव तथा विकास की सहायक परिस्थितियो को खोजने का प्रयास किया गया है। कार्ल मार्क्स की विचारधारा का आधारभूत सिद्धान्त 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' माना गया है। मार्क्स तथा एजिल्स ने हीगल के द्वन्द्ववाद से आदर्शवादी आवरण को हटाकर बुद्धिगगत तर्क प्रस्तुत किये हैं। मार्क्स की इसी विचारधारा से स्पष्ट होता है कि मार्क्स की 'वर्ग-सघर्ष' की सकल्पना ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भी व्यावहारिक तथा अर्थपूर्ण थी। उन्होने 'कैपीटल' मे अतिरिक्त मूल्य के विवेचन द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि श्रमिक वर्ग का शोषण पूँजीवादी व्यवस्था म अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है तथा इसी अवस्था म शोषण का अन्त शोषित सर्वहारा वर्गों क द्वारा 'वर्ग-सघर्ष' अथवा

क्रान्ति के फलस्वरूप होता है। इस सदर्भ मे वर्ग-सघर्ष के आर्थिक एव ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर भी प्रकाश डाला गया है। अन्त म वर्गविहीन समाज की अवधारणा का विवेचन किया गया है। 'वर्ग-सघर्ष' का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य मे विवेचन करते हुए जाति, व्यवसाय तथा योग्यता के आधार पर वर्गों की उद्भावना पर प्रकाश डाला गया है। भारतीय सामाजिक सरचना मे वर्ग भावना का विवेचन करते हुए भारतीय समाज व्यवस्था मे वर्ग-सघर्ष की प्रेरक परिस्थितियो—यथा आर्थिक वैषम्य, अधिकारलिप्सा, आनुवशिकता, शोषणवृत्ति, मूल्यगत विघटन तथा सास्कृतिक ह्रास का विवेचन किया गया है। अन्त मे वर्ग-सघर्ष के मार्क्सवादी एव समाजशास्त्रीय पक्ष का समन्वित स्वरूप निष्कर्ष के अन्तर्गत विवेचित किया गया।

"हिन्दी उपन्यास उद्भव विकास और प्रवृत्तियाँ' शीर्षक द्वितीय अध्याय मे हिन्दी उपन्यास के उद्भव तथा विकास का परिदृश्य प्रस्तुत करते हुए हिन्दी उपन्यासो मे प्रवृत्तियो का विवेचन—प्रेमचन्द पूर्ववर्ती, प्रेमचन्द युगीन, प्रेमचन्दोत्तर एव समकालीन युगो मे विभाजित करके किया गया है। वर्ग सघर्ष की उत्प्रेरक सामाजिक प्रथाओं और सम्बन्धो का चित्रण करते हुए पर्दा प्रथा, सती-प्रथा, दहेज प्रथा, सुधारवादी आन्दोलन, जनव्यापी असन्तोष तथा आर्थिक नैतिक वैषम्य का विवेचन किया गया है। वर्ग-भावना के सदर्भ मे पूँजीपति, सामन्तवादी तथा श्रमिक वर्गों का उल्लेख किया गया है। हिन्दी उपन्यासो मे औद्योगिक तथा वैज्ञानिक विकास के कारण श्रमिक वर्ग पर पड़े प्रभावो को प्रकाश मे लाया गया है। समाज की जर्जर स्थिति का विवेचन करते हुए उसके प्रमुख कारणों, यथा—मूल्यवृद्धि, मूल्यगत सक्रमण, भ्रष्टाचार एव दमित वासनाओ की उद्घाटक स्थितियों का विवेचन किया गया है।

प्रबन्ध का तीसरा अध्याय 'मार्क्सवादी चेतना के हिन्दी उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष' है। प्रारम्भ मे मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासो मे सृजनात्मक प्रेरणाओं एव प्रवृत्तियो का विवेचन करते हुए वर्ग-भावना का स्वरूप तथा वर्ग-सघर्ष की स्थितियो का विश्लेषण किया गया है। वर्ग-सघर्ष म शोषण के विविध आयाम अकित करते हुए आलोच्य उपन्यासों के माध्यम से उनकी सम्पुष्टि की गई है। शोषण के अन्तर्गत नारी शोषण एव आर्थिक शोषण पर विस्तार से विचार किया गया है। तत्पश्चात् वर्ग-सघर्ष की प्रेरक परिस्थितियो तथा रूढ़िवादिता, अशिक्षा, सामन्ती अत्याचार, अभिशप्त वर्ण-व्यवस्था, आर्थिक विषमता आदि का विवेचन आलोच्य उपन्यासो के सदर्भ मे किया गया है। वर्ग सघर्ष की प्रतिक्रियाओ के परिणाम स्वरूप समाज मे व्याप्त सामाजिक कुरीतियो, साम्प्रदायिक सघर्ष, राजनीतिक भ्रष्टाचार, आन्दोलनकारी प्रवृत्तियो, यौन विकृतियाँ तथा धार्मिक नैतिक एव सास्कृतिक पतन आदि का विस्तार से विश्लेषण करते हुए

उपन्यासो मे इनके विभिन्न सदर्भों को खोजा गया है। इसके अतिरिक्त पूंजीपति वर्ग की विलासी तथा कामुक वृत्ति तथा अतिरिक्त मूल्य एव लाभ को हडप जाने की वृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। पूंजीवादी व्यवस्था मे वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ श्रमिक-वर्ग के नानाविध शोषण का निदान सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति के परिसंदर्भ मे दर्शाया गया है।

प्रबन्ध का चतुर्थ अध्याय 'हिन्दी के सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष' है। इस अध्याय मे सर्वप्रथम यथार्थ और उसके भेदों का विवेचन किया गया है। सामाजिक यथार्थवाद की विस्तृत व्याख्या के पश्चात् हिन्दी उपन्यासों मे यथार्थवादी प्रवृत्तियो का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासो में वर्ग-भावना का स्वरूप तथा वर्ग-सघर्ष की स्थितियों का विवेचन करते हुए वर्ग-भावना के उभरते बिन्दुओ पर प्रकाश डाला गया है। भारत मे 'वर्ग-सघर्ष' की परिस्थितियों यथा—आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक परिस्थितियो का निरूपण किया है। भारतीय परिवेश मे वर्ग-सघर्ष के प्रमुख कारणो यथा—मार्क्सवादी चेतना, सामन्तवादी व्यवस्था, पूंजीवादी व्यवस्था, परतन्त्रता तथा रूढिवादिता आदि का उल्लेख किया गया है। सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासो में सामन्तीय युग के शोषक-वर्गों यथा—ठाकुर-वर्ग, जमीदार वर्ग, ताल्लुकेदार-वर्ग तथा पूंजीवादी व्यवस्था के शोषक-वर्ग—व्यापारी-वर्ग, पूंजीपति-वर्ग आदि का उल्लेख करते हुए उनकी सम्पुष्टि उपन्यासो के माध्यम से की गई है। सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष का प्रतिक्रियाओ को विविध आयामो मे प्रस्तुत किया गया है यथा—यौन-विकृतियाँ, सास्कृतिक पतन, वर्ग-वैषम्य, धार्मिक तथा नैतिक पतन, साम्प्रदायिक वैमनस्य आदि। 'वर्ग-सघर्ष' की आन्दोलनकारी प्रवृत्तियो का उल्लेख हिंसात्मक विद्रोह, हडतालें तथा तालाबन्दी आदि के सन्दर्भ मे किया गया है। सामाजिक कुरीतियों का भी विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है यथा—कन्या जन्म एक अभिशाप, दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, प्रेम-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह, वेश्यावृत्ति तथा तलाक-प्रथा आदि। राजनीतिक भ्रष्टाचार मे दलगत राजनीति तथा जातिवाद की विडम्बना का वर्णन आलोच्य उपन्यासो मे हुआ है। अन्त मे आर्थिक शोषण के परिसदर्भ में संयुक्त परिवार के विघटन की स्थिति की सम्पुष्टि उद्धृत उपन्यासों के माध्यम से की गई है।

पाँचवाँ अध्याय 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे वर्ग-संघर्ष' है। इसमें सर्वप्रथम 'इतिहास' शब्द की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या करते हुए ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा एव स्वरूप विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् ऐतिहासिक उपन्यासो के प्रकारो यथा—शुद्ध ऐतिहासिक, इतिहासाश्रित, नियतकालिक तथा क्रानिकल आदि का उल्लेख किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासो की प्रेरणाओ

तथा प्रवृत्तियो का उल्लेख करते हुए कथ्य, परम्परा, चरित्र चित्रण, राष्ट्रीय गौरव के पुनरुत्थान तथा आदर्शवादी दृष्टिकोण से इनका विवेचन किया गया है। रोमांसवादी प्रवृत्ति, मानवतावादी प्रवृत्ति, समाजवादी प्रवृत्ति, शौर्य-प्रदर्शन एव अतीत प्रेम की प्रवृत्ति की विवेचना करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासो मे वर्गों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। इस सदर्भ में नारी वर्ग, दासी वर्ग, सर्वहारा-वर्ग तथा मजदूर वर्ग की सम्पुष्टि ऐतिहासिक उपन्यासो के माध्यम से की गयी है। 'वर्ग सघर्ष' के ऐतिहासिक सदर्भ म इन कारणो की विवेचना की गई है यथा—साम्राज्य लिप्सा, परतन्त्रता, जातिवाद तथा सामन्तवादी व्यवस्था आदि। ऐतिहासिक उपन्यासो म 'वर्ग-सघर्ष' की प्रतिक्रियाएँ शीर्षक मे सामाजिक कुरीतियो का दिग्दर्शन, मानवीय मूल्यो की टूटन, साम‍ती शोषण वृत्ति, हिंसात्मक विद्रोह, राजनीतिक षड्यत्र, जनशोषण, भ्रष्टाचार कालाबाजारी एव तस्करी, जन सामान्य की सम्पत्ति पर व्यक्तिगत आधिपत्य, नौकरशाही की भूमिका, रिश्वतखोरी, नारी शोषण के परिप्रेक्ष्य मे आधुनिक नारी समस्या के रूप मे वर्णन किया गया है। इसके उपरान्त यौन विकृतियो पर आधारित शोषण की स्थितियो का अकन आर्थिक परिप्रेक्ष्य म किया गया है। शोषित वर्ग की व्याख्या विविध दृष्टियो से की गयी है यथा—आर्थिक शोषण, धार्मिक व नैतिक पतन, सास्कृतिक चेतना, मूल्यगत सक्रमण तथा राजाओं व साम तो की कामुक प्रवृत्ति, बलात्कार विभीषिका, उनकी विलक्षण अभिरुचियाँ आदि।

प्रबन्ध का छठा अध्याय 'हिन्दी के आचलिक उपन्यासो म वर्ग सघर्ष' है। सर्व प्रथम 'अचल' शब्द की व्याख्या व्युत्पत्तिमूलक दृष्टि से की गई है। आंचलिक उपन्यासो का पारिभाषिक विश्लेषण करते हुए औपन्यासिक तत्वो की विवेचना आंचलिक सदर्भ में की गई है। इसके पश्चात हिन्दी उपन्यासो मे आचलिक चेतना का उदय तथा आचलिकता के विकास पर प्रकाश डाला गया है। आचलिक उपन्यासो की सृजनात्मक प्रेरणाओ तथा प्रवृत्तियो की साद्देश्यता की दृष्टि से विचार किया गया है। जिसके अन्तर्गत क्षेत्रीय जीवन के चित्रण की प्रवृत्ति, वर्ग चित्रण की प्रवृत्ति, आर्थिक वैषम्य द्वारा समाज म व्याप्त कुरीतियो के चित्रण की प्रवृत्ति लोक सस्कृति के चित्रण की आकाक्षा आदि का रचनाकार के सृजनात्मक प्रेरक तत्वो के रूप मे ग्रहण किया गया है। तदुपरान्त आचलिक उपन्यासो म निरूपित वर्ग तथा वर्ग सघर्ष की स्थितियो का विवेचन किया गया है। 'वर्ग सघर्ष' के कारणो मे सर्वप्रथम ग्रामीण जीवन म फैले व्यापक जातीय विवाद को लिया गया है। तत्पश्चात् सामन्तीय व्यवस्थाओ द्वारा शोषण एव वर्ग-द्वन्द्व का व्यापक विश्लेषण किया गया है। ग्राम्यांचलो म व्याप्त अज्ञान, परतन्त्रता तथा मार्क्सवादी चेतना के प्रभाव का विवेचन भी किया गया है। इसी क्रम मे साम्प्रदायिक विद्वेष ग्रामीण समाज म वैवाहिक सम्बन्धो की विडम्बना

का उद्घाटन किया गया है—जिसके अन्तर्गत बहुविवाह, बालविवाह अनमेल विवाह, विधवा विवाह, अन्तर विवाह आदि समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। 'वर्ग-सघर्ष' की प्रतिक्रियाओं की विवेचना करते हुए मानवीय मूल्यों के विघटन एव नैतिक सक्रमण पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। समाज मे व्याप्त यौन-विकृत्तियों की समस्या का भी विस्तृत अकन किया गया है। नारी-शोषण तथा आर्थिक शोषण के विविध आयामों का विवेचन भी आचलिक उपन्यासों के माध्यम से किया गया है। आन्दोलनकारी प्रवृत्तियों तथा मार्क्सवादी विचारधारा का प्रसार-प्रचार भी गाँवो म व्याप्त आर्थिक पिछडेपन को उजागर करने की दृष्टि से चिन्तनीय है। अन्तत वर्गगत चेतना तथा वर्गविहीन समाज की स्थापना ही ग्रामोत्थान की दिशा म सशक्त कदम है।

प्रबन्ध का सातवाँ अध्याय 'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म वर्ग-सघर्ष' है। इस अध्याय मे सर्वप्रथम मूल मानवीय प्रवृत्तियो का निरूपण करते हुए मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म वर्ग-भावना और वर्ग सरचना के प्रेरक तत्त्वों का उल्लेख किया गया है। औपन्यासिक सरचना के सदर्भ मे मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियो का निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् वर्ग-सघर्ष का स्वरूप विवेचन करते म मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो की भूमिका बनायी गई है। आर्थिक सघर्ष मानव के मानसिक सतुलन को अव्यवस्थित कर देता है—अत आन्तरिक सघर्ष की वर्ग-सघर्ष के सदर्भ म क्या प्रतिक्रिया रहती है ? इसका व्यापक विवेचन किया गया है। वर्गद्वन्द्व का विश्लेषण करते हुए विभिन्न वर्गों की विवेचना की गयी है। वस्तुत मानसिक द्वन्द्व, यौन विकृति, सामाजिक कुरीतियो, मूल्यगत सक्रमण, साम्प्रदायिक सघर्ष तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार का कारक बनता है। अनेक मानवीय प्रवृत्तियाँ ही आर्थिक वैषम्य एव आर्थिक शोषण की प्रेरणा बनती है। धन-सग्रह की वृत्ति मूल मानवीय वृत्ति है तथा आत्मप्रदर्शन की वृत्ति अहम् की वृत्ति भी, अत इन वृत्तियों से पूँजीपति-वर्ग आक्रान्त रहता है। शोषित-वर्ग भी इसकी लालसा म सदैव सघर्षरत रहता है। विविध प्रकार के शोषण की प्रक्रियाओं से आक्रान्त शोषित-वर्ग का मानस चेतन व अचेतनावस्था मे सदैव सघर्षरत रहता है। अत. वर्ग सघर्ष के परिप्रेक्ष्य म निर्धनता, आर्थिक पिछडापन, बेकारी तथा अशिक्षा की अभिव्यक्ति आलोच्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के माध्यम से हुई है।

'उपसहार' के अन्तर्गत मार्क्सवादी चेतना के, सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक एव आचलिक उपन्यासो म वर्ग-सघर्ष' की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों एव पक्षो पर तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि हिन्दी उपन्यासो मे 'वर्ग संघर्ष' की उत्प्रेरक विभिन्न परिस्थितियाँ मुख्यत आर्थिक है। 'वर्ग सघर्ष' के परिणामस्वरूप ही वर्गगत चेतना

का उदय होता है तथा शोषित निम्न वर्ग म सघर्ष जन्मता है । वर्गविहीन समाज की स्थापना द्वारा आर्थिक नैतिक एव धार्मिक वैषम्य की खाई को पाटने की ओर आज विश्व के लगभग सभी प्रगतिगामी देश क्रियाशील हैं । स्वतन्त्र भारत मे 'वर्ग-सघर्ष' की प्रतिक्रियास्वरूप निम्न वर्ग ने अनेक बार शान्ति का आह्वान कर विद्रोह की आवाज उठाई है । प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासो म मार्क्सवादी चेतना का विशेष प्रभाव रहा है । वे यौन स्वच्छन्दता तथा नारी स्वतन्त्रा के सक्रिय प्रयत्न हुए हैं । भारत म लोकतान्त्रिक समाजवाद तथा गणतन्त्रात्मक राज्य की स्थापना वर्गविहीन समाज की स्थापना की दिशा म सक्रिय कदम है । हिन्दी औपन्यासिक सरचना की सजगता का जीवन्त प्रमाण प्रेमचन्दोत्तर काल से आज तक 'वर्ग सघर्ष' की विवेचना है । हिन्दी उपन्यासो म वर्ग-सघर्ष' विषयक शोध की सम्भावनाओ के परिमित आयामो म से प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों मे वर्ग-सघर्ष' एक है जिसकी सम्पूर्ति का माध्यम प्रस्तुत शोध प्रबन्ध बना है ।

इस प्रकार यह शोध प्रबन्ध मेरी चिरसचित जिज्ञासा की चरम परिणति है । मेरा शोध कार्य कितना मौलिक है इसका निर्णय तो विद्वान करेंगे किन्तु मेरी विनम्र अवधारणा है कि हिन्दी उपन्यास सम्बन्धी अध्ययन अनुसधान की दिशा म अपने ढग का पहला प्रयास है।

प्रस्तुत शोध कार्य करते समय मुझे जिन समस्याओ एवम् कठिनाइयो का सामना करना पडा उनका उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा । सबसे पहली समस्या हिन्दी उपन्यासो के अपार भण्डार म से उन उपन्यासो की चयन की थी जो वर्ग सघर्ष की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो और प्रस्तुत शोध-कार्य के आधार ग्रन्थ बन सकें । इसके लिए मुझे सैंकडो उपन्यासो को पढकर छोडना पडा, अनेक की समीक्षा और रिव्यू पढकर उनके कथ्य सदर्भों को समझा, बीकानेर के लब्ध-प्रतिष्ठ उपन्यासकारो तथा साहित्य के प्राध्यापको से विचार-विमर्श किया और अन्तत शोध कार्य के निर्देशक महोदय से मार्ग-दर्शन प्राप्त कर लगभग दो सौ उपन्यास कृतियो को अध्ययन के लिए अधिगृहीत किया । आलोच्य उपन्यासो म म वर्ग-सघर्ष के निरूपण बिन्दुओ यथा—वर्ग-सरचना के आधारभूत कारणो और स्थितियाँ, वर्ग सघर्ष की प्रेरक परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ, प्रतिक्रियाओं आदि का निर्धारण करने मे निर्देशक महोदय का मार्गदर्शन सहायक बना । इसी प्रकार वर्ग सघर्ष के समाजशास्त्रीय एव मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्यो का सिद्धान्त विश्लेषण करने म विश्वकोशकारो के मतों के साथ-साथ राजनीति शास्त्र और समाज-विज्ञान के प्राध्यपको एव अधिकारी विद्वानो से पर्याप्त सहायता मिली । इस प्रकार प्रस्तुत शोध-कार्य को सम्पन्न करने में मुझे विभिन्न व्यक्तियो और सस्थाओ का अपरिमित सहयोग प्राप्त हुआ, उन सभी के प्रति आभार प्रदर्शन करना मैं अपना पावन कर्त्तव्य समझती हूँ । सर्वप्रथम मैं उन समस्त उपन्यासकारो और ग्रन्थकारो

के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिनकी कृतियो के उपयोग से इस शोध-प्रबन्ध का कलेवर निर्मित हुआ है। सर्वश्री हीरालाल आचार्य, हरीश भादानी, शिवरतन थानवी, डॉ० आदर्श सक्सना, डॉ० पुरुरदत्त शर्मा तथा देवदत्त शर्मा के प्रति मैं उनके मूल्यवान सुझावो के लिए तथा सर्वश्री जोगराज (पुस्तकालयाध्यक्ष—डूंगर महाविद्यालय), दीपसिंह (पुस्तकालयाध्यक्ष – राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय) कुमारी शोभा चौधरी (पुस्तकालयाध्यक्षा – महारानी सुदर्शना महाविद्यालय) एव अन्य स्थानीय पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति मूल्यवान ग्रन्थ उपलब्ध कराने के लिए हृदय के गहन तल से आभार प्रकट करती हूँ। शोध प्रबन्ध के सुरुचिपूर्ण टकण के लिए श्री दिलीपकुमार धन्यवाद के पात्र हैं। मेरे पतिदेव श्री वृजेन्द्रनारायण सक्सेना (नियोजन अधिकारी) ने शोधकार्य की सम्पूर्ति के लिए आरम्भ से अन्त तक जो प्रेरणा तथा सहयोग प्रदान किया तथा प्रिय भाई-बहनो मे कुमुद, रजनी, सजनी, अतुल तथा प्रिय ननद मोहनी ने गृह दायित्व सम्भाल कर जो सहयोग दिया। उसके लिए मैं चिर कृतज्ञ रहूँगी।

शोध प्रबन्ध प्रस्तुतकर्त्री का यह विनम्र प्रयास श्रद्धेय गुरुवर डॉ० देवीप्रसाद गुप्त अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राजकीय डूगर महाविद्यालय, बीकानेर के विद्वत्तापूर्ण एव कुशल निर्देशन मे सम्पन्न हुआ। मैं अपने निर्देशक महोदय डॉ०देवीप्रसाद गुप्त की हृदय के गहनतल से आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा अक्षरश निरीक्षण विधि के कारण ही यह कठिन कार्य सुगम तथा रुचिकर बन सका। इस अवसर पर कृतज्ञता ज्ञापन की औपचारिकता का निर्वाह न करके मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ।

अन्त मे शोध-प्रबन्ध मे रही त्रुटियो की क्षमायाचना करती हुई अपनी शोध-साधना का यह सुमन माँ भारती को समर्पित करती हूँ।

—ओमवती सक्सेना

विपय-सूची

प्रथम अध्याय वर्ग-सघर्ष : सैद्धान्तिक स्वरूपविश्लेषण, 17-66

वर्ग शब्द की व्याख्या व्युत्पत्ति मूलक दृष्टि से, सघर्ष शब्द की व्याख्या व्युत्पत्तिमूलक दृष्टि से, सघर्ष की प्रकृति : चेतनता, वैयक्तिकता, अनिरन्तरता सार्वभौतिकता, सघर्ष के प्रकार, 'वर्ग-सघर्ष' पारिभाषिक स्वरूपविश्लेषण (मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य मे), 'वर्ग-सघर्ष के सैद्धान्तिक विवेचन, 'सर्वहारा' तथा 'पूंजीवादी' वर्गों की उत्पत्ति के सिद्धान्त, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectic-Materialism), मार्क्स के द्वन्द्ववाद की विशेषताएँ . 'अन्त निर्भरता, गतिशीलता, परिवर्तनशीलता, भावात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन, आन्तरिक विश्लेषण, भौतिकवादी दर्शन का आरम्भ, मार्क्स के भौतिक दर्शन की विशेषताएँ, यान्त्रिक भौतिकवाद तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, पूंजीवादी व्यवस्था की शोषक प्रवृत्तियो का विरोध, व्यवस्था-परिवर्तनो म जन-आन्दोलनो तथा क्रातिकारियो की भूमिका, सर्वहारा-वर्ग या श्रमिक-वर्ग की क्रान्ति, सामाजिक तथा समाजवादी क्रान्ति, सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य एव अधिनायकत्व, वर्ग-विहीन समाज की अवधारणा, वर्ग-सघर्ष समाजशास्त्रीय स्वरूप विवेचन, 'वर्ग शब्द की समाजशास्त्रीय व्याख्या, उच्च, मध्य तथा निम्न वर्गों की उद्भावना के सामाजिक कारण, सामाजिक वर्गों की सरचना, वर्ग विभाजन . समाजशास्त्रीय दृष्टि से, भारतीय सामाजिक सरचना तथा वर्ग-भावना, वर्णाश्रम व्यवस्था का वर्ग-भावना के परिसदर्भ मे मूल्याकन, भारतीय समाज व्यवस्था मे वर्ग-सघर्ष की प्रेरक परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियाँ, निष्कर्ष ।

द्वितीय अध्याय : हिन्दी उपन्यास : उद्भव, विकास और प्रवृत्तियाँ 67-103

हिन्दी उपन्यास : उद्भव तथा विकास, सृजन की पृष्ठभूमि, प्रेमचन्द पूर्ववर्ती युग प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्दोत्तर युग, समकालीन युग, प्रेमचन्द पूर्ववर्ती हिन्दी-उपन्यासो की प्रवृत्तियाँ, प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी-उपन्यासो की प्रवृत्तियाँ, प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-उपन्यासो की प्रवृत्तियाँ, समकालीन हिन्दी-उपन्यासो की प्रवृत्तियाँ, श्रमिक-वर्ग पर औद्योगिक एव वैज्ञानिक प्रभाव का चित्रण, मध्यवर्गीय समाज की जर्जर स्थिति, आर्थिक-नैतिक वैषम्य का स्वरूपाकन, मूल्यगत सक्रमण का चित्रण, जनव्यापी असन्तोष की स्थितियाँ, भ्रष्टाचार भ्रष्टाचार की अवधारणा तथा भ्रष्टाचार के कारण, दमित वासनाओ का खुला प्रदर्शन।

तृतीय अध्याय : मार्क्सवादी चेतना के हिन्दी-उपन्यासों मे वर्ग-सघर्ष 104-209

मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासो की सृजनात्मक प्रेरणाएँ, प्रथम महायुद्ध के पश्चात् रूसी क्रान्ति द्वारा भारत मे मार्क्सवादी चेतना का प्रसार-प्रचार, देश मे मार्क्सवादी साहित्य का प्रसार-प्रचार, द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचार-दर्शन, आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोह, राष्ट्रीय आन्दोलन और वर्ग-क्रान्ति की भूमिका।

मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ :

(अ) समाज व्यवस्था के प्रति असन्तोष की प्रवृत्ति, (आ) मार्क्सीय सिद्धान्तो के प्रचार और प्रतिफलन की आकाक्षा, (इ) सामयिक समस्याओ के प्रति जागरूकता, (ई) साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा पूँजीवाद के प्रति विद्रोह की प्रवृत्ति, (उ) शोषितो के प्रति सहानुभूति की प्रवृत्ति, (ऊ) आर्थिक वैषम्य के चित्रण की प्रवृत्ति, (ए) आन्दोलनकारी प्रवृत्तियो का चित्रण।

'वर्ग-सघर्ष' की उद्भावना के कारण :

(अ) अभिशप्त वर्ण व्यवस्था, (आ) रूढ़िवादिता, (इ) सामन्तवादी व्यवस्था, (ई) मशीनीकरण, (उ) आर्थिक नीति मे परिवर्तन, (ऊ) आर्थिक विषमता, (ए) अशिक्षा।

मार्क्सवादी चेतना के अनुसार वर्ग-विवेचन—
मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासों में निरूपित शोषक-वर्ग
(अ) पूँजीपति वर्ग, (आ) महाजन-वर्ग, (इ) जमींदार-वर्ग, (ई) अधिनायक वर्ग, (उ) महतो तालुकेदार तथा जिलेदार-वर्ग, (ऊ) अफसरशाही-वर्ग, (ए) उद्योगपति-वर्ग।
मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासों में निरूपित शोषित वर्ग
(अ) सर्वहारा-वर्ग, (आ) श्रमिक वर्ग, (इ) कृषक-वर्ग, (ई) निम्न तथा अधीनस्थ वर्ग, (उ) स्वयं सेवक, कामरेड तथा नारी वर्ग।
वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियाएँ :
(अ) आर्थिक शोषण का कुचक्र—सामन्तवर्ग द्वारा आर्थिक शोषण, पूँजीपति वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण व्यापारी-वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण, धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण तथा शासक वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण, (आ) नारी शोषण नारी शोषण का एक आयाम आर्थिक विवशताएँ, रूढिगत मान्यताएँ तथा नारी स्वातन्त्र्य, सामन्तवादी व्यवस्था में विलास व व्यभिचार द्वारा नारी शोषण, पूँजीवादी समाज में नारी की संघर्ष-चेतना, (इ) साम्प्रदायिक संघर्ष, (ई) मूल्यगत संक्रमण . मूल्यों में संघर्ष का सिद्धान्त, मूल्य संक्रमण : सामाजिक मूल्य-परिवर्तन के रूप में, (उ) सांस्कृतिक पतन, (ऊ) राजनीतिक भ्रष्टाचार।
मार्क्सवादी चिन्तन की संवाहक विचारधाराओं की अभिव्यक्ति . (अ) मार्क्सवाद, (आ) समाजवाद, (इ) साम्यवाद।
आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ : (अ) क्रान्ति, (आ) हड़ताल और तालाबन्दी, (इ) दलीय प्रतिबद्धता, (ई) मजदूर आन्दोलन, (उ) विभिन्न दलों की संघर्षात्मक भूमिका।
धार्मिक तथा नैतिक पतन . (अ) जीवन-यथार्थ की स्वीकृति तथा नैतिकता के बदलते मानदण्ड।
सामाजिक कुरीतियाँ : (अ) संयुक्त परिवार प्रथा की प्रतिक्रियाएँ, (आ) विवाह सम्बन्धी कुरीतियाँ, (इ) वेश्यावृत्ति, (ई) दाम्पत्य सम्बन्धों की बदलती भूमिका, (उ) अनमेल तथा वृद्ध विवाह, (ऊ) तलाक प्रावधान।
कुरीतियों से त्राण . अन्तर्जातीय विवाह :
यौन विकृतियाँ, निष्कर्ष

आर्थिक शोषण, राजनैतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक कुरीतियाँ-विवाह-प्रथा, अनमेल विवाह दहेज प्रथा, विवाह विच्छेद प्रथा। यौन-विकृतियाँ, साम्प्रदायिक संघर्ष, आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ, सांस्कृतिक पतन, ग्राम्यांचल में नवीन सांस्कृतिक, चेतना, मूल्यगत संक्रमण निष्कर्ष।

सप्तम अध्याय : हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष 442-449

मनोविज्ञान शाब्दिक व्युत्पत्तिमूलक व्यवस्था, मनोविज्ञान पारिभाषिक स्वरूप विश्लेषण, मूल प्रवृत्तियों का विश्लेषण, हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखन की परम्परा, हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रणालियाँ—(अ) मुक्त आसंग प्रणाली (फ्री एसोसियेशन मैथड), (आ) बाधकता विश्लेषण (रेजिस्टेन्स), (इ) प्रत्यावलोकन प्रणाली (ई) सम्मोह विश्लेषण, (उ) पूर्व वृत्तात्मक प्रणाली (केस हिस्टरी मैथड), (ऊ) शब्द सहस्मृति परीक्षण का प्रयोग, (ए) निराधार प्रत्यक्षीकरण की अभिव्यक्ति (हैल्युसीनेशन-ऐनेलेसिस),-

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ . (अ) मनोभावों की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति, (आ) अहम् तथा आत्मोत्सर्ग के चित्रण की प्रवृत्ति, (इ) विवेक, बुद्धि तथा यौन प्रवृत्ति में द्वन्द्व का चित्रण, (ई) अचेतन द्वन्द्वों के उद्घाटन की प्रवृत्ति, (उ) अनुभाव चित्रण की प्रवृत्ति, (ऊ) मुख इंगित द्वारा व्यक्तित्व अंकन की प्रवृत्ति, (ए) सम्मोह द्वारा दबी अनुभूतियों के उद्घाटन की प्रवृत्ति, (ऐ) आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति, (ओ) स्मृतियों द्वारा कार्य कारण खोज की प्रवृत्ति।

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्ग संघर्ष की स्थितियाँ—मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में विवेचित वर्ग :

शोषक-वर्ग—जमींदार वर्ग, पूँजीपति-वर्ग, ठाकुर तथा व्यापारी वर्ग।

शोषित वर्ग—कृषक-वर्ग, मजदूर-वर्ग, श्रमिक वर्ग।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष के कारण .

(अ) रूढ़िवादिता, (आ) अशिक्षा, (इ) मशीनीकरण, (ई) सामन्तवादी व्यवस्था, (उ) आर्थिक विषमता, (ऊ) मार्क्सवादी चेतना का प्रसार।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियाएँ—
(अ) नारी शोषण, (आ) सामाजिक कुरीतियाँ, (इ) कन्या जन्म : एक अभिशाप, (ई) प्रेम की समस्या, (उ) विवाह सम्बन्धों की विडम्बना, (आ) वैधव्य समस्या, (ए) दहेज-प्रथा, (ऐ) पारिवारिक विघटन, (ओ) धार्मिक-नैतिक पतन, (औ) आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ, (अं) आर्थिक शोषण, (अः) राजनैतिक भ्रष्टाचार, (क) यौन विकृतियाँ, (ख) मूल्यगत संक्रमण, (ग) सांस्कृतिक पतन, निष्कर्ष।

उपसंहार 490-492

शोध-प्रबन्ध में विवेचित उपन्यास 493-500

शोध-प्रबन्ध में विवेचित संदर्भ-ग्रन्थ 501-512

अध्याय १

वर्ग-संघर्ष : सैद्धान्तिक स्वरूप-विश्लेषण

'वर्ग-सघर्ष' पदो मे 'वर्ग' और 'सघर्ष' दो शब्द हैं। 'वर्ग-सघर्ष' की सैद्धान्तिक एव पारिभाषिक व्याख्या से पूर्व इन शब्दो का व्युत्पत्तिमूलक एव प्रायोगिक स्वरूप-विवेचन अपेक्षित है। मानव-विकास की प्रक्रिया मे 'वर्ग' शब्द एक विशेष पारिभाषिक अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता रहा है। समाज के किसी भी वर्ग या श्रेणी मे जितने मनुष्य होते है उन सबके हित सामाजिक तथा आर्थिक दोनो ही दृष्टियो से समान होते हैं। प्रत्येक हित मे समानता होना ही 'वर्ग' का प्रमुख लक्षण है।

वर्ग शब्द की व्याख्या . व्युत्पत्तिमूलक दृष्टि से

'वर्ग' शब्द 'वृज्' धातु के 'घञ्' प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ होता है श्रेणी, कक्षा, दल। न्याय-शास्त्र के अनुसार नौ या सात सख्या वाले पदार्थो के विभाग को 'वर्ग' कहते है। व्याकरण-शास्त्र के अन्तर्गत व्यजन वर्णों का वर्ग होता है, जैसे—कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग इत्यादि। आकार-प्रकार से भिन्न किन्तु किसी एक सामान्य धर्म को रखनेवालो का समूह वर्ग ही कहलाता है, जैसे—मनुष्य वर्ग, साधु वर्ग, मजदूर वर्ग इत्यादि। वर्ग शब्द की व्याख्या करते हुए 'वर्ग' को समानधर्मियो का समूह भी कहा गया है। 'हिन्दी वृहद् कोश' की व्याख्या के अनुसार—'वर्ग स्वजातीय या समानधर्मियो का समूह, दल एक स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों का समूह, ग्रन्थ का विभाग, अध्याय; समान अकोका घात, वह समकोण चतुर्भुज जिसकी लम्बाई-चौडाई बराबर हो, शक्ति, क्षेत्र, अर्थ, धर्म, आदि है।'[1] किसी विशिष्ट क्षेत्र मे रहनेवाले समूह, किसी विशिष्ट धर्म को मानने वाले समूह, अर्थोपार्जन मे लगे समूह, शक्तिसम्पन्न समूह को वर्ग की सज्ञा दी गई है। राजनीति-कोश मे 'वर्ग' का अभिप्राय व्यक्तियो का वह समुदाय है जो उत्पादन-प्रक्रिया मे एक-सी भूमिका का निर्वाह करता है और जिनके सम्बन्ध उत्पादन-प्रक्रिया मे सलग्न दूसरे व्यक्तियो के

१. 'हिन्दी वृहद् कोश'—स० कालिका प्रसाद (प्र० सस्करण स० २००९), पृ० १२१६

साथ एक-से होते हैं।"[१] इस व्याख्या में 'वर्ग' का समुदाय तथा उत्पादन-प्रक्रिया से जोड़ दिया है। इसी प्रक्रिया के अनुरूप कार्ल मार्क्स ने भी वर्गों की व्याख्या की है तथा दो प्रमुख वर्ग माने हैं—अभिजात्य या पूँजीवादी वर्ग तथा श्रमिक वर्ग। जिसबर्ग ने वर्गों के कार्यों का विवेचन करते हुए लिखा है, 'वर्ग की संकल्पना दलों के सामाजिक भेद पर आधारित है। एक वर्ग के अन्दर ऐसे सदस्य होते हैं, जो एक ही वंश से उत्पन्न हों, एक-से धन्धे में लगे हों, जिनकी शिक्षा समान हो, जो धन की दृष्टि के समान स्तर रखते हों तथा जिनके जीवन-निर्वाह का ढंग भी एक-सा हो, ऐसे सभी सदस्यों के विचार, भावनाएँ प्रवृत्तियाँ एवं व्यवहार समान होते हैं।'[२] इस व्याख्या में वंश, धन्धा, धन, जीवन-निर्वाह के स्तर, समान आचार-व्यवहार को प्रकट करनेवाले समूह अथवा समुदाय को वर्ग कहा गया है।

सम्पत्ति के आधार पर दो वर्ग बनते हैं—धनिक और निर्धन। व्यक्तिगत शक्ति के आधार पर भी वर्गों का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए जो शारीरिक शक्ति से सम्पन्न हो, राजनीतिक शक्ति व धन से सम्पन्न हो, वह शक्तिशाली वर्ग की श्रेणी में आते हैं। शेष समूह को शक्तिविहीन वर्ग की संज्ञा दी जाती है।

समाज की कल्पना के साथ साथ ही वर्गों की संकल्पना जागृत होती है। अतः सामाजिक श्रेणीकरण का विशिष्ट रूप ही वर्ग कहलाता है। श्रेणीकरण की प्रक्रिया द्वारा ही समाज अपने सदस्यों के स्थान का निर्धारण करता है। मैकाइवर तथा पेज के अनुसार 'किसी वर्ग का अर्थ ऐसी श्रेणी अथवा प्रकार में है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह आते हैं।'[३] महान् विचारक लेनिन ने वर्ग की व्याख्या सामाजिक उत्पादन-पद्धति के अनुसार की है, "वर्ग व्यक्तियों के बड़े-बड़े दल होते हैं। ये दल एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, जिसकी भिन्नता का आधार व्यक्ति की सामाजिक उत्पादन-पद्धति के अनुसार निर्धारित किया जाता है।'[४] डॉ० सम्पूर्णानन्द के अनुसार 'वर्ग शब्द समाजवादी दृष्टि-कोण से एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जिन समूह के व्यक्तियों के आर्थिक हित एक-से होते हैं। उनको वर्ग कहते हैं, जैसे—जमींदारों का एक वर्ग, मजदूरों का दूसरा वर्ग, मिलमालिकों का तीसरा वर्ग इत्यादि। वर्गहित स्थायी हैं तथा उनके लोभ तथा प्रतिस्पर्धा के कारण व्यक्तियों तथा मनुष्य-समूह

---

१ 'राजनीतिकोश'—डॉ० सुभाष कश्यप तथा विश्वप्रकाश गुप्त, पृ० ५६
२. 'इन्साइक्लोपीडिया आफ दी सोशल साइन्सेज' (भाग ३ तथा ४), पृ० ५३१ तथा ५३६
३. 'सोसाइटी'—आर० एम० मैकाइवर तथा सी० एच० पेज पृ०३४८
४. 'फण्डामेण्टल आफ मार्क्सिज्म-लेनिनिज्म मैन्यूल', पृ० १५०

के जीवन बनते-बिगडते हैं।"[1] सन् १९४० की संयुक्त राज्य की सामाजिक स्थिति तथा व्यवसाय के आधार पर वर्गों की दसवीं सारणी के श्रमदल में स्थित आर्थिक व सामाजिक समूह का विभाजन छ श्रेणियों में किया जाता है—"(१) व्यावसायिक व्यक्ति (२) मालिक, प्रबन्धक तथा कर्मचारी (अ) कृषक (आ) थोक विक्रेता, खुदरा व्यापारी (इ) अन्य मालिक (४) कुशल कारीगर तथा अधिकर्मी (५) अर्द्धकुशल कारीगर (६) अकुशल कारीगर (अ) खेती के श्रमिक (आ) खेतीविहीन श्रमिक (इ) नौकर वर्ग।"[2] प्रसिद्ध जर्मन समाज-विज्ञानवेत्ता मैक्स वेबर ने इस बात पर बल दिया है कि 'सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाएँ एक-सी नहीं हैं। आर्थिक व्यवस्था में आर्थिक सामग्रियों तथा सेवाओं का वितरण व उपयोग किया जाता है। सामाजिक व्यवस्था आर्थिक व्यवस्था द्वारा स्थितिशील होती है। वर्ग की धारणा अपेक्षाकृत आर्थिक होती है जिसमें समान 'जीवन अवसर' अथवा अपेक्षाकृत आर्थिक स्थितियों से निर्णीत सामाजिक अवसर होते हैं।"[3] इस प्रकार वर्गस्थिति द्वारा स्वामी-वर्ग तथा दास-वर्ग (दासता के युग में), सामन्तवादी युग में राजा, सैनिक-वर्ग तथा कृषक-वर्ग का उद्भव हुआ। विभिन्न दृष्टियों से अवलोकन करने के पश्चात् समाज में अमीर तथा गरीब वर्गों के आधार पर अनेक वर्ग दृष्टिगोचर होते हैं—धार्मिक वर्ग, आर्थिक वर्ग, राजनीतिक वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग, कृषक वर्ग आदि।

संघर्ष शब्द की व्याख्या · व्युत्पत्तिमूलक दृष्टि से

समपूर्वक 'घृष' धातु में 'घञ्' प्रत्यय किया गया है। इसी से संघर्ष शब्द बना है। यह शब्द भाववाचक संज्ञा है क्योंकि 'घञ्' प्रत्यय यहाँ भाव-अर्थ में हुआ है। संघर्ष शब्द की व्युत्पत्ति से यह अर्थ निकलता है कि चीजों का आपस में रगड खाना, टक्कर, भिडन्त, स्पर्धा, होड़, द्वेष और धीरे-धीरे चलना। हिन्दी भाषा-कोष में संघर्ष शब्द को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है—संघर्ष (पु० संज्ञा) (१) एक चीज का दूसरी चीज से टकराना, रगड खाना, संघर्षण, रगड, घिस्सा, (२) दो परस्पर-विरोधी व्यक्तियों या दलों में स्वार्थ के विरोध के कारण होनेवाली प्रतियोगिता या स्पर्धा, (३) वह अहंकारसूचक

---

१ 'समाजवाद'—डॉ० सम्पूर्णानन्द, पृ० सं० १४७-१४८

2. Data from U. S. Bureau of the sensus, Comparative Occupation Statistics for the United States, 1870 to 1940 (Washington D. C.) 1943.

3. 'Essay in Sociology'—Max Weber, P. 88

वाक्य जो अपने प्रतिपक्षी के सामने अपना बड़प्पन जतलाने के लिए कहा जाय, (४) किसी चीज को घोटने या रगड़ने की क्रिया, रगड़ना, घूमना, धीरे-धीरे चलना, टहलना, शक्ति लगाना, बाजी लगाना इत्यादि।[1] इसीसे मिलती-जुलती व्याख्या हिन्दी बृहत् कोश में की है— 'संघर्ष—दो चीजों का आपस में टकराना, नाश करना, वध करना, होड़, स्पर्धा द्वेष कामोत्तेजना, धीरे-धीरे लुढ़कना।' पाश्चात्य धारणा के अनुसार 'नाटक की वह स्थिति जिसमें विरोधी शक्तियाँ अन्तिम बार परस्पर संघर्ष करती हैं तथा कथावस्तु को निर्णयात्मक क्षण प्रदान करती हैं, संघर्ष कहलाती है। इस क्षण से ही एक विरोधी शक्ति बलवती एवं दूसरी निरुपाय होने लगती है। नाटक का वह स्थल जहाँ विरोधी शक्तियों की हार-जीत का अन्तिम निर्णय होता है संघर्ष कहलाता है।"[3] संघर्ष मानव प्रकृति में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार सहयोग। संघर्ष किन्हीं-न-किन्हीं स्वार्थों के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। यह मानव-समाज की एक मौलिक सामाजिक प्रक्रिया है।[४]

जब प्रतिस्पर्धा अपने उद्देश्यों से हटकर प्रतिस्पर्धियों पर केन्द्रित हो जाती है तो संघर्ष का रूप धारण करती है। मार्क्सवादी की धारणा के अनुसार दो प्रतिद्वन्द्वियों अथवा वर्गों के हित जब आपस में टकराने लगते हैं तथा उनमें से किसी भी वर्ग में जब चेतना का प्रादुर्भाव हो जाता है, तो उस स्थिति को हम संघर्ष कहते हैं।

संघर्ष की प्रकृति

संघर्ष की प्रक्रिया के अन्तर्गत चेतना तथा वैयक्तिकता पाई जाती है। कभी-कभी इसकी निरन्तरता में गतिरोध आ सकता है लेकिन वह क्षणिक होता है। संघर्ष के अन्तर्गत व्यक्ति अपने विरोधियों के प्रति अधिक सतर्क होता है तथा प्रत्येक स्तर पर उन्हें दबाने का प्रयत्न करता है। संघर्ष की निरन्तरता तथा तीव्रता में जो कमी आती है उसका एकमात्र कारण सदस्यों के उद्वेगों में तीव्र उतार-चढ़ाव होता है। संघर्ष की प्रकृति के प्रमुख चार लक्षण हैं—

(१) चेतनता—संघर्ष में प्रतिद्वन्द्वियों को एक-दूसरे का पूर्ण ज्ञान होता है। वे न केवल उद्देश्यों की प्राप्ति करना चाहते हैं वरन् अपने विरोधियों का नाश भी करना चाहते हैं। पार्क तथा बरगेस ने लिखा है, 'संघर्ष अति तीव्र उद्वेग

---

१ 'हिन्दी भाषा वृहत् कोश'—श्यामसुन्दर दास (चौथा भाग), पृ० ३२७६
२ 'हिन्दी वृहत् कोश'—कालिका प्रसाद, पृ० सं० १३७०
३ 'हिन्दी साहित्यकोश'—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० सं० ७८१
४. 'समाजशास्त्र की रूपरेखा'—एम० एस० गोरे, पृ० सं० २६१

और अत्यधिक शक्तिशाली उत्तेजना को जागृत कर देता है और ध्यान एवं प्रयत्न को अत्यधिक एकाग्रचित्त कर देता है।"[१]

(२) वैयक्तिकता—संघर्ष-प्रक्रिया की एक महान् विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत व्यक्तियों का ध्यान उद्देश्यों या लक्ष्यों से हटकर आपस में एक-दूसरे पर हो जाता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की परिस्थिति तथा कार्यशीलता से जागरूक होता है और हर क्षण उसका यही प्रयत्न रहता है कि किस प्रकार उस व्यक्ति-विशेष को समूल नष्ट कर, उद्देश्य अथवा लक्ष्य की प्राप्ति पर एकाधिकार हो जाय।

(३) अनिरन्तरता—संघर्ष की प्रकृति निरन्तर न होकर अनिरन्तर तथा अस्थायी होती है। कुछ समय तक संघर्ष चलता है तथा फिर रुक जाता है। संघर्ष के लिए अत्यधिक शक्ति तथा कार्य की आवश्यकता पड़ती है।

(४) सार्वभौमिकता—प्रतिस्पर्धा के समान संघर्ष भी सार्वभौमिक क्रिया है। यह किसी न किसी रूप में प्रत्येक समाज में पाया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार संघर्ष तथा युयुत्सा के मूल कारण मनुष्य की प्रकृति में निहित है। "संघर्ष प्रत्येक समाज में पाया जाता है। संघर्ष व्यक्तियों और समूहों की इच्छाओं और स्वार्थों पर नियन्त्रण रखने की अपेक्षा टकराने से उत्पन्न होते हैं।"[२]

संघर्ष के प्रकार

समाजशास्त्रीय ग्रन्थों में संघर्ष के अनेक प्रकारों का वर्णन मिलता है। व्यक्तिगत, सामूहिक, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय, राजनीतिक आदि। मैकाइवर तथा पेज ने दो प्रकार के संघर्षों का वर्णन किया है प्रथम 'प्रत्यक्ष संघर्ष' और द्वितीय 'परोक्ष संघर्ष'।[३] प्रत्यक्ष संघर्ष—जब व्यक्ति अथवा समूह किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे को रोकते हैं तथा एक-दूसरे को घायल तथा नष्ट करते हैं तो उसे 'प्रत्यक्ष संघर्ष' कहते हैं। अप्रत्यक्ष संघर्ष—इस संघर्ष में व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह एक-दूसरे पर आघात नहीं करते वरन् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐसे साधनों का प्रयोग करते हैं जिनसे दूसरे लोग उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति न कर सकें। वैयक्तिक संघर्ष—एक समूह में व्यक्तियों के मध्य पाया जाने वाला संघर्ष वैयक्तिक संघर्ष कहलाता है। समूह इस

---

१. 'Introduction to the Science of Sociology'—R.E. Park and E W Burgess, P. 574

२ 'समाजशास्त्र की रूपरेखा'—एम० एम० गोरे, पृ० २६१

३. 'Society'—MacIver and Page, P 64

प्रकार के संघर्ष को प्रोत्साहन नहीं देता क्योंकि ऐसे संघर्ष व्यक्तियों के निजी स्वार्थों के कारण होते हैं। सामूहिक संघर्ष —सामूहिक संघर्ष वह संघर्ष है जो समूहों के बीच अथवा विभिन्न समाजों के बीच में होता है। इसी प्रकार एक समाज दूसरे समाज से संघर्ष करता है और धन शक्ति तथा मान को बढ़ाता है। सामूहिक संघर्ष का लाभदायक पक्ष भी है यद्यपि इसमें हानि अधिक है। बीसज और बीसज लिखते हैं, "फिर भी अधिक संघर्ष विनाशकारी होता है और जितना समस्याओं को सुलझाता है उससे कहीं अधिक समस्याओं को जन्म देता है।"[१] ग्रीन ने उचित ही लिखा है कि 'युद्ध सामूहिक चेतना और सामूहिक समानता को बढ़ाता है।'[२] किंग्सले डेविस ने लिखा है कि आन्तरिक एकता और बाह्य संघर्ष एक ही ढाल के प्रतिकूल पक्ष हैं।[३] पार्क तथा बरगेस लिखते हैं कि 'कुछ भी हो, प्रतिस्पर्धा निरन्तर तथा अवैयक्तिक होती है और संघर्ष अनिरन्तर तथा वैयक्तिक होते हैं।'[४] प्रजातीय संघर्ष—विभिन्न प्रजातियाँ एक-दूसरे से संघर्ष के काम में आती है। उनमें विभिन्न स्वार्थों के लिये संघर्ष होता है। विशेषतः यह संघर्ष सामाजिक परिस्थिति के लिये होता है। जैसे—अमरीका में दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) राष्ट्रीय, (२) अन्तर्राष्ट्रीय एक राष्ट्र के अन्तर्गत विभिन्न राजनीतिक दलों में होने वाला संघर्ष राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्ष कहलाता है तथा एक राष्ट्र का जब दूसरे राष्ट्र से संघर्ष शुरू हो जाता है तब उसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्ष के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रकार संघर्ष के अनेक स्वरूप होते हैं। इनके वर्गीकरण भी कई प्रकार के होते हैं। उद्देश्यों के आधार पर इसके प्रमुख स्वरूप कलह, युद्ध, व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता तथा मुकद्दमेबाजी हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक संघर्ष, प्रजातीय संघर्ष, धार्मिक संघर्ष, सामुदायिक संघर्ष, पारिवारिक संघर्ष तथा वर्ग संघर्ष आते हैं। वर्ग संघर्ष के विषय में आधुनिक युग में बड़ी चर्चा है। संघर्ष के कारण (१) व्यक्तिगत विभिन्नता, (२) सांस्कृतिक विभिन्नता, (३) स्वार्थों की बहुलता, (४) तीव्र सामाजिक परिवर्तन होते हैं।

'वर्ग संघर्ष' पारिभाषिक स्वरूप-विश्लेषण (मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में)

समाज की मीमांसा में मार्क्स 'वर्ग' को ही प्रमुख इकाई मानता है। मार्क्स के अनुसार वर्ग-संघर्ष या वर्ग-युद्ध विश्व के इतिहास की व्यवस्था के

१ 'Modern Society'—Biesanz and Biesanz, P 93
२ 'Sociology—Green, P 54
३ 'Human Society'—K Davis, P 60
४ 'Introduction to the Science of Sociology'—Park and Burgess P 574

लिये अचूक ओषधि है। मार्क्स की धारणा है कि "समाज में आर्थिक व्यवस्था का उत्तरोत्तर विकास श्रेणी-सघर्ष द्वारा ही हुआ है। समाज की वर्तमान अवस्था में जो विषमता और अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गये है, उनका कारण पैदावार के लिये श्रम करने वाली साधनहीन श्रेणी की शोषण से मुक्ति और इस श्रेणी द्वारा स्थापित की गई शोषणहीन व्यवस्था से ही हो सकता है। मार्क्स के अनुसार साधनहीन श्रेणी की मुक्ति और समाज से शोषण और अव्यवस्था दूर करने का उपाय श्रेणी सघर्ष है।"[1] मार्क्स ने विभिन्न वर्गों के पारस्परिक सघर्ष की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कहा है कि "उत्पत्ति के साधनो के लिये ही व्यक्तियो मे सघर्ष पैदा होता है। वह तो उन समाजो का जो कि आज तक पाये जाते हैं, इतिहास ही वर्ग सघर्ष का इतिहास है।"[2] मैनीफेस्टो का आरम्भ ही इसी सिद्धान्त द्वारा होता है। मार्क्स तथा एजिल्स ने इस घोषणा-पत्र मे "वर्ग-युद्ध के सिद्धान्त को वर्तमान समाज के समस्त नियमो को समझाने की कुजी के रूप मे प्रयुक्त किया है। इसमे पूंजीपतियो (Bourgeoisie) तथा सर्वहारा-वर्ग (Proletariat) के बीच १९वी सदी के सघर्ष का सर्वोत्तम वर्णन है।"[3] "सम्पूर्ण सामाजिक सम्बन्धो की अभिव्यक्ति का माध्यम मनुष्य ही है, अत उत्पादक शक्तियो और उत्पादन-सम्बन्धो की विरोधी प्रवृत्तियो का सघर्ष भी समाज म विभिन्न श्रेणियो के सघर्ष के रूप मे व्यक्त होता है। उत्पादन के ढग मे परिवर्तन उपस्थित होते ही समाज मे नई श्रेणियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं।"[4] वर्ग-सघर्ष के पारिभाषिक स्वरूप-विवेचन से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि वे कौनसे उत्पादन के साधन हैं जिनके कारण मनुष्य म सघर्ष की यह भावना जन्म लेती है। 'मुख्यतया वर्ग-सघर्ष के कारण तीन बताये जाते हैं—(१) भूमि—उत्पादन का सबसे बडा साधन है। (२) पूँजी—धन या सम्पत्ति का वह भाग जो वृद्धि के उद्देश्य स लगाया जाय पूँजी कहलाता है। (३) श्रम—जिस वस्तु के बनाने म जितना अधिक श्रम लगता है वह उतनी ही महार्घ होती है तथा उसका विनिमयार्थ उतना ही अधिक होता है। एक स्थिति मे ही श्रम विभाजन उसको पराधीन बनाता है जो पहले स्वाधीन था तथा दूसरी स्थिति मे वह उसको स्वाधीन बनाता है जो पराधीन था।'[5]

"श्रमिक अपने श्रम का अधिक मूल्य, जो कि वास्तविक देन है, चाहता है तथा पूंजीपति अथवा शोषक-वर्ग अपनी पूंजी का अत्यधिक लाभ। बस, जब

---

१ 'गांधीवाद की शव-परीक्षा'—यशपाल, पृ० १४३
२ 'सलेक्टेड वर्क्स, खण्ड १—मैनीफेस्टो ऑफ दी कम्युनिस्ट पार्टी —कार्ल मार्क्स, पृ० ११०
३ 'आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास —डॉ० प्रभुदत्त शर्मा, पृ० ४८०
४ 'हिन्दी काव्य मे मार्क्सवादी चेतना'—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० ८४।
५ 'कार्ल मार्क्स—कैपीटल खण्ड-१'—पृ० ३५५

दोनों के हित टकराते हैं तो वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।'[1] प्रत्येक काल और प्रत्येक देश में आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति पाने के लिये निरन्तर संघर्ष महान् आन्दोलनों को जन्म देते हैं। 'प्राचीन रोम में कुलीन सरदार, साधारण मनुष्य तथा दास होते थे। मध्य युग में सामन्त सरदार जागीरदार, संघस्वामी, कामदार, अपरेंटिस तथा सेवक होते थे। प्राय इन समस्त वर्गों में उनकी उपश्रेणियाँ होती थीं। ये समूह दमन करने वाले तथा दलित, निरन्तर एक-दूसरे का विरोध करते थे। इनमें कभी खुलकर तथा कभी छुपकर निरन्तर संघर्ष चलता रहता था। प्रत्येक समय इस युद्ध के परिणामस्वरूप या तो समाज की क्रान्तिकारी पुनर्रचना होती थी या संघर्षरत दोनों वर्ग नष्ट हो जाते थे।'[2] इतिहास के अध्ययन में वर्ग-संघर्ष की इसी महत्ता को प्रतिपादित करते हुए एंजिल्स ने लिखा है—"आधुनिक इतिहास में कम से-कम यह तो सिद्ध हो चुका है कि समस्त राजनीतिक संघर्ष वास्तव में वर्ग-संघर्ष ही है तथा स्वतन्त्रता के लिए चलने वाले वर्गों के ये समस्त संघर्ष अपने विशिष्ट राजनीतिक स्वरूप को रखते हुए भी, क्योंकि प्रत्येक वर्ग-संघर्ष एक राजनीतिक वर्ग-संघर्ष है, अन्तत आर्थिक स्वतन्त्रता के प्रश्न से ही जुड़े हुए हैं।"[3] एंजिल्स ने 'समाजवाद वैज्ञानिक तथा काल्पनिक' पुस्तक में भी इसी विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "आदिम समाजवाद को छोड़कर मानव-जाति का सारा अतीत-इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है और हर समाज के संघर्षशील वर्ग उस काल के उत्पादन तथा विनिमय की अवस्थाओं से या एक शब्द में कहें तो उस काल की आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं।"[4] श्री भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है—'संसार की सारी प्राचीन सभ्यताओं में आर्थिक कारणों

---

१ हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना (प्रेमचन्द युग)'—प्रतापनारायण टण्डन पृ० ४४

२ "In ancient Rome we have paricians, Knights, Plebians and slaves, in the middle ages there were feudal lords, vassals, guide masters, journey men, apprentices and serfs, in almost all of their classes, again subordinate gradations, these groups, appressors and appressed, stood in constant opposition to one another carried on an uninterrupted, now hidden, now open fight, a fight that at each time, ended either in a revolutionary reconstruction of society *at large or in the common ruin of the contending classes* "
—Communist Manifesto, P 7

३ 'लुडिग फयूरबख एण्ड दि आउटकम ऑफ क्लासीकल जर्मन फिलोस्फी'—एफ० एंजिल्स, पृ० ६१

४ 'समाजवाद वैज्ञानिक तथा काल्पनिक'—फैडरिक एंजिल्स, पृ २७ २८

से पहले एक कृत्रिम समाज की व्यवस्था हुई है। इसरा रूप पहले धर्म की छाया और उसकी आड़ में खड़ा हुआ और उसकी सुरक्षा और धार्मिक गुरुओं के दाँवपेच में विकसित हुआ। प्राचीन सभ्यताओं में सर्वत्र पहले पुरोहिताई का बोलबाला हुआ। मिस्र में, सुमेर में, असीरिया और बेबीलोन में, अक्काद और एलाम में, भारत और चीन में, ब्रिटेन और बर्मा में सर्वत्र पशुदल के साथ धर्मबल का उदय हुआ। इस पूर्व-वैदिक काल में जब बाह्य संघर्ष का अन्त हुआ तो आन्तरिक संघर्ष का प्रारम्भ हुआ। आर्यों में वर्णव्यवस्था प्रतिष्ठित हो चुकी थी। कृषि और लूट, विजय और वाणिज्य से, समाज में अर्थ और सम्पत्ति का संचय हो चुका था। उनके अर्जन तथा शोषण के केन्द्र बन गये थे तथा इसके केन्द्रों पर अधिकार करने के लिए ब्राह्मण और क्षत्रियों के वर्ग, वर्णों के आधार आर्थिक पेशे थे, परस्पर टकराने लगे थे।"[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि उत्पत्ति के साधनों को अपने अधिकार में रखने की मनुष्यमात्र की प्रवृत्ति है। संघर्ष के अन्तर्गत जो अन्य प्रकार की साधर्षिक प्रवृत्तियों के रूप देखने को मिलते हैं, उनकी प्रमुखता तथा गौणता पर विचार करते हुए श्री हीरालाल पालित स्पष्ट करते हैं—"उत्पादन-प्रणाली को बस में रखने का संघर्ष मुख्य तथा अन्य सभी प्रकार के संघर्ष गौण हैं तथा अप्रधान है। चूँकि उत्पादन के साधनों को वस में रखने का अन्तिम रूप उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व प्राप्त करना है, अतएव जो मुख्य शक्ति समाज की किसी अवस्था विशेष में व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को निश्चित करती है, वह उत्पत्ति के साधनों का स्वामित्व ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्पत्ति के साधनों के स्वामित्व-परिवर्तन की कहानी का दूसरा नाम ही समाज की प्रक्रिया अथवा विकास है।"[2] "आधुनिक पूँजीवादी समाज सामन्ती समाज के ध्वंस से पैदा हुआ है और उसने समाज के विरोधों को खत्म नहीं कर दिया। उसने पुराने वर्गों के स्थान पर नये वर्ग, पीड़न के पुराने तरीकों के स्थान पर नये तरीकों को तथा संघर्ष के पुराने स्वरूपों के स्थान पर नये स्वरूप खड़े कर दिये हैं।"[3] पूँजीवाद की विशेषता यह है कि वर्ग-विरोधों को उसने सीधा-सादा बना दिया है। "आज का पूरा समाज दिनोदिन दो विशाल प्रतिस्पर्धी शिविरों में एक-दूसरे के खिलाफ खड़े दो विशाल वर्गों में पूँजीपति और मजदूरों में बँटता जा रहा है।"[4]

---

१ भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण'—भगवतशरण उपाध्याय पृ० २३ २४, ४७
२ द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद —श्री हीरालाल पालित, पृ० १४४ ४५
३ 'भारत आदि साम्यवाद से दासप्रथा तक का इतिहास'—श्री श्रीपाद डांगे, पृ० ४०
४ 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र'—मार्क्स तथा एंजिल्स पृ० ३४

मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार प्रतिकूल हितों के कारण समाज में सदैव संघर्ष रहा है। 'मार्क्सवाद के अनुसार सदैव से मनुष्य दो वर्गों में विभाजित रहा है। इनमें एक वर्ग है उत्पादन-साधनों के स्वामी का तथा दूसरे वर्ग बहुसंख्यक श्रमजीवियों का। इन दोनों वर्गों के अर्थ प्रतिकूल रहे हैं और उनमें सदैव संघर्ष रहा है।'[१] प्राचीन काल में संघर्ष मालिकों और गुलामों के मध्य था, मध्य-काल में सामन्तों और कृषकदासों के मध्य रहा तथा आजकल पूँजीपतियों तथा मजदूरों के मध्य विद्यमान है। 'पूँजीपति-वर्ग लाभ के लिए श्रमिक-वर्ग का शोषण करता है। श्रमिक-वर्ग बड़ी कठिनाई से अपनी जीविका का निर्वाह करता है, अन्यायपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिए वर्ग-संगठन दृढ़ करके क्रान्ति का सहारा लेता है। फलस्वरूप पूँजीपतियों का उन्मूलन तथा श्रमिकों के अधिनायकत्व की स्थापना होती है। अन्ततः राज्यविहीन तथा वर्गविहीन समाज की राह तैयार कर देता है।'[२] पूँजीपति-वर्ग का स्वभाव है कि वह मजदूरों को कम से कम वेतन देकर अधिक से अधिक काम लेना चाहता है। श्रमिक-वर्ग अपने श्रम का अधिकतम मूल्य प्राप्त करने की चेष्टा करता है। फलतः दोनों के मध्य द्वन्द्व खड़ा हो जाता है। इस द्वन्द्व में श्रमिक-वर्ग ही घाटे में रहते हैं। पूँजीपति, जो उत्पादन के साधनों के स्वामी होते हैं, समाज के आर्थिक जीवन पर तो नियन्त्रण रखते ही हैं लेकिन सामाजिक, राजनीतिक तथा वैधानिक संस्थाओं को भी वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति में ढाल लेते हैं। शासन-सत्ता इन्हीं के हाथ में होती है। इस भाँति 'अपने व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विषमताओं का अनवरत द्वन्द्व दिखाई देने लगता है।'[३] मार्क्सवाद द्वारा अन्तर में व्याप्त वर्गचेतना पग-पग पर मानव को सोचने के लिए विवश करती है। शक्तिशाली वर्ग हमेशा शोषण की प्रक्रिया में रत रहता है। लास्की के अनुसार 'वे सामाजिक हित और अपनी सुरक्षा को एक-रूप समझते हैं। किन्तु सम्पत्ति के अधिकारों से वंचित वर्ग भी स्वाभाविक रूप से उसमें भाग लेना चाहता है। अतः प्रत्येक समाज में उसके नियमन के लिए वर्गों के मध्य संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।'[४] गरीबों का धार्मिक निर्वाह ही उस वर्ग की विवशता का जाता है जो आगे संघर्ष के रूप में प्रकट होता है। न केवल समस्त साहित्य वर्ग-संघर्ष को अभिव्यक्त करता है बल्कि आज तक का अधिकांश साहित्य उच्च वर्ग का, विशेषकर सत्तारूढ़ वर्ग का साहित्य

---

१ 'राजनीति कोश'—सुभाष कश्यप व विश्वप्रकाश गुप्त, पृ० ५६

२ वही, पृ० ५७

३ 'हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना'—डॉ० जनेश्वर वर्मा पृ० २१

४ 'Communism'—Laski, P. 63

रहा है परन्तु मार्क्स कहता है कि आज का साहित्य सर्वहारा-वर्ग और उसकी क्रान्तिकारी भूमिका को अभिव्यक्त किये बिना महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता। "साहित्य को वर्ग-संघर्ष तीव्रतर करने और अन्त में सर्वहारा-वर्ग को विजय दिलाने में सहायक होना चाहिए। साहित्य समालोचना से इस विचारधारा के प्रभाव से कई नई प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुई हैं।'[1] एंजिल्स ने अपनी पुस्तक परिवार की उत्पत्ति' नामक पुस्तक में इसी भावना को आगे बढ़ाते हुए लिखा है कि "क्योंकि सभ्यता का आधार एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण था इसीलिए उसका सम्पूर्ण विकास लगातार आत्म विरोधात्मक रहा। एक वर्ग की नयी स्वतन्त्रता दूसरे वर्ग के लिए दमन का कारण बन जाती है। इसीलिए सभ्यता ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों आवश्यक रूप से उत्पन्न अपनी बुराइयों को छिपाने के लिए प्रेम और दान का परदा खड़ा करना पड़ता है तथा मिथ्याचार या ढोंग इस घोषणा द्वारा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। शोषक-वर्गों द्वारा पीड़ित वर्गों का शोषण सर्वथा इसी कल्याण के लिए किया जाता है। जब शोषक-वर्ग इस सत्य को देख नहीं पाता तो विद्रोही बनने को तैयार हो जाता है।"[2] 'वर्ग-संघर्ष वैमनस्यपूर्ण वर्ग-समाज की प्रेरक शक्ति होता है और उसके विकास का स्रोत होता है।'[3]

'पूँजीवादी समाज में सर्वहारा-वर्ग का संघर्ष पूँजीवादी समाज को समाप्त करके वर्गविहीन कम्युनिस्ट समाज के निर्माण करने में रहता है, क्योंकि यही एकमात्र सुसंगत क्रान्तिकारी वर्ग है।'[4] सामाजिक व्यवस्था की परिवर्तित अवस्थाओं में निरन्तर वर्ग-संघर्ष का प्रादुर्भाव रहा है। दास युग में दास तथा मालिक, सामन्त-युग में अर्ध-कृषक और कृषक तथा सामन्तों में, पूँजीवादी युग में पूँजीवादी-वर्ग तथा सर्वहारा-वर्ग में निरन्तर संघर्ष चलता रहा है। प्रत्येक व्यवस्था में शोषित वर्गों का ह्रास रहा है। शोषित वर्ग तो यथावत् बने रहे परन्तु शोषण की व्यवस्था परिवर्तित होती रही। केवल मात्र संक्रान्तिकाल में ही शोषक वर्गों का दमन करके शोषित वर्ग अस्थायी शासन एकाधिपत्य प्राप्त करेंगे उस समय तक, जब तक कि पूँजीवादी व्यवस्था समूल नष्ट न हो जाये। इस प्रकार समाजवादी व्यवस्था से साम्यवादी व्यवस्था तक पहुँचने का काल संक्रान्तिकाल कहलाता है।

---

१ 'मानविकी पारिभाषिक कोश'—डॉ० नगेन्द्र (साहित्य खण्ड) पृ० ४३
२ 'परिवार की उत्पत्ति'—एंजिल्स, पृ० २५२
३ 'मार्क्सवादी दर्शन'—वी० अफनास्येव पृ० २४२
४ वही, पृ० २४४

'वर्ग-संघर्ष' के सिद्धान्त का विवेचन

मार्क्सवादी विचारधारा का प्रमुख आधार 'वर्ग संघर्ष' का सिद्धान्त है। 'वर्ग संघर्ष' का सिद्धान्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की आर्थिक अर्थव्यवस्था तथा अन्य आर्थिक सिद्धान्तों का विस्तार है। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित 'वर्ग-संघर्ष' का सिद्धान्त ऐतिहासिक भौतिकवाद की ही उपसिद्धि है। मार्क्स ने आर्थिक नियतिवाद की सबसे महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति इस बात में देखी कि 'समाज में विरोधी आर्थिक वर्गों का सदैव अस्तित्व रहा है। पहला वर्ग सदैव दूसरे वर्ग वर्ग का शोषण करता है। समाज की मीमांसा में मार्क्स वर्ग को ही प्रमुख इकाई मानता है।'[1] '*'कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो' के प्रथम अध्याय में 'वर्ग संघर्ष' के कारण,* विकास आदि की व्याख्या की गयी है। इस सिद्धान्त के द्वारा मार्क्स-एंजिल्स ने यह दर्शाया है कि 'सम्पूर्ण मानव-जाति का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। इतिहास में युग परिवर्तन तथा विकास-क्रम में भौतिक तत्त्वों की प्रधानता के साथ-साथ मार्क्स ने प्रत्येक युग में दो परस्पर सामाजिक वर्गों के अस्तित्व को स्वीकार किया है।'[2]

मार्क्स की मान्यता है कि "अन्तत इस संघर्ष में 'सर्वहारा-वर्ग की विजय होती है तथा उसी वर्ग का आधिपत्य स्थापित होता है।" इतिहास के प्रमुख मोड़ तथा परिवर्तन आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति के लिए विरोधी वर्गों में संघर्ष की शृंखला है। कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो' में इस संघर्ष में इस प्रकार उल्लेख किया है —"आज तक के सम्पूर्ण समाज का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। स्वतन्त्र व्यक्ति और दास, साधारण और कुलिदास संघपति और श्रमिक सूक्ष्म से शोषण और शोषित सदा एक विरोध में खड़े होकर कभी प्रत्यक्ष तथा कभी परोक्ष रूप से लगातार युद्ध करते रहते हैं।"[4]

"द्वन्द्ववाद के नियमों के अनुसार किसी भी सामाजिक व्यवस्था की आन्तरिक असंगतियों से परिचित होने के लिए सबसे पहले हम उनके वर्ग संघर्ष की ओर ध्यान देना चाहिए क्योंकि वर्ग संघर्ष ही सामाजिक असंगतियों की अभिव्यक्ति का प्रधान माध्यम है। इससे हमें संकेत मिलता है कि जिस समाज-व्यवस्था में उत्पादन-सम्बन्धी असंगतियाँ नहीं होंगी, उसमें किसी प्रकार का वर्ग-

---

१ 'आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ'—हरिदत्त वेदालंकार, पृ० ३७८
२ 'समाजवाद से सर्वोदय तक'—डॉ० धर्म मित्र, पृ० ८३
३ 'राजनीतिक विचारों का इतिहास'—डॉ० पी० डी० भार्गव पृ० ४४६
४ 'Manifesto of the Communist Party'—Marx and Engels P. 40

संघर्ष भी नहीं होता।"[1] प्रारम्भ में व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना नहीं थी। उत्पादन का ढंग सामूहिक था तो उत्पादित वस्तुओं का उपभोग भी सामूहिक रूप से होता था, अर्थात् कबीले के लोग जीवन-निर्वाह के लिए मिल-जुलकर जो कुछ लाते थे, उसको बिना किसी भेद-भाव के आवश्यकतानुसार मिल-जुलकर प्रयोग में लाते थे। इसीलिए एंजिल्स ने इसे आदिम कम्युनिज्म कहा।[2] अर्ध-सभ्य मानव के पास लकड़ी और पत्थर के अतिरिक्त कुछ नहीं था, परन्तु जैसे-जैसे वह सभ्यता के सोपान पर आगे बढ़ता गया, उत्पादन के ढंग बदलने लगे। अलग-अलग कबीले अलग-अलग पेशों को अपनाने लगे तथा तिजारत के रूप में कबीलों में वस्तुओं की अदला-बदली भी होने लगी। तिजारत की माँग पर अधिकाधिक परिश्रम की आवश्यकता पड़ने लगी तथा उसकी पूर्ति कबीलों की आपसी लड़ाइयों में पराजित शत्रुओं को गुलाम बनाकर, उनसे परिश्रम करवाकर की जाने लगी।[3] इस प्रकार सामाजिक काम के बँटवारे ने समाज को ही दो श्रेणियों में बाँट दिया। एक श्रेणी उन लोगों की थी जो दूसरों से काम करवाकर उसका लाभ स्वयं उठाते थे और दूसरी उन लोगों की थी जो दूसरों के लिए काम करने को विवश थे। एक श्रेणी शोषकों की थी तथा दूसरी श्रेणी शोषितों की। यहीं से समाज में सबसे प्रथम श्रेणियों का प्रारम्भ होता है।[4] पूँजीपति-वर्ग के पास समाज की समस्त पूँजी एकत्रित रहती है। इन्हीं का ही उत्पादन के समस्त साधनों पर नियन्त्रण रहता है। इसीलिए वह अपने को श्रम, पूँजी तथा लाभ आदि का स्वामी समझता है। दूसरा वर्ग श्रमिकों का होता है जो केवल अपने श्रम का स्वामी होता है। वह वस्तुओं का उत्पादन अपने लिए नहीं वरन् अपने मालिकों के लिए करता है। श्रम को बेचकर श्रमिक अपनी आजीविका कमाता है। जीवन-यापन हेतु उसे अपना श्रम न्यूनतम मूल्य पर पूँजीपति के हाथ बेचना पड़ता है। इससे हमें संकेत मिलता है कि जिस समाज-व्यवस्था में उत्पादन-संबंधी असंगतियाँ नहीं होंगी उसमें किसी प्रकार का वर्ग-संघर्ष भी नहीं होगा।[5] उदाहरण के लिए एक आदिम पंचायती-व्यवस्था को ले सकते हैं, जिसमें किसी प्रकार की व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना नहीं थी तथा काम करनेवालों में भी किसी प्रकार की श्रेणियाँ नहीं थीं। उत्पादन का ढंग सामूहिक था तो उत्पादित वस्तुओं का उपभोग भी सामूहिक रूप से होता था, अर्थात् कबीले

१ 'हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना'—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० ८५
२. 'An Elementary Course in Philosophy'—F Engels, P. 188 (Quoted by George Politzer)
३ 'Marx and Engels, Selected Works'—Vol II, P 218
४ 'Marx and Engels, Selected Works'—P 281
५ 'हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना'—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० ८५

के लोग जीवन-निर्वाह के लिए मिल-जुलकर जो कुछ लाते थे उसको बिना किसी भेद-भाव के आवश्यकतानुसार मिल-जुलकर प्रयोग में लाते थे। इसीलिए एंजिल्स ने इसे आदिम कम्युनिज्म कहा।[१] 'कार्लमार्क्स की धारणा के अनुसार पूंजीपति और मजदूर का संघर्ष पूंजी के जन्म के साथ ही शुरू हुआ। हस्त-निर्माण के समूचे काल में यह प्रकोप दिखाता रहा।'[२] मार्क्स के अनुसार 'जिन शस्त्रों से बुर्जुआ ने सामन्तवाद का अन्त किया, वही शस्त्र अब सम्पत्तिशाली वर्ग के विरुद्ध प्रेरित हो रहे हैं।" बुर्जुआ वह (Bourgeosie) वह वर्ग है जो सम्पत्ति का स्वामी है तथा जिसका उपयोग वह श्रमजीवी के श्रम से अवैध लाभ प्राप्त करने के लिए करता है तथा श्रमजीवी वर्ग (Proletariat) वह वर्ग है जो अपने श्रम के विक्रय पर निर्भर करता है न कि पूंजी का लाभ प्राप्त कर। मार्क्स की अटल धारणा है कि "इस संघर्ष का अनिवार्य परिणाम पूंजीवाद का विनाश तथा सर्वहारा-वर्ग की विजय है।"[३] "इस प्रकार वैज्ञानिक समाजवादी मार्क्स जानता है कि आज जो अशान्ति देखनी पड़ती है, उसकी तह में इस वर्ग संघर्ष का बहुत बड़ा हाथ है। अतः वह कहता है कि "वर्ग-संघर्ष को मिटाना है तो वर्गों को मिटा दो। जब विरोधी वर्ग ही नहीं होंगे तो संघर्ष किसमें होगा! अतः सभी लोग एक वर्ग—श्रमिक, मजदूर वर्ग के होंगे।"[४] *मार्क्स श्रेणी-संघर्ष को इतिहास का वर्ग मानता है, जो समाज के विकास पर* आधारित है और मार्क्सवाद समाज की आधुनिक विकसित अवस्था में श्रेणी-संघर्ष को समाप्त कर देना चाहता है। मार्क्सवाद के इस कथन की सचाई का सबसे बड़ा प्रमाण स्वयं इतिहास है।[५] मार्क्स की धारणा है कि निम्नमध्य-वर्गीय और छोटे-छोटे बुर्जुआ श्रमजीवी-वर्ग के साथ आ मिलेंगे। वर्ग-विहीन समाज में सर्वहारा-वर्ग का आधिपत्य रहेगा तथा शोषण की प्रक्रिया समाप्त हो जायेगी और इस प्रकार समाजवाद से साम्यवाद की स्थापना होगी।

'सर्वहारा' तथा 'पूंजीवादी' वर्गों की उत्पत्ति के सिद्धान्त

पूंजीपति और सर्वहारा समाज के बुनियादी वर्ग हैं। पूंजीवाद का वह रूप जो मजदूरों को उनके श्रम के फल से वंचित करता है तथा समाज में मजदूर को वह

१ 'An Elementary Course in Philosophy'—F Engels P 188 (Quoted by George Politzer)

२ 'कार्ल मार्क्स—पूंजी, खण्ड १'—पृ० ४४८

३ 'आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास'—डॉ० पी० डी० शर्मा, पृ० ४७८

४ 'समाज'—डॉ० सम्पूर्णानन्द पृ० ११५

५ 'गांधीवाद की शव-परीक्षा (मार्क्सवादी श्रेणी-संघर्ष से)'—यशपाल, पृ० १४८-१४६

स्थिति जो उसे पूँजीपतियों से लड़ने को विवश करती है, अन्ततः पूँजीपति और सर्वहारा के संघर्ष का इतिहास है। यह संघर्ष स्वाभाविक है क्योंकि यह पूँजीवादी विकास का प्राथमिक स्रोत है। सर्वहारा का ध्येय और कर्तव्य पूँजीवादी समाज को समाप्त करना और वर्गविहीन कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करना है। वास्तव में वही एकमात्र सुसगत क्रांतिकारी वर्ग है। पूँजीवादी विकास के साथ-साथ ही सर्वहारा-वर्ग भी विकास करता गया। किन्तु समाज में सदैव से ही दो श्रेणियाँ रही है—सम्पत्तिधारी तथा सम्पत्तिहीन।

स्तालिन ने कहा है कि—"सर्वहारा-एकाधिपत्य एक क्रान्तिकारी शक्ति है जिसका आधार पूँजीपतियों के विरुद्ध बल का प्रयोग है। ' एक श्रेणी उन पूँजीपतियों की है जो कच्चे माल तथा कल कारखानों, खानों और फार्मों के मालिक हैं। इसके विपरीत दूसरी श्रेणी उस विशाल सर्वहारा मजदूर-वर्ग की है जिसके पास अपनी श्रम-शक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है।'"[1] पूँजीवादी समाज का एकमात्र सतत क्रान्तिकारी वर्ग सर्वहारा-वर्ग है। वह उत्पादन के सबसे प्रगतिशील रूप, मशीन-उद्योग से सम्बद्ध है और निरन्तर बढ़ता तथा विकास करता रहता है। पूँजीवादी उत्पादन का स्वरूप ही ऐसा है कि वह मजदूर-वर्ग को एकताबद्ध, संगठित और शिक्षित होने के लिए सहायक होता है। चूँकि मजदूर सम्पत्तिविहीन होते हैं अत उनके पास कुछ ऐसा नहीं रहता जो कि संघर्ष में गँवाना पड़े।[2] अपने लिए मुक्ति-हेतु लड़ते हुए सर्वहारा-वर्ग सभी अन्य मेहनतकशों को, जो उसकी भाँति पूँजीवाद से नफरत करते हैं, संगठित करने तथा उनका नेतृत्व करने में समर्थ होता है। वैसे तो प्रत्येक युग में साधनसम्पन्न तथा साधनविहीन लोगों का संघर्ष चलता रहा है तथा सामाजिक व्यवस्था को बदलने में सहायक रहा है। अत पूँजीवादी समाज का इतिहास पूँजीपति और सर्वहारा के संघर्ष का इतिहास है।

पूँजीपति तथा सर्वहारा-वर्ग की उत्पत्ति के लिए समाज का ऐतिहासिक तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विश्लेषण करते हुए सिद्धान्तीकरण किया गया है। पूँजीवाद में उत्पादन के साधन एक वर्ग के स्वामित्व में आ जाते हैं, जिसे पूँजीपति-वर्ग कहते हैं। पूँजीपति-वर्ग उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के कारण स्वय के लाभ के लिए उत्पादन करवाते हैं। मार्क्स ने आर्थिक नियतिवाद की अभिव्यक्ति इस बात में देखी कि समाज में सदैव से ही विरोधी श्रमिक वर्गों का अस्तित्व रहा है।[3] इस विरोधी श्रमिक-वर्ग को ही उसने

---

१. 'हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना'—डॉ० जनेश्वर वर्मा पृ० ८८

२ 'मार्क्सवादी दर्शन'—वी० अफनास्येव, पृ० २४४

३. 'आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास'—प्रभुदत्त शर्मा, पृ० ४७६-७७

सर्वहारा वर्ग कहा है, जो शोषण की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न हुआ है। मार्क्स ने पूंजीपति-वर्ग के बारे में 'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र' में वर्णन किया है—"अब पूंजीपति-वर्ग, समाज का शासक-वर्ग बनने और अपने जीवन-विधान को एक अनियन्त्रित कानून के रूप में लादने के अयोग्य है। वह शासन करने के अयोग्य है।· अब समाज पूंजीपति-वर्ग के नीचे नहीं रह सकता, दूसरे शब्दों में पूंजीपति वर्ग का जिन्दा रहना समाज के साथ-साथ नहीं चल सकता।"[1] पूंजीवादी वर्ग व उनकी व्यवस्था के उन्मूलन का कारण तथा कार्य सर्वहारा-वर्ग के हाथों ही सम्पन्न होगा। "पूंजीपति-वर्ग जो सबसे बड़ी चीज पैदा करता है, वह उन लोगों का वर्ग है जो स्वयं उसकी ही कब्र खोद डालेंगे। पूंजीपति-वर्ग का खात्मा तथा मजदूर-वर्ग की जीत दोनों ही समान रूप से अनिवार्य हैं।"[2] शोषण की स्थितियों का वर्णन करते हुए उसने कहा है कि आधुनिक पूंजीपति-वर्ग का जन्म भी एक लम्बे विकास क्रम के, उत्पादन और विनिमय के तरीकों में अनेक क्रांतियों के परिणामस्वरूप हुआ है। जब सम्पत्ति नहीं थी तो वर्ग नहीं थे, उनका आविर्भाव निजी सम्पत्ति के साथ हुआ।[3] इस प्रकार सम्पत्ति के एकत्रीकरण का सिद्धान्त ही पूंजीपति तथा सर्वहारा-वर्ग की उत्पत्ति का सिद्धान्त है। वर्ग प्रभुत्व का साधन शोषक-वर्ग होते हैं क्योंकि उत्पादन के साधनों के वे स्वामी होते हैं तथा उनके पास असीम आर्थिक शक्ति होती है। पूंजीपति की मुनाफा प्राप्ति की दृष्टि ही मजदूरों में संगठन उत्पन्न करती है। मजदूर अपनी श्रम शक्ति को बेचकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है। आवश्यकता उत्पादन को प्रेरणा प्रदान करती है अतः दोनों वर्गों की उत्पत्ति होती है।

सामन्तवादी व्यवस्था के शोषण से तंग आकर कृषक दासों आदि के मन में आक्रोश भर गया। उन्होंने विद्रोह किया तथा सामन्ती व्यवस्था को नष्ट कर दिया, परन्तु शोषक तथा शोषण की प्रवृत्ति निरन्तर चलती रही। आगे यही वर्ग पूंजीपति तथा सर्वहारा-वर्ग के जन्म का कारण बने। 'पूंजीपति-वर्ग के साथ मजदूर-वर्ग की प्रगति भी होती है।' "मजदूर-वर्ग उन श्रमिकों का वर्ग है जो तब तक जी सकते हैं जब तक कि उन्हें काम मिलता रहे। यह काम उन्हें तब तक ही मिलता है जब तक कि उनके श्रम से पूंजी बढ़ती हो। श्रमिक लोग अपने को अलग-अलग बेचने के लिए लाचार हैं, किसी भी अन्य व्यापारिक माल की ही तरह एक बिकाऊ माल हैं।"[4] पूंजीपति-वर्ग वह वर्ग होता है जो उत्पादन-

---

१ 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र—मार्क्स और एंजिल्स', पृ० ५०-५१
२ वही, पृ० ५१
३ 'राजनीतिक ज्ञान के बुनियादी सिद्धान्त'—वी० वी० कुपीन, पृ० २५
४ 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र—मार्क्स-एंजिल्स', पृ० ४४

के साधनों का स्वामित्व करता है, कल-कारखाने आदि उसके हाथ में होते हैं लेकिन उसका उपयोग वह स्वयं नहीं करता वरन् हजारों मजदूरों को काम देकर उनसे उत्पादन करवाता है। वह अन्य व्यक्तियों से श्रम कराकर वस्तुओं का उत्पादन करवाकर बाजार में बिकने के लिए भेज देता है, और सम्पूर्ण अतिरिक्त मूल्य स्वयं अकेला हजम कर लेता है।"[1] इस प्रकार पूँजीपति भी सर्वहारा-वर्ग की उत्पत्ति का एक कारण होता है क्योंकि वह वेतन कम देता है, धन का संचय करता है। यंत्रीकरण द्वारा मजदूरों में बेरोजगारी बढ़ाता है। अतः दोनों वर्गों की उत्पत्ति में, ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्तों का योग निहित है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectic-Materialism)

कार्ल मार्क्स की विचारधारा का आधारभूत सिद्धान्त 'द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद' है। जहाँ तक शब्द की व्युत्पत्ति का सम्बन्ध है हिन्दी में द्वन्द्ववाद अंग्रेजी के 'डायलेक्टिस' शब्द के लिए प्रयुक्त किया जाता है। 'डायलेक्टिस' शब्द ग्रीक भाषा के 'दिआलेगो' से बना है, जिसका अर्थ है चर्चा करना, विवाद करना। 'प्राचीन काल में द्वन्द्ववाद वह कला थी जिससे कोई वक्ता अपने विरोधी के तर्क में असंगति दिखाकर और उसका निराकरण करके सत्य का प्रतिपादन कर सकता था।'[2] इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में द्वन्द्ववाद का प्रयोग 'वादे-वादे जायते तत्त्व बोधः' के अर्थ में किया जाता था, परन्तु आजकल दर्शन के क्षेत्र में 'द्वन्द्ववाद' अथवा 'डायलेक्टिस' का प्रयोग भिन्न अर्थ में किया जाता है। एक दार्शनिक चिन्तन पद्धति भी द्वन्द्वात्मक कही जाती है, जिसमें वार्तालाप द्वारा धीरे-धीरे अवधारणाओं तथा स्थापनाओं के पारस्परिक सत्य सम्बन्धों का अनुसंधान किया जाता है। 'द्वन्द्वात्मक पद्धति' में यह सिद्ध करने की चेष्टा की जाती है कि अवधारणा विशेष की क्या सीमाएँ हैं तथा वे कहाँ तक मान्य हो सकती हैं। कई दार्शनिकों ने 'द्वन्द्वात्मक पद्धति' को स्वीकार किया है। इसकी उद्भावना यूनान के विख्यात दार्शनिक जीनो ने की थी। इसके पश्चात् प्लेटो, कॉण्ट, फिख्टे, हीगल, एफ० एच० ब्रैडले और मार्क्सवादियों ने इसे स्वीकार किया। प्लेटो तथा हीगल में इसका विशेष प्रयोग लक्षित होता है। प्लेटो ने प्रश्नोत्तर की शैली से तत्त्वज्ञान एवम् नीतिशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों की स्थापना का प्रयास किया है। हेगेल ने 'द्वन्द्वात्मक पद्धति के उपयोग के द्वारा सृष्टि के तात्त्विक शब्द-स्वरूप को वर्गीकृत करने की चेष्टा की तथा उसने यह

---

१. प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक—आर० एल० सिंह, पृ० २८३

२. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास—अनु० रामविलास शर्मा, पृ० ११५

सिद्ध किया कि संसार की प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तुओं से सम्बद्ध है। विचारों तथा वस्तुओं का सृजन द्वन्द्वात्मक रीति से हुआ है, जिसमें एक 'अवस्था' है, फिर उसकी विरोधी प्रत्यवस्था है और अन्त में समन्वय है।"[1]

मार्क्सवादी चिन्तन में हीगल की प्रक्रिया को भौतिक धरातल पर स्वीकार किया है। 'हीगल से कार्ल मार्क्स ने ग्रहण किया कि विकास सिद्धान्त विरोधी तत्वों के संघर्ष में निहित रहता है। मार्क्स के अनुसार हीगल का दर्शन सिर के बल उल्टा खड़ा हुआ था जिसे मार्क्स ने नया रूप देकर पैरों पर खड़ा किया।"[2] सृष्टि का विकास भौतिक परिस्थितियों के नियन्त्रण में अवस्था, प्रत्यवस्था और समन्वय की सीढ़ियों के धरातल पर प्रदर्शित किया जाता है। मार्क्सवादी साहित्य में इसी पद्धति का समावेश किया गया तथा तीन पक्ष माने हैं। हीगेल परिवार को वाद के रूप में, समाज को परिवार के प्रतिवाद के रूप में तथा राज्य को सम्वाद के रूप में एक विचार मानता है। मनुष्य से लेकर प्रकृति तक के सम्पूर्ण क्रिया कलाप को परखने या समझने का जो मार्क्सवादी दृष्टिकोण है उसे 'द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद' कहा जाता है। यह 'द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद' इसलिए कहा जाता है कि "प्राकृतिक घटनाओं को देखने, परखने और पहचानने का ढंग द्वन्द्वात्मक है और प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या, धारणा एवं सिद्धान्त विवेचना भौतिकवादी है।"[3] मार्क्स तथा एंजिल्स ने हीगल के द्वन्द्ववाद से आदर्शवादी आवरण को हटाकर बुद्धि संगत तर्क प्रस्तुत किए हैं। "प्राचीन काल में डायलेक्टिसशास्त्र उस कला को कहते थे, जो विरोधी पक्षों के तर्क में अन्तर्विरोधों का उद्घाटन तथा उसका स्पष्टीकरण करके सत्य को निकालती थी। आज सज्ञान-प्राप्ति की एक विधि बनाकर 'डायलेक्टिस' सतत गतिमान तथा विकास रूप में संसार का अनुसंधान करता है अर्थात् उसे उस रूप में देखता है जिसमें वह सचमुच है।[4] मैटाफिजिक्स या भौतिकवाद बिलकुल द्वन्द्वात्मक की उल्टी विधि है। चिन्तन की अति भौतकीय विधि की उत्पत्ति प्राकृतिक विज्ञान से हुई थी तथा सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी तक वह दर्शन के क्षेत्र में पहुँच गई। एंजिल्स ने बताया कि अतिभौतिकी के लिए वस्तुएँ और उन्हें प्रतिबिम्बित करने वाली धारणाएँ पृथक, अपरिवर्तनीय, प्रदत्त वस्तुएँ हैं, जिन्हें एक-एक करके एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप में अध्ययन करना चाहिए।"[5]

---

१ मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड)—सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ० ८१

२. 'Socialism' (Utopian and Scientific)—F Engles, p 37

३ 'Problem of Leninism'—J Stalin, p 569

४ 'मार्क्सवादी दर्शन'—वी० अफनास्येव, पृ० १४

५ 'मार्क्स एंजिल्स', संकलित रचनाएँ खण्ड २—मास्को, १९५८, पृ० ३६३

'द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद' मार्क्स, एंजिल्स तथा अन्य मनीषियो द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार "पदार्थ का स्वत अस्तित्व होता है । 'द्वन्द्वात्मक' शब्द से पदार्थ के प्रवेगिकी पारस्परिक सम्बन्ध का अभिव्यक्तिकरण होना है, इससे परिवर्तन की सार्वभौमिकता और इसके क्रान्तिकारी स्वभाव का परिचय मिलता है। प्रत्येक पदार्थ जो वास्तविक है, उसमे स्वपरिवर्तन की प्रक्रिया चला करती है। कारण है कि यह विषय-वस्तु विरोधी-शक्ति तथ्यो से निर्मित है, आन्तरिक हलचल से प्रत्येक वस्तु एक-दूसरी से सम्बन्धित होती है और वह वस्तु दूसरे रूप मे बदलती है। अतः 'द्वन्द्वात्मक' विधि का प्रयोजन है सभी वस्तुओ का ऐतिहासिक अन्वेषण करना। मुख्य प्रयोजन पदार्थ के परिवर्तन, गति, दिशा, सम्भावित परिणाम की ओर है जो आन्तरिक तथा बाह्य शक्तियो के सघर्ष के परिणाम मे घटता रहता है।"[1]

मार्क्स के द्वन्द्ववाद की विशेषताएँ

(१) **अन्त निर्भरता**—मार्क्स के द्वन्द्ववाद की यह विशेषता है कि "यह प्रकृति को अचानक एकत्रित की हुई वस्तुओ का सग्रह नही मानता। उसके अनुसार विश्व एक भौतिक जगत् है, जिसमे वस्तुएँ तथा घटनाएँ एक-दूसरे से पृथक् न होकर पूर्णतया सम्बद्ध रहती हैं। अर्थात् प्रकृति के सभी पदार्थों मे सावयविक एकता रहती है।"[2] इस सिद्धान्त के आधार पर प्राकृतिक दृश्यजगत् के आधार बिना किसी भाग का आस-पास के अन्य क्षेत्रो से विलग अध्ययन नही किया जा सकता।

(२) **गतिशीलता**—विश्व अथवा कोई भी वस्तु स्थिर तथा अपरिवर्तनशील नही है। प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ रेत के दाने से लेकर सूर्य के पिण्ड तक गतिशील है। अत मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद की परिकल्पनाएँ सदियों के अनुभव, श्रम और ज्ञान का परिणाम है, उनका सामान्यीकरण हैं। मनुष्य का सामना प्राकृतिक व्यापार के ताने बाने से होता है। सहज प्रकृति वाला या जगली मनुष्य, प्रकृति और अपने मे विभेद नही करता, परन्तु सचेतन मनुष्य करता है। अत परिकल्पनाएँ विभेद का अर्थात् दुनिया का सज्ञान प्राप्त करने की सीढियाँ हैं।"[3] अस्तु, मार्क्स का द्वन्द्ववाद चराचर जगत् के सावयविक अध्ययन के साथ ही जीवन की गतिशीलता का अध्ययन भी है।

(३) **परिवर्तनशीलता**—मार्क्स आर्थिक नियतिवादी का समर्थक रहा है।

१. 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (मनोविज्ञान खण्ड)—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ८८
२ 'समाजवाद से सर्वोदय तक', डॉ० धर्म मिश्र, पृ० ६६
३. 'सग्रहीत रचनाएँ', खण्ड ३८—लेनिन, पृ० ९३

वह सामाजिक विकास की प्रेरक शक्तियों के रूप में आर्थिक परिस्थितियों को महत्त्व देता है। वह कहता है—किसी वस्तु की मात्रा तथा गुण दोनों में ही परिवर्तन होते हैं। "परिवर्तन वृत्तात्मक रूप में नहीं होता वरन् पुनरावृत्ति के रूप में जो कुछ एक बार हो चुका है पुनः दोहराया जाता है।"[1] यदि जल को गर्म अथवा ठण्डा किया जाये तो एक सीमा तक कोई परिवर्तन नहीं होता लेकिन जैसे ही तापमान उठता या गिरता है, एक अवस्था ऐसी आ जाती है कि वह भाप या बर्फ में परिणत हो जाता है।

(४) भावात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन—परिवर्तन दोनों ही प्रकार के होते हैं। गेहूँ के एक अंकुर का कई दानों में परिणत हो जाना भावात्मक परिवर्तन है तथा पानी का बर्फ बन जाना गुणात्मक परिवर्तन है।

(५) आन्तरिक विरोध—प्रत्येक वस्तु का आन्तरिक अन्तर्निहित विरोध है। इसके दो पक्ष होते हैं—सकारात्मक और नकारात्मक। पुराना तत्त्व मिटता चलता है तथा नवीन तत्त्व उत्पन्न होता जाता है। इन दोनों में निरन्तर द्वन्द्व या संघर्ष चलता रहता है, तथा निरन्तर संघर्ष ही विकास का क्रम है। वस्तुओं में गुणात्मक परिवर्तन धीरे-धीरे नहीं वरन् सहसा झटके के साथ हो जाता है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक जाने की प्रक्रिया को हम क्रान्तिकारी प्रक्रिया कहते हैं। इस 'द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद' सिद्धान्त से मार्क्स ने यह स्पष्ट किया है कि पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर साम्यवादी समाज की स्थापना कैसे होगी तथा उसने क्रान्ति के औचित्य को सिद्ध करके यह बताया कि पूँजीवाद में शोषित वर्ग उन्नति नहीं वरन् क्रान्ति द्वारा परिवर्तन करेगा।

भौतिकवादी दर्शन का आरम्भ

यूनान में दार्शनिकों का 'माइलेशियन' सम्प्रदाय सबसे प्राचीन माना जाता है। थोलेस का विश्वास था कि सृष्टि का मूल तत्त्व जल है। थोलेस के शिष्य 'अनक्षिमन्दर' का कहना था कि समस्त जीव जन्तुओं की उत्पत्ति सागर से हुई है। मनुष्य मछलियों से ही धीरे धीरे विकसित हुआ। आगे चलकर यूनानी दर्शन की धारा आत्मवाद की ओर मुड़ गई। ल्यूसियस तथा देमोक्राइट्स ने कणाद की तरह सर्वप्रथम सृष्टि की परमाणुवादी व्याख्या की। भारत में भी प्राचीन काल में चार्वाक' भौतिकवादी दार्शनिक थे जो द्युलोक से परे कोई भी अलौकिक सत्ता में विश्वास नहीं रखते थे।" अजितकेश कम्बल तथा बृहस्पति आदि दर्शनशास्त्री (भौतिकवादी) स्वर्ग, अपवर्ग तथा परलोक की कल्पना से मुक्त थे। कपिल ने सांख्य-दर्शन में चेतन और जड़ दो प्रकार के तत्वों को माना है तथा आत्मवाद

---

१ 'प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक'—आर० एल० सिंह, पृ० २६६

व भौतिकवाद के समन्वय की विराट् चेष्टा की है, जिसमे चेतन पुरुष तो निष्क्रिय साक्षीमात्र है तथा उसके सम्पर्क से जडतत्त्व प्रधान सारे जगत् को अपने स्वरूप-परिवर्तन द्वारा बनाता है।"[1] यूरोप मे भौतिकवाद के विकास की कथा वास्तव मे वैज्ञानिक विकास के साथ अविच्छिन्न रूप मे सम्बद्ध है। लेलिसियो ने नेपल्स में रसायनशाला खोली (१५७७-१६६४)। सालियस ने (१५२५-६४ ई०) शरीरशास्त्र पर साइन्स-सम्मत ढग की पहली पुस्तक लिखी। ग्योंदिनीबुनो तो आग मे जलाकर साइन्स के शहीद बनाये गए। पन्द्रहवी तथा सोलहवीं शताब्दी मे हटिली, लामैत्री, हल्वेशियो, दा अलेम्बर, दोलबाश, दीदेरो, प्रीस्टली, कबानी आदि भौतिक दार्शनिक उत्पन्न हुए। बेकन (१५६१-१६२६ ई०) अग्रेजी भौतिकवाद का पिता कहलाता है। लॉक (१६३२-१७०४ ई०) ने बतलाया कि हमारे अनुभवो से ही विचारो की उत्पत्ति होती है। लामैत्री ने आत्मा को अनावश्यक साबित किया। कबानी (१७५७-१८०८ ई०) ने बताया कि शरीर और आत्मा एक चीज है। मनुष्य ज्ञान-तन्तुओं का गट्ठा है। भौतिक तत्त्वों के नियम मानसिक आचारिक घटनाओ पर भी लागू हैं।

मार्क्स के भौतिक दर्शन की विशेषताएँ

"मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन की विशेषता यह है कि यह दार्शनिक आदर्शवाद का भौतिक रूप से विरोधी है—(१) पदार्थ ही अन्तिम सत्य है—मार्क्स ने चेतना तथा ब्रह्म को अस्वीकार किया और कहा—जगत का वैविध्य रूप विभिन्न प्रकार के गतिमान पदार्थों का सग्रह ही है। (२) पदार्थ प्राथमिक तथा चेतना द्वितीय है—आदर्शवाद के विपरीत भौतिकवाद पदार्थ प्राथमिक है। विचार या चेतना पदार्थ की उपज या प्रतिबिम्ब है। मस्तिष्क विचार करने का यन्त्र है। पदार्थ मस्तिष्क नही, मस्तिष्क स्वय ही पदार्थ की सर्वोच्च उपज है। "विश्व का द्रव्य, जिस प्रकार पदार्थ चलता है जिस प्रकार विचार करता है का ही चित्र है।"[2] (३) विश्व के समस्त पदार्थों का प्रयत्नों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना सम्भव है—मार्क्स ने बताया कि प्रकृति तथा विश्व अगम्य नहीं है। मनुष्य प्रकृति को अपने निरन्तर प्रयत्नों के कारण समझ सकता है। विश्व मे ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जिसके अस्तित्व को न जाना जा सके। प्रयोग एव परीक्षण से हम प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। प्रकृति प्रयोग आदि के कारण

---

१ 'दर्शन दिग्दर्शन'—राहुल सांकृत्यायन (१९४४), पृ० ७१२

२. 'Dialectical 'and Historical Materialism'—Lenin Quoted by J. Stalin, p 20

अब रहस्यमयी नहीं रही। अतः उचित प्रयत्नों के द्वारा रहस्य को खोला जा सकता है।"[1]

यान्त्रिक भौतिकवाद

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान की प्रगति ने प्रकृति के अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया। मार्क्स तथा एंजिल्स का भौतिकवाद अति तर्क-सम्मत था। "अतः भौतिकवादी धारणा में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हुए। अठारहवीं शताब्दी का युग विज्ञान की दृष्टि से यन्त्रवाद का युग था। ग्रहों का, गुरुत्वाकर्षण शक्ति सौरमण्डल तथा ताप, ध्वनि, चुम्बक आदि का आविष्कार किया गया। पानी दो गैसों से मिलकर बना है, इसके आविष्कार के साथ-साथ 'हटन' ने (१७१६-१७१६ ई०) में 'पृथ्वी के सिद्धांत' लिखकर 'भू-गर्भ' साइन्स की नींव डाली।"[2] न्यूटन की गुरुत्वाकर्षण पर आधारित "विश्व की यान्त्रिक व्याख्या से भौतिकवादी ही नहीं आत्मवादी दार्शनिकों ने भी जीव और जगत् की यान्त्रिक व्याख्या की।"[3] कुत्तों के शरीर में सूजे भोंककर यह दिखाया गया कि वे चेतनाशून्य हैं।"[4] 'यह विश्व को भारी घड़ी तथा ईश्वर को चाभी लगाने वाला मानते हैं। इस प्रकार उनका कहना है कि बाकी सारी बातें प्राकृतिक नियम से चलती हैं।"[5] भौतिकवादी महान् दार्शनिक डोलबाश का कहना है कि "यदि कोई पूर्ववर्ती समस्त कल्पनाओं को अस्वीकृत कर दे और यह कहे कि प्रकृति अपरिवर्तनशील सामान्य नियमों के अनुसार कार्य करती है तो भौतिकवादियों को कोई आपत्ति नहीं होगी।"[6] अतः उन्नीसवीं शताब्दी में मार्क्स तथा एंजिल्स ने भौतिकवाद को एक नवीन वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

द्वन्द्ववादी भौतिकवाद के आधार पर मार्क्स ने मानव इतिहास की विवेचना की। तदनुसार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त केवल प्राकृतिक जगत् में ही

---

१ 'प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक'—आर० एल० सिंह, पृ० २७१ ७२
२ 'दर्शन दिग्दर्शन'—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३०६-१०
३ 'समाजवाद वैज्ञानिक और काल्पनिक'—फ्रेडरिक एंजिल्स, पृ० २५
४ 'An Elementary Course in Philosophy'— George Politzer, p 84
५ 'वैज्ञानिक भौतिकवाद'—राहुल सांकृत्यायन, पृ० २७-२८
६ 'A Textbook of Dialectical Materialism'—D. Holbach, p 13

लागू नही होंगे, मानव-समाज का विकास भी इन्ही नियमो के अनुसार होता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद का अर्थ द्वन्द्ववादी भौतिकवाद के सिद्धान्त को समाज के विकास के लिए लागू करना है। मानव-समाज निरन्तर बदलता रहता है। जो समाज आज से हजार वर्ष पूर्व था, वह आज नही है। इसमे कई ऐसे परिवर्तन हुए जिन्होंने समाज की कायापलट कर दी। सामाजिक परिवर्तन के लिए मार्क्स-एंजिल्स ने दो धारणाएँ बनाई हैं। प्रकृति के नियम की तरह सामाजिक विकास के नियम भी निश्चित हैं। सामाजिक परिवर्तन न तो आकस्मिक होते हैं तथा न ही मनुष्यो की इच्छा पर निर्भर करते हैं। ये विकास नियम वस्तुगत हैं तथा उनका स्वतन्त्र अस्तित्व है। द्वितीय सामाजिक विकास मे भौतिक परिस्थितियाँ ही प्रधान हैं। मन, विचार, भावनाएँ आदि गौण हैं। समाज की जैसी भौतिक परिस्थितियाँ होती हैं, उन्ही के अनुरूप सामाजिक एव राजनीतिक सगठन, धर्म, नैतिकता, मूल्य और मान्यताएँ होती हैं। 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' की सज्ञा, मार्क्स ने बुखनेर तथा फयोरवाख आदि के द्वारा विकसित होते हुए भौतिकवाद तथा हीगल के प्रभाव से वैज्ञानिक नया रूप ग्रहण करके दी। इस ससार को किसी देवता या मनुष्य ने नही बनाया वरन् वह एक सप्राण ज्योति है, जो थी तथा सदा रहेगी। वह नियमित रूप से जल उठती है तथा नियमित रूप से ठंडी हो जाती है।"[1]

मार्क्स पर हीगल तथा फयोरवाख, दोनो का ही प्रभाव था परन्तु साथ ही वह दोनो की निर्बलताओं तथा सीमाओ से भी परिचित था। उसने इन दोनों दर्शनो से अनुपयोगी मान्यताओ को त्यागकर सारतत्त्व ग्रहण कर लिया। जहाँ तक भौतिकवाद का सम्बन्ध है, मार्क्स फयोरवाख का अनुयायी था, परन्तु फयोरवाख की भौतिकवादी विचारधाराओं मे अनेक असगतियाँ विद्यमान थी।"[2] हीगल की सीमाओ का एंजिल्स ने उल्लेख किया है—(१) हीगल का ज्ञान अधिक व्यापक नही था। (२) उस युग का ज्ञान भी उतना व्यापक नहीं था। (३) हीगल विचारों से अधिक आदर्शवादी था। (४) विचार की स्वतन्त्र सत्ता मानता था। "हीगल की इस चिन्तन प्रणाली का परिणाम यह था कि हर चीज को सिर के बल खडा कर दिया तथा ससार की वस्तुओ के यथार्थ सम्बन्ध को पूरी तरह उलट-पलट दिया।"[3] मस्तिष्क से विचारो की क्रिया सम्पन्न होती है। इस प्रकार भूत से मन की उत्पत्ति है, मन से भूत की नही।"[4] पदार्थ वह

१. 'सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास'—लेनिन, पृ० १२२
२. 'Marx Engels'; Marxism—Lenin, p. 20
३. 'समाजवाद' : वैज्ञानिक और काल्पनिक—फ्रेडरिक एंजिल्स, पृ० २६
४. 'Selected Works'—Karl Marx, p. 435

वस्तु जगत् सत्य है जो संवेदना से प्राप्त होता है।" भौतिक जगत्, पदार्थ सत्ता, जो कुछ भी प्राकृतिक है, वह मूल है, आत्मा, चेतना, संवेदना—जो कुछ भी मानसिक है, वह गौण है।"[1] "सम्पूर्ण अस्तित्व का मूल रूप देशकाल है। मार्क्सवादी धारणा के अनुसार भूत निर्जीव अथवा जड़ न होकर सतत गतिशील है। संसार में गतिशील भूत नहीं कर सकता।"[2] मार्क्सवादी भौतिक धारणा इस प्रकार है—(१) भूत की सत्ता ही एकमात्र सत्य है तथा सत्य बोधगम्य है। (२) भूत की स्थिति हमारे मनोजगत से बाहर और स्वतन्त्र है। (३) भूत की स्थिति सतत गतिमय है। (४) भूत की स्थिति देश और काल में है। (५) संसार स्वभाव से ही भौतिक है। (६) भौतिक संसार की सत्ता एक वैज्ञानिक वास्तविकता है। (७) हमारा ज्ञान वैज्ञानिक सत्य के समान निर्भ्रान्त है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का जब इतिहास पर आरोपण किया जाता है तब उसे ऐतिहासिक भौतिकवाद की संज्ञा दी जाती है। मार्क्स ने ऐतिहासिक परिवर्तनों के पीछे जो नियम बताये हैं उससे इतिहास की भौतिक व्याख्या समझने में सहायता मिलती है। द्वन्द्ववादिनी पद्धति का इतिहास की व्याख्या में प्रयोग कर, मार्क्स ने उत्पादन शक्तियों पर अतिशय बल दिया। उत्पादन शक्तियों में उसने यन्त्रों और श्रमिकों पर विशेष ध्यान दिया है। इसलिए ऐतिहासिक व्याख्या के क्षेत्र में मार्क्स भौतिकवादी होकर, उत्पादन की क्रिया को महत्त्व प्रदान करता है। मात्र सीमित अर्थों में यन्त्रों को ही नहीं। 'भौतिक' शब्द का अर्थ चेतनाहीन पदार्थ से होता है जो इस सिद्धांत पर लागू नहीं होता अतः इसे हम आर्थिक व्याख्या व। ऐतिहासिक सिद्धान्त कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। यथार्थ में यह इतिहास की आर्थिक व्याख्या है, जिसके अनुसार इतिहास में होने वाले परिवर्तन आर्थिक कारणों द्वारा निर्धारित होते हैं।"[3] मार्क्स का कथन है कि इतिहास की घटनाओं को मुख्यतः निर्धारित करने वाला आर्थिक प्रभाव है। "किसी भी समाज का राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन भौतिक आवश्यकताओं पर आधारित उत्पादन प्रणाली द्वारा निर्धारित होता है।"[4] मार्क्स ने 'द्वन्द्वात्मक

---

१ सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास —लेनिन, पृ० १२१

२ Materialism and Empirio Criticism'—V S Lenin p 177

३ Political Thought' C L Wayper, p 203

४ Quoted by Griffiths in the 'Changing Face of Communism p 26

भौतिकवाद' के अध्ययन का यह निष्कर्ष निकाला कि भौतिकवाद के जिन नियमों के अन्तर्गत प्रकृति के समस्त क्रिया-व्यापार सचालित होते हैं उन्ही के अन्तर्गत सामाजिक जीवन मे भी विकास और परिवर्तन घटित होते हैं। इतिहास का रहस्य भी प्रकृति के रहस्य की तरह ज्ञेय है। इस प्रकार इतिहास की पृष्ठभूमि मे कार्य करने वाले नियमो को समझा जा सकता है तथा तर्कसम्मत व्याख्या की जा सकती है।" जिस प्रकार प्रकृति के विकास-क्रम का अध्ययन एक विज्ञान है उसी प्रकार सुव्यवस्थित नियमो के द्वारा सचालित इतिहास के विकास-क्रम का अध्ययन भी एक विज्ञान है। एजिलस के शब्दो मे—"इतिहास सम्बन्धी भौतिकवादी धारणा से हमे यह शिक्षा मिलती है कि सामाजिक परिवर्तनो और राजनीतिक क्रान्तियो के मूल कारणो का पता लगाने के लिए हमे न तो मनुष्य के विचारो की समीक्षा करनी चाहिए और न शाश्वत सत्य और न्याय की खोज मे व्यस्त अन्तर्दृष्टि की; बल्कि उसके लिए हमे ध्यान देना चाहिए उस युग की विनिमय तथा उत्पादन-प्रणाली मे होने वाले परिवर्तन पर। सत्य तो यह है कि सभी सामाजिक परिवर्तनो तथा राजनीतिक क्रान्तियो के कारण किसी युग की दार्शनिक विचारो मे नही बल्कि उस युग की आर्थिक परिस्थितियो मे पाये जाते हैं।"[१] मार्क्स तथा एजिल्स ने बताया कि समाज के विकास का स्वरूप भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी है। उन्होने सामाजिक विकास के वैज्ञानिक सिद्धान्त का निरूपण किया जिसे हम ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से जानते हैं"[२]; किन्तु सघर्ष के कारणो को उत्पादन और विनिमय के तरीको मे देखा जा सकता है; वे दर्शन मे नही वरन् उस युग से सम्बन्धित अर्थशास्त्र मे दृष्टिगोचर होते हैं।"[३] लेनिन ने कहा है—"यह व्यक्त करके कि बिना किसी अपवाद, समस्त विचार और सभी प्रवृत्तियों की जड उत्पादन की भौतिक शक्ति सम्बन्धी दशाएँ हैं, मार्क्स ने सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाओ के उत्थान, विकास और पतन प्रक्रिया के सर्व समावेश तथा व्यापक अध्ययन के मार्ग को दर्शाया है।"[४] समाज के भौतिक जीवन की सीमा के अन्तर्गत भौगोलिक परिस्थितियाँ और जनसख्या आदि भी अनिवार्य रूप से सम्मिलित हैं, परन्तु मार्क्स ने इन दोनो मे से किसी को भी सामाजिक व्यवस्थाओ के स्वरूप-निर्धारण मे नियामक कारण के रूप में स्वीकार नही किया है। हालांकि

---

१ 'समाजवाद' : वैज्ञानिक और काल्पनिक—फेडरिक एजिल्स, पृ० २१

२. 'मार्क्सवादी दर्शन' (अध्याय १०)—वि० अफनास्येव, पृ० १७६

३. 'Anti-Duhring'—p. 294, Quoted by A. Gray, the Socialist Tradition, p. 304

४. 'The Teachings of Karl Marx'—Lenin, p. 11

भोगौलिक परिस्थितियाँ परिवर्तन के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं, परन्तु परिवर्तन बहुत ही धीमा होता है। सामाजिक व्यवस्था अपेक्षाकृत तीव्र गति से बदलती रहती है अत दोनो के परिवर्तन मे कोई साम्य नही है। स्तालिन ने स्पष्ट किया है— 'भौगोलिक परिस्थिति सामाजिक विकास का ऐसा कारण नही है जिसे मुख्य या नियामक कहा जा सके। जो वस्तु स्वय हजारो-लाखो वर्षों तक प्राय अपरिवर्तित-सी रहती है, वह कुछ शताब्दियो मे आमूल परिवर्तित होने वाली वस्तु का मुख्य कारण नही बन सकती।'[१] इस प्रकार जनसख्या की वृद्धि भी समाज के विकास पर कुछ न-कुछ प्रभाव अवश्य डालती है। परन्तु ऐतिहासिक भौतिकवादी मान्यता के अनुसार यह प्रभाव भी इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि इसे सामाजिक व्यवस्थाओं के परिवर्तन का मूल कारण माना जा सके। मार्क्स के अनुसार उत्पादन प्रणाली ही प्रमुख है तथा सामाजिक परिवर्तन मे आर्थिक पक्ष का ही मात्र हाथ है। यही वह शक्ति है जो उत्पादन के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्थाओ के स्वरूप को निर्धारित करती है तथा उनके विकास एव परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होती है। इस पद्धति के दो पक्ष हैं—(१) उत्पादन की शक्ति (२) उत्पादन के सम्बन्ध।'[२] उत्पादन की प्रणाली के प्रत्येक परिवर्तन के साथ पाँच परिवर्तन हुए हैं, इन परिवर्तनो के पृथक्-पृथक् युग माने जाते हैं। मार्क्स के अनुसार जिन युगो मे अब तक का इतिहास विभक्त है वे हैं (१) आदिम साम्यवादी युग, (२) दास-प्रथा का युग, (३) सामन्तवादी युग, (४) पूंजीवादी युग, (५) समाजवादी युग। मनुष्य सभ्यता के विकास के साथ साथ अपने श्रम भार को कम करने के लिए और जीवन की सुख सामग्री को सुगमतापूर्वक प्राप्त करने के लिए अपनी बुद्धि के द्वारा तरह-तरह के प्रयोग तथा आविष्कार करता है। पैदावार के साधनो का निरन्तर विकास होता है। 'पूंजीवादी यान्त्रिक उत्पादन का स्वरूप तो सामाजिक है परन्तु उसके स्वामित्व तथा उपभोग का ढग व्यक्तिगत है।'[३] ऐतिहासिक भौतिकवादी मान्यता के अनुसार भौतिक मूल्यो के उत्पादन की यह पद्धति ही प्रधान है जो सामाजिक व्यवस्थाओ के स्वरूपो को निर्धारित करती है तथा उसके विकास एव परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है।"[४] "अत उत्पादन पद्धति को हम उत्पादन और सम्बन्धों की एकता का मूर्त रूप भी कह सकते हैं।"[५]

---

१ सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास'—अनु० रामविलास शर्मा, पृ० १२६
२ हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना'—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० ८०
३ वही, पृ० ८१
४ Marx Engels Selected Worl s'—Vol I, p 329
५ 'Problems of Leninism'—J Stalin, p 584

उत्पादन के सम्बन्ध के बारे मे अभिव्यक्ति की गयी है—"ये सम्बन्ध शोषण-मुक्त मनुष्यो मे परस्पर सहायता और सहकारिता के सम्बन्ध हो सकते हैं। ये सम्बन्ध दासत्व और प्रभुत्व के हो सकते हैं। अन्त मे ऐसे भी हो सकते हैं जो उत्पादन के सम्बन्धो के एक रूप से दूसरे रूप की ओर सक्रमण की दशा मे हो। इन उत्पादन सबधो के चाहे जो लक्षण हो, हर समय और हर सामाजिक-व्यवस्था में वे उत्पादन के उतने ही महत्त्वपूर्ण उपकरण होंगे, जितनी महत्त्वपूर्ण समाज की उत्पादन शक्तियाँ होगी।"[1] जब तक उत्पादन सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के साथ अनुकूलता को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक सामाजिक व्यवस्थाएँ सुचारु रूप से नही चल पाती हैं। अत एक न एक दिन उत्पादन के सम्बन्धो को समाज की विकासोन्मुखी उत्पादक शक्तियो के साथ आना ही पडता है।'[2] साथ-ही-साथ इससे यह भी पता लगता है कि उत्पादन की बदली हुई परिस्थितियो मे न्यूनाधिक विकसित रूप मे वे साधन भी अवश्य मौजूद होगे, जिनसे प्रत्यक्ष बुराइयो का अन्त किया जा सकता है। इन साधनों को मस्तिष्क के किसी कोने से नही निकाला जा सकता बल्कि मस्तिष्क की सहायता से उन्हे उत्पादन की विद्यमान भौतिक परिस्थितियो में खोजा जा सकता है।"[3] इसी प्रकार आर्थिक व्यवस्था मे, सामाजिक व्यवस्था मे तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद के विश्लेषण मे, धर्म का कोई स्थान मार्क्स ने नही माना। धर्म के बोलबाले की व्याख्या की व्यवस्था को वह दोषपूर्ण व्यवस्था मानता है। इतिहास की अनिवार्यता मे विश्वास करता है तथा ऐतिहासिक काल-विभाजन मे समाज की विभिन्न परिस्थितियो का अवलोकन करते हुए वर्णन करता है। अन्त मे इस निर्णय पर पहुँचता है कि 'प्रत्येक युग मे दो वर्ग जो परस्पर-विरोधी विचार-धारा के थे, सदैव रहे है और उनके पारस्परिक सघर्ष से ही उस युग के इतिहास का निर्माण हुआ है। समाज मे परिवर्तन तथा विकास का यही प्रेरक तत्त्व है। वर्ग-सघर्ष के परिणामस्वरूप ही अन्तत समाजवाद की स्थापना होगी।"[4] अत मार्क्स ने कहा था—'अपने इतिहास के निर्माण मे मनुष्य का हाथ तो अवश्य रहता है परन्तु वह मनमाने ढग से ऐसा नही करता। परि-स्थितियो का मनोनुकूल चुनाव उसकी इच्छा पर निर्भर नही करता, बल्कि बीता हुआ युग जाते-जाते जिन परिस्थितियो को छोड जाता है, उन्ही के अन्तर्गत

१ 'सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास'—अनु० रामविलास शर्मा, पृ० १३१
२ 'Problems of Leninism'—J Stalin, p 587
३ 'समाजवाद वैज्ञानिक तथा काल्पनिक'—फ्रेडरिक एंजिल्स, पृ० २९-३०
४ 'आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ'—डॉ० वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, पृ० ३७५

उसे सब करना पड़ता है।"[1] मार्क्स की इस विचारधारा से स्पष्ट होता है कि मार्क्स की संकल्पना बहुत अर्थपूर्ण थी। वास्तव मे मार्क्स कोई ऐसी सामान्य बात नही कहना चाहता था जो अव्यावहारिक हो। संकल्पना के आधार पर उचित निष्कर्ष उसी समय निकाले जा सकते हैं, जब हम यह जान पायें कि ये प्रभाव मनुष्यों के अन्त.सम्बन्धों तथा अन्तर्वैयक्तिक प्रभावों पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार मार्क्स ने सामाजिक वर्गों के संघर्षों तथा विरोधो मे इतिहास की व्याख्या की कुजी खोलकर रख दी, परन्तु ध्यान उसने आर्थिक भेद पर ही केन्द्रित रखा।

पूँजीवादी व्यवस्था की शोषक प्रवृत्तियों का विरोध

पूँजीवादी व्यवस्था की शोषक प्रवृत्तियाँ ही पूँजीवाद का विनाश तथा सर्वहारा वर्ग की विजय है। पूँजीवाद अपने अन्दर अपने ही विनाश के बीज शोषण की क्रियात्मक पद्धति मे रखता है। पूँजीवाद व्यवस्था की शोषक प्रवृत्तियाँ हैं—(१) व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से उत्पादन की प्रवृत्ति, (२) विशाल उत्पादन तथा एकाधिकार की ओर प्रवृत्ति, (३) आर्थिक संकटों को जन्म देने की प्रवृत्ति, (४) अतिरिक्त मूल्य को हड़पने की प्रवृत्ति, (५) छोटे पूँजीपतियो को अपने मे समाहित करने की प्रवृत्ति, (६) श्रमिक संगठन की प्रेरक प्रवृत्ति, (७) श्रमिक आन्दोलन की जन्मदात्री प्रवृत्ति आदि इन सभी प्रवृत्तियो के द्वारा अधिकाधिक लाभ कमाने का दृष्टिकोण पूँजीवादी व्यवस्था मे रहता है तथा इन प्रवृत्तियो का सर्वहारा-वर्ग द्वारा खुलकर विरोध किया जाता है। अत वर्ग-संघर्ष का जन्म हुआ। लेनिन ने कहा है—"सर्वहारा अधिनायकत्व वर्ग-संघर्ष का अन्त नही बल्कि नये रूपो मे उसका जारी रहना है। सर्वहारा ने पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध कर विजय प्राप्त की है और पूँजीपतियो के विरुद्ध सत्ता अपने हाथ मे कर ली है परन्तु ये पूँजीपति पराजित हुए हैं, नष्ट नही।"[2] पूँजीवादी शोषक-प्रवृत्तियो के विरोध मे जिन हथियारो से पूँजीपति-वर्ग सामन्तवाद का आन्तरिक विरोधी था वे हथियार आज उसके खिलाफ तन गए हैं।"[3] पूँजीवादी व्यवस्था मे शोषक-तत्त्व तो अधिक हैं परन्तु पराधीनता भी है। "पूँजीवादी व्यवस्था मे इतने आन्तरिक विरोधी हैं कि वह जीवित नही रह सकती। वह श्रमिक के बिना काम नहीं चला सकती तथा

---

१. Marx-Engels Selected Works, Vol. I, p. 225
२. मजदूर वर्ग और किसानों का सहयोग'—लेनिन, पृ० ३०२
३ 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र'—मार्क्स-एंजिल्स, पृ० ४३

श्रमिक कभी भी उसका मित्र नही बन सकता ।"[1] "पूंजीपति-वर्ग और श्रमिक-वर्ग मे चलने वाले सतत सघर्ष का मूल कारण अपने 'अतिरिक्त सिद्धान्त (मूल्य के)' में मार्क्स ने दिया है।"[2] इस प्रकार अपनी शोषक प्रवृत्तियो के कारण पूंजीपति-वर्ग सर्वहारा-वर्ग का शोषण करता है तथा सर्वहारा-वर्ग उसके शोषण का विरोध करते है तथा पूंजीपतियो का मुकाबला करने के लिए मजदूर अपने सघ बनाने लगते हैं तथा मजदूरी की दर सघबद्ध नियमित करवाते हैं।

व्यवस्था-परिवर्तनो मे जन आन्दोलनो तथा क्रांतिकारियो की भूमिका

"मार्क्स का विश्वास था कि क्रान्ति अनिवार्य है।"[3] किन्तु उसका यह अभिप्राय नही था कि क्रान्ति के आगमन की प्रतीक्षा मे बैठा रहा जाये। सन् १८८० मे हिंडमन को मार्क्स ने एक पत्र मे लिखा था कि ऐतिहासिक पूर्वोदाहरणो द्वारा क्रान्ति को सम्भव समझता है। मार्क्स का पूरा जोर सशस्त्र क्रान्ति पर था। साम्यवादी घोषणा-पत्र मे उसने मजदूर वर्ग को क्रान्ति के लिए आह्वान किया था। 'मार्क्सवादी विचारधारा मे, मार्क्स की परिभाषा के अनुसार 'वर्ग-सघर्ष' का चरम रूप ही क्रान्ति है।'[4] मजदूर लोग प्रारम्भ से ही अपनी मजदूरी कायम रखने तथा शोषण का विरोध करने के लिए सघ बनाते हैं। किसी भी रोग के निदान तथा कारण को जानकर ही उसका उपचार किया जाना सम्भव होता है। इसी आधार पर मार्क्स सामाजिक विषमताओ का निदान करता है तथा उपचारात्मक मार्ग की खोज निरन्तर करता रहता है। मार्क्स ने हीगल के दार्शनिक विचारो को क्रान्तिकारी उग्रता प्रदान की। "सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन मे मार्क्स क्रान्तिकारी विचारधारा का पोषक है। आन्तरिक विरोधो पर आधारित किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत पहले तो शोषित वर्ग मे असन्तोष की मात्रा धीरे-धीरे बढती है, फिर एक ऐसी चरम स्थिति पर आ जाती है जहाँ पर असन्तोष एक भीषण क्रान्तिकारी रूप धारण कर लेता है। यह क्रान्ति भी वास्तव मे गुणात्मक परिवर्तन की प्रतीक होती है।"[5] मार्क्स ने क्रान्ति के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कहा है—"जब पुरानी सामाजिक व्यवस्था के गर्भ मे एक नयी सामाजिक

---

१ 'समाजवादी चिन्तन'—डॉ० के० एल० कमल, पृ० ८७

२ 'आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास'—डॉ० प्रभुदत्त शर्मा, पृ० ४५४

३ 'The Theory and Practice of Communism'—R. N. Carew Hant. pp 69-70

४, 'The Poverty of Philosophy—Karl Marx, p 159

५. 'हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना'—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० ६१

व्यवस्था परिपक्व हो जाती है तब उसके जन्म के लिए शक्ति-रूपी धाय की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है।"[१] पूंजीपति वर्गों के विरुद्ध वर्गों मे मजदूर वर्ग ही वास्तव मे क्रान्तिकारी वर्ग है क्योंकि पूंजीपतियो मे पूंजीपति वर्ग की सख्या दिन-प्रतिदिन घटती चलती है तथा बेरोजगार मजदूरो की सख्या दिन-प्रतिदिन बढती चलती है। "पूंजीपति वर्ग जो सबसे बडी चीज पैदा करता है, वह है उन लोगो का वर्ग जो स्वय उसी की कब्र खोदेंगे, उसका पतन और मजदूर-वर्ग की विजय दोनो ही समान रूप से अनिवार्य है।"[२] सत्रहवी शताब्दी से जन्म लेकर उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ तक जितनी भी प्रजातान्त्रिक क्रान्तियाँ हुई वे मार्क्स के मतानुसार अन्तिम सघर्ष की घटनाएँ थी। उनमे मध्यम वर्ग पूंजीपतियो की विजय हुई तथा आधुनिक समय मे जो आर्थिक तथा सामाजिक विकास हुए हैं उनमे पूंजीवादी समाज के विशिष्ट लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।"[३] "ईसाई धर्म के अभ्युदय के पश्चात् मार्क्सवाद सबसे महान आन्दोलन था।"[४]

सर्वहारा वर्ग या श्रमिक-वर्ग की क्रान्ति

उत्पादन-प्रक्रिया नित्यप्रति परिवर्तित होती रहती है। नवीन उत्पादन-प्रक्रिया समाज-व्यवस्था के साथ कदम मिलाकर चलने मे असमर्थ रहती है। ऐसी व्यवस्था मे पूर्व के विभिन्न वर्ग एव नवीन शक्ति मिलकर सत्ताधारी व्यवस्था के प्रति विद्रोह करते हैं। इस प्रकार क्रान्ति नवीन उत्पादन-पद्धति के साथ समाज-व्यवस्था के परिवर्तन न होने के कारण उत्पन्न गतिरोध के परिणामस्वरूप होती है। उदाहरणार्थ १७८९ की महान फ्रांसीसी क्रान्ति उत्पादन-व्यवस्था के परिणामस्वरूप उत्पन्न नवोदित पूंजीपति, सामन्तीय व्यवस्था के कृषक, छोटे-छोटे व्यवसायी तथा स्वतन्त्र कलाकार आदि ने मिलकर सामन्त व्यवस्था के प्रति की थी। इसी प्रकार पूंजीवाद मे भी क्रान्ति के बीज छिपे थे। मार्क्स के द्वारा सर्वहारा-वर्ग पूंजीपति-वर्ग के विनाश के लिए समाजवाद का आकर्षण दिखाकर अपनी शक्ति को दृढ करता है। पूंजीवाद के अन्तर्विरोध ज्यों-ज्यो अधिकाधिक तीव्र होते जा रहे हैं त्यो-त्यो सर्वहारा का वर्ग-सघर्ष भी तेज होता जा रहा है।"[५] पूंजीवादी विश्व मे हडतालो

---

१ Problems of Leninism—J Stalin, p 594
२ Marx-Engels Selected Works, Vol I, p 43
३ 'आधुनिक राजनीतिक चिन्तन'—प्रॉसिसी डब्ल्यू० कोकर, पृ० ५३
४ 'The Theory and Practice of Communism'—R N. Carew Hunt, p 3
५ 'राजनीतिक शास्त्र के बुनियादी सिद्धान्त'—सम्पा० प्रीतमसिंह मनचदा, पृ० ६५

का भीषण ज्वार आ गया है। इन हडतालो मे मजदूर आजकल राजनीतिक और आर्थिक दोनो ही माँगें रखने लगे हैं। अफ्रीका मे प्रथम कम्युनिस्ट सगठन दक्षिण अफ्रीका की कम्युनिस्ट पार्टी थी, जिसकी स्थापना सन् १९२१ मे हुई थी। इस प्रकार कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की सफलता न केवल बढ़ती हुई पार्टी सदस्यता से है बल्कि जनता मे उसकी बढती हुई प्रतिष्ठा से मापी जा सकती है। मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टियाँ रचनात्मक रूप से मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त का विकास कर रही हैं। वे प्रत्येक चरण मे विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन की रणनीति तथा कार्यनीति का निर्धारण कर रहे है। मजदूर-वर्ग आन्दोलन की एकता के लिए कार्य कर रहे हैं तथा सर्वहारा की एकता उसकी विजय की गारण्टी है।

रूस की लाल क्रान्ति, इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति तथा फ्रास की, अमरीका की क्रान्ति मे सर्वहारा-वर्ग का प्रमुख हाथ रहा है। १९१६ मे रूसी समाजवादी क्रान्ति मे स्टालिन तथा कम्युनिज्म का लक्ष्य ससार व्यापी समष्टिवादी समाज की स्थापना है। 'जिस समाज मे पैदावार के साधनो पर नियत्रण न रहने पर तथा व्यक्तिगत प्रभुत्व न होने पर मुनाफा कमाने का उद्देश्य तथा अवसर न रहे, और पैदावार करने वालो म परस्पर होड भी न रहे, समाज मे पैदावार के साधनो के मालिक तथा साधनो से हीन शोषक और शोषित की श्रेणियाँ न रहें।'[1] यही क्रान्ति तथा आन्दोलन की यही भूमिका समाज-व्यवस्था परिवर्तन सदैव से रही हैं।

सामाजिक तथा समाजवादी क्राति

नयी उत्पादक शक्तियो से पुराने उत्पादक सम्बन्धो की टक्कर ही सामाजिक क्रान्ति की वस्तुगत आर्थिक बुनियाद है। सामाजिक क्रान्ति मे जनता की सृजनात्मक स्फूर्ति जागृत होती है। क्रान्ति के लिए आवश्यक वस्तुगत अवस्थाओ के जोड को क्रान्तिकारी परिस्थिति कहते हैं। इसमे तीन बिन्दु अनिवार्य हैं—(१) शासक वर्गों का पुराने ढग से रहना तथा हुकूमत करना आरम्भ हो जाना। इसके लिए लेनिन ने कहा है, 'क्रान्ति राष्ट्रव्यापी सकट के बिना असम्भव है।'[2] (२) उत्पीडित वर्गों का चरम सीमा मे पहुँच जाना, (३) 'जनता के जोश मे भारी वृद्धि।'[3] "समाजवादी क्रान्ति हर पूर्ववर्ती सामाजिक क्रान्ति से सर्वथा भिन्न होती है। समाजवादी क्रान्ति सदा के लिए शोषण का

---

१ 'मार्क्सवाद'—यशपाल, पृ० १५८
२ सकलित रचनाएँ (खण्ड ३)—लेनिन, पृ० ४३०
३ 'मार्क्सवादी दर्शन'—वि० अफनास्येव, पृ० ३१२

अन्त कर देती है। समाजवादी क्रान्ति का पहला प्रश्न है सर्वहारा द्वारा राजनीतिक सत्ता का हस्तगत किया जाना तथा उसका सुदृढीकरण करना। साम्राज्यवाद के युग मे समाजवादी क्रान्ति होना अनिवार्य है। सर्वहारा-वर्ग की क्रान्ति ऐतिहासिक विकास की सर्वाधिक जरूरी आवश्यकताओ की पूर्ति करने की क्षमता रखती है तथा पूंजीवादी उत्पादन-सम्बन्धो को समाप्त करने की सक्षमता भी रखती है। मार्क्स-एंजिल्स ने बताया कि पूंजीपति तथा सर्वहारा के विरोध के गहन होने पर परिणामस्वरूप समाजवादी क्रान्ति होगी।"[1]

सर्वहारा-वर्ग का आधिपत्य एव अधिनायकत्व

"पूंजीपति-वर्ग और सर्वहारा-वर्ग के बीच अनगिनत सक्रमणशील ग्रुप हैं, अब उनके प्रति हमारी नीति वही होनी चाहिए जिनकी परिकल्पना हमारे सिद्धान्तों मे की गई है और जिसको आज हम अमल म लाने की स्थिति मे हैं। हमे अनेक समस्याओं को सुलझाना है और अनेक समझौते करने हैं तथा तकनीकी का काम बॉटना है, जिसके विषय मे प्रशासक सर्वहारा सत्ता की हैसियत से हमे यह जानना चाहिए कि उन्हे कैसे निर्धारित करना है।"[2] श्रमिकों का अधिनायकत्व वर्ग-विहीन समाज की स्थापना से पूर्व की सक्रान्तिकालीन अवस्था है। मार्क्स ने मत व्यक्त किया है कि "पूंजीवादी और साम्यवादी समाज के बीच एक-दूसरे मे परिवर्तित होने का क्रान्तिकारी काल रहा है। इसी के अनुरूप एक राजनीतिक सक्रान्ति काल भी होता है जो केवल क्रान्तिकारी श्रमजीवी वर्ग की तानाशाही ही हो सकता है। सर्वहारा वर्ग के एकाधिपत्य मे ही यह क्रान्ति प्रतिफलित होती है और उसी के द्वारा उसी के रूप मे क्रान्ति, उसकी गति, उसकी रूपरेखा तथा उसकी सफलताएँ साकार बनती हैं। सर्वहारा-वर्ग का एकाधिपत्य, सर्वहारा क्रान्ति का शस्त्र, उसका मुख्य साधन है और प्रधान आधार-स्तम्भ है।"[3] सर्वहारा एकाधिपत्य एक क्रान्तिकारी शक्ति है जिसका आधार पूंजीपतियों के विरुद्ध बल का प्रयोग है।"[4] इससे यह आशय निकलता है कि सर्वहारा शासक वर्ग के रूप मे सुसगठित होकर राजसत्ता पर अपना एकछत्र अधिकार कर ले। पूंजीवादी व्यवस्था को क्रान्ति द्वारा नष्ट करने के तुरन्त बाद ही राज्य-विहीन, वर्ग-विहीन, शोषण-

---

१. 'मार्क्सवादी दर्शन'—वि० मफनास्येव, पृ० ३१२-१५
२. प्रावदा—अक २६४, २६५, ५ और ६ दिसम्बर १६१८ से सकलित 'संस्कृति और सांस्कृतिक क्रान्ति'—लेनिन, पृ० ४६
३. 'लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त'—स्तालिन, पृ० ३४
४. वही, पृ० ३६

रहित साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना होनी असम्भव है। इसके उद्देश्य की उपलब्धि के लिए नई व्यवस्था की स्थापना होगी जिसे कि 'सर्वहारा-वर्ग का अधिनायकत्व' कहा गया है। सर्वहारा-वर्ग का अस्तित्व स्थायी नहीं वरन् संक्रमणकालीन है। सर्वहारा-वर्ग का अधिनायकत्व तब तक बना रहेगा जब तक पूंजीवादी व्यवस्था के समस्त अवशेषों को समाप्त नहीं कर दिया जाता। यह व्यवस्था अन्तिम साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए अग्रगामी होगी। इस संक्रमण काल की समाप्ति के बाद जिस समाज की स्थापना होगी, वह न केवल वर्ग-विहीन समाज होगा वरन् राज्य-विहीन भी होगा। संक्रमण काल में श्रमजीवी वर्ग का उद्देश्य क्रान्ति के शत्रुओं को समाप्त करके अपनी सत्ता को सुदृढ़ करने का था।

प्रोफेसर सेबाइन के शब्दों में सर्वहारा-वर्ग के अधिनायकत्व का सार इस प्रकार है "वर्ग-विहीन समाज से भी महत्त्वपूर्ण चरण सर्वहारा-वर्ग का अधिनायकत्व था जो मार्क्स और एंजिल्स के अनुसार सर्वहारा-वर्ग की क्रान्ति के तुरन्त बाद स्थापित होता है। इस अवस्था में यह कल्पना की जाती है कि सर्वहारा-वर्ग शक्ति छीन लेता है तथा एक ऐसे राज्य का निर्माण करता है जो अपनी ओर से बल का प्रयोग करता है इसलिए सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व भी बुर्जुआ राज्य की भाँति ही वर्ग-प्रभुत्व का साधन होता है। उसका कार्य होता है कि वह विस्थापित पूंजीवादी राज्य की नौकरशाही को नष्ट करे, उत्पादन के साधनों को सार्वजनिक सम्पत्ति के रूप में बदले और यदि पूंजीपति-वर्ग प्रतिक्रान्ति का कोई प्रयत्न करे, तो उसे दबा दे। जब ये कार्य हो चुकेंगे, तभी सम्भवतः राज्य के तिरोहित होने की प्रक्रिया आरम्भ होगी। सर्वहारा वर्ग ने अधिनायकत्व का अपने सामाजिक सिद्धान्त के एक महत्त्वपूर्ण भाग के रूप में विकास नहीं किया। इसके सम्बन्ध में मुख्य बातें यह हैं—१८४८-५० के फ्रांस के क्रान्तिकारी उपद्रवों से सम्बन्ध रखती है तथापि यह बात निश्चित थी कि यदि वर्ग-विहीन समाज को वास्तविक बनाना है तो एक दिन में यह नहीं बन जायगी। १८५० के बाद यूरोप की राजनीति में क्रान्ति का महत्त्व कम हो गया। वह शान्तिपूर्ण पथ पर अग्रसर होने लगी थी। १९१७ में लेनिन ने इस संकल्पना को ग्रहण किया और उसे मार्क्सवाद के पुनरुत्थान का एक साधन बनाया। लेनिन की क्रान्ति की सफलता ने इसी को आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के लिए एक महत्त्वपूर्ण विषय बना लिया।"[1] लेनिन ने कहा है कि सर्वहारा अधिनायकत्व नये वर्ग द्वारा अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रु, पूंजीपतियों के विरुद्ध जिनका सत्ताहरण के बाद प्रतिरोध दस गुना बढ़ जाता

---

१ 'राजनीतिक दर्शन का इतिहास'—जार्ज एच० सेबाइन, पृ० ७४६

है, कठोरतम और अधिक निर्ममतापूर्ण सघर्ष है।"[1] इस प्रकार "सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला पहलू जोर-जबर्दस्ती का पहलू है।"[2] दूसरा पहलू रचनात्मक पहलू है। लेनिन का कहना है "शासन पद से हटाये जाने पर पूंजीपतियो का विरोध दस गुना बढ जाता है। इसी शासन-च्युत तथा अधिक शक्तिशाली पूंजीपति-वर्ग के विरुद्ध नये वर्ग के अत्यन्त दृढ और निर्मम सग्राम का ही नाम सर्वहारा-वर्ग का एकाधिपत्य है।"[3] सर्वहारा-वर्ग का एकाधिपत्य वास्तव मे पूंजीवादी समाज से कम्युनिस्ट समाज के सक्रमण काल की एक अवस्था विशेष है।"[4] सर्वहारा किस वर्ग को दबायेगा ? शोषक-वर्ग को यानी पूंजीपति-वर्ग को। मेहनतकशो को राजसत्ता की जरूरत केवल शोषको के विरोध को खत्म करने के लिए होती है और केवल मजदूर-वर्ग ही इस दमन-कार्य का सचालन कर सकता है। वही उसे पूरा कर सकता है, क्योकि मजदूर-वर्ग ही ऐसा वर्ग है जो सुसगठित रूप से क्रान्तिकारी है।"[5] पहली अवस्था मे तो अल्पमत के हितो के लिए बहुमत का नियन्त्रण किया जाता था, दूसरी अवस्था मे बहुमत की सुरक्षा के लिए अल्पमत पर नियत्रण किया जाता है। लेनिन के शब्दो मे, "विशाल जनसमुदाय के लिए जनतन्त्र की व्यवस्था और जनता के शोषको और उत्पीडको का बलपूर्वक दमन अर्थात् जनतन्त्र से उनका बहिष्कार—यही प्रमुख परिवर्तन है जो पूंजीवादी व्यवस्था से कम्युनिस्ट-व्यवस्था तक के सक्रमण काल मे जनवाद मे घटित होता है।"[6] समाज मे वास्तविक जनवाद की स्थापना का श्रेय मार्क्सवादी धारणा के अनुसार सर्वहारा-वर्ग के अधिनायकत्व को जाता है।

वर्ग-विहीन समाज की अवधारणा

"पूंजीवाद की दासता और पूंजीवादी शोषण के अगणित आतकों, बबरता और बेहूदगियो से मुक्त होकर लोग सामाजिक जीवन के उन प्राथमिक नियमो के पालन करने के आदी हो जाएँगे जिनसे वे शताब्दियो से परिचित हैं और जिन्हे हजारो वर्षों से उपदेशो मे अगणित बार दोहराया गया है। वे ऐसे अभ्यस्त हो जाएँगे कि बिना बल-प्रयोग के, बिना नियत्रण बिना शासन,

---

१ 'सकलित रचनाएँ (खण्ड ३)—लेनिन, पृ० ३७७
२ 'मार्क्सवादी दर्शन —वि० अफनास्येव, पृ० २८८
३ लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त'—स्तालिन, पृ० ३७
४ 'Critique of the Gotha Programme'—Karl Marx, p 39
५ राजसत्ता और क्रांति'—लेनिन, पृ० २१
६ 'Marx Engels' Marxism - V. I Lenin, p 348

और बिना दबाव की उस व्यवस्था के जिसे हम राज्य कहते हैं, उनका पालन करेंगे।'[१] जब पूंजीवादी व्यवस्था मे राज्य पर नियन्त्रण पूंजीपति लोग करते हैं और उनके माध्यम से वे अपने हितो का सरक्षण करते हैं तब दूसरे और वर्ग के हितो का सरक्षण करना अनिवार्य हो जाता है। मार्क्स के अनुसार राज्य की प्रकृति एव कार्य शक्तिशाली वर्ग के हितो की रक्षा करता रहा है। इस उद्देश्य से वह वर्ग जिसके अधीन यह शक्ति रहती है, उत्पादन के साधनो पर नियन्त्रण रखता है। हण्ट के अनुसार ' मार्क्स के लिए लोकतान्त्रिक राज्य अन्तर्द्वन्द्व लिये हुए है क्योकि समाज मे जनतन्त्र तभी कायम हो सकता है जब कि दो वर्ग हो।"[२]

मार्क्स का कहना है कि सर्वहारा एकाधिपत्य वर्ग-विहीन समाज का साध्य नही, केवल साधन है। मार्क्सवाद का साध्य तो केवल वर्ग-विहीन समाज की स्थापना से है। मार्क्सवाद श्रेणियो के अस्तित्व को समाज मे अशुभ मानता है तथा शोषण और असमानता के उन्मूलन के लिए समाज मे श्रेणियो को जन्म देने वाली आर्थिक व्यवस्था के मूल पर ही प्रहार करता है। वह कहता है— कि सर्वहारा के एकाधिपत्य से ही कार्य पूरा नही हो जाता वरन् तब से उस वर्ग का वास्तविक कार्य आरम्भ होता है। एंजिल्स के अनुसार आर्थिक व्यवस्था मे इस प्रकार सुधार हो जाने से वर्ग सघर्ष का मूल कारण ही समाप्त हो जायेगा, "इस अवस्था मे समाज का उत्पादन पहले से बनी योजना के अनुसार हो सकेगा। उत्पादन का विकास हो जाने से समाज मे विभिन्न वर्गों का अस्तित्व अनावश्यक तथा निरर्थक बन जाएगा और जैसे-जैसे अराजकता का प्रादुर्भाव सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र से दूर होता जाएगा वैसे-वैसे ही राज्य के राजनीतिक अधिकारो का भी अन्त होता जाएगा।"[३] 'अत सर्वहारा एकाधिपत्य वर्ग सघर्ष और श्रेणी विभेद को समाप्त करने का एक अनिवार्य साधन है। मार्क्सवादी केवल वही है जो वर्ग सघर्ष की मान्यता से आगे बढकर सर्वहारा वर्ग के एकाधिपत्य को मानता है।'[४] मार्क्सवादी मान्यता के अनुसार सर्वहारा एकाधिपत्य के फलस्वरूप जिस वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी उसमे प्रत्येक व्यक्ति के जीविकोपार्जन का एक ही आधार होगा और वह

---

१ 'The State and Revolution —V I Lenin p 94

२ The Theory and Practice of Commun sm'—Hunt Carew, p. 66

३ समाजवाद वैज्ञानिक और काल्पनिक—फ्रेडरिक एंजिल्स, पृ० ४८

४ 'राजसत्ता और क्रान्ति'—लेनिन पृ० ३०-३१

होगा उसका श्रम।"[1] ऐसे समाज में जैसा कि एंजिल्स ने दावा किया है कि ये सब परिस्थितियाँ उपलब्ध होंगी जिनसे मनुष्य अपने-आपको जान सके और अपने विरुद्ध होने वाली जीवन की सभी परिस्थितियों को नाप सके। ऐसे समाज में वह अपनी प्रकृति के अनुकूल एक सच्चे मानवीय तरीके से विश्व को संगठित कर सकेगा और इस प्रकार से ऐसे समाज में हमारे युग की सारी समस्याओं का हल हो चुकेगा।"[2] सर्वहारा एकाधिपत्य के द्वारा वास्तव में वर्ग-विहीन समाज में शोषक तथा शोषित के भेद-भाव के समाप्त हो जाने पर समाज के सम्पूर्ण व्यक्तियों के लिए, बिना किसी अपवाद के व्यापक एवं सच्चे अर्थों में जनवाद की प्रतिष्ठा होगी।"[3]

वर्ग-संघर्ष : समाजशास्त्रीय स्वरूप-विवेचन

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी 'वर्ग-संघर्ष' की अवधारणा अति प्राचीन काल से चली आ रही है। 'वर्ग-संघर्ष' अनेक रूपों में तथा अनेक आधारों पर होता रहा है। प्रत्येक काल में किसी प्रकार के 'वर्ग' अवश्य पाये जाते हैं। "आधुनिक युग में द्रव्यों के आधार पर वर्गों का निर्माण अधिक हो रहा है। भारतवर्ष में जन्म के आधार पर वर्ग-जातियों का संघर्ष तीव्र गति से हो रहा है। प्रत्येक युग में नवीन वर्गों का संरचना होती है।"[4] धर्म, राजनीति, शिक्षा, व्यवसाय आदि के आधार पर भी वर्गों का निर्माण होता रहा है। 'वर्ग संघर्ष' अन्य संघर्षों की भाँति स्वार्थों पर आधारित रहता है। इसमें एक वर्ग दूसरे वर्ग के अस्तित्व को समाप्त कर देना चाहता है तथा स्वयं लाभ लेना चाहता है। प्रत्येक 'संघर्ष' को 'वर्ग बड़े महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित होने की घोषणा करता है। अपने वर्ग के सदस्यों में यह भावना उत्पन्न करता है कि सम्पूर्ण वर्ग खतरे में है और यदि 'संघर्ष' न किया जाय तो वर्ग का अस्तित्व नष्ट हो जायेगा। पक्षपात की भावना का अत्यधिक विकास करते हुए प्रत्येक वर्ग अपने विरोधी-वर्ग को सन्दिग्ध दृष्टि से देखता है। "जाति-भेद, धर्म-भेद, विश्वासों और प्रथाओं में भेद-भाव होने के कारण संघर्ष हो जाया करते हैं। एक जाति या धर्म के लोग दूसरी जाति या धर्म के लोगों से अपने को अधिक ऊँचा और श्रेष्ठ मानते हैं। दूसरों के धर्म तथा प्रथाओं की आलोचना

१. 'The Theory and Practice of Socialism'—John Strachy p. 405
२. Engels quoted by Wayper Opcit, p 205
३. 'Marx Engels' Marxism'—V. I Lenin, p 349
४. 'समाजशास्त्र की रूपरेखा'—एम० एस० गोरे, पृ० २६८

करते हैं तथा अपनो की प्रशंसा। इस प्रकार जाति-समूह या धर्म समूह का संघर्ष दूसरे धर्म समूहो के साथ हो जाया करता है। समूहो मे आपसी संघर्ष उनके पृथक्-पृथक् अस्तित्वो और मनोवृत्तियों तथा मानदण्डो मे विरोध होने के कारण होता है।"[1] इस सामूहिक संघर्ष के लाभ तथा हानि पक्ष की व्याख्या करते हुए बीसज-बीसज लिखते हैं "फिर भी अधिक संघर्ष विनाशकारी होता है और जितनी समस्याओ को सुलझाता है उससे कहीं अधिक समस्याओ को जन्म देता है।"[2] संघर्ष का स्वरूप विनाशकारी तो होता है परन्तु समूह के अन्दर अधिक चेतना एव संगठन उत्पन्न करता है। ग्रीन ने उचित ही लिखा है 'युद्ध सामूहिक चेतना और सामूहिक मान्यता को बढाता है।"[3] किंग्सले डेविड ने कहा है "इसीलिए आन्तरिक एकता और बाह्य संघर्ष एक ही ढाल के प्रतिपक्ष हैं।"[4] वर्ग-संघर्ष की समाजशास्त्रीय सन्दर्भ मे व्याख्या करने से पूर्व वर्ग' शब्द की व्याख्या अपेक्षित है।

'वर्ग' शब्द की समाजशास्त्रीय व्याख्या

'आयु समूहो मे विभाजन समुदाय की आभ्यान्तरिक रचना की प्रधान विशेषता रहती है। अत समुदाय के समान सामाजिक वर्ग कम या अधिक सहज सामाजिक प्रवृत्तियो के सूचक हैं।"[5] एक वर्ग का अर्थ कोई भी श्रेणी या प्रारूप हो सकता है, जैसे कलाकारो, इंजीनियरो का हम एक वर्ग कह सकते हैं। किन्तु ये व्यावसायिक श्रेणियाँ हैं, समाज मे एक-दूसरे से सम्बन्धित सामूहिक समूह भी नही है। अत विभिन्न व्यवसाय-समुदायों को उदग्र तथा सामाजिक वर्गों का सिद्धान्तीकरण करके समतलीय स्थर पर व्यक्त करते हैं। ये व्यवस्थाएँ क्रमबद्ध होती है। सामाजिक स्थिति द्वारा विलग किये गये, 'समुदाय' का सामाजिक वर्ग कोई भी भाग हो सकता है। वैसे उच्च निम्न के भेद के आधार पर ही सामाजिक संसर्ग सीमित किये गए हैं "सामाजिक वर्गों की व्यवस्था व रचना में पहले तो सामाजिक स्थिति समूहो की सत्ता दूसरे उच्चता-हीनता के स्तरीकरण की मान्यता और अन्त मे रचना की कुछ सीमा तक स्थापित रहता है।"[6] "प्रत्येक समाज अनेक वर्गों में विभक्त दिखाई देता है। आयु,

---

१ 'समाज मनोविज्ञान'—तुलसीराम पालीवाल, पृ० १८१
२ 'Modern Society'—Biesans and Biesans, p 93
३ 'Sociology' – Green, p 54
४ 'Human Society'—K David, p 169
५ 'समाज'—जी० विश्वेश्वरैया (अनु० हिन्दी), पृ० ३४२
६ 'Social Class'—Cf T H Marshal Cap X, pp 55-56

यौनि, उद्योग-धन्धे, जाति तथा व्यवसाय आदि प्रमुख में वर्गों का प्रादुर्भाव निहित है।"[1] समाज मे वर्गों का मूल्यांकन सामाजिक आहार्यों (Social Values) के द्वारा किया जाता है।

उच्च, मध्य तथा निम्न वर्गों की उद्भावना के सामाजिक कारण

प्रत्येक समाज अनेक वर्गों में विभक्त दिखाई देता है। प्रत्येक समाज में विभिन्न आयु, योनि और जातियो के लोग रहते हैं। प्रत्येक समाज म तीन वर्ग पाये जाते हैं—उच्च वर्ग, मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग। उच्च और निम्न शब्द इस बात का द्योतक है कि इनमे रहने वालो का मूल्यांकन सामाजिक आहार्यों द्वारा किया जाता है तथा कुछ व्यक्तियों को दूसरो की अपेक्षा ऊँचा या नीचा समझा जाता है। हम विभिन्न व्यक्तियो को उनकी वेशभूषा, रहन-सहन, आचार-व्यवहार आदि से पहचान सकते हैं। अत स्पष्ट है कि वर्गों का विभाजन प्रतिष्ठा के आधार पर होता है। प्रतिष्ठा का आधार धन, जाति कुल, शिक्षा आदि ही होते हैं। प्रत्येक वर्ग की निजी वर्ग-भावना तथा प्रतिष्ठा होती है।

"इगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति, फ्रांस की राज्य-क्रान्ति और रूस की समाजवादी क्रान्ति ने विश्व की आर्थिक व्यवस्था पर काफी प्रभाव डाला है। वर्तमान समाज आर्थिक दृष्टि से तीन वर्ग या तीन श्रेणी मे विभक्त है—उच्च वर्ग, मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग। उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग शोषक या शोषित तथा पूँजीपति और श्रमिक के नाम से भी जाने जाते हैं।"[2] "मध्य वर्ग के विशिष्ट चिह्न, धन और अर्जित सम्पत्ति है और विशेषकर उनका एकत्र करना सग्रह करना और उपयोग करना मध्य वर्ग की प्रमुख पहचान है।"[3] निम्न वर्ग आवश्यकता की पूर्ति म दिन रात लगा रहता है। श्रमिक वर्ग निरन्तर अपनी जागृति तथा विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का परिचय देता रहता है। उच्च वर्ग निरन्तर निम्न वर्ग का शोषण करते हुए विलासिता मे दिन गुजारा करता है। निम्नवर्ग की दशा नहीं बदली, प्रत्येक व्यवस्था मे केवल उसका शोषण ही होता रहा। मुगल शासक अधिकांश विलासप्रिय थे। उच्च वर्ग के लोगो में तड़क-भड़क तथा ऐश्वर्य-प्रदर्शन की भावना व्याप्त थी। ये लोग भड़कीले वस्त्र तथा कीमती वस्तुओं का उपयोग करते थे।"[4] उस समय उच्च वर्ग मे नशीले

---

१ 'भारतीय सामाजिक संस्थाएँ'—पी० डी० पाठक, पृ० १६८
२ 'हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग'—डॉ० मजलता सिंह पृ० ३-४
३ 'The English Middle Classes'—Leud and Maude, p 26
४ 'हिन्दी उपन्यास मे वर्ग भावना'—प्रतापनारायण टण्डन, पृ० १०

वस्तुओं और उत्तेजक पेय-पदार्थों का बाहुल्य रहता था। अत जैसी सामाजिक पृष्ठभूमि रही है, वैसे ही वर्गों की उद्भावना रही है परन्तु उच्च, मध्य, निम्न श्रेणियाँ समाज मे सदैव बनी रही हैं।

समाज मे वर्गों की उद्भावना के साथ नीति का भी सम्बन्ध जोड़ा गया। हुमायूँ कबीर ने ब्रिटिश शासकों की शैक्षणिक नीति और मध्यवर्ग की आवश्यकता का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है "काफी समय तक शासन व्यावसायिक लाभ को दृष्टि मे रखकर किया जाता रहा। देश के साधनों का पूर्ण-रूपेण शोषण करते हुए ब्रिटेन को ऐसे मध्य श्रेणी के मनुष्य-समुदाय की आवश्यकता थी जो उनके और भारतीय लोगो के बीच मध्यस्थ का कार्य कर सके। शासन-प्रबन्ध की आवश्यकता के सम्बन्ध मे भी यही समस्या थी।"[1] शिक्षालय जो कि समाज के उत्पादन तथा विकास की एक औपचारिक सस्था रही है, उसमे भी वर्गभेद प्रतिबिम्बित होता है। "बालक को विद्यालय समाज मे अपने पिता की स्थिति के अनुरूप स्थान प्राप्त होता है। अत वर्गभेद के कारण बालक अपनी बौद्धिक प्रखरता के कारण ही नही वरन् पिता के समाज मे उच्च स्थान पर कार्य करने के कारण ही सम्मानित होता है।"[2] अत समाज में उच्च, मध्य, निम्न-वर्ग की उद्भावना के कारण कई रहे हैं जिनमे से जन्म, आनुवंशिकता, आय, व्यवसाय, शिक्षा, सम्पत्ति, जाति आदि प्रमुख हैं। उच्च-वर्ग के प्रमुख अधिकारी पूँजीपति तथा जमीदार, महाजन आदि रहे हैं। मध्य-वर्ग में ऐसे सभी शिक्षित वर्ग, क्लर्क तथा अन्य व्यवसायी व्यक्ति आते हैं। निम्न वर्ग मे ये सभी लोग आते हैं, 'जिनका सारा जीवन उच्च तथा कुछ हद तक मध्य वर्ग की सेवा मे व्यतीत होता है।"[3] शिक्षा के अनुरूप ही "कृषि-प्रधान समाज में, जहाँ भू-सम्पत्ति पर प्रमुख तथा सामन्तो का अधिकार है, वश की उच्चता को बहुत महत्त्व दिया जाता है। वहाँ पर सम्पत्ति को इतना महत्त्व नही दिया जाता जितना कि वश को।"[4] कुछ विद्वानो का कहना है कि वास्तविक वर्ग तो वे हैं "जो मानव-प्रकृति (स्वभाव, गुण और कर्म) के आधार पर बनते हैं। गुण, कर्म और स्वभाव से मानवो मे दो ही वर्ग हैं—देवता और असुर अर्थात् भले और बुरे। स्वभाव से बुरा व्यक्ति सुगमता से भला नही बन सकता है।'[5] 'वर्ग-भेद का एक नैतिक पक्ष भी है। नैतिक आधार पर भी वही

---

१ 'इंडियन हैरिटेज'—हुमायूँ कबीर, पृ० १०२
२ 'शिक्षा और समाज व्यवस्था'—राजसिंह भण्डारी, पृ० १०२
३ 'हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना'—प्रतापनारायण टण्डन, पृ० १२७
४ 'शिक्षा और समाज-व्यवस्था'—बर्टेण्ड रसेल (हि० सस्क०), पृ० १०३
५ 'धर्म तथा समाजवाद'—गुरुदत्त, पृ० १५६-५७

भेद अनिश्चित है। वर्ग-भेद के सभी आधारो मे यह सबसे अधिक दृढ आधार है। अन्यायपूर्ण वर्ग-भेद से लाभ उठाने वाला वर्ग अपनी आत्म-ग्लानि को यह तर्क देकर छिपाने की चेष्टा करता है, कि वह दलित वर्ग से अधिक योग्य है। इस प्रकार इस वर्ग के लोगो की सहानुभूति अपने वर्ग तक ही हो जाती है। यह वर्ग एक प्रकार से प्रगति का विरोधी हो जाता है। उसके लोगो के दिलो मे एक प्रकार का भय घर कर जाता है।"[1] "पूँजीवादी व्यवस्था ने समूचे समाज को तीन भागो मे विभाजित किया है—बुर्जुआ, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग। मध्य वर्ग सामन्तवादी व्यवस्था मे नही पाया जाता क्योंकि उस समय जमीदार तथा किसान का सीधा सम्बन्ध था। परन्तु पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल कर दिया है कि एक मध्य वर्ग की आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के सगठन के सूत्र को सभाल सके।"[2] "उच्च वर्ग मे प्रधानत वही लोग आते हैं जिनका सम्पर्क समाज के उच्च वर्ग से बहुत निकट का रहता है। इस वर्ग मे प्रधानत धन-सम्पन्न तथा बुद्धिवादी वर्ग के लोग आते हैं।"[3] अरस्तु ने कहा है—"सभी राज्यों मे तीन प्रकार के व्यक्ति मिलते है—एक वर्ग बहुत धनी, दूसरा बहुत ही निर्धन है और तीसरे प्रकार के व्यक्ति मध्यम श्रेणी के हैं।"[4] "इलियट के विचारानुसार सामाजिक विकास के साथ-साथ वर्ग बनते चले जाते है। इन विभिन्न वर्गों की रीतियो और उनके रहन-सहन के तौर-तरीको मे काफी बदलाव आ जाता है।" तथा "इलियट इसी प्रकार सस्कृति को भी सामाजिक वर्गों की अनिवार्यता तथा विकास का साधन मानते हैं।"[5] इसी प्रकार सभी वर्गों का अध्ययन करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वश, आय, जीविका, शिक्षा, रहन-सहन, अभिरुचि, कौटुम्बिक-सामाजिक मर्यादा के अनुसार उच्च, मध्य तथा निम्न की उद्भावना जागृत होती है तथा उनके विकास के आधार भी प्रमुखत. यही रहते हैं। अत वर्गों की उद्भावना के कारणो को जानने के उपरान्त उनके उद्भव तथा विकास के साथ-साथ सघर्ष की परिस्थितियाँ स्वत उत्पन्न होती हैं तथा सघर्ष विकास का अभिप्रेरक है।

सामाजिक वर्गों की सरचना

सामाजिक सरचना की सुनिश्चितता का सामाजिक सगठन की अवधारणा

१ 'शिक्षा और समाज-व्यवस्था'—बर्ट्रेंड रसेल, पृ० १०८
२ 'हिन्दी साहित्य कोश'—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ५६४
३ वही, पृ० १२७
४. 'क्लास, स्टेट्स एण्ड पावर'—बैन्डिक्स एण्ड लिपसेट से उद्धृत, पृ० १७
५. 'हिन्दी उपन्यास , साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन'—डॉ० रमेश तिवारी, पृ० ७-८

मे विशेष महत्त्व है। सामाजिक ढाँचे या सरचना का निर्माण करनेवाले विभिन्न तत्त्व हैं—सामाजिक सस्थाएँ, सामाजिक अभिकरण, सामाजिक नियम, समाज मे विभिन्न व्यक्तियो के पद तथा कार्य आदि। 'अत सामाजिक सरचना से हमारा अभिप्राय उस विशेष अवस्था से है जिसका निर्माण परस्पर सम्बन्धित सस्थाओ, प्रतिमानों, अभिकरणो तथा समूह के सदस्यो के पद एव कार्यों से होता है।" इस प्रकार पारसनुस तथा रेडक्लिफ ब्राउन ने भी सामाजिक सरचना की परिभाषा दी है। वे समूह के प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किये पदों और कार्यों की विशिष्ट क्रमबद्धता को सामाजिक सरचना मानते हैं 'सामाजिक सरचना के अग मनुष्य ही हैं तथा स्वय सरचना अपने सस्थात्मक रूप म परिभाषित और नियमित सम्बन्धो के अन्तर्गत व्यक्तियो का एक व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध रूप है।"[1] इस विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि समाज एक अखण्ड व्यवस्था नही है। उसके अनेक अग है जो व्यवस्थित और क्रमबद्ध रूप मे मिलकर एक प्रकार के ढाँचे को प्रस्तुत करते हैं जिसे हम सामाजिक सरचना के नाम से पुकारते हैं। मनुष्य परस्पर विभिन्न सम्बन्धो से जुडे हैं तथा सामाजिक सम्बन्धो का एक जटिल जाल आपस म बाँधे हुए हैं। जटिल समाज मे नियमो की विविधता रहती है। 'इन नियमो को सभी सदस्य सही और अनिवार्य मान लेते है, चाहे विशिष्ट व्यक्तियो का आचरण कितना ही भिन्न क्यो न हो।"[2]

सामाजिक वर्गों की सरचना मे कई महत्त्वपूर्ण कारक हैं, जिनके द्वारा समाज म वर्गों की सकल्पना की गयी तथा उनके अन्तर का स्पष्टीकरण किया गया। सामाजिक वर्गों की सरचना का वर्गीकरण हम विभिन्न आधारो पर करते हैं—जन्म के आधार पर या लिंग-भेद के आधार पर, वश परम्परा के आधार पर, सम्पत्ति की विभिन्नता के आधार पर, नीति व समूह भावना के आधारपर। उद्योगीकृत तथा वाणिज्यकृत शहरी जगत् म ही स्थिति कभी-कभी कार्य के विशिष्टीकृत प्रारूपो म सलग्न हो जाती है, जैसे बाबू लोगो के व्यवसाय। इसमे समतलीय एव उदग्र विभाजन दोनो कुछ समयो पर सामाजिक स्थिति सम्बन्धी व्यवस्थाओ से सम्बद्ध हो जाते हैं। विभिन्न वर्गगत, राष्ट्रीयता तथा धार्मिक समूहों के साथ वह स्थिति सम्पृक्त हो जाती है और हम यह देखते है कि समकालिक समाज की स्थिति सम्बन्धी सरचना को चित्रण करने की समस्या कितनी जटिल है। वर्गभेद के प्रमुख आधार है—सम्पत्ति, वश-परम्परा, नीति, समूह-भावना आदि।

---

१ 'सामाजिक मानवशास्त्र'—कुसुम नारायण, पृ० २६६ ७०
२ समाज'—मैकाइवर तथा पेज, पृ० १७६

वर्ग-विभाजन : समाजशास्त्रीय दृष्टि से

"समाज के विभिन्न व्यक्तियो के पारस्परिक सम्बन्धो को शासित करने वाले सम्बन्ध-सूत्र अत्यन्त जटिल होते हैं। प्रत्येक मानव-समाज अनेक सामाजिक समूहो मे विभक्त होता है। इन श्रेणियो मे बँटे और परम्पराओं से नियन्त्रित होते हैं। प्रत्येक सामाजिक ढाँचा अनेक सस्थाओ और समितियो से गुँथा रहता है। ससार की विभिन्न समाजों की रचना का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि सामाजिक सरचना समाजशास्त्रीय दृष्टि से कतिपय आधारभूत कारको पर निर्मित होती है। इनमे से अधिक महत्त्वपूर्ण कारक हैं—आयु, यौन-भेद, सबध, स्थान, सामाजिक स्थिति आय, व्यवसाय, योग्यता आदि।"[1] "मनुष्य का जीवन किसी हद तक सामूहिक जीवन है। वह न केवल समूहों मे रहता है वरन् अपने सहयोगियो के साथ सदा नये समूहो का सृजन भी करता है तथा समूह-हेतु विभिन्न शाब्दिक प्रतीको को विकसित कर उनको पहचानता भी है।"[2] समाजशास्त्रीय दृष्टि से वर्गों का निर्माण लिंग, आय, व्यवसाय, जाति तथा योग्यता आदि के आधार पर हुआ है। समाजशास्त्रियो ने केवल धन को या आर्थिक आधार को ही वर्ग-निर्माण का साधन मात्र नही माना वरन् वर्ग-निर्माण में निम्नलिखित कारण महत्त्वपूर्ण हैं—(१) लिंग के आधार पर वर्ग, (२) आयु के आधार पर वर्ग, (३) आय के आधार पर वर्ग, (४) व्यवसाय के आधार पर वर्ग, (५) जाति के आधार पर वर्ग, (६) योग्यता के आधार पर वर्ग।

भारतीय सामाजिक सरचना तथा वर्ग-भावना

समाज मे सभ्यता के आरम्भ से ही असमानता रही है। आज भी असभ्य कबीलों मे सामाजिक असमानता स्पष्टत देखने को मिलती है। कबीले के मुखिया को कई स्त्रियाँ रखने का अधिकार था तथा स्त्री ही सम्पत्तिशाली की निशानी मानी जाती थी परन्तु सभ्य-समाज की आस्था स्त्री सम्पत्ति मे न होकर कुछ और है।[3] "प्रत्येक सामाजिक ढाँचा अनेक सस्थाओ और समितियों में गुँथा रहता है। प्रत्येक सस्था या समिति से अपने-अपने व्यवहार प्रकारों और विचार तथा मनोवृत्तियो के सबधित सकुलो से आवृत्त रहती है। सामाजिक सरचना के कतिपय आधारभूत कारण हैं। इनमे से प्रमुख कारण हैं—आयु,

१ 'मानव और सस्कृति'—श्यामाचरण दुबे, पृ० १०७
२ 'समाज'—मैकाइवर तथा पेज, पृ० २१७
३ 'शिक्षा और समाज [illegible]' [illegible]

यौन-भेद, स्थान, सामाजिक स्थिति, राजनीतिक स्थिति, व्यवसाय आदि।"[1] सामाजिक सरचना की दिशाएँ हैं व्यक्ति-परिवार। परिवार की स्थिति चार वर्गों मे विभाजित है—

(१) समूह—स्थानीय समूह, राष्ट्रीय समूह, प्रादेशिक समुदाय तथा राष्ट्र।

(२) सम्बन्ध—रक्त-सम्बन्ध, विवाह-सम्बन्ध, विस्तारित सम्बन्ध, जन-जाति या जाति।

(३) गोत्र—टोटम गोत्र समूह (मातृदल), द्विदता सगठन।

(४) वर्ग—स्थिति, राजनीतिक और सामाजिक, कुछ समाजो मे धर्म तथा जादू की स्थिति।[2]

"व्यक्ति को आयु समूह गुप्त समिति, क्लब तथा यौन मैत्री सगठन मे से किसी का भी सदस्य बनना पडता है। मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कई उक्तियाँ प्रचलित हैं, कई परम्परागत विकास की क्रिया को मानते हैं, कोई 'परमात्मा' की शक्ति से और आत्माओ के सयोग से गर्भ-पिण्ड की भाँति एक महान अण्डाकार विराट् पुरुष बना। यह बडा हुआ और जगत् के सब पदार्थों मे पदार्थों की चक्राकार गति मे घूमने लगा, वह अण्डाकार विराट् पुरुष फूटा और उससे जीव-जन्तु उत्पन्न हुए तथा प्राणी एकदम बन गए।"[3] मनुष्य के साथ प्रयत्न या कर्म का सम्बन्ध जुडा है क्योकि "वायु, जल, भोजन, यौन-तृप्ति—ये आवश्यकताएँ सभी प्राणियो के लिए हैं। यदि ये सब अनायास ही हो जाएँ तो प्राणी को कर्म करने की आवश्यकता न रहे। वायु तो न्यूनातिन्यून प्रयत्न से प्राप्त हो जाती है तथा जल के लिए अत्यधिक प्रयत्न करना पडता है।"[4] भोजन के लिए उससे अधिक तथा यौन-तृप्ति के लिए विशेष प्रयत्न करना पडता है। इन सभी आवश्यकताओ की पूर्ति तथा कर्म हेतु वर्ण, जाति, समुदाय, समिति, वर्ग, समूह, श्रेणी, सस्था आदि की सरचना हुई। सरचना के साथ-साथ वर्ग भावना का उदय हुआ। सामाजिक वर्ग मनुष्यो के एक ऐसे समूह का प्रतिनिधित्व करता है जिसे समाज मे एक विशेष स्थान प्रदान कर दिया जाता है। यह स्थान उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर निर्धारित होता है और यह सामाजिक प्रतिष्ठा वर्ग के सदस्यो के आचार-व्यवहार तथा सामाजिक सुविधाओं के आधार पर निश्चित होती है। दूसरे

---

१ 'मानव और सस्कृति'—श्यामाचरण दुबे, पृ० १०७
२ वही, पृ० १०६
३ 'धर्म और समाजवाद'—गुरुदत्त, पृ० २२-२३
४. वही, पृ० २५

शब्दो मे, वर्ग-प्रतिष्ठा मे कुछ सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जो सम्पत्ति, बुद्धि, राजनीतिक पद अथवा अन्य किसी आधार पर हो सकती हैं।"[१]

वर्ग-भावना का उदय वर्ण-व्यवस्था से ही माना जाता है। वर्ग-भावना का उदय सभ्य समाज के साथ हुआ है। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने वर्गों के उदय का मूल कारण आर्थिक माना है। उनका अनुमान है कि "प्राचीन काल में वर्ग-भावना के अनुसार समाज मे दो ही वर्ग रहे होंगे।"[२] स्वभाव के विचार से सर्वप्रथम वर्ग-भावना दो विपरीत दिशाओ मे चलायमान थी—"मुख्य रूप से स्वभाव के विचार से मानव दो वर्गों मे विभाजित थे—दैवी स्वभाव वाले देवता तथा आसुरी स्वभाव वाले राक्षस।"[३] "इन दोनो वर्गों का विपरीत स्वभाव था तथा दोनो वर्गों म एक-दूसरे को हानि पहुँचाने की प्रबल भावना थी। 'कर्म' के विचार से वर्ग-भावना का उदय गुणो के आधार पर तथा स्वभाव के आधार पर हुआ। अत 'कर्म' के आधार पर चार वर्गों मे विभाजन हुआ, भारतीय भाषा मे उन्हें वर्ण कहते हैं। वर्णों के नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र हैं। सामाजिक संरचना में वर्ग-भावना का उदय अर्थ या सम्पत्ति के साथ जुडा हुआ है। आवश्यकतानुसार मनुष्य केवल उत्पत्ति के साधनों को अपने अधिकार मे रखना चाहता है। इसके मूल मे उसकी आर्थिक निश्चितता की भावना छिपी रहती है।"[४] प्रत्येक परिवार मे, समाज मे, राष्ट्र मे वर्ग-भावना का उदय सदैव किसी-न-किसी रूप में रहता है। "वर्ग-भावना का क्षेत्र इतना व्यापक है कि हमें ससृष्ट वर्ग-चेतना मे रहता है तथा प्रतियोगितात्मक वर्ग-भावना के बीच स्पष्ट भेद स्थापित करना चाहिए। ससृष्ट वर्ग-चेतना एक ऐसा भाव है जो समान सामाजिक स्थिति का भोग करने वाले समूचे समूह को एकीभूत करता है। परन्तु वर्ग-भावना का अधिक वैयक्तिक प्ररूप होता है।"[५] इस अर्थ मे वर्ग-भावना तथा वर्ग-अखण्डता की ससृष्ट चेतना अलग अलग बात है। वर्ग-भावना प्रतियोगितात्मक भावना की अभिव्यक्ति है, जो सघर्ष की प्रेरणा-शक्ति है। "मनुष्य की आर्थिक निश्चितता की भावनाशक्ति को प्राप्त करने के दूसरे सभी सघर्षों का रूप एकमात्र उत्पत्ति के साधनो को ही अधिकार मे रखने का दृश्यात्मक रूप है।"[६] "जाति

---

१. Social Classes and Sociological Theory'—L. F. Ward, pp 512-27
२ 'भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण'—भगवतशरण उपाध्याय, पृ० १८३
३ 'धर्म और समाजवाद'—गुरुदत्त, पृ० १४२
४ 'हिन्दी उपन्यास मे वर्ग-भावना'—प्रतापनारायण टण्डन, पृ० ३८
५ 'समाज'—मैकाइवर तथा पेज, पृ० ३५२
६. 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद'—हीरालाल पालित, पृ० १४४

का तत्व जिस अश मे विद्यमान है उसके अनुसार वर्ग-भाव भिन्न विस्तार तथा विशेषता को प्राप्त कर लेता है।"[1] "वस्तुत वर्ग-भावना सामाजिक परिवतन, अखण्डता के विघटन का तीव्र बोध तथा वर्तमान स्थितियो के भीतर अलघ्य अवरोधक की मान्यता पर आधारित होती है। अन्तत वर्ग व्यवस्था श्रेणी के ऊपर बँधी श्रणी नही है पर एक लगातार ढाल है। स्थान का निर्वाह तथा दुनिया म उन्नति करने के लिए वर्ग-सघर्ष व्यक्तियो तथा परिवारो मे परिवर्तन करेगा।"[2]

वर्णाश्रम व्यवस्था का वर्ग-भावना के परिसदर्भ मे मूल्याकन

वर्गीकरण अथवा विभेदीकरण की क्रिया के साथ ही वर्ग-भावना का उदय हो जाता है। आश्रम-व्यवस्था मानव के क्रमागत विकास तथा चित्त-वृत्तियो के दमन की कहानी है। इसी प्रकार वर्ण व्यवस्था का वर्गीकरण भी वर्ग-भावना का ज्वलन्त उदाहरण है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव के कार्यगत शोषण आधृत व्यवहार ही वर्ग-भावना को जन्म देते है। अब हम यह पर्यवेक्षणात्मक दृष्टिकोण रखने का प्रयत्न करेंगे कि वर्ग-भावना आश्रम' तथा 'वर्ण' व्यवस्था म कैसे पनप रही थी तथा अन्तत वर्ग भावना के उदय मे इस व्यवस्था ने क्या सहयोग दिया। वस्तुत वर्ण-व्यवस्था म व्यवसाय, विवाह तथा जन्मजात स्तर के आधार पर वर्ग-भावना का उदय हुआ।

(१) जन्मजात अपरिवर्तनशील असमानता—"वर्ण व्यवस्था मे व्यक्ति के वर्ण का निर्णय जन्म से ही हो जाता है। अर्थात् जिस वर्ण के माता-पिता उसी वर्ण की सन्तानें होती है।'[3] कोई भी व्यक्ति, चाहे वह अन्य कार्य मे कितनी भी योग्यता तथा क्षमता रखता हो, वह अपने वर्ण को परिवर्तित नही कर सकता। वर्ण' को किसी अवस्था मे भी 'जाति' नही कहा जाता है वरन् इसको जातियो का समूह माना जा सकता है।'[4] जो व्यक्ति छोटी जाति म जन्मा हो वह जीवन-पर्यन्त छोटी जाति मे ही रहेगा तथा उससे सम्बन्धित कर्म ही करेगा। बडी जाति से तुलना करके भी वह किसी प्रकार भी इस असमानता को दूर नही कर सकता। परन्तु प्राचीन काल मे 'वर्ण' परिवर्तन हो जाया करते थे, ऐसे प्रमाण मिलते हैं।

१ 'समाज'—मैकाइवर तथा पेज, पृ० ३५३

२ वही, पृ० ३५३-५४

३ भारतीय समाज और सस्कृति'—शम्भूरत्न त्रिपाठी, पृ० ६६

४ At any rate the Varna of present day is not acaste though it may be regarded as a group of castes' Caste in India—J H Hutton, p 66

(२) व्यवसाय का चुनना—'वर्ण' के अर्थ से जैसा ज्ञान होता है कि 'व्यवसाय का चुनना' "परन्तु वर्ण-व्यवस्था के दृष्टिकोण से यह भ्रामक तथा अमान्य है।" क्योंकि वर्ण-व्यवस्था में लोगों का व्यवसायों का निर्णय भी जन्म से ही होता था। परन्तु कुछ ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं कि उस समय भी व्यवसाय परिवर्तन हो जाया करते थे। परन्तु ऊँच-नीच का भेद तो तब भी था। "ऊँचे वर्ण के लोगों को निम्न-वर्ण के व्यवसायों को बहुत ही कम संख्या में स्वीकृत करता पाया गया है, भले ही निम्न-वर्ण वालों ने उच्च वर्ण के व्यवसायों को अवश्य स्वीकृत किया हो।"[1] वर्ण-व्यवस्था के व्यवसाय वर्गीकरण का नियम ही विशेषत: वर्ग-भावना को प्रज्ज्वलित करने का कार्य कर रहा था तथा यही कारण था कि कई विद्वानों तथा सुधारकों ने इसके उन्मूलन करने के विविध तर्क प्रस्तुत किए—"जब एक व्यवस्था शोषण की चरम सीमा पर पहुँच जाती है तथा समाज का अधिकांश भाग शोषण की पीड़ा से कराह उठता है तो परिवर्तन होना स्वाभाविक हो जाता है, अन्यथा वर्ग-भावना वर्ग-चेतना को प्राप्त कर वर्ग-संघर्ष का रूप ग्रहण कर लेती है।

(३) विवाह सम्बन्धी निषेध—"वर्ण-व्यवस्था की तीसरी विशेषता विवाह-सम्बन्धी निषेध है, परन्तु इस कारण भी प्रत्येक 'वर्ण' का विद्रोह दूसरे वर्ण से बढ़ता चलता है। आज 'अन्तर्जातीय विवाह' इस विद्रोह का ही परिणाम है। परन्तु आज भी 'विवाह' पर वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव देखा जाता है। 'अन्तर्जातीय विवाह' की संख्या बहुत कम है।"[2] श्री पणिक्कर वर्ण-व्यवस्था पर मर्मान्तिक प्रहार करते हैं। उनका वाच्यार्थ, "मेरे द्वारा गुण और कर्म के आधार पर चातुर्वर्ण्य की रचना की गयी है। जन्म तथा वर्ण या ईश्वरीय विधान सब नितान्त असंदिग्ध है तथा वे ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के दावे का पूर्ण रूप से खण्डन करते हैं।'[3]

(४) श्रम-विभाजन तथा उद्योगों का संरक्षण—वर्ग भावना अथवा वर्ग-चेतना के रूप में विशेषीकरण तथा श्रम-विभाजन को बहुत महत्त्व दिया है। हिन्दुओं के समाज-विधायकों ने इस तथ्य को बहुत पहले से ही आत्मसात् कर लिया था, इसीलिए उन्होंने स्वाभाविक क्षमता और वंश-परम्परा के अनुसार प्रत्येक वर्ण के कार्य का निर्धारण किया। उस समय उद्योग की शिक्षा बालक जन्म के पश्चात् माता-पिता द्वारा ही सीख लेता था तथा कला, ज्ञान व उद्योग एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित हुआ करता था। परन्तु अपने-अपने

१. 'भारतीय समाज और संस्कृति'— शम्भूरत्न त्रिपाठी, पृ० ११०
२ वही पृ० १२३
३ 'हिन्दू-समाज निर्णय के द्वार पर'—के० एम० पणिक्कर, पृ० १५

उद्योग को बढ़ावा देने तथा श्रम-शक्ति का मूल्य बढ़ाने मे 'मैं' के स्थान पर 'हम' का विकास हुआ तथा सगठन बनने लगे। प्रत्येक सगठन मे सगठित वर्ग-भावना का उदय हुआ तथा सब समान दृष्टिकोण से तथा शोषण से मुक्ति प्राप्ति-भावना के अनुरूप वर्णाश्रम व्यवस्था का उन्मूलन हुआ जाति 'वर्ण' का ही विकसित रूप कहलाई।

हम इस प्रकार देखते हैं कि सम्पूर्ण 'वर्ण-व्यवस्था' तथा आश्रम-व्यवस्था का इतिहास 'वर्ग-भावना' की उदीयमान पृष्ठभूमि है जहाँ पर प्रत्येक वर्ण मे 'मैं' के स्थान पर 'हम' की स्थिति की उन्नति होती है। प्रत्येक 'वर्ण' में स्वाभाविक मनोवृत्ति होती है जो उसे जन्म से ही प्राप्त होती है। उसकी अवहेलना के कारण वर्ग-चेतना जागृत होती है तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियो की अवहेलना कर उसके प्रति उदासीन आश्रम-व्यवस्था स्वत वर्ग-भावना का पोषण करती है। अन्तत वर्ग-नीति निर्धारण द्वारा 'वर्ग सघर्ष' की स्थिति उत्पन्न होती है जो वर्णाश्रम व्यवस्था समूल नष्ट करने की चेष्टा करती है।

भारतीय समाज व्यवस्था मे वर्ग-सघर्ष की प्रेरक परिस्थितिया तथा प्रवृत्तियाँ

मोर्गन का विचार है कि मानव सभ्यता व सस्कृति जगली या वन्य अवस्था से असभ्य अवस्था और असभ्य अवस्था से सभ्य या नगर अवस्था की तरफ क्रमश विकसित हुई है। सभ्य-अवस्था का विकास अभी जारी है।"[1] भारतीय समाज-व्यवस्था मे भी विकास इसी क्रम से हुआ है। रूढ़िवादिता की झलक आज भी ग्रामीण क्षेत्रो मे स्पष्ट मिलती है जबकि सभ्यता के परिप्रेक्ष्य मे नगर रूढ़िवादिता को छोडता चल रहा है। विकास-क्रम के अनुसार 'भारतीय समाज-व्यवस्था' वह व्यवस्था है जिसका निर्माण परस्पर सम्बन्धित सस्थाओ, अभिकरणो और सामाजिक समूह के सदस्यो के पद एव कार्यों से होता है। भारतीय समाज भी एक अखण्ड व्यवस्था नही वरन् उसके अग है जो व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध रूप से मिलकर एक प्रकार के ढाँचे का निर्माण करते हैं। जो मनुष्य को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्धित रखता है। उसमे हम वर्ग की उद्भावना के कारण तथा वर्ग-सघर्ष की प्रेरक परिस्थितियो व प्रवृत्तियो का अवलोकन करते हैं।

"मार्क्स का 'हमेशा' शब्द विप्लव की स्थितियो की ओर सकेत करता है। लेकिन इस प्रकार की स्थितियाँ प्रस्तुत न भी हो तो नवीन समाज की प्रकृति तथा नये मानव से सम्बन्धित ये समस्याएँ उन कुछ लोगो को चिन्तित

---

१ 'सामाजिक मानवशास्त्र'—कुसुम नारायण, पृ० १४१

कर देती हैं जो व्यक्तिगत दायित्व की अनुभूति से वर्तमान के प्रति गहरा असन्तोष प्रकट कर उन्हे परिभाषित करते हैं।"[१] अत भारतीय समाज-व्यवस्था एक पारम्परिक ढांचा है। वर्ण-प्रथा भी भारत की विशेषता है। इसके अनुसार सामाजिक विभाजन अन्य देशों में, विशेषत. पूर्व के देशों में भी पाये जाते हैं। ये विभाजन आनुवंशिक हैं। अतः आनुवंशिकता, जन्म, कर्म, व्यवसाय, वर्ण-व्यवस्था, जाति, प्रजाति, अधिकार लिप्सा, सम्पत्ति, रूढ़िवादिता, नीति, नैतिकता, धर्म आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ भारत में रही हैं जिनके आधार पर मानव का मूल्यांकन सदैव होता रहा है। शोषण की प्रक्रिया में तीव्रता तथा अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता के द्वारा समय-समय पर परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रही हैं, जिनके प्रति मानव ने संघर्ष किया है तथा विकासोन्मुख होकर उन परिस्थितियों म परिवर्तन कर उन्होंने सम्पत्ति म नयी व्यवस्था लाने का सदैव प्रयत्न किया है। ये परिस्थितियाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सास्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक, व्यावसायिक, साम्पत्तिक आदि विभिन्न प्रकार की रही है। "एक अनुसधान के आधार पर भारत में लगभग ३,००० *उपजातियाँ रही हैं। इनमें से प्रत्येक एक स्वतंत्र सम्प्रदाय है। जो न केवल अपने* समूह से जाति के व्यक्ति को विवाह की कठोरता से निषेध करता है, वरन् खानपान में भी।"[२] वर्णों का वर्गीकरण भी तार्किक अधिक है, समाजशास्त्रीय कम। जाति, सम्प्रदायों मे बढती हुई वैमनस्यता के कारण संघर्ष उत्पन्न हुआ। "वर्णों का उदय का कारण भी आर्थिक ही है और वर्ण प्राय· वर्गों की ही सामाजिक सज्ञा है। वर्गों का आरम्भ पेशों अथवा कार्यों के आधार पर हुआ है।"[३]

इस प्रकार संघर्ष के मूल कारण पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "इसके मूल मे उत्पत्ति के साधनों को अपने अधिकार में रखने की मनुष्य-मात्र की प्रवृत्ति होती है। उत्पादन-प्रणाली को वश में रखने का संघर्ष प्रमुख तथा अन्य प्रकार के संघर्ष गौण हैं।"[४] "गतिशील सामाजिक परिस्थितियाँ तथा जीवन की नवीन आवश्यकताओं के अनुरूप जैसे-जैसे राष्ट्र, समाज और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों में अन्तर आता है समाज की अभिव्यक्ति युग के अनुरूप हो जाती है।"[५] संघर्ष दूसरे की इच्छा के विरुद्ध

---

१ 'सामाजिक परिवर्तन'—आनन्द काश्यप, पृ० ६६
२ वही, पृ० १५८
३ 'भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण'—भगवतशरण उपाध्याय, पृ० ६१
४ 'द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद'—हीरालाल पालित, पृ० १४४-४५
५. 'हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग'—डॉ० मधुलता सिंह, पृ० २०

प्रतिकार या बलपूर्वक रोकने के विचारपूर्वक प्रयत्न को कहते हैं। संघर्ष एक सामाजिक प्रक्रिया है। अत व्यक्ति तथा सामाजिक सगठन दोनो के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संघर्ष कठिनाई के रूप में सामने आता है, परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है तथा सहयोग के लिए विवश करता है। मनुष्य अपनी शक्ति का अनुभव कर परिस्थितियो से जूझते हुए सफलता को प्राप्त करते हैं। आजकल समाज मे परिवार, गोत्र, जाति, सगठन आदि का बहुत महत्त्व है। अतः सांघर्षिक प्रवृत्तियों को समूल उन्मूलन करने की चेष्टा की जा रही है। अत "इस समस्त चेतन जीवन के आधार की उत्पत्ति की जड तथा आत्म-चेतना और सामूहिक चेतना दोनो संघर्ष के परिणाम हैं।"[1] धन के आधार पर समाज मे, परिवार मे वर्गगत शोषण होता रहा है। "परिवार मे धन एकत्रित करने की प्रवृत्ति ने दहेज प्रथा' को जन्म दिया। इससे विमुख होने पर नारी ने विवश होकर वेश्यावृत्ति को अपनाना प्रारम्भ किया। सामाजिक मान-सम्मान सभी का आधार प्रारम्भ मे धन ही रहा है तथा धनिक द्वारा गरीब का शोषण होता रहा है। अत समाज मे ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, विरोध, स्तरण, विभिन्नता, विशेषीकरण आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं जिनमे से समाज की प्रमुख मौलिक प्रक्रियाएँ प्रतिस्पर्धा एव संघर्ष ही हैं। अन्य सामाजिक प्रक्रियाएँ इनके अन्तर्गत आ जाती हैं।"[2] समाज की इन प्रवृत्तियों का यथासमय उन्मूलन तथा प्रदर्शन होता रहता है। समाज की सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक परिस्थितियाँ परिवर्तित होती रहती हैं, उन्ही के अनुसार प्रवृत्तियाँ भी।

निष्कर्ष

इस प्रकार वर्ग-संघर्ष का मार्क्सवादी एव समाजशास्त्रीय परिसन्दर्भों मे सैद्धान्तिक विश्लेषण करने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्ग-संघर्ष की अनुप्रेरक प्रवृत्तियाँ और परिस्थितियाँ तत्वत भिन्न होते हुए भी उसकी प्रतिक्रियाएँ और परिणाम सामान्यतः एक-से हैं। मार्क्सवादी विश्लेषण पद्धति के अनुसार वर्ग-संघर्ष की उद्भावना के मौलिक कारण अर्थ-प्रधान हैं और सम्पूर्ण संघर्ष समाज के पूँजीवादी और सर्वहारा वर्गों तक ही परिसीमित है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार वर्गगत संघर्ष आर्थिक वैषम्य के अतिरिक्त स्तर-भेद, कुप्रथाओ, कुरीतियो, रूढिवादिता, अन्ध-विश्वासो, साम्प्रदायिक विद्वेष आदि का प्रतिफलन है। समष्टि रूप मे संघर्ष

---

1 Introduction to Sociology—Reuter and Hart, P 311

२ समाजशास्त्र की रूपरेखा—एम० एस० गोरे, पृ० २९३

की उद्भावना के कारण जो भी रहे हो उसकी परिणतियाँ निश्चय ही विघटनकारी, समाज-विरोधी, मूल्य-विध्वंसक और आर्थिक-सांस्कृतिक दृष्टि से प्रतिगामी रही हैं। हिन्दी के प्रबुद्ध कथाकारो ने वर्ग-सघर्ष की विभीषिका को सवेदनशील अन्तर्दृष्टि से पहचानकर अपनी उपन्यास कृतियो के माध्यम से उजागर किया है। वास्तव में भारतीय जीवन और समाज में परिव्याप्त वर्ग-सघर्ष की विडम्बनाओ के रूपाकन की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास सरचना सर्वथा सार्थक रही है।

अध्याय २

हिन्दी उपन्यास : उद्भव, विकास और प्रवृत्तियां

हिन्दी उपन्यास . उद्भव तथा विकास

हिन्दी उपन्यास को विकसित हुए लगभग सौ वर्ष हो चुके हैं। प्रत्येक युग में उपन्यासो की विभिन्न शैलियो का प्रचलन रहा है। सन् १८८२ से लेकर १९१६ ई० तक हिन्दी उपन्यास की प्रयोगावस्था का युग था। ३५ वर्षों मे उपन्यास विभिन्न प्रकार के प्रयोगों के माध्यम से एक स्थिर भूमिका पर आने का प्रयत्न करता रहा। लगभग सौ वर्षों तक हिन्दी साहित्यकार की चेतना को मनोरजन की प्रवृत्ति ने आच्छन्न कर रखा था। जनजीवन तथा उपन्यास के मध्य बहुत गहरी खाई थी। कालक्रमानुसार उपन्यास-विधा जीवन और समाज के यथार्थ स्वरूप एव मानवीय सवेदनाओ के चित्रण का माध्यम बनी। हिन्दी उपन्यास का विकास तीन सोपानो मे हुआ। प्रथम उत्थान काल सन् १८८२ से १९१६ तक, द्वितीय उत्थान १९१६-१९३६ तथा इस के पश्चात् तृतीय उत्थान-काल कहलाता है। ' हिन्दी उपन्यास प्रारम्भ से आज तक परिवर्तित परिस्थितियो और सघर्षपूर्ण समस्याओ की एक सशक्त अभिव्यक्ति रहा है। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के समानान्तर हिन्दी उपन्यास का विकास हुआ है। दोनो के विकास की स्थिति मे पर्याप्त एकरूपता मिलती है।"[1] "हिन्दी उपन्यास रचना के क्षेत्र मे प्रेमचन्द का व्यक्तित्व एव कृतित्व एक मील स्तम्भ के समान है।"[2] प्रेमचन्द के युग तक रचना का मार्ग प्रशस्त किया जा चुका था, केवल नवीनता तथा वास्तविकता का पुट देना था, जिसे देने म प्रेमचन्द सक्षम रहे तथा उन्होंने आने वाली पीढी को भी नई ज्योति प्रदान की। "प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यासो को एक सर्वथा नवीन दिशा प्रदान की और उस शैशव अवस्था से निकालकर प्रगति और विकास की ओर दिशोन्मुख किया। अत इन्हीके आधार पर काल-

---

१. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग—डा० मंजुलता सिंह, पृ० १६

२ हिन्दी उपन्यास रचना, विधान और युगबोध—भगवती पन्त, पृ० १

विभाजन तर्कसगत माना जाता है।"[1] सक्षेप मे, हिन्दी उपन्यास का काल-विभाजन चार भागो मे किया जाता है (१) पूर्व प्रेमचन्द-काल (२) प्रेमचन्द-काल (३) प्रेमचन्दोत्तर काल (४) समकालीन उपन्यास सरचना-काल।

सृजन की पृष्ठभूमि

"सन् १८५७ की क्रान्ति की विफलता के उपरान्त स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए भारतवासियो का साहस पूर्णरूप से तो समाप्त नही हो गया था परन्तु वे हतोत्साह अवश्य हो गये थे। ब्रिटिश शासन का प्रसार तथा राजाओ तथा नवाबो का पतन होता जा रहा था। मुगलकालीन अराजकतापूर्ण परिस्थितियो मे ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने व्यापारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर क्रमश अपनी दूरदर्शिता, कुशल नीति एव देश के परस्पर वैमनस्य का लाभ उठाकर अपना शासन स्थापित कर लिया। यह भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।"[2] इस काल मे सामाजिक स्थिति भी कुछ विशेष अच्छी नही थी। पारिवारिक प्रथाएँ टूटती जा रही थी। परिवार मे सबसे बडा व्यक्ति धन कमाए और सारे परिवार का पालन पोलण करे यह भावना समाप्त होती जा रही थी। नारियो की स्थिति तो और भी दयनीय थी। आर्थिक परतन्त्रता भीषण रूप धारण कर चुकी थी। ऐसी परिस्थितिया म हिन्दी उपन्यास साहित्य का जन्म हुआ। इन समस्याओ के समाधान और प्रगतिशीलता लाने का उत्तरदायित्व तत्कालीन उपन्यासकारो ने अपने ऊपर लिया। उन्होने ऐसे उपन्यास लिखे जिनमे चरित्र-निर्माण की चर्चा हो, छिन्न भिन्न होने वाली आस्थाओं को आधार प्राप्त हो, "समाज म दृढता आये एव उसकी प्रगति हो और धर्म की रक्षा हो। इतिहास म चौरास्ते पर खडे हुए और सब तरह की नयी-पुरानी और अच्छी बुरी चीजो से घिरे रहने पर भी उन्होने निडर होकर भारतीय जीवन को समृद्ध बनाने का ध्रुव निश्चय किया।'[3] इस ध्रुव निश्चय का ज्वलन्त रूप था सत्यान्वेषण। इस समय विदेशी तथा बगला उपन्यासो का अनुवाद करके लोगो को एक दिशा प्रदान करने का प्रयास किया गया। उपन्यासो की रचना मे कल्पनात्मक एव रोमाचकारी प्रसगो को अधिक से अधिक स्थान दिया गया। पाठको को उपन्यास पढने के लिए कथानक द्वारा जिज्ञासा प्रदान की गयी तथा उनमे व्यग्रता उत्पन्न की गई। 'चन्द्रकान्ता सन्तति' इसी प्रकार का उपन्यास है। हिन्दी उपन्यासो की आरम्भिक दृष्टिकोण सुधारवादी रहा। शिक्षित तथा अशिक्षित नारियो के परस्पर मनोमालिन्य और सघर्ष के चित्र भी

---

१. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ—डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० १८
२ हिन्दी उपन्यासो मे नायिका की परिकल्पना—डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० १८
३. उन्नीसवी शताब्दी—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० १८२

उपन्यासो मे खीचे गये। चूकि यह उपन्यास का प्रारम्भिक युग था, और उपन्यासो के भविष्य की उज्ज्वल पीठिका तैयार हो रही थी इसलिए समस्या-समाधान के प्रयत्न अधिक महत्त्वपूर्ण न हो सके।

प्रेमचन्द के युग तक आते-आते ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता पूर्णत स्थापित हो चुकी थी। स्वाधीनता-प्राप्ति का आन्दोलन भी धीरे-धीरे जड पकड रहा था। "गाधीजी का अभ्युदय इस युग मे राजनीति के क्षेत्र म हुआ। आगे चलकर गाधीजी ने अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व, प्रगतिशील विचारधारा एव उत्कृष्ट कोटि के जीवन-दर्शन के साथ अपनी अहिसात्मक नीति से एक ऐसा वातावरण निर्मित कर दिया, जिससे एक समूचा युग ही गाधी-युग के नाम से प्रख्यात हुआ।"[1] गाधी के नेतृत्व मे राजनीतिक चेतना केवल नगरो तक ही सीमित न होकर गावो तक विस्तृत हो गई थी। इस काल का स्वाधीनता-सघर्ष रूसी राज्यक्रान्ति से भी प्रभावित रहा। इस काल मे भारतीय जीवन अत्यन्त दयनीय था। इस युग की प्रमुख समस्याए जिनका प्रेमचन्द के तथा अन्य उपन्यासो मे चित्रण हुआ है, इस प्रकार थी (१) प्रमुख समस्या स्वाधीनता-प्राप्ति की थी, (२) आर्थिक उन्नति दूसरी समस्या थी क्योकि पूजीवाद अपनी जड़ें मजबूत करता जा रहा था, (३) आर्थिक व्यवस्था क्षीण होने पर सम्मिलित कुटुम्ब व्यवस्था विछिन्न होती जा रही थी, (४) धर्म पाखण्डो तथा पौराणिक आडम्बरो से घिरा हुआ था, (५) नारी की प्रगति हेतु उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करने का प्रयत्न किया जा रहा था, (६) नैतिक उत्थान को भी महत्त्व दिया जा रहा था। इन समस्याओ तथा सघर्षों को उचित स्थान देने का प्रयास सर्वश्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सियारामशरण गुप्त, वृन्दावनलाल वर्मा आदि उपन्यासकारो ने किया। पिछले युग की भाति प्रेमचन्द एव अन्य युगीन उपन्यासकारो ने समस्याओ की अवहेलना न कर, उन्हे हृदयगम किया तथा चेतना की कसौटी पर कसकर मजी हुई तार्किक शैली द्वारा समाधान ढूढने का प्रयास किया।

प्रेमचन्दोत्तर काल मे द्वितीय महायुद्ध का सूत्रपात हो गया था। इग्लैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की तथा रूस ने अग्रेजो को सहायता देन का निश्चय किया। ८ अगस्त, १९४२ को बम्बई काग्रेस ने "भारत छोडो" प्रस्ताव पास किया। देशव्यापी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी कार्यक्रम बडी तीव्रता से होने लगे। १५ अगस्त, १९४७ को भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की। पाकिस्तान का निर्माण भी रक्तपात तथा नृशस हत्याओ के बीच हुआ। "प्रेमचन्द-युग मे परम्परित जीवन पद्धति, प्रतिष्ठित आदर्शो एव सामाजिक मर्यादाओ के प्रति

१. हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रवृत्तियाँ—डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० २३

विद्रोह का स्वर बडा प्रच्छन्न और दबा-दबा था ।"[1] प्रेमचन्द-परवर्ती उपन्यासो मे समष्टि मानस की अपेक्षा व्यक्ति-मानस पर अधिक आग्रह था ।[2] इस युग के उपन्यासकारो ने विषयगत तथा विषयवस्तु की दृष्टि से प्रेमचन्द का अनुगमन किया किन्तु शैली मे युगानुकूल परिवर्तन करते गये । "प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासो का नवीनतम विकास इनम मनोविज्ञान के समावेश के कारण हुआ, जिससे उपन्यासो के कला सौन्दर्य मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई ।"[3] "उत्तर प्रेमचन्द-काल मे कई प्रमुख उपन्यासकार हुए, जैसे अज्ञेय, यशपाल, वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल साकृत्यायन, इलाचन्द्र जोशी जैनेन्द्र कुमार, भगवतीचरण वर्मा, प्रताप नारायण श्रीवास्तव इत्यादि । इन लेखको ने मनोविश्लेषणात्मक कृतिया प्रस्तुत की परन्तु ये लेखक इन प्रवृत्तियो के सीमाबद्ध नही रहे वरन् इन्होंने प्रवृत्ति-विशेष का अनुगमन करते हुए भी उपन्यास-साहित्य को सम्यक् रूप प्रदान किया ।"[4] प्रेमचन्दोत्तर काल मे सन् १९४० से १९५६ तक "हिन्दी मे उपन्यासो की जो बाढ-सी आयी, वह विषय और अभिव्यजन मे नयी नयी धाराए लायी । पुराने लेखको ने प्रौढ़ता प्राप्त की तथा कई लेखक अपनी प्रतिभा लिए सामने आये ।" नवीन धारा शान्तिवादी उपन्यासा की है । समस्या-प्रधान उपन्यासो मे नारी ही सबसे बडा तथा प्रमुख विषय रही है । प्रेमचन्द के उपन्यासो की सबसे प्रधान एव मौलिक प्रवृति मनोविज्ञान है । ऐतिहासिक दृष्टि से भी प्रेमचन्दोत्तर काल मे गहन अध्ययन से लिखित प्रौढ उपन्यास प्रकाशित हुए । जिनमे प्रागैतिहासिक काल से लेकर बीसवी शदी तक के विविध ऐतिहासिक सम्भावनाओ को विषय बनाया गया । इस काल मे विविध धाराओ मे कुछ उच्च श्रेणी के लेखको ने विषय तथा शैली की दृष्टि से नवीन प्रयोग किये । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा', रागेय राघव का 'अघेरे की भूख', धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवां घोडा' ऐसी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं जिनमे नवीन तथा प्राचीन शैलियो का समन्वय है । प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासी मे यथार्थवादी व्याख्या प्रधान रूप से मिलती है । प्रेमचदोत्तर युग म वैज्ञानिक विचारधारा के विकास ने लेखको को नयी दृष्टि दी । बौद्धिकता का आग्रह बढ उठा । कृत्रिम वर्णनो मे पनपने वाला जीवन कुण्ठाग्रस्त होता है अत प्रेमचन्दोत्तर युग मे पुरानी रूढिवादिता तथा मान्यताओ के प्रति मर्यादित विद्रोह भी उभरा । 'हिन्दी उपन्यासो मे चित्रित नई पीढी के पुरुष वर्ग को तीन परिवेशो मे देखा गया

---

१ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ १०६
२ हिन्दी उपन्यासों म मध्यवर्ग—डॉ० मञ्जुलता सिंह, पृ० १७९
३ आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास—डॉ० बेचन, पृ० ११९
४ प्रेमचन्द—डॉ० प्रताप नारायण टण्डन, पृ० १३१

है।"[1] प्रथम वह जो जिन्दगी के परम्परागत सकीर्ण दायरे में सीमित होकर यन्त्रवत् आचरण करते हैं तथा धर्म को ही नीति का आधार मानकर घोर भौतिकवादी हैं। ह्रासात्मक मूल्यो के प्रति उनका आकर्षण है। ऐसे लोगो को मैक्सिम गोर्की ने 'फिलिस्टीन' की सज्ञा दी है तथा फिलिस्टीनी पीढी कहा है। दूसरा वर्ग है जो नये तथा पुराने मूल्यो के मध्य मे पेंडुलम की भाति झूल रहा है। ऊहा-पोह की स्थिति मे, तीसरा विगत का विरोधी एव अधुनातन का समर्थन कर प्रगतिशील मूल्यो को आत्मसात कर चलने वाला वर्ग है। नई पीढी मे परम्परागत ह्रासात्मक मूल्यो के प्रति विद्रोह प्रकट होता है तथा सर्वत्र नवीनता का समर्थन मिलता है। "समकालीन युग मे जो उपन्यास लिखे गये उनमे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित गहन चिन्तन प्रस्तुत हुआ।"[2] आज अनेक मजिलो को तय करके उपन्यास साहित्य जिस दोराहे पर आकर खडा हुआ है उस पर किसी को भी सतोष हो सकता है। दोराहा इसलिए कि एक रास्ता है प्रगतिशीलता का तथा दूसरा रास्ता है पलायनवादी, जिस पर चलने वाले उपन्यासकार जीवन के प्रति विभ्रान्त हैं और दिशाहारा की भाति भटकते हुए जीवन के प्रति निराश हो चुके हैं अत अपमान एव कटुता की स्थिति को छिपाने के लिए ये दिग्भ्रान्त उपन्यासकार दार्शनिकता, आध्यात्मिकता या वैयक्तिक स्तर पर प्रकट की गई चिन्तनाभिव्यक्ति की चादर ओढकर नई पीढी के सामने अपने आप को विजयी घोषित करने का प्रयत्न करते हैं।"[3] "समकालीन पीढी के उपन्यासकारो मे यौन नैतिकता के प्रति दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक उदार और सन्तुलित हो गया है। यौन आवश्यकताओ को जीवन की अन्य आवश्यकताओ की भाति सहज और सगत स्वीकार कर लिया गया है। यौन दुर्बलताओ से युक्त पात्रो के प्रति लेखक ने पाठक की सहानुभूति जगाई है"[4] तथा मनोग्रन्थि का स्पष्ट विवेचन किया। "अत स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्दपूर्व उपन्यासो मे सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओ का अकन तथा सुधारवादी दृष्टिकोण रहा, प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासो मे उपन्यासकारो का दृष्टिकोण समझौतावादी रहा तथा प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासो म समष्टि मानस की अपेक्षा व्यष्टि मानस पर अधिक आग्रह है।"[5] अब तक विकसित हिन्दी उपन्यास साहित्य को चार युग मे बाटकर अध्ययन किया जा सकता है।

१ हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अध्ययन—डॉ० गणेशन, पृ० ८४
२ प्रेमचन्द—डॉ० प्रताप नारायण टण्डन, पृ० १३२
३ हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रवृत्तियाँ—डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० ३ (भूमिका से)
४. हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० ११०
५ हिन्दी उपन्यासो में मध्यवर्ग—डॉ० मजुलता सिंह, पृ० १७६

प्रेमचन्द-पूर्ववर्ती युग

वैज्ञानिक युग मे जबकि जीवन की जटिलता बरगद की जटाओ की तरह बढ गई थी, उपन्यास ही महाकाव्य का स्थान लेकर साहित्य के सिंहासन पर सुशोभित हो गया। आरम्भ मे जब उपन्यास लिखे गए तब हमारे देश मे राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल हो रही थी। "सन् १८५१ के बाद अग्रेजों की नीति मे जो परिवर्तन हुआ उसके फलस्वरूप हमारे समाज मे दो प्रकार की विचारधाराएँ घर कर गई। एक के अनुसार अग्रेजो की सस्कृति भारतीय सस्कृति से उच्च थी और उसका अनुकरण श्रेयस्कर था तो दूसरो की दृष्टि से समाज मे अनैतिक और आर्थिक पतन के मूल कारण ही अग्रेजो की भाषा और रीति-नीति थी। अग्रेजो के गुप्त शोषण ने भारतीयो को चिरकालीन मोहनिद्रा से जगाया ही अधिक था। अग्रेजी सभ्यता और सस्कृति का जो तीव्र प्रभाव भारतीय सस्कृति तथा सभ्यता पर पडा तो अपनी रक्षा के लिए भारतीय कटिबद्ध हो गए। समाज की रक्षा ही राष्ट्र की रक्षा है। अत भारत मे चारो ओर समाज-सुधार के आन्दोलन चल पडे।"[1] प्रेमचन्द पूर्ववर्ती काल मे हिन्दी उपन्यास का उद्भव तथा विकास श्रद्धाराम फुल्लौरी, गोपाल गहमरी, श्रीनिवास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री तथा लज्जाराम मेहता, अयोध्यासिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय आदि की कृतियो द्वारा हुआ है। "प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी उपन्यास प्रधान रूप मे अद्भुत, अलौकिक घटना-व्यापारो मे विस्मय-विमुग्ध-सा उलझा रहा है।"[2] उपन्यासो के विषय मे इस काल की धारणा यह रही कि "उसने हमे मनमाने ढग से तिलस्मो की सैर कराई, ऐयारी के आश्चर्यजनक करिश्मे दिखाये और जासूसी के कारनामों से चमत्कृत करता रहा। यह सब होते हुए भी उसमे जगत् और जीवन के परिचय की तीव्र आकाक्षा थी और उसने तत्कालीन समाज की गतिविधि के अनुसरण का प्रयास भी किया।"[3] प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी उपन्यासों का प्रमुख लक्ष्य जनता का मनोरजन करना तथा जनता को उपदेश देना मात्र रहता था। इस काल के उपन्यासकार समसामयिक समस्याओ से भी अवगत थे और उन्होंने चित्रण भी अपने युग का किया। इस काल मे सामाजिक, तिलस्मी और अय्यारी, जासूसी, आदर्शमूलक, भावात्मक तथा अनूदित उपन्यासो की विशेष चर्चा रही। इन सभी उपन्यासो मे हमारा उपन्यास-साहित्य सामाजिक और नैतिक ध्येय को लेकर चला। 'प्रेमचन्द के हिन्दी क्षेत्र मे पदार्पण करने से पूर्व हिन्दी उपन्यासो

---

१ उपन्यासकार प्रेमचन्द—डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त, पृ० २२ (डॉ० पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश' के लेख से उद्धृत)

२ हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग—डॉ० मधुलता सिंह, पृ० ५५

३ हिन्दी उपन्यास—शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० ५३-५४

का मूल उद्देश्य या तो जनता का मनोविनोद या अथवा जनता का सुधार ।"[1] आर्यसमाज ने समाज मे व्याप्त कुरीतियो और रूढ़ियो के उन्मूलन का बीडा उठाया । दबा-दबा राजनीतिक असतोष भी व्यक्त किया गया । "हिन्दी के पहले उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (सन् १८८२) मे पाश्चात्य प्रभाव के विरुद्ध भावना उभरी थी ।"[2] "स्त्रियो मे जागृति लाना 'भाग्यवती' उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य था ।"[3] बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' उपन्यास 'परीक्षा गुरु' की पद्धति पर लिखा गया, जिसमे नायक विनायक के चरित्रबल से डाकुओ की प्रवृत्ति के सुधर जाने की कथा वर्णित की गई है । किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक दृष्टिकोण के उपन्यास लिखे । "जो सामाजिक दृष्टिकोण हिन्दी उपन्यास-साहित्य को किशोरीलाल गोस्वामी जी ने प्रदान किया वह बहुत पिछडा हुआ था, परन्तु यहाँ इतना अवश्य मानना पडता है कि गोस्वामी जी इस साहित्य को मानव जीवन के निकट लाने मे सफल हुए ।"[4] 'प्रणयिनी परिणय' तथा 'तरुण तपस्विनी' उपन्यासो मे प्रेम तथा विवाह की समस्या की चर्चा की है । 'माधवी माधव वा मदन-मोहनी' मे प्रेम, विवाह, विधवा, स्त्री-शिक्षा, धार्मिक अन्धविश्वास आदि समस्याओ का उल्लेख किया गया है । 'कुसुम कुमारी' मे मानवीय प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप वर्णित है । 'किशोरीलाल गोस्वामी ने भावी पीढी के उपन्यासकारो के लिए मार्ग दिखाया है ।'[5] देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास उच्च वर्ग के लिए लिखे गए हैं । 'काजर की कोठरी' मे जमीदार तथा वेश्या के जीवन पर प्रकाश डालकर समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है । गोपाल गहमरी ने भी 'डबल बीबी', 'दो बहिनें', 'सास-पतोहू' आदि सामाजिक उपन्यास लिखे । मेहता लज्जाराम शर्मा ने 'स्वतन्त्र रमा परतन्त्र लक्ष्मी' सामाजिक उपन्यास लिखा तथा उसमे नारी-स्वातन्त्र्य को हानिकारक बताया है । 'हिन्दू गृहस्थ', 'सुशीला विधवा' आदि मे विधवा समस्या का चित्रण किया गया है । 'बिगडे का सुधार' पारिवारिक उपन्यास भी लिखा जो शिक्षाप्रद है । उपाध्याय जी ने 'अध खिला फूल' तथा 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' मे प्रेम समस्या तथा स्त्री-समस्या का उल्लेख किया है । ब्रजनन्दन सहाय ने 'राधाकान्त' तथा 'आरण्य बाला' मे प्रथम बार प्रगतिशील तत्त्वो का उपन्यासो मे समावेश कर सामाजिक यथार्थवादी भावना का साहस-

---

१ हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद—त्रिभुवन सिंह, पृ० ३

२ प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास साहित्य (लेख—डॉ० पद्मसिंह शर्मा कमलेश', पृ० २३, 'उपन्यासकार प्रेमचन्द' से उद्धृत)

३ हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग—डॉ० मंजुलता सिंह, पृ० ५६

४ हिंदी के उपन्यासकार—यशदत्त शर्मा, पृ० २५

५ किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो का वस्तुगत तथा रूपगत विवेचना—डॉ० कृष्णा नाग, पृ० ४१६

पूर्ण चित्रण किया है। समाज-सुधार की भावना तथा जनरुचि को संतुष्ट करने के लिए (१८६१-१९१३) तिलस्मी तथा ऐयारी उपन्यास में 'चन्द्रकान्ता संतति' २४ भाग, 'भूतनाथ' १८ भाग, 'नरेन्द्र मोहिनी' ४ भाग देवकीनन्दन खत्री ने लिखे। जासूसी उपन्यास को साहित्य में लाने का श्रेय गोपाल गहमरी को है। मौलिक उपन्यासों के साथ-साथ अनूदित उपन्यास भी इस काल में हिन्दी के क्षेत्र में आये। अनुवादों में बंगला का हिन्दी पर विशेष ऋण है। बंगाली लेखकों में बंकिम, रवीन्द्र, शरत आदि में राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना बड़े ऊँचे दर्जे की थी, उनके उपन्यासों में यथार्थ जीवन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की गूंज थी। "प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासों में कथानक अनियन्त्रित होते थे, प्रासंगिक घटनाओं के लम्बे-चौड़े ब्यौरे दिये जाते थे, चरित्रों के विकास या उत्थान-पतन की चिंता नहीं की जाती थी, ऐसी अनिश्चितता की अवस्था में प्रेमचन्द ने मार्ग प्रशस्त किया। एक कुशल कलाकार की भाँति उन्होंने समस्त झाड़-झखाड़ों को काट-छाँटकर उपन्यास के लिए सुन्दर राजमार्ग तैयार कर दिया।"[1]

प्रेमचन्द युग

"प्रेमचन्द जी ने टूटी-फूटी झोपड़ियों में पुआलों पर पड़ी तड़पती हुई भारतीय आत्माएं देखी, फटे चिथड़ों में सरल तथा स्वाभाविक यौवन के सौष्ठव का अनुभव किया और दरिद्रता की चक्की में पिसने वाले दीन जनों में भी महलों-सी प्रेम की पीर पाई।'[2] "उनके उपन्यासों में एक छत के नीचे कुटुम्ब के सभी प्राणियों का रहना असम्भव है। इसके अतिरिक्त माँ, सास, बहू देवरानी जेठानी आदि भी उपन्यासों के केन्द्र हैं।"[3] उपन्यास-साहित्य न तो पूर्णत यथार्थवादी हो सकता है न एक मात्र आदर्शवादी, यह दोनों का संयोगमात्र है। 'प्रेमचन्द का आरम्भ हिन्दी उपन्यास में नये युग का आरम्भ कहलाता है।"[4] प्रेमचन्द-युग में 'धर्म' का अंकुश घट गया था तथा उपन्यासों में 'अर्थ' का अंकुश प्रधान हो गया था। "धर्म, दान, शील, सत्यनिष्ठा संयुक्त परिवार की निःस्वार्थ एकता आदि के स्थान पर महाजनी सभ्यता का पंजा मजबूत होता जा रहा था जिसमें प्रेम, न्याय, भ्रातृप्रेम, पारिवारिक स्नेह आदि सब कुछ धर्म की तुला पर तुलने लगा था। धोखाधड़ी, झूठ, खुशामद और वाह्याडम्बर ही सांसारिक उन्नति के साधन बन गये थे। पारिवारिक जीवन, शिक्षालय, अदालत, कचहरी और दफ्तर-

१ उपन्यासकार प्रेमचन्द—डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त, पृ० ३२
२ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—डॉ० त्रिभुवन सिंह पृ० ६६
३ 'आलोचना', उपन्यास अंक, पृ० ८५
४ हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ३३

कोई भी महाजनी सभ्यता के सक्रमण से अछूते नही बचे।"[1] "प्रेमचन्द की दृष्टि समाजापेक्षी आरम्भ से ही रही है। यदि उन्होंने व्यक्ति को देखा है, तो समाज मे व्यक्त उसके किसी प्रसग माध्यम से ही, फिर वह प्रसग भी जो कि इन सस्कारो के, उसकी नैतिकता के या सहज मानवीयता के विपरीत हो। प्रेमचन्द ने उपदेशात्मकता का नहीं, व्यग्यात्मकता का आश्रय लिया है।"[2] प्रेमचन्द जी ने भारतीय जीवन की वास्तविकता को निकट से देखा। दीन, दुखी, दुर्बल, प्राचीन रूढ़ियो एव परम्पराओ से जर्जरित तथा नवयुग के जनजागरण से अपरिचित समाज ही भारत का वास्तविक समाज था। "वस्तुचयन की दृष्टि से प्रेमचन्द युग की समस्या थी—अनमेल विवाह, बहुविवाह, बाल-विवाह, दहेज प्रथा, आभूषणप्रियता, घूसखोरी, किसानो पर पुलिस, सरकार तथा जमीदारो के अत्याचार आदि। ये समस्याएँ स्थूल थी, व्यक्तिगत नही, समष्टिगत थी।"[3] प्रेमचन्द की मानवतावादी दृष्टि का विश्लेषण करते हुए डॉ० महेन्द्र भटनागर ने लिखा है, "प्रेमचन्द ने औद्योगिक नैतिकता का वर्णन करके उद्योगपतियो की मनोवृत्ति के विरुद्ध जनमत तैयार किया है।···इन्होने मूक जनता का पक्ष लिया है जो दलित है, शोषित है तथा निरुपाय है।"[4] "वस्तुतः प्रेमचन्द-युग मे प्रेमचन्द के साथ-साथ उपन्यास-साहित्य मे जो समाज-सापेक्षता आयी यह उनकी सबसे बड़ी देन है। घटना-वैचित्र्य से समाज मे सापेक्षता की ओर यह प्रयाण बहुत बड़ा कदम है। सामाजिक सापेक्ष जीवन मे सघर्ष सत्य है, उसका अपना महत्त्व है परन्तु सद्भाव की प्रतिष्ठा भी वहा अनिवार्य है। जीवन का उद्देश्य प्रेमचन्द ने आनन्द स्वीकार किया है।"[5] "इस युग मे आते-आते जहा ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी थी उसके साथ ही स्वाधीनता-प्राप्ति का आन्दोलन भी धीरे-धीरे जड पकड रहा था। राजनीति के क्षेत्र मे गाधीजी का अभ्युदय इस युग की एक महत्वपूर्ण घटना थी।"[6] अत. इन परिस्थितियों के अनुकूल ही प्रेमचन्द के उपन्यासो मे यथार्थ चेतना उभरी। "प्रेमचन्द ने यथार्थ को पहचाना तथा मुख्यत उसे अभिव्यक्त कर देना अपने उपन्यास का लक्ष्य समझा। यथार्थ व्यक्ति का भी होता है तथा समाज का भी। अर्थात् पूरा का पूरा समाज एक विशेष ऐतिहासिक परिधि मे एक विशेष प्रकार की बनावट मे जीता है, उसकी कुछ सामान्य विशेषताएँ होती हैं, कुछ सामान्य प्रश्न होते हैं। सामान्य सघर्ष

१ हिन्दी उपन्यास के अस्सी वर्ष—श्री शिवदानसिंह चौहान, पृ० १४१
२ प्रेमचन्द · एक अध्ययन—राजेश्वर गुरु, पृ० ११९
३ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—डॉ० त्रिभुवन सिंह, पृ० ६
४. समतामूलक प्रेमचन्द—डॉ० महेन्द्र भटनागर, पृ० १
५. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० ३१
६. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ—डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० ७३

होते हैं, सामान्य जीवनमूल्य होते हैं, सामान्य सास्कृतिक धरातल होता है, सामान्य विश्वास, मान्यताएँ तथा हीनताएँ होती हैं। व्यक्ति इन स्तरों के आधार पर बहुत कुछ बनता बिगड़ता है। यथार्थ चेतनाओ को अलग-अलग ढग से आधुनिक काल के दो मनीषियो "मार्क्स और फ्रायड ने आत्यतिक मुखरता प्रदान की।"[1] "प्रेमचन्द यदि महान हैं तो इसलिए कि उन्होंने किसानो के मानसिक गठन और मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को उस समय गम्भीर विश्वास और उत्साह के साथ वाणी दी, जिस समय देश के सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे।"[2] महाजनी सभ्यता का विश्लेषण जो प्रेमचन्द ने किया है, वह साम्यवादी लगता है, लेकिन प्रेमचन्द की पकड बौद्धिक नही भावात्मक है। *मराठी के साहित्यकार टी० टिकेकर* से एक मुलाकात में प्रेमचन्द ने कहा था, "मैं कम्युनिस्ट हू किन्तु मेरा कम्युनिज्म केवल यही है कि हमारे देश म जमीदार, सेठ आदि जो कृषको के पोषक हैं, न रहे।'[3] इस प्रकार प्रेमचन्द युग मे उनके उपन्यास उनके युग की वाणी हैं। "प्रेमचन्द एक यथार्थवादी कलाकार थे। वह जीवन की सच्चाई आकना चाहते थे, जीवन के भ्रमों का खण्डन करना चाहते थे। प्रेमचन्द का साहित्य बीसवी सदी के हिन्दुस्तान का सच्चा साहित्य है।"[4] प्रेमचन्दयुगीन प्रमुख उपन्यासकारो मे जयशकर प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, विशम्भरनाथ कौशिक, *सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला*, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, प्रताप नारायण श्रीवास्तव के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग

समाज की जिन नवीन समस्याओ की ओर प्रेमचन्द पूर्ववर्ती तथा प्रेमचन्द युगीन उपन्यासो मे सकेत है, इस युग मे वे समस्याएँ विस्तार पाती गयी। इस युग मे मनोविश्लेषण तथा यथार्थवाद की प्रवृत्तिया प्रधान रूप म मिलती हैं। इस युग मे *अस्वस्थ मनोवृत्ति के अन्तर्गत लेखको ने मध्यवर्ग के व्यक्तियो की* वैयक्तिक अनास्था तथा कुठा का वर्णन किया है। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित लेखकों ने मध्यवर्ग की आर्थिक विषमताओ के चित्रो को उभारते हुए मध्यवर्ग की नई जागरूक चेतना का स्वरूप प्रस्तुत किया है। इस युग मे आर्थिक, सामाजिक, वैयक्तिक, सास्कृतिक सभी समस्याएँ विस्तार से मिलती है। इस युग के प्रमुख उपन्यासकारो मे जैनेन्द्र कुमार, भगवतीचरण

---

१ हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—डॉ० रामदरश मिश्र, पृ०३४
२ हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग—डॉ० मजुलता सिंह, पृ० ८३
३ आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास—डॉ० बेचन, पृ० ७५
४. प्रेमचन्द और उनका युग—रामविलास शर्मा, पृ० १५९

वर्मा, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, रांगेय राघव, देवराज, अमृतराय तथा धर्मवीर भारती उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द-परवर्ती युग मे नारी और पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध को सामाजिक तथा नैतिक दायरे तक सीमित न रखकर उसे मानव विकास की सहज प्रवृत्ति के रूप मे ग्रहण किया गया है। प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासो मे विवाह, सतीत्व, नैतिक सदाचार तथा एकनिष्ठ प्रेम का विशेष स्थान है किन्तु परवर्ती युग मे फ्रायड के सेक्स-दर्शन के आगे ये मान्यताए फीकी पड जाती हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द-परवर्ती युग मे यौन नैतिकता विषयक दृष्टि-कोण अपने नवीन रूप मे देखने को मिलता है। इस युग मे शरीर की भूख को मानव की स्वाभाविक वृत्ति माना है। यशपाल ने सेक्स और रोटी की आड़ मे रोमान्स और प्रणय के उद्दाम रूप को अपने उपन्यासो मे वर्ण्य विषय बनाया है। "यशपाल के पात्र जनजीवन के प्रतिनिधि नही है, वे उस वर्ग के लोग है जिनके लिए सेक्स और आत्मपीडा की समस्याए प्रधान हैं।"[1] "प्रेमचन्द के युग का आध्यात्मिक स्वप्न-विभ्रम तो धीरे-धीरे टूटता ही चला गया और स्वतन्त्रता के बाद तो एकदम ही टूट गया तथा लेखक ठोस यथार्थवाद पर उतर आया, आध्यात्मिक प्रभाव विकासवाद की चेतना मे डूब गया। प्रेमचन्दोत्तर सामाजिक उपन्यासो मे एक बात और भी है कि इन उपन्यासो मे प्रेमचन्द की अपेक्षा मनोविज्ञान का अधिक गहरा स्तर उभरता दीखता है क्योकि जाने-अन-जाने यह मनोविज्ञान के अन्तर-चेतनावाद से प्रभावित है। इसलिए इसमे मनो-विज्ञान के सत्य के नये आलोक मे लक्षित होने वाले पात्रो की टूटन, यौन कुंठा, तज्जन्य स्वप्न, चेतना-प्रवाह, प्रकृतवाद तथा प्रतीकात्मकता आदि का भी प्रभाव कमवेश रूप मे उपलब्ध होता है। प्रेमचन्दोत्तर सामाजिक उपन्यास तथा सामाजवादी उपन्यास सामाजिक चेतना की दृष्टि से प्रेमचन्द की ही परम्परा मे आते हैं, किन्तु कुछ बातें ऐसी है जो इन्हे अलग भी करती हैं।"[2] कुछ आलो-चको का कहना है कि प्रेमचन्दोत्तर युग प्रेमचन्द की परम्परा का विकसित स्वरूप ही है। "इसमे सन्देह नही कि इस नये धरातल के समक्ष कोई विशेष महत्त्वपूर्ण आन्दोलन नही था वरन् यह स्वत. प्रेमचन्द-परम्परा से विकसित होकर प्रतिष्ठित हुआ है।"[3] "इस युग मे नारी-सुधार आन्दोलन को विशेष प्रशंसनीय प्रगति मिली। जमीदारी प्रथा का अन्त हो गया, छुआछूत की प्रथा को कानून के माध्यम से रोका गया। धार्मिक क्षेत्र मे उदारता आई, प्रेम-विवाह तथा

---

१. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ—रामविलास शर्मा, पृ० ११६
२. हिन्दी उपन्यास . एक अन्तर्यात्रा—डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ६४-६५
३. लक्ष्मीकान्त वर्मा का लेख—'आलोचना', उपन्यास अंक, पृ० ६३

अन्तर्जातीय विवाह पहले से अधिक होने लगे। स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में सह-शिक्षा का जोरों से प्रचार हुआ।"[1] इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग में विषयवस्तु और शैली शिल्प दोनों में ही अपूर्व विविधता आई तथा विस्तार का समावेश हुआ। पारम्परिक विषयों और शैली दोनों के प्रति लेखकों ने विद्रोह किया। अतः उपन्यास के वस्तुतत्त्व और शिल्प दोनों की दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर युग की महत्ता अपरिमेय है। इस युग में उपन्यास ने नई भूमिका का अन्वेषण किया, नए प्रयोग किये, मानव सत्यों को पकड़ने के लिए नई दिशाओं में कदम उठाया। प्रेमचन्द-युग के मूल्यप्रतिमान सदा स्थिर थे क्योंकि नैतिक पूर्वाग्रह प्रेमचन्द की दृष्टि में लिए मानो अभेद्य प्राचीर थे जिनके पार वह चाहकर भी नहीं देख पाते थे। उनकी सारी क्रान्ति-चेष्टाएं इसी प्राचीर से टकराकर बिलबिलाती रहीं। प्रेमचन्दोत्तर युग में इस अस्थिरता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, फिर भी नये मूल्यों के प्रति आग्रह बढ़ गया। परम्परावादिता की अपेक्षा परम्परा विमुखता की प्रवृत्ति अधिक प्रबल हो गई। किन्तु किसी नये मूल्य-विधान की प्रतिष्ठा निश्चय ही नहीं हो सकी। हां, व्यष्टि एवं समष्टि हितों की एक स्वस्थ सामन्जस्य की भावना अवश्य परिलक्षित होती है। शिल्प के स्थान पर 'चेतना प्रवाह पद्धति' ने उपन्यासकला को नया निखार दिया।

समकालीन युग

"इस युग के वैज्ञानिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिवाद का विकास हुआ। व्यक्तिवादियों ने व्यक्ति को लक्ष्य और समाज को निमित्त बनाने वाली विचारधारा को अपनाया। स्वाधीन भारत के हिन्दी उपन्यासों में व्यक्ति साधन तथा समाज साध्य के स्थान पर नवीन जीवन दृष्टि के परिपार्श्व में विकसित 'व्यक्ति साध्य तथा समाज साधन' की विचारधारा के रूप में उत्तरोत्तर निरूपण हुआ है। नवचेतना विकासजनित स्वातन्त्र्य-भावना से स्त्री-पुरुष में पारस्परिक स्पर्धा का स्फुटन हुआ है।"[2] भारतीय उपन्यासकार ने स्वतन्त्रता संघर्ष की पृष्ठभूमि पर तो उपन्यास लिखे ही हैं किन्तु स्वतन्त्रताजन्य परिस्थितियों में जिस समृद्ध जीवन की कल्पना साहित्यकार करता था उसकी अनुपलब्धि के कारण चित्रण उसने नहीं किया। इस प्रकार आज सामाजिक जीवन में उसे जो दिखाई पड़ता है 'वह है व्यापक भ्रष्टाचार, चतुर्दिक् नैतिक पतन, राष्ट्रजीवन का सम्पूर्ण विघटन आदि।"[3] 'प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी उपन्यास पर किसी एक

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास—लक्ष्मीकांत सिन्हा, पृ० ३२५
2. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में मूल्य संक्रमण—डॉ० हेमेन्द्र पानेरी, पृ० १४६-१४७
3. हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० १८०

लेखक का व्यापक प्रभाव न होने के कारण और विभिन्न व्यक्तिगत सफल प्रयोग होने के कारण सन् १६३६ से १६५० के युग को 'प्रेमचन्दोत्तर युग' या प्रयोग-काल की सज्ञा दी गई है।"[1] शेष १६५० से आज तक का युग समकालीन युग के नाम से पुकारा जाता है। यह काल उपन्यासो की सख्या, विषय एव शिल्प की दृष्टि से पुष्कल विकास का युग रहा। आकार-सौष्ठव तथा अनुभूति की गहराई प्राप्त करने के ध्येय से अनेक प्रयोग इस काल मे किये गए। अज्ञेय, जैनेन्द्र और जोशी द्वारा प्रतिष्ठित वैयक्तिक उपन्यास तथा नागार्जुन, रेणु, यज्ञ-दत्त द्वारा पनर्जीवित सामाजिक उपन्यास दो प्रकार की सशक्त धाराए प्रवाहित करने मे समर्थ हुए हैं। इन साहित्यिक भूमिकाओ तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् विकसित सामाजिक मनोवृत्तियो के परिवेश मे उपन्यास को पर्याप्त सामाजिक व्यापकता और मनोवैज्ञानिक गहनता अर्जित करने का अवसर प्राप्त हुआ। स्वाधीनता के पश्चात् अनेक नई समस्याए सामने आई। "विश्व के दूसरे राष्ट्रो की भाति यहाँ केवल दासता का ही अन्त नही था और न एक शासन-व्यवस्था के स्थान पर नई शासन सत्ता की स्थापना की ही बात थी। भारत की स्थिति नितान्त भिन्न थी। इस काल मे सभी लेखको म सामाजिक यथार्थ को पहचानने का आग्रह, पलायनवादी प्रवृत्तियो को नकारने का प्रयास और परिवर्तन की आकुलता स्पष्टतया परिलक्षित होती है।"[2] आधुनिक भावबोध को समझकर आगे आने वाले लेखको मे राजेन्द्र यादव (सारा आकाश, उखडे हुए लोग, कुलटा, अनदेखे अनजान पुल तथा एक इच मुस्कान मन्नू भडारी के साथ), नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, नरेश मेहता आदि लेखक प्रमुख हैं। राजेन्द्र यादव प्रगतिशील लेखक हैं। १६६० ई० के पश्चात् हिन्दी उपन्यासा के क्षेत्र मे एक-दम नये लेखको मे कमलेश्वर, मोहन राकेश, सुरेश सिन्हा, निर्मल वर्मा तथा शिवानी के नाम उल्लेखनीय हैं। 'कमलेश्वर का 'तीसरा आदमी', मोहन राकेश का 'अन्धेरे बन्द कमरे', सुरेश सिन्हा का 'वापसी', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', शिवानी तथा उषा प्रियम्बदा के 'चौदह फेरे', 'पचपन खम्भे', लाल दीवारें' आदि मे नारी की विभिन्न परिस्थितियो के चित्रण का तथा उपन्यास-साहित्य के उज्ज्वल भविष्य का सकेत मिलता है।'[3] सेक्स सम्बन्धी स्वतन्त्रता तथा नैतिक शिथि-लता का इस काल के उपन्यासो म भरपूर प्रचार हुआ है। जनजीवन की कठोर विषमताओं, भूख, प्यास, बढ़ते हुए मूल्य, शोषण, वैमनस्य तथा युद्ध की आशका से सत्रस्त मानवता की बहुविधीय समस्याओं का समाधान सेक्स तथा

---

१. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास—डॉ० कमल कुमारी जौहरी, पृ० ४५८
२ बीसवी शताब्दी · हिन्दी साहित्य नय सदर्भ में—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० २६५
१ वही, पृ० २६५-२७०

अहम् के दायरे मे अन्वेषित हुआ है। ऐसे उपन्यासकार हैं—'अज्ञेय' तथा जैनेन्द्र। 'शेखर एक जीवनी', 'त्यागपत्र', 'जयवर्द्धन' तथा इलाचन्द्र जोशी का 'जहाज का पछी' व 'सुबह के भूले' म यथार्थवाद का सशक्त चित्रण है। विष्णु प्रभाकर, बलवन्तसिंह आदि भी इसी काल के उपन्यासकार है। कथा का ह्रास, राजनीतिक प्रचारवादिता का बखान, गरीबी तथा आजीविका का प्रश्न, ग्रामीण जनता मे शैक्षिक तथा सस्कृतिक चेतना का प्रश्न तथा "यथार्थ के नये सदर्भों को अभिव्यक्त करने मे लेखकीय प्रतिभा अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर आगे बढी है।"[1] "श्रीलाल शुक्ल, शैलेश मटियानी, हिमाद्रि श्रीवास्तव, मनहर चौहान, राजेन्द्र अवस्थी, रामदरश मिश्र, रागेय राघव, राही मासूम रजा, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, श्यामपरमार, शानी, पुष्पदत्त शर्मा यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, कमल शुक्ल, 'कैफ', केशव प्रसाद मिश्र आदि की रचनाए समकालीन भावबोध की रचनाए कहलाती है। अत यह कहा जाता है कि इस युग के उपन्यासकार मन की परतो तथा बौद्धिक गहराइया म भी सूक्ष्म वेत्ता की तरह उतरा है और उनमे आदमी की एक एक रग को पहचानने तथा उसकी नब्ज की आवाज को सुनने की कोशिश की है।"[2] "इस युग की कृतिया म व्यवस्था का एक विक्षिप्ततापूर्ण विरोध मिलता है, यौन विच्युतिया, उन्मादपूर्ण विक्षोभ, अतिरजकतावाद तथा बहशीपन, आतक आदि इस काल की प्रधान विशेषताए हैं।'[3] विश्व को ईश्वरविहीन बनाने म विज्ञान, मार्क्सवाद, मनोविज्ञान तथा अस्तित्ववाद के वर्ग का विशेष योगदान रहा है तथा सासारिक प्रेम के पीडावाद के मूल म पुनर्जागरण कालीन विशुद्धता भी इस काल म पायी जाती है।

प्रेमचन्द पूर्ववर्ती हिन्दी उपन्यासो की प्रवृत्तियाँ

यह युग उपन्यासो का प्रारम्भिक युग था। इस युग म उपन्यास साहित्य अपनी शैशवावस्था म था। 'इस युग के हिन्दीसेवियो के सम्मुख सर्वप्रथम समस्या हिन्दी उपन्यासा के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना था। जो उपन्यासकार साहित्य क्षेत्र मे आये, उनके सम्मुख कोई दिशा न थी, कोई परम्परा न थी। उन्हे अपना मार्ग स्वय निश्चित करना था। अत साहित्यिका न विदेशी उपन्यासो और बगला के उत्कृष्ट उपन्यासा का अनुवाद करके लोगो को एक दिशा प्रदान करने का प्रयास किया है।'[4] 'इस समय सुधारवादी उपन्यासो की रचना के माध्यम स पाठका तक ऐसी भावनाएँ पहुचाने का प्रयत्न किया गया, जिसमे जीवन क प्रति गरिमा का

---

१ स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना—डॉ० ज्ञानचद गुप्त, पृ० २९८
२ हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—डॉ० हरवश लाल शर्मा, पृ० २४२
३. आधुनिक उपन्यासो में प्रेमचद की परिकल्पना—डॉ० विजयमोहन सिंह, पृ० ३८२
४. हिंदी उपन्यास . शिल्प और प्रवृत्तियाँ—डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० २१

अनुभव हो, उनके खंडित होने वाले विश्वास एवं छिन्न-भिन्न होने वाली आस्था को आधार प्राप्त हो। चरित्र-निर्माण हो तथा उसकी प्रगति हो व धर्म की रक्षा हो। वेश्यागमन, मद्यपान तथा जुए का अन्त हो। समाज में दृढ़ता आये। "प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी उपन्यास प्रधान रूप से अद्भुत, अलौकिक घटना-व्यापारों में विस्मय-विमुग्ध-सा उलझा रहा है।"[1] "प्रेमचन्द-पूर्ववर्ती उपन्यासकारों ने भी रोमान्स, तिलस्म, जासूसी, ऐयारी आदि का वर्णन करने के उपरान्त *युगीन सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा नहीं की है।*"[2] प्रेमचन्द से पूर्व *कथा-साहित्य में कल्पना को जो स्थान प्राप्त था वह विश्लेषण को नहीं* था। मानसिक पक्ष को जो महत्त्व दिया गया है वह बौद्धिक पक्ष को प्राप्त नहीं था। अत पाश्चात्य शिक्षा ने हमारी साहित्यिक मान्यताओं में बौद्धिकता के प्रतिष्ठापन की प्रेरणा दी। "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर हमारे साहित्य में अभूतपूर्व विश्लेषण प्रवृत्ति आई तथा क्रमश बढ़ती गई। इस प्रवृत्ति ने उपन्यास के विकास में सहयोग दिया।"[3] इस युग के उपन्यासों में अतिरंजना तथा अवास्तविक घटनाओं का आधिक्य रहता था। इस युग की प्रवृति म सभाव्यता तथा स्वाभाविकता की ओर ध्यान दिए बिना ही ऐयार तथा प्रेम-प्रसंगों व औत्सुक्यवर्धक हथकण्डों की भरमार थी, जिसकी अभिव्यक्ति जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यासों में हुई। डा० श्री कृष्णलाल ने कहा है, "हिन्दी के अधिकांश उपन्यास केवल नाममात्र के ऐतिहासिक हैं, क्योंकि उनमे लेखकों ने इतिहास की ओट में तिलस्म, ऐयार तथा प्रेम के प्रसंगों की अभिव्यक्ति की।"[4] "मानव का अभाव"—*मानव की सहजवृत्तियों का अभाव इन उपन्यासों में पाया* जाता है। कथानक की रोचकता की प्रवृत्ति में पात्रों को व्यक्तित्वहीन बना दिया गया। प्रेमचन्द-पूर्व सभी उपन्यासों मे प्रेम तथा तत्सम्बन्धी क्रियाकलाप ही मुख्यरूप से सामने आये। अतः 'प्रेम की प्रवृति' का उल्लेख जासूसी उपन्यासों का भी मुख्य विषय था। सामाजिक समस्याओं के प्रकट करने की प्रवृत्ति, नैतिक शिक्षा स्वरूप मर्यादापालन तथा सामाजिक सरक्षण का उपदेश तथा मनोरंजन वृत्ति ही प्रमुख प्रवृत्तियाँ थी। "इस युग में नारियों की स्थिति अति दयनीय थी। धार्मिक रूढ़ियों से समाज ग्रस्त था। इन समस्याओं के समाधान एवं प्रगतिशीलता लाने के लिए सुधारवादी प्रवृत्ति अपनायी गयी तथा नैतिकता के विकास का प्रयत्न इसी माध्यम से किया गया। जिस प्रकार आज के युग में

---

१ हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग'—डा० मंजुलता सिंह पृ० ५५
२ वही, पृ० ५६
३. हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अध्ययन—डॉ० गणेशन, पृ० ५४
४. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डॉ० श्री० कृष्णलाल, पृ० ३०२-३०३

मध्यवर्गीय समाज मे प्रदर्शनप्रियता की बलवती प्रवृत्ति देखने को मिलती है उसी प्रकार आज से अस्सी वर्ष पूर्व भी इस मध्यवर्ग मे यही प्रवृत्ति विद्यमान थी। प्रदर्शनप्रियता के साथ ही मध्यवर्गीय समाज की दूसरी प्रवृत्ति अर्थलोलुप्ता की होती थी। मध्यवर्ग धनाभाव से पीडित रहता है। धन कमाने की वह सुगम से सुगम नीति अपनाना चाहता है जो शीघ्र ही उसे धनी बनाकर धनिक वर्ग की समकक्षता म लाकर बिठा दे।"[1] आदर्शवादी प्रवृत्ति का उल्लेख गोस्वामी जी के उपन्यासो मे मिलता है। इस प्रवृत्ति के द्वारा 'गोस्वामी जी इस उपन्यास साहित्य को मानव जीवन के निकट लाने मे सफल हुए अत हिन्दी उपन्यास साहित्य को गोस्वामी जी की यही सबसे बडी देन है।"[2] 'आदर्शवाद न्यायपूर्ण मान्यताओ एवं विचारधाराओ के प्रति गहनतम आस्था रखता है। और अन्याय का दमन कर न्याय की सार्वभौमिकता की सत्ता को स्वीकार करता है।'[3] चूकि यह उपन्यास का प्रारम्भिक युग था अत इसकी दृष्टि तथा लक्ष्य व विकल्पो की खोज मे उपन्यासकार सदैव तत्पर थे। 'पूर्व प्रेमचन्द-युग के सम्पूर्ण औपन्यासिक कृतित्व मे उद्देश्य की दृष्टि से दो प्रमुख धाराओं का प्रवाह स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। एक धारा म मनोरंजन का उद्देश्य था तथा दूसरी मे उपदेश का।'[4] इस युग के उपन्यासो म नई तथा पुरानी पीढ़ी की विषमता का भी दिग्दर्शन हुआ है। सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र मे नारी के शोषण की अवस्था का चित्रण हुआ है। निम्न वर्ग का आर्थिक शोषण भी इन उपन्यासो का महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। प्रेम प्रसग के साथ मुगल शासन म वासनात्मक प्रवृत्ति का निरूपण इस युग म किशोरी लाल जी के उपन्यासो म हुआ है। 'अधिक से अधिक चमत्कार के आधार पर पाठको की कौतूहल वृत्ति जगाकर य उपन्यास इस ढग का समार तैयार कर दते थे जिसमे एक बार जाकर लौटन की इच्छा नही होती थी। इस प्रवृति के समरूप ही उपन्यास के क्षेत्र म दूसरी प्रवृत्ति काम कर रही थी, वह जो जासूसी उपन्यासों का निर्माण कर रही थी।'[5] इस प्रकार नैतिक व सामाजिक सुधार के उपन्सासो को छोडकर सभी उपन्यासो म वासनात्मक प्रेम की प्रधानता है। य उपन्यास वर्णनात्मक है तथा उपन्यासकार बिना किसी चिन्ता के "प्राकृतिक दृश्यो, घटनाओ, पात्रों तथा वातावरण आदि का

---

१ हिन्दी उपन्यासा म मध्यवर्ग—डॉ० मजुलता सिह पृ० ५६
२ हिन्दी के उपन्यासकार—यज्ञदत्त शर्मा पृ० २५
३ हिन्दी उपन्याम शिल्प ग्रौर प्रवृत्तियाँ—डा० सुरेश सिन्हा, पृ० १४५
४ हिन्दी उपन्याम एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० १३
५ हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव तथा विकास—डॉ० लक्ष्मीकान्त सिन्हा, पृ० १२६

विस्तृत वर्णन करता चला गया है ।"[1] प्रेमचन्द-पूर्ववर्ती हिन्दी उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं—

सामाजिक सम्बन्धों तथा प्रथाओं का चित्रण—

१. पर्दा प्रथा
२. सती प्रथा
३. दहेज प्रथा
४. दाम्पत्य जीवन तथा नारी निरूपण
५ नारी-स्वातन्त्र्य का प्रश्न
६. जातिवाद की विडम्बनाएं
७ सांस्कृतिक चेतना का उदय

प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ

प्रेमचन्द का युग राष्ट्रीय जागरण के विकास और प्रसार का युग कहा जाता है। इस युग में अनेक सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों का प्रसार हुआ। प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में विषय तथा अभिव्यंजन की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से बहुत आगे बढ़ गए थे। "प्रेमचन्द यदि महान् हैं तो इसलिए कि उन्होंने किसानों के मानसिक गठन और मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को उस समय गम्भीर विश्वास और उत्साह के साथ वाणी दी, जिस समय देश के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे।"[2] प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में मौलिक प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। "प्रेमचन्द की प्रथम प्रवृत्ति उपन्यास को स्वच्छन्द कल्पना के विचित्र संसार से निकालकर यथार्थ जीवन की ओर ले जाने की है।"[3] "डा० प्रेमनारायण शुक्ल ने लिखा है कि संक्षेप में यथार्थवादी साहित्य साधारणतः कोरी भावुकता से रहता दूर है। यथार्थवादी साहित्यकार जीवन के संबंध में यथार्थ अनुभव प्राप्त करने एवं उसी के संबंध में चिंतन करने के लिए निरन्तर प्रयत्नवान रहता है।"[4] दूसरी प्रवृत्ति समाज-सुधार की है। प्रेमचन्द-पूर्ववर्ती उपन्यास-साहित्य में इस प्रवृत्ति का आरम्भ हो चुका था लेकिन प्रेमचन्द के समय में इस ओर विशिष्ट ध्यान नहीं दिया गया। "इसके अनेक कारण थे। इस समय भारतीय समाज में शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों वर्गों में नवीनता की लहर आई थी, प्राचीन के प्रतिक्रियास्वरूप जनजीवन

१ हिन्दी गद्य साहित्य—डॉ० रामचन्द्र तिवारी, पृ० ६६
२. प्रेमचन्द एक विवेचन—डॉ० इन्द्रनाथ मदान (प्रामुख), पृ० ५
३ हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अध्ययन—डॉ० गणेशन, पृ० ७१
४. हिन्दी साहित्य के विविधवाद—डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, पृ० ३६-३७

की मान्यताएँ बदल रही थी, दृष्टिकोण बदल रहे थे तथा विचारधारा में भी परिवर्तन हो रहा था।"[1] सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों का युग था। तृतीय प्रवृत्ति मानव जीवन के अध्ययन की प्रवृत्ति थी। प्रेमचन्द के पात्र भारतीय संस्कृति की विशेषता रखते हुए मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण मानव हैं। चतुर्थ प्रवृत्ति मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति है। प्रेमचंद बाह्य क्रियाकलापों द्वारा पात्रों के चित्रण से संतुष्ट नहीं थे, उनके आंतरिक भावों का भी अध्ययन करना चाहते थे। उनका मनोविश्लेषण का सम्बन्ध बुद्धिमत्ता-हृदय दोनों से होता था। पंचम प्रवृत्ति प्रगतिवादी तथा क्रान्तिवादी थी। प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यासों में गांधीवाद का प्रभाव है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा मार्क्स के अन्य सिद्धान्तों का प्रभाव उसमें नगण्य है, परन्तु अपने अन्तिम वर्षों में वे सुधारवादी तथा गांधीवादी प्रवृत्ति पर अपना विश्वास खो बैठे थे। अत मार्क्सवाद एवं सशस्त्र क्रान्ति पर उनकी आस्था बढ़ने लगी। १९३३ से १९३६ तक के 'हंस' तथा 'जागरण' के अंक उनकी इस प्रेरणा के साक्षी हैं। "उन्होंने पहले के उपन्यासों में गांधीवादी सुधारवाद का आश्रय लेकर यथार्थवाद और क्रान्तिभाव को किरकिरा कर दिया।"[2] गांधीजी की असम्भव शर्तों का उल्लेख कर मार्क्सवाद का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा, "सत्याग्रह नीति से हमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति की आशा नहीं।"[3] मनोवैज्ञानिकता की प्रवृत्ति के अन्तर्गत सेक्स, स्वच्छन्द प्रेम, विवाह आदि समस्यायें उठाई गयी तथा समाधान ढूंढे गए परन्तु "यह प्रवृत्ति अपने विकसित अथवा व्यापक रूप में प्रेमचन्दोत्तर काल में ही मिलती है। राजनीतिक अथवा राष्ट्रीयता के विकास की प्रवृत्ति इस युग में पूर्णरूप में विकसित हुई। चूंकि यह युग राष्ट्रीय जागृति का युग था अत इसमें इस प्रवृत्ति-प्रधान उपन्यासों की रचना बहुत बड़ी संख्या में हुई।"[4] मानव मूल्यों की दृष्टि से "प्रेमचन्द ने मानव को मानव के रूप में देखा, उसके कोमल रूप के अन्दर के पशु को पहचाना, उसके हाड-मास के अन्दर स्थित हृदय नामक कोमल वस्तु का परिचय पाया, उसकी बीभत्सता से घृणा करते हुए भी उसकी बलहीनता पर सहानुभूति दिखाई तथा उसकी दिव्यता की उपासना की।"[5] शिल्प विधान में विवरणात्मक पद्धति के स्थान पर विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक ढंग को अपनाया।

प्रेमचन्द जी की प्रवृत्ति आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर भी प्रेरित रही है। प्रेमचन्द-युग में मध्यवर्ग का उदय हुआ। उसकी मानसिक कुण्ठाएँ, दुर्बल-

१. हिन्दी उपन्यास में वर्ग-भावना—डॉ० प्रताप नारायण टण्डन, पृ० ४२
२. प्रेमचन्द . जीवन और कृतित्व—हंसराज रहबर, पृ० १६२-१६३
३. जागरण, ७ अगस्त, १९३३—सम्पादकीय
४. हिन्दी उपन्यासों में वर्ग-भावना—डॉ० प्रताप नारायण टण्डन, पृ० १४३
५. हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अध्ययन—डॉ० गणेशन, पृ० ७६

ताएँ तथा विषमताएँ भी आदर्शात्मक भावों के साथ-साथ चित्रित हुई। प्रेमचन्द के उपन्यासों में "एक ओर तो मध्यवर्ग प्रगतिशील शक्ति के रूप मे राष्ट्र और समाज की पुनर्रचना मे व्यस्त दिखाई देता है, दूसरी ओर वह घूस लेता है, गबन करता है, भाइयो का गला काटता है, लम्बी-चौडी डीगें हांकता है, मुखबिरी और दलाली करता है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने मध्यवर्ग के दोनो रूपो को उजागर कर सामने रखा है।"[1] "आदर्शोन्मुख यथार्थवादी प्रवृत्ति का कारण तत्कालीन जीवन की वह पृष्ठभूमि है जिसम लेखक जन्मा तथा बढ़ा है। बाल्यावस्था से पड़े जिन आदर्शवादी सस्कारों मे लेखक के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था उनमे लेखक प्रगतिशील होने पर भी अपने को पूर्णत अलग नही रख पाया। अत प्रेमचन्द के उपन्यासो के पात्र यथार्थ के धरातल से ऊपर उठते हैं तथा आदर्श की सीमा को छूते दिखाई देते हैं।"[2] जब हम कहते हैं कि प्रेमचन्द ने अपने युग और समाज की सच्चाई से देखा और परखा है तो हमे उस युग और समाज के बुनियादी सत्यो की ओर दृष्टिपात कर लेना चाहिए जो जीवन की बनावट के मूल म निहित थे। 'यह युग राष्ट्रीय और सामाजिक उथल-पुथल का युग था। यह दो प्रकार की सस्कृतिया का सक्रान्ति-काल था तथा दो प्रकार के मूल्यो का भी। साथ ही साथ सघर्ष-काल था साम्राज्यवाद से राष्ट्रवाद का, सामन्ती सभ्यता से महाजनी सभ्यता का, सामन्ती और महाजनी दोना सभ्यताओ से शोषित किसानो और मजदूरो की शक्तियो का।"[3] इस युग मे उपन्यास साहित्य को प्रभावित करने मे राष्ट्रीय जागरण आन्दोलन तथा सामाजिक आन्दोलनो का भी सुधारवादी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योग है। 'हिन्दी उपन्यास के प्रथम उत्थान म सामाजिक आन्दोलन का जोर तो देखा, किन्तु परम्परा के विरोध की यह तीव्रता उसमे दृष्टिगोचर नही होती थी जो द्वितीय उत्थान म दिखाई देती है। इन आन्दोलनो ने सामाजिक कुरीतियो, धार्मिक आडम्बरो और अधविश्वासों के प्रति घोर अनास्था प्रकट की।"[4] प्रेमचन्द युगीन उपन्यासो की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं

१ नारी से सम्बन्धित समस्याओ का निरूपण
२ अतर्जातीय विवाह
३ अछूतोद्धार

---

१ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द—डा० महेन्द्र भटनागर, पृ० ३२
२ हिन्दी उपन्यासो मे मध्यवर्ग—डॉ० मजुलता सिंह पृ० ६०
३ हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—डॉ० रामदरश मिश्र पृ० ३६
४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव तथा विकास—डॉ० लक्ष्मीकान्त सिन्हा, पृ० १६०-१६१

४. अवैध प्रेम
५ संयुक्त परिवार का विघटन

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासो की प्रवृत्तियाँ

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासो म प्रेमचन्द-युग की प्राय सभी प्रवृत्तियो का विकास हुआ। समाज-सुधार सम्बन्धी उपन्यास अपेक्षाकृत कम लिखे गये। मनोविज्ञान, सेक्स तथा स्वच्छन्द प्रेम की समस्या इस युग मे अधिक उभरकर सामने आई। इस युग के उपन्यासो म समाजवादी, साम्यवादी तथा गाधीवादी विचारधाराओ का पर्याप्त प्रचार हुआ। सन् १९३५ से १९५० तक के उपन्यास हिन्दी उपन्यास के सर्वांगीण विकास के परिचायक हैं। 'यद्यपि हमारा उपन्यास साहित्य इस युग म प्रत्येक प्रवृत्ति के प्रौढतम स्वरूप की प्राप्ति नही कर सका तो भी उसकी वैविध्यपूर्ण उपलब्धियो का निषेध नही किया जा सकता।'[1] इस युग के उपन्यासो की कतिपय उल्लेखनीय प्रवृत्तिया इस प्रकार हैं

१ पूजीपति वर्ग का चित्रण
२ सामन्तवादी वर्ग का चित्रण
३ मध्य एव श्रमिक वर्गों का चित्रण
४ सामाजिक मान्यताओ म क्रान्तिकारी परिवर्तन
५ राष्ट्रीय आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य म जनमत तथा वर्ग भावना का प्रसार।

समकालीन हिन्दी उपन्यासो की प्रवृत्तियाँ

सन् १९५७ से १९६६ तक के दशक मे उपन्यासो की सख्या, विषय और शिल्प आदि दृष्टियो से पुष्कल विकास का युग रहा है। "आकार-सौष्ठव तथा अनुभूति की गहराई प्राप्त करने के ध्येय से अनेक प्रयोग इस काल म किए गये। इस साहित्यिक भूमिका तथा स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात विकसित सामाजिक मनोवृत्तियो के परिवेश म उपन्यास को पर्याप्त सामाजिक व्यापकता और मनोवैज्ञानिकता की गहनता अर्जित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।'[2] किसी भी हिन्दी उपन्यास काल को प्रवृत्तियो के अनुसार विभाजित करना असम्भव सा होता है क्योकि कोई एक प्रवृत्ति उस विशेष काल म प्रमुख रहती है तथा अन्य प्रवृत्तियाँ गौण रूप म साथ साथ प्रवाहित होती रहती हैं। समकालीन उपन्यासो में मानसिक विकास और चेतना की प्रवृत्ति मानसिक कुठा से प्रभावित होकर सामाजिक उपन्यासो के माध्यम स अभिव्यक्त हुई है। कुछ नवोदित कथाकारो

१ हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना—डॉ० प्रताप नारायण टण्डन, पृ० १६५
२ हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अध्ययन—डॉ० गणेशन पृ० ६१

तथा लेखकों ने मनोविज्ञान के माध्यम से सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करते हुए अपने सृजन में नई जागरूकता, नये बोध एवं वैविध्यपूर्ण शिल्प का परिचय दिया है। रागेय राघव के बौने और घायल फूल, छोटी-सी बात, धरती मेरा घर, प्रोफेसर, काका; भगवतीचरण वर्मा का अपने-अपने खिलौने तथा अन्य उपन्यासकारों के उपन्यास अंधेरे बन्द कमरे, शतरंज के मोहरे, लोहे का पंख, पत्थर अल पत्थर आदि में सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। आर्थिक विषमता, वर्गों का संघर्ष, मूल्य-वृद्धि के कारण, मूल्य का विघटन, वैयक्तिक तनाव, नये-पुराने आदर्शों तथा सिद्धान्तों का द्वन्द्व, नारी के नये रूप का विकास आदि समस्याओं का भी इन उपन्यासों में उल्लेख मिलता है।"[1] आंचलिकता की प्रवृत्ति के अन्तर्गत जीवन की समग्रता से बढ़कर कुछ जातियों या समूहों के विशिष्ट आचरणों को ही प्रकाश में लाया गया है। ऐसी कृतियाँ हैं—मोरझाल, सूरज किरण की छाँह, धरती मेरा घर आदि।

व्यापक सामाजिक परिवेश के चित्रण की प्रवृत्ति बृहदाकार उपन्यासों में मिलती है। जैसे, कब तक पुकारूँ, सती मैया का चौरा, आमन्त्रित मेहमान, अमृत और विष, मैला आंचल आदि। सामाजिक उपन्यासों की सशक्तता के कारण मनोवैज्ञानिक आधार पर वैयक्तिक उपन्यास को बढ़ाने में लेखक असमर्थ रहे। इस काल में सामाजिक पृष्ठभूमि में ही वैयक्तिक मनोव्यापारों का अध्ययन करने की परिपाटी सबल हुई। इस काल में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कम हुई। यदि कुछ कृतियां निकलीं भी तो उनमें सांस्कृतिक विवेचन किया गया। नरोत्तम दास नागर का अंगारे तथा अन्य उपन्यास एक फटा हुआ कागज, चार परतें, कथा सूर्य की नई यात्रा, लौटती लहरों की बाँसुरी, सपना बिक गया, तन्तु-जाल आदि का ध्येय मात्र शिल्प या अभिव्यंजन की नवीनता दर्शाना है। "आज के उपन्यासों में भ्रष्टाचार, अनैतिकता तथा यौन लिप्सा की प्रवृत्ति का निरूपण किया जाता है क्योंकि समाज में इधर जो परिवर्तन हुए हैं उनके अन्तर्गत सत्तापन और पूंजी में एक अलिखित समझौता हो गया है तथा इस अपवित्र गठबंधन के फलस्वरूप साधनहीनों का शोषण हो रहा है।"[2] 'उखड़े हुए लोग' में लेखक ने समाज के दस पन्द्रह वर्षों में होने वाले आमूल परिवर्तनों का उल्लेख करते हुए वर्तमान प्रवृत्तियों का विवेचन किया है। आज के उपन्यासों में पात्रों की धन में प्रबल आसक्ति दिखाई गई है, जो उनकी चरित्र-विकृति का मूल आधार होता है। आजकल के उपन्यासकार भावना तथा वासना का द्वन्द्व

१ हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अध्ययन—डॉ० गणेशन, ६२

२. हिन्दी उपन्यास . एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, २०६

भी दिखाते हैं। साथ ही उनके आदर्शवाद व यथार्थवाद का उल्लेख भी करते हैं। निम्न मध्यवर्ग की कुंठाओं, उनके जीवन के खोखलेपन, उनके मिथ्याचारों व झूठी नैतिकता तथा जीवन में व्याप्त निराशा का चित्रण नवीन उपन्यासों में हुआ। संक्षेप में, इस युग के उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियां हैं—मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति, समाजपरक व व्यक्तिपरक चिन्तन की प्रवृत्ति, समाजवादी प्रवृत्ति, आंचलिक प्रवृत्ति, यौन कुंठा के नग्न प्रदर्शन की प्रवृत्ति आदि। कतिपय अन्य उल्लेखनीय प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं

श्रमिक वर्ग पर औद्योगिक एवं वैज्ञानिक प्रभाव का चित्रण

औद्योगिक विकास मशीनीकरण पर निर्भर करता है। मशीनीकरण व यंत्रीकरण का विकास वैज्ञानिक विकास कहलाता है। पहले कृषि का कार्य किसान, चमड़े का कार्य चमार आदि करते थे, व अकेले ही खाल उतारकर तथा जूते बनाकर उन्हें बाजार में बेचा करते थे परन्तु अब व्यक्ति प्रकृति पर आधारित न रहकर यंत्रों पर आधारित रहता है। औद्योगीकरण के द्वारा विशेषीकरण की प्रक्रिया क्रियाशील हो जाती है। इसी प्रकार मशीनीकरण के परिणामस्वरूप सामाजिक संगठनों में जटिलता आती जा रही है। यंत्रीकरण ने ग्रामीण समुदायों विशेषकर श्रमिक वर्गों को बहुत प्रभावित किया। अब खेती के लिए पुराने ढंग का प्रयोग उचित नहीं समझा जाता। औद्योगिक विकास ने मानव समाज के सामने अनेक मशीनों को लाकर खड़ा कर दिया "औद्योगिकी के प्रत्यक्ष परिणाम हैं—श्रम का नवीन संगठन, सामाजिक सम्पर्कों की सीमा का विस्तार, कार्य का विशेषीकरण तथा ग्रामीण जीवन पर नगरीय प्रभाव।"[1] औद्योगिकी का श्रमिक वर्ग पर अच्छा प्रभाव भी पड़ा है तो प्रतिकूल भी। औद्योगिकी के कारण बेकारी की वृद्धि तथा प्रतियोगिता की चरम सीमा के साथ साथ यांत्रिक आश्रितता में वृद्धि हुई है। औद्योगिकी के कारण समाज में प्रतिस्पर्द्धा का महत्त्व बढ़ा है। पूंजीवादी समाज में 'गलाकाट प्रतियोगिता' का विकास २०वीं सदी में ही हुआ है। 'औद्योगीकरण के कारण अब श्रमिक तथा पूंजी के बीच संघर्ष की प्रक्रिया कार्यशील है। श्रमिक जो अभी तक उत्पादन प्रणाली में महत्त्वपूर्ण माने जाते रहे हैं। अब उनका स्थान पूंजी ने ले लिया है। ऐसी स्थिति में श्रमिक वर्ग भी विभिन्न प्रकार के संघों का निर्माण इसलिए कर रहे हैं ताकि वे उद्योगपति के उन कार्यों के विरुद्ध कार्य कर सकें, जिनको वे उचित समझते हैं।"[2]

---

१ Society—Maciver and Page, P 554

२ आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन—डॉ० के० के० मिश्र, पृ० १३२

औद्योगिक विकास व वैज्ञानिक प्रगति का जनमानस पर अपेक्षित प्रभाव पड़ा है। विशेष कर श्रमिक वर्ग को संघर्ष करके अपने अधिकार प्राप्त करने की एक दिशा प्राप्त हुई। शोषक वर्ग भी अपने भ्रष्टाचारी तरीकों से पैसा जुटाने में लगे हुए थे, उनके पुत्र, भाई अब इस नवचेतना के कारण, उनका ही विरोध करने लगे हैं। "विश्वास मान केसू, अब तेरी पढ़ाई के रुपयों में किसानों के रक्त की गंध नहीं आयेगी।"[१] "दुनिया की मान्यताएं बड़ी तेजी से बदल रही हैं, हमारे भविष्य का रूप क्या होगा, यह नहीं कहा जा सकता।"[२] भारत में औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप मजदूर वर्ग तथा उसकी समस्याओं में निरन्तर वृद्धि हुई तथा मार्क्सवादी चेतना का प्रसार हुआ। प्रारम्भ में मजदूर नेता सुधारक तो थे किन्तु क्रांतिकारी नहीं थे। किन्तु २०वीं शताब्दी में नये क्रांतिकारी नेतृत्व के कारण मजदूर वर्ग पूंजीपति वर्ग का शोषण समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हुआ। इनका प्रमुख कार्य पूंजीपतियों के विरुद्ध हड़-ताल करना रहा। 'देशद्रोही' उपन्यास में पूंजीपति तथा मजदूर वर्ग का संघर्ष चित्रित है। मजदूरों की हड़ताल के विरुद्ध मालिक तालाबन्दी का मार्ग अपनाते हैं "मालिक-मजदूर की श्रेणी हिंसा को दूर रखकर यदि उनमें प्रेमभाव हो, मालिक अपने को मजदूर का रक्षक और पिता समझे तो उनमें द्वेष न होकर प्रेम होगा।"[३] मजदूर वर्ग औद्योगिक उत्पादन के संदर्भ में अपने वर्गहित पहचानने लगे थे। 'बलचनमा' उपन्यास में जमींदारों ने जब मजदूर वर्ग के प्रतिनिधि पात्र की मां-बहन की इज्जत पर हाथ डालने का प्रयत्न किया तब उसने कहा, 'मैं गरीब हूं, तेरे पास अपार सम्पदा है, कुल है, खानदान है, बाप-दादे का नाम है, अड़ोस पड़ोस की पहचान है, जिला-जवार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है। मगर आखिरी दम तक मैं तेरे खिलाफ डटा रहूंगा। अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूंगा। मां और बहन को जहर दे दूंगा, लेकिन उन्हें तू अपनी रखैल बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा।"[४] मशीनों के आविष्कार के कारण बेकार हुए मजदूर अपना हित-अहित पहचानने लगे। 'कोहबर की शर्त' उपन्यास में मल्लाह, पीताम्बर लाल से बिगड़ उठता है, "चोप चोप करोगे तो आकर पानी में उलट दूंगा, मल्लाह जैसे इनके बाप का नौकर है।...खेवाई दिया है रामपुर में उतरने की, वहां से पैदल पिपरौंटा चले जाइयेगा।"[५] मजदूरी की मुरौवत कैसी ? 'दुख

१ पानी के प्राचीर—रामदरश मिश्र, पृ० २८६
२ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा पृ० ७२३
३ देशद्रोही—यशपाल पृ० ७६
४ बलचनमा—नागार्जुन, पृ० ८५
५ कोहबर की शर्त—केशवप्रसाद मिश्र, पृ० १४

मोचन' उपन्यास मे यही भाव व्यक्त किए गये हैं। 'दुखमोचन' की मामी ठीक ही कहती हैं, "अब वे ६ आने माहवारी पर काम करना नही चाहती। जमाना तेजी से बदल रहा है बबुअन। और है भी तो यह पुराना रेट।"[1] इस प्रकार उपन्यासो मे सामान्यत दर्शाया गया है कि औद्योगिक विकास के परिणाम-स्वरूप जहाँ मजदूरो म बेकारी की समस्या उभरी वही वे दूसरी ओर शोषण-विरोधी अभियान मे भी तत्परता से सलग्न हुए।

मध्यवर्गीय समाज की जर्जर स्थिति

भारतवर्ष मे मध्यवर्ग के उदय का दायित्व अग्रेजो साम्राज्य पर है। प्रेमचन्द जी वास्तव मे मध्यवर्ग के ही कलाकार है। "उन्होंने मध्यवर्ग का सबसे बड़ा शत्रु 'कुल की मर्यादा' को माना है।···निम्नवर्ग श्रमजीवी है, उसकी पारिवारिक इकाई मे कोई किसी पर भारतुल्य नही होता, सब कामगार होते हैं। रोटी की समस्या के सामने कौलिन्य नगण्य है। उच्च वर्ग के पास आज की सबसे बड़ी शक्ति पैसा है। पैसे वाला न्याय, धर्म, मर्यादा, शक्ति तथा यहाँ तक कि ईश्वर को भी खरीद सकता है। 'मध्यवर्ग' की आन्तरिक स्थिति बड़ी खोखली होती है।"[2] यही मध्यवर्ग समाज मे जर्जर स्थिति उत्पन्न करता है। प्रत्येक क्रांति का प्रभाव मध्यवर्ग पर ही होता है क्योकि उच्चवर्ग 'कुबेरदेव' की अर्चना कर पुन लाभान्वित हो जाता है। तथा निम्न वर्ग इतने दलित होते है कि वह रोटी से ऊपर सोचने मे असमर्थ रहते हैं। केवल मध्यवर्ग ही वर्तमान स्थितियो से परिचित, सामाजिक समस्याओ से ग्रसित तथा कुल-मर्यादा तथा गौरव की चादर ओढकर अपनी 'जर्जर स्थिति' का सामना करते हैं। अन्य देशो के अनुरूप अपने असतुलित फैलाव के कारण मध्यवर्ग के सामाजिक और आर्थिक आयाम भी बदले हैं। "सम्पूर्ण विश्व के मध्यवर्ग के लोग अशान्त, आलोचक, और व्यक्तिवादी है। ऐसी स्थिति मे उनकी आर्थिक स्थिति डावाडोल है। लगातार आर्थिक सघर्ष उनके समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता रहता है। मध्यवर्ग सन्तुष्ट नही रहता। वह प्राय उद्दण्ड, आत्म प्रदर्शनकारी तथा मुहफट हो जाता है।"[3] इसी विद्रोही प्रवृत्ति तथा झूठी प्रदर्शनप्रियता ने मध्यवर्गीय समाज की स्थिति को जर्जर बना दिया। रूढिवादी परम्पराओ के प्रति मध्यवर्ग ने विद्रोह किया है। आर्थिक समस्याओं से आक्रान्त मध्यवर्ग स्वार्थमयी भावना से ओतप्रोत है। "हमारे समाज का नया मध्यवर्ग परिवार की मर्यादा और स्तर कायम रखने

---

१ इडियन हैरिटेज—हुमायुन कबिर, पृ० ११७

२ दुखमोचन—नागार्जुन, पृ० ७६

३. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—त्रिभुवन सिंह, पृ०१३१

तथा रोटी कमाने में ही सारी शक्ति लगा रहा है। इस वर्ग की राष्ट्रीय चेतना के साथ ही उसकी नैतिक शक्ति भी क्षीण होने लगी है।"[1] इस प्रकार नैतिक व आर्थिक दुर्व्यवस्था से आक्रांत मध्यवर्गीय जीवन में अनेक समस्याएँ जन्म लेती हैं। "शिक्षा और बेकारी की समस्या उसे ईर्ष्यालु और अनुदार तथा कृपण बना देती है।"[2] "मध्यवर्ग की स्वार्थी मनोवृत्ति भी उसकी स्थिति को विषम बनाती है। स्वार्थपरक नीति ही मध्यवर्गीय समाज की जर्जर स्थिति का प्रमुख कारण है। इस परिस्थिति में व्याकुल मध्यवर्ग असंतोष, आक्रोश, विवशता और घुटन में जी रहा है। मध्यवर्गीय समाज में दहेज का लेन देन, संस्कारवश अनेक रीति-रिवाज जैसे—मृत्यु-भोज, श्राद्ध, प्रायश्चित्त करना, शादी-विवाह पर भोज आदि ऐसी कुप्रथाएँ हैं जिनसे आज भी समाज मुक्त नहीं है तथा आज भी मध्यवर्गीय समाज की स्थिति जर्जर होती जा रही है। संक्षेप में मध्यवर्गीय समाज की जर्जर स्थिति के अनेक कारण हैं—आर्थिक विषमता, झूठी प्रतिष्ठा, समाज में प्रचलित कुप्रथाओं का समर्थन।

'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास में शिवलाल अर्जीनवीस है। खुशामदी प्रवृत्ति के कारण वे अपने बेटे को नायब तहसीलदार बनाने में सफल होते हैं। शिवलाल निम्न मध्यवर्गीय आर्थिक विषमताओं में रहे हैं किन्तु उनका दृष्टिकोण अर्थलोलुप है। अतः मध्यवर्ग की स्वार्थी और अनैतिक मनोवृत्तियाँ ही मध्यवर्गीय समाज की टूटन का कारण बनी हैं। "ज्वाला बेटा, तुम्हारी किस्मत खुल गई। बहुत तगड़ा शिकार फँस गया है। अपने लिए जमीन और जायदाद इकट्ठी कर लो।"[3] मध्यवर्गीय समाज जीवन-मूल्यों से टूटने के टूट रहा है। कोई मूल्यों को टूटते देखकर दुखी है तो कोई उन्हें तोड़कर प्रसन्न है। यथा, "अब तो एक-दूसरे की जमीन लिखाने में, एक दूसरे का खेत बढ़कर जोत लेने में, एक दूसरे से बढ़कर संचय कर लेने में, स्वार्थ साधने में, अपकार करने में एक दूसरे को पीछे छोड़ना चाहते हैं। लेकिन पूरे बनिया हो गये हैं, कुली हो गये हैं। बनियागीरी और कुलीगीरी ही इनके जीवन का मूल्य बनती जा रही है......हर आदमी अब अपने-अपने उत्सवों के कामों का बोझ अकेले कंधे पर उठाये छटपटाता है।"[4] आज मध्यवर्ग का स्वार्थ ही उसका मूल्य और मापदण्ड है और उसी के आधार पर अन्य सामाजिक, धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों से वह जुड़ना चाहता है। मध्यवर्ग की अधिकार-लिप्सा भी उसकी जर्जर

---

१ राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध—नंददुलारे वाजपेयी पृ० ११
२ हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग—डॉ० मंजुलता सिंह, पृ० १५
३ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा पृ० १२२
४ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ३४४

स्थिति के कारण सिद्ध हुई हैं। 'आधा गाव' उपन्यास मे वह सोचती है, "बुढ़िया मरने का नाम ही नही ले रही थी। कुंजिया सम्भाले बैठी हुई थी और सकीना को एक एक पैसे का मुह देखना पड़ता था। एरुव बीवी ने जो पहना दिया पहनना पड़ा जो खिला दिया खाना पड़ा।"[1]

मध्यवर्ग अभी भी नैतिकता तथा जातिवाद की भावना से आक्रांत है। 'रतिनाथ की चाची' मे बुधना कहती है, "बड़ी जात वालो की अपेक्षा छोटी जात वाले ही जिन्दगी के मूल्यो के समीप हैं, हमारी बिरादरी मे किसी के पेट से आठ-आठ, नौ नौ महीने का बच्चा निकालकर जगल म फेंकने का रिवाज नही है।"[2] मध्यवर्ग की बेकारी का प्रश्न भी उसकी जर्जर स्थिति का एक उल्लेखनीय कारण है। 'अब देश मे हजारो लाखो ऐसे युवक हैं जो शिक्षित हैं, असम्पन्न हैं, बेकार है। यह क्रांतिकारी आन्दोलन आखिर इसी बेकारी का अभिशाप है।"[3] "देश की चेतना जाग उठी है। यह जो मध्यवर्ग मे बेकारी बुरी तरह बढ़ रही है, वह अपना रग दिखायगी ही।'[4] इस प्रकार मध्यवर्गीय समाज की स्थिति बिगड़ने के मुख्य कारण हैं—बेकारी की समस्या, आर्थिक-नैतिक वैषम्य, बदलते नैतिक मूल्य, जनव्यापी असतोष, भ्रष्टाचार तथा मूल्यवृद्धि। समकालीन उपन्यासकारो न इन सभी कारणो को व्यापक सदर्भों मे रूपायित किया है।

आर्थिक नैतिक वैषम्य का स्वरूपांकन

समाज मे जहाँ पहले नैतिकता पर बल दिया जाता है वहा इस युग मे 'अर्थ' पर विशेष बल दिया जाता है। इस पर भी "प्रत्येक समाज मे नैतिक मूल्यो की विशिष्ट परम्परा होती है। उच्चता, शील, अश्लील, पाप-पुण्यादि के अपने मापदण्ड होते है। समाज की उच्छृ खलता पर नैतिक मूल्यो का नियत्रण रहता है। वर्तमान परिस्थितियो ने भारतीय समाज मे परम्परागत नैतिक परम्पराओ को अस्वीकार करने की परम्परा अपनाई है।'[5] आर्थिक विपन्नता के कारण वात्सल्य का स्वरूप कुंठित हो गया है। अब घर मे शिशुओ का जन्म भारतुल्य लगता है। आचरण की पवित्रता के स्थान पर दैहिक सौन्दर्य को अधिक महत्त्व मिल रहा है। आर्थिक दबावो से घिरकर व्यक्ति स्वकेन्द्रित हो गया है परिणामत प्रेम, स्नेह, करुणा, दया, सेवा जैसे भावात्मक मूल्यो मे

१ आधा गाव—राही मासूम रजा पृ० १३४
२ रतिनाथ की चाची—नागार्जुन, पृ० २३
३ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा पृ० ६६६
४ वही पृ० ६६८
५ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य सक्रमण—डॉ० हेमेन्द्र पानेरी, पृ० १३६

दिखावा आ गया है तथा कृत्रिमता व्याप्त हो गयी है। सडको पर सेक्स उभर रहा है। चुस्त वेशभूषा द्वारा अग-प्रदर्शन तथा रोमास भावना को युवा वर्ग मे अत्यधिक प्रश्रय दिया जा रहा है। इस युग मे 'क्षुधा' और 'काम' दोनो मुख्य विषय बन गए हैं। सेक्स केवल सेक्स के लिए ही है उसका सन्तति से कोई मतलब नही, यह भावना प्रबल हो रही है। पाप-पुण्य की परिभाषा अब बदलने लगी है। पाप-पुण्य का निर्णय धर्म के आधार पर नही वरन् सामाजिक आधार पर किया जाता है। नैतिकता के बदलते परिसदर्भ के साथ-साथ भी आर्थिक-नैतिक वैषम्य रहता है। निष्कर्षत आर्थिक-नैतिक वैषम्य के प्रमुख कारण हैं—(१) समाज मे वर्ग-भावना होना (२) आर्थिक असमानता होना (३) समाज मे नयी पीढी की बदलती धारणा (४) नैतिक तथा आर्थिक पक्ष मे समाज के बदलते मूल्य (५) अर्थवादी प्रकृति (६) स्वेच्छाचारिता आदि।

समकालीन उपन्यासो मे आर्थिक-नैतिक वैषम्य का चित्रण प्रभावशाली ढग से हुआ है। आर्थिक विषमता की ओर दृष्टिपात करता हुआ 'जमीदार का बेटा' उपन्यास का नायक कहता है कि मजदूर द्वारा उच्च मजदूरी की माग उचित तथा न्यायसगत है। वह मजदूरो मे आर्थिक चेतना का प्रादुर्भाव करता हुआ कहता है, "तब तक यह अत्याचार होता रहेगा, जब तक आप लोग सहते रहेगे। स्वराज्य मिलना न मिलना बराबर है। यदि आप एक बार तैयार हो जाइये, एक बार कमर कस लीजिए फिर देखिए ये अग्रेजो के सिखाये-पढाये आपको चूसने वाले आपके मालिक, महतो, बाबू, सरकार सभी अपने-आप ठीक हो जायेंगे। इसमे बहुत विलम्ब की बात नही है।"[1] समाज में प्रचलित देवदासी प्रथा आर्थिक-नैतिक वैषम्य का ज्वलन्त उदाहरण है। आर्थिक वैषम्य के कारण ही 'इजोरिया' राधाकृष्ण की दासी बनने पर मजबूर की जाती है जहाँ वह नैतिकता को खो बैठती है। "मुझे बचाओ। इस पापी ने मेरा सत्यानाश कर दिया है। मैं कही की नही रही। मैं भाग भी नही सकती थी। दिन-रात मुझे कोठरी मे बन्द रखता था।"[2] आर्थिक-नैतिक वैषम्य के कारण ही "इन्सान इन्सानियत भूल गया है। तमाम लोग एक-दूसरे को अनजान की तरह देख रहे हैं। न किसी के दिल मे मुहब्बत है और न मुरव्वत। सभी एक-दूसरे की जान के दुश्मन बन गए हैं।"[3] "अब मनुष्य की शक्ति चाहे धन के रूप मे हो, या विज्ञान के रूप मे, या चालाकी के रूप मे—कूटनीति के रूप मे भी आप कह सकते हैं—

१ जमीदार का बेटा—दयानाथ झा, पृ० ६४
२. माटी की महक—सच्चिदानन्द धूमकेतु, पृ० ३५२
३. वही, पृ० ११

चेतना को बदलती हैं और मानव चेतना भौतिक शक्तियों को बदलती है। इस प्रकार भौतिक परिस्थितियों को बदलता हुआ मानव स्वय को भी बदलता है।"[1] विरोधी विचारधाराएँ भी आधुनिक मूल्य सकट का निमित्त बन गई हैं।

मूल्यों का मूल्यों से पारस्परिक सघर्ष इस नवीन दृष्टि का द्योतक है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे परस्पर-विरोधी मूल्य एक-दूसरे से टकरा-टकराकर टूट रहे हैं। 'जमींदार का बेटा' उपन्यास मे दयानाथ झा गाव मे भौतिकवादी अकेलापन भरने के कारण क्षुब्ध हुआ है। 'सती मैया का चौरा' मे मन्ने के विचारो का भी मूल्यगत बदलाव प्रदर्शित किया, "उसके लिए नैतिकता, सचाई, ईमानदारी, कर्त्तव्य, मानवीयता, आचार-विचार का कोई भी मूल्य नही रह गया है।"[2]

'राग दरबारी' उपन्यास मे सामाजिक मूल्य अवमूल्यन की स्थिति मे पहुच गये हैं। 'माटी की महक' म भी कुछ ग्रामीण पात्र बदलते सामाजिक मूल्यों से असतुष्ट प्रतीत होते है। गौरी कहती है, "गाव वालो के पास बचा हुआ है सिर्फ ईर्ष्या, द्वेप, गरीबी, आपसी वैमनस्य···और दुख से लबालब जीवन।"[3] आज गाँव मे तथा शहर मे 'परम्परागत समाज-व्यवस्था के मूल्य निरर्थक प्रतीत होने लगे है। अत अब व्यक्ति परम्परागत मूल्यो के स्थान पर नवीन मूल्यो को आत्मसात् करने लगा है। इस नवमूल्य परिग्रहण की प्रक्रिया म व्यक्ति के लिए सघर्ष एक आवश्यकता बन गया है। वस्तुत यह समाज मे नहो वरन् मूल्यो का परम्परागत मूल्यो से सघर्ष है। इस मूल्य-सघर्ष मे युगानुकूल मूल्य व्यक्ति का पूर्ण समर्थन पाकर स्थान बनाते जा रहे हैं।"[4] आज परिवार आर्थिक मजबूरियो में इस तरह फँसे है कि उन्हे यह गलीज यथार्थ भी स्वीकार्य है। 'मैला आचल' मे रमजूदास' की पत्नी फुलिया की मा से कहती है, "तुम लोगो को न तो लाज है और न शर्म। कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारी वाली साड़ी चमकाओगी? आखिर एक हद होती है किसी बात की। मानती हू कि जवान बेवा बेटी दुधारू गाय के बराबर है। मगर इतना मत दूहो कि देह का खून भी सूख जाय।"[5] सामाजिक जीवन के इस परम्परानुमोदित ढाचे मे यह सक्रमण आधुनिक बोधन का प्रतिफल है। अत. उपन्यासकारो ने अपनी कृतियो

१ नावेल एण्ड दी पीपुल—रैल्फ फाक्स, पृ० १०५
२. सती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ५८०
३. माटी की महक—सच्चिदानन्द धूमकेतु, पृ० ३३६
४. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासो मे व्यक्ति-प्रतिष्ठा ('आलोचना' त्रैमासिक जुलाई-सितम्बर, १९७२, लेख—डा० हेमेन्द्र पानेरी, पृ० ६०)
५. मैला आंचल—फणीश्वर नाथ 'रेणु', पृ० ६२

में मूल्यगत घात-प्रतिघातो का, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में वर्णन किया है तथा मूल्य-संक्रमण द्वारा बदलती मान्यताओं से परिचित कराया है।

जनव्यापी असतोष की स्थितियाँ

आज समाज मे बदलती धारणाओ के कारण जनव्यापी असतोष दृष्टिगत होता है। 'आधुनिक युग मे समानता, न्यायपरता, निष्पक्षता, निपुणता तथा आर्थिक कल्याण जैसे मूल्य समाज के अच्छे मान जाते है तथा जाति प्रथा, सामाजिक असमानता, प्रशासकीय व राजनीतिक घूसखोरी व भ्रष्टता के आधार पर भेदभाव ऐसे मूल्यों का उल्लघन जनसाधारण चाहता है।[1] परन्तु समाज की स्थिति नयी व पुरानी मान्यताओ के आधार पर झूल रही है। वह अपना पुराना चोला उतारना नही चाहती तथा नय चोले की धारणा का स्वाग भरती है। यही जनव्यापी असतोष का प्रमुख कारण है। आर्थिक असमानता, मूल्य-वृद्धि, बेरोजगारी आदि जनव्यापी असतोष के प्रमुख कारण है। यौन कुठाओ के कारण मनोग्रन्थियो का तथा वासना के स्वतन्त्र-प्रदर्शन द्वारा आत्मपीडा या आन्तरिक पीडा, मानसिक सघर्ष, भविष्य की असुरक्षा आदि सभी जनव्यापी असतोष के कारण हैं।

'नई पौध' उपन्यास म बिसेसरी' की शादी एक बूढे से हाने के कारण युवक वर्ग उसका विरोध करते है तथा बूढे दूल्हा को साफ-साफ कहते हैं, "आप यह गाठ बाध लीजिए कि गाव का एक एक नौजवान पिटते पिटत बिछ जायेगा मगर वह ब्याह नहीं होन देगा।"[2] 'दहजप्रथा एक सामाजिक बुराई होते हुए भी जनव्यापी असतोप का कारण बनी हुई है। 'जो लडका जितना ही पढा-लिखा होता है, उसका भाव उतना ही तेज। लगता है आज के समाज के लोगों की शिक्षा और प्रतिष्ठा केवल दहेज लेने तक ही सीमित है।'[3] आज के जीवन मे 'अर्थ' ही सामाजिक विषमता व जनव्यापी असतोष का कारण बना हुआ है। फलत वर्ग चेतना तथा 'वर्ग-सघर्ष' प्रतिध्वनित हुआ है। बेकारी तथा मशीनीकरण भी जनव्यापी असतोप फैलाती है। "अपने ही मालिक को देख लो न कौन-सी मशीन उन्होंने मगवाई है। बिना बैल के चलती और खेत जोतती है। खाली उसम तेल डालते है लोग और भड-भड की आवाज होती है। खेती का काम इतना आसान हो गया है कि अब जन-मजूरी से भी पेट न भरेगा।।"[4] "यदि पैदा की हुई चीजों और पैदावार के साधनो—कल-कारखानों पर—समाज

---

१ सामाजिक समस्याएँ और सामाजिक परिवर्तन—राम आहूजा, पृ० १५३
२ नई पौध—नागार्जुन, पृ० ७१
३ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ३५
४. नदी फिर बह चली—हिमांशु श्रीवास्तव, पृ० २९२

का, जनता का सामूहिक अधिकार होता तो वे अपनी पैदा की हुई चीजो को नष्ट करने के बजाय उनका खुलकर उपयोग व उपभोग करते और पैदावार को कम करने की मूर्खता न कर उसे खूब बढाते। तब न यह भूख रह जाती, न यह विशाल बेकारी और न यह मृत्यु के भय का दारुण हाहाकार पैदा होता।"[1]

भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार वैयक्तिक विघटन का एक भयानक स्वरूप एव प्रतिमान है, जो समाज के उत्थान एव कल्याण के लिए बनाये गए हैं। 'भ्रष्टाचार' की धारणा मे वह सभी कार्य सम्मिलित हो जाते हैं, जो कानून के विरुद्ध तथा समाज द्वारा अस्वीकृत होते हैं। यह व्यक्तिगत स्वार्थ तथा लाभ की दृष्टि से रिश्वत लेना, सिफारिश करना, जातीयता तथा प्रांतीयता की भावना का प्रभावपूर्ण उपयोग करना आदि भ्रष्टाचार कहलाते हैं।

'भ्रष्टाचार' की अवधारणा

'भ्रष्टाचार' के अन्तर्गत निम्न तत्त्व सम्मिलित किए जाते हैं (१) कोई भी चेतनशील कार्य जो किसी कानून, नियम या व्यवस्था के विरुद्ध हो। (२) कोई भी कार्य जो न्याय तथा नैतिकता का खडन करता हो। (३) कोई भी कार्य जो दूसरो को उसके न्यायोचित एव नैतिक लाभ से वचित करने के लिए किया गया हो। (४) किसी तथ्य या प्रपत्र का जानबूझ कर दबा देना या प्रमाणो को मिथ्यावादी बनाना। (५) बेईमानी तथा कानून-विरोधी कार्यों को करने म सहयोग प्रदान करना। (६) जानबूझकर गुमराह करने वाली गलत रिपोर्ट या सूचना देना। (७) किसी सार्वजनिक कार्य के पालन म पक्षपात दिखाना, आदि विकल्प 'भ्रष्टाचार' की अवधारणा का स्पष्टीकरण करते हैं।'[2]

'भ्रष्टाचार' के कारण

(१) सभी व्यक्ति जानबूझकर या स्वेच्छा से 'भ्रष्टाचार' नही करते वरन् अनेक व्यक्ति ऐसे भी है जो अपनी अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए चाहे कुछ भी अनुचित कार्य करने को बाध्य होते हैं। (२) "अदम्य लालसा का दमन अन्यायपूर्ण आर्थिक विभाजन के कारण होता है। जिस व्यक्ति के पास परिवार हेतु उत्तम भोजन, वस्त्र तथा मकान तक नही है उससे सदाचार की आशा करना व्यर्थ है। अत निर्धनता तथा बेरोजगारी भारत म 'भ्रष्टाचार' के बहुत बडे कारण हैं।"[3] अधिकार-लिप्सा, लालच, पक्षपात, प्रतिशोध

---

१ मुक्तावली—बलभद्र ठाकुर पृ० ३६२
२ भारतीय सामाजिक समस्याएँ—द्वारिकादास गोयल, पृ० ५०३
३ वही पृ० ५०४

सुख भोगते हैं। नैतिकता के ठेकेदार इन पट्टेदारों से पूछिए कि छिप-छिपकर कौन-कौन क्या-क्या करता है।"[1]

'परती परिकथा' में परानपुर गांव में घूसखोरी, पक्षपात आदि सभी मनमाने ढंग से चलते हैं। इस कथन के द्वारा प्रतिनिधि भ्रष्टाचारियों का मुखौटा उतारने का प्रयत्न लेखक करता है। 'मुझे ऐसा भी लगता है कि जानबूझकर ही आपको अंधकार में रखा जाता है।क्योंकि आपकी दिलचस्पी से उन्हें खतरा है।...इन कामों में आपका लगाव होने ही नौकरशाहों की मनमानी नहीं चलेगी। एक कप चाय पीने के लिए तीन गैलन तेल जलाकर व शहर तक नहीं जा सकेंगे। सीमेण्ट की चोरबाजारी नहीं कर सकेंगे। एक दिन के होने वाले काम में एक दिन की देरी नहीं लगा सकेंगे। नदियों पर बिना पुल बनाये ही कागज का एक पुल बनाकर बाद में बाढ़ से पुल के बह जाने की रिपोर्ट वे नहीं दे सकेंगे।"[2] पुलिस की दलाली की चर्चा करते हुए भ्रष्टाचार का चित्रण 'पानी के प्राचीर' में किया गया है 'बैजू, क्या बताऊ, दारोगा किसी तरह मानता नहीं है, पचास रुपए से नीचे आ ही नहीं रहा था, बड़ी मुश्किल से चालीस पर तै किया है। अब तुम लोग वहीं से इन्तजाम करो।'[3] इस प्रकार समकालीन उपन्यासों में भ्रष्टाचार का बहुविध चित्रण हुआ है।

दमित वासनाओं का खुला प्रदर्शन

यौन संबंध में आई नव्यताएं निश्चित ही नवीन परिवेश की देन हैं जिनमें दमित वासनाओं का खुला प्रदर्शन होता है। यौन संबंधों में शहरी सभ्यता का संक्रमण स्पष्ट दिखाई देता है। फणीश्वर नाथ रेणु की 'परती-परिकथा' में यह प्रदर्शन खुले रूप में चित्रित हुआ है। इनके उपन्यास 'जुलूस' का उदाहरण प्रस्तुत है—"डूबकर पानी पिओ, एकादशी का बाप भी न जाने। पहले तो एक तालेवर गोड का ही किस्सा मशहूर था कि बड़ी पतोहू से 'साट-साट' है। अब तो भैया-बहिन में भी शुरू हो गया।"[4] यौन संबंधों की यह परिवर्तित स्थिति है। ग्रामजीवन में छोटी-बड़ी जाति के यौन संबंध वहां के परिवेश की परिवर्तित नैतिक मान्यताओं का उद्घाटन करते हैं। भैरवप्रसाद गुप्त 'सती मैया का चौरा' में यौन संबंधों के संघर्ष में छोटी बड़ी जातियों के अनुदान का उल्लेख करते हैं। "पियरी गाँव में दिन-दहाड़े तेलियान से गुजर रही चमार की बेटी कैलसिया को जब नन्दराम का लड़का जबरदस्ती उठाकर ले गया और बला-

---

१ सूखता हुआ तालाब—रामदरश मिश्र, पृ० ७
२ परती परिकथा—फणीश्वर नाथ रेणु, पृ० ५०८
३ पानी के प्राचीर—रामदरश मिश्र, पृ० ५३
४. जुलूस—फणीश्वर नाथ रेणु, पृ० १०८

स्कार किया।"[1] यौन सबध तथा तज्जनित नारी चेतना के स्वरो को रामदरश मिश्र ने बडी ही समीपता स पहचाना है। "फैशन की दौड धूप, शहरी सभ्यता के सक्रमण एव जीवन मूल्या की टूटन स यौन सबधी नैतिकता के नये प्रतिमान उभर रह हैं।" इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था मे वासनात्मक प्रवृत्ति का नैतिकता तथा धार्मिकता की आड मे प्रतिबन्ध स्वरूप रोका जाता था। यौन सबध छिपा छिपी म ही चलता रह परन्तु खुले प्रदशन का एक प्रकार से सामाजिक हेय दृष्टि स देखा जाता था। बदलती परिस्थितिया तथा स्वच्छन्दता के कारण अब यौन सबधा का खुला प्रदशन समाज म परिलक्षित होने लगा है। "दमित वासनाओ के प्रदर्शन पर अब उतनी रोक टोक नही जो पूर्वावस्था मे थी।" 'समर्पण' तथा 'गर्भपात आज के समाज की दमित वासनाओ के प्रदर्शन का प्रतिफल है। अवदमित वासनाआ का खुला प्रदर्शन राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' उपन्यास के एक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत होता है। "कल्याणी निर्मल के सम्पर्क म आती है। इसमे पूर्व उसे कभी किसी स्त्री का प्यार नही मिला था। वह कल्याणी को अपनाता है। कल्याणी खुलकर खेलने की आदी हो चुकी है। उम पसन्द नहीं कि लोग दरवाजा बन्द करके छिपकर खेलें।'[3] यह निर्मल को दरवाजा बन्द नही करने देती इसकी क्या जरूरत है? पर्दे के पीछे क्या होता है यहा कोई झाँककर नही देखता।'[4] इसी प्रकार का एक उदाहरण और प्रस्तुत है। निर्मल शीरी का उत्तेजित करता है, कपडे उतारता है तो शीरी चीखती है। आते क्या नही? देर क्यो करते हो? —फिर निर्मल रतिक्रिया मे व्यस्त शीघ्र ही ठण्डा पड जाता है। शीरी की प्रतिक्रिया इस प्रकार उसके शब्दा म परिलक्षित होती है। 'सिर्फ इतना ही चाहते थे, मुझे मार क्यो नही डालते।' वासनाओ के खुले प्रदर्शन तो होने लगे हैं परन्तु उन्हे अभी पूणत नैतिक मा यताए नही प्राप्त है। बडी चम्पा छोटी चम्पा' म लक्ष्मीनारायण लाल ने एक उद्धरण द्वारा इसका स्पष्टीकरण किया है। "गगा बेनी उर्फ बडी चम्पा ने कहा, फून बाबू पति क्या है? सुहाग किसे कहते हैं? तुम क्या चाहते हो? शरीर, वह ता तुम्हे सराय मे मिल चुका है। जब शरीर दिया तब तुमन दिल माँगा और जब दिल दिया तब मुझे बदशक्ल कहा।'[5] "छोटी चम्पा न भी दमित वासनाआ के प्रदर्शन म प्राप्त आत्मपीडा का परिचय इस प्रकार दिया, 'माँ, यह दुनिया जगल नही पिंजरा है, जहाँ जाती हूँ, मुझे यही

१ सती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त पृ० ५६१
२ हिन्दी उपन्यासो में प्रेम और जीवन—डा० शान्ति भारद्वाज पृ० २७१
३ मछली मरी हुई—राजकमल चौधरी पृ० ७०
४ वही पृ० ७०
५ बडी चम्पा छोटी चम्पा—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० १३१

सीखचे बाँध लेते हैं। कही मोहब्बत के नाम पर, कही इन्सानियत के नाम पर, कही समाज के नाम पर, कही जजबात के नाम पर, मैं कहाँ उड जाऊँ, कही मुझे खुला आसमान नही दिखाई पडता।"[1] इस प्रकार आज अनेक उपन्यासो म दमित वासनाओ का गुने रूप मे चित्रण हुआ है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम म विभिन्न युगा की औपन्यासिक कृतिया का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन क पश्चात हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि प्रेमचन्द-पूर्ववर्ती उपन्यासो का प्रवृत्तिमूलक अकन सुधारवादी दृष्टिकोण से हुआ है। इस युग के लेखक सनातन धर्म पर विश्वास करते हुए रूढिवादी धर्म के प्रति आस्था रखते थ। आज के प्रगतिशील युग मे व सभी विचार रूढिग्रस्त तथा अनुदार प्रतीत होत है। इस युग के उपन्यासकारा ने अनेक युगीन समस्याओ को अपनी रचनाओ म उठाया है। उन्होने न केवल प्रश्न उठाय हैं वरन् उनको युगीन परिस्थितिया के सन्दभ म स्पष्ट करने का प्रयास भी किया है। मुख्य रूप से पर्दाप्रथा, दहजप्रथा, सतीप्रथा, दाम्पत्य जीवन की विसगतियो, नारी स्वातन्त्र्य, जातिवाद की विडम्बना तथा सास्कृतिक चेतना के ह्रास आदि प्रसगो पर बल दते हुए उनका यथार्थ रूप म अकन किया है। कतिपय उपन्यासो म विरोधात्मक दृष्टिकोण रखते हुए भी स्पष्ट विरोध नही कर पाय हैं।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासो मे मध्यवर्गीय दुर्बलताओ, आदशवादी तथा सुधारवादी भावनाओ का चित्रण करते हुए लेखको ने सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना का भी रूपाकन किया है। प्रेमचन्द के उपन्यासो म सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक किसी भी समस्या को छोडा नही गया है। इस काल के उपन्यासो म नवीन नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा भी हुई है। सयुक्त परिवार का विघटन, अवैध प्रेम अछूतोद्धार तथा अन्तर्जातीय विवाह जैसी समस्याओ का विस्तृत रूप म चित्रण हुआ है। प्रस्तुत प्रसग म डॉ० रामविलास शर्मा का यह कथन सर्वथा सार्थक प्रतीत होता है कि 'प्रेमचन्द एक यथार्थवादी कलाकार थ। वह जीवन की सच्चाई आकना चाहते थ, जीवन के भ्रमो का खडन करना चाहते थे। प्रेमचन्द का साहित्य बीसवी सदी के हिन्दुस्तान का सच्चा इतिहास है।"[2] अत प्रेमचन्द के उपन्यास प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासो की युगवाणी है। सभी उपन्यासो मे सत् असत् की यथार्थ विवेचना का आग्रह है।

---

१ बडी चम्पा छोटी चम्पा—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० १४६
२ प्रेमचन्द और उनका युग—डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० १५८

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासो मे हम पाते हैं कि जीवन की प्रत्येक समस्या 'अर्थ' से जुडी हुई है। इस काल मे 'अर्थ' के आधार पर शोषण करने वाले वर्गों यथा—पूजीपति, सामन्तो का विशद विवेचन किया गया है। मध्य तथा श्रमिक वर्गों की शोषण से जर्जरित स्थितियों का भी मार्मिक चित्रण हुआ है। जीवन की सघर्षमूलक परिस्थितियो से उलझे हुए पात्र अपनी मुक्ति-कामना के लिए छटपटाते दिखाई देते हैं। इस युग के उपन्यासकारों के समक्ष 'रोटी और यौन' दो समस्याए ही प्रमुख रही हैं। वर्तमान के प्रति क्षोभ प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकारो ने भविष्य के प्रति दिशा-निर्देश किया है। इस युग के उपन्यासकारो ने वर्गविहीन समाज के निर्माण की महती कल्पना सदैव ही अपनी उपन्यास-कृतियो मे सजोई है तथा सामाजिक व्यवस्था के बढते प्रभाव के कारण वर्ग-वैषम्य तथा वर्गगत चेतना के माध्यम से 'वर्ग सघर्ष' का आह्वान किया है। मनोवृत्ति, कुठा, संत्रास, अनास्था तथा पलायन आदि वृत्तियो की खुलकर विवेचना की गई है। समकालीन उपन्यासो मे मूल्यगत सक्रमण, आर्थिक नैतिक वैषम्य, जनव्यापी असन्तोष तथा दमित वासनाओ का उन्मुक्त चित्रण हुआ है। साथ ही युग-जीवन की ज्वलत समस्याओ का भी जीवन्त चित्रण हुआ है। वर्तमान सामाजिक जीवन की जटिलताए मूलत अर्थमूलक हैं। देश के बहुआयामी विकास को ध्यान म रखते हुए इन जटिलताओं को सुलझाने का प्रयास इस काल मे उपन्यासकारो ने किया है।

अध्याय ३

मार्क्सवादी चेतना के हिन्दी उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष

मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासो की सृजनात्मक प्रेरणाएँ

प्रकृति की दूसरी शक्तियो की भांति मनुष्य की सृजनात्मक प्रवृत्ति भी एक शक्ति है। प्रकृति की दुर्दमनीय शक्तियो यथा—जल, वायु, बिजली आदि को मनुष्य ने अपने उपयोग के लिए वश मे कर लिया है तो क्या वह अपनी सृजन शक्ति को स्वाभाविक मार्ग देकर अपने जीवन के आनन्द के स्रोत को सकट का कारण बनने से नही बचा सकता ? यह प्रश्न प्रत्येक ऐसे कथाकार के समक्ष मौजूद है, जो व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख है। इस प्रश्न के साथ सृजन काल की अनेक प्रेरणाएँ तथा प्रवृत्तियां भी कथाकृति के साथ जुडी रहती हैं। जिनसे विमुख होकर कथाकार एक कदम भी साहित्य जगत् मे आगे नही बढ पाता। "प्रेमचन्द के बाद गाधीवादी राजनीतिक चेतना के स्थान पर हिन्दी साहित्य मे मार्क्सवादी चेतना की एकदम बाढ-सी आ गई।"[1] मार्क्सवादी चिन्तन पद्धति के अनुसार मनुष्य अपने इतिहास तथा भाग्य का स्वय ही नियामक है तथा उत्पादन के साधनों के अनुसार ही प्रत्येक काल म सामाजिक चेतना विकसित हुई है और तदनुरूप ही तत्कालीन समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। जब सामाजिक चेतनता तथा उत्पादन की शक्तियो मे असामजस्य उत्पन्न हो जाता है, तब सघर्ष की स्थिति जन्म लेती है। परिणामस्वरूप आर्थिक आधार बदल जाते हैं। परस्पर विरोध तथा द्वन्द्व के कारण सामाजिक विचार भी परिवर्तित हो जाते हैं। पुन नयी समस्याएँ खडी हो जाती है, जिनका तत्कालीन लेखक अपनी कृति मे उल्लेख करते हैं, 'परन्तु यह अनिवार्य नही कि जिन सामाजिक सघर्षों का चित्रण लेखक कर रहा है, उनका बना-बनाया भावी समाधान भी

---

१ हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास— डॉ० हरवशलाल शर्मा, पृ० २१५

दे।"[1] "मार्क्सवादी दर्शन भौतिक जीवन मे आस्था रखते हुए उसकी व्याख्या करता है। इतिहास को सुसम्बद्ध क्रमिक विकास के रूप मे देखता है। इस विकास-क्रम को स्पष्ट करने के लिए दार्शनिक सिद्धान्तो के प्रकाश मे उसकी व्याख्या करता है तथा भावी योजनाओं का निर्माण करता है। इस प्रकार मार्क्सवादी दर्शन वह जीवन-सूत्र है जो समाज के ऐतिहासिक, राजनीतिक और आर्थिक से लेकर सास्कृतिक व साहित्यिक पक्षो तक मे एक ऐसी सूत्रता स्थापित कर देता है, जिसे हम अलग करके नही देख सकते।"[2] "मार्क्सवाद से प्रभावित विचारधाराओ ने मनुष्य के आन्तरिक जगत् की अवहेलना करके उसकी समस्त प्रवृत्तियों की प्रेरणाओं को सामाजिक सम्बन्धो में ढूँढा है।"[3] मार्क्सवादी चेतना से "समाज को ऐसी विविध प्रवृत्तियाँ प्राप्त रहती हैं, जिनके माध्यम से समाजवादी रूप विधान की स्थापना कर शोषण, वर्ग-वैषम्य, आर्थिक असमानता तथा सामाजिक अत्याचार की स्थापना की जा सकती है।"[4] मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित होकर जिन कथाकारो ने उसे अपनी रचना म स्थान दिया उनम से प्रमुख हैं—यशपाल, रागेय राघव, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव, रामेश्वर शुक्ल 'अचल' आदि। इन रचनाकारो की सृजनात्मक प्रेरणाएँ इस प्रकार हैं—

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् रूसी क्रान्ति द्वारा भारत मे मार्क्सवादी चेतना का प्रसार

'विषमता पूँजीवादी व्यवस्था का सबसे बडा अभिशाप है। यह विषमता ही अनक रूपा मे व्यक्त होकर युद्ध और कलह को जन्म देती है। लोहे के बने हुए शरीर में अतृप्त धनलाभ की आत्मा को धारण किए यह पूँजीवाद का विकराल दैत्य जहाँ कही भी जाता है वहाँ युद्ध तथा हिंसा की विभीषिका अनिवार्य रूप से प्रेतछाया के समान उसके साथ चलती है।'[5] अत प्रथम युद्ध का कारण यही व्यवस्था थी, पूँजीवादी शक्तिया के बीच ससार के पुनर्विभाजन की समस्या ही इस युद्ध का मूल कारण थी।'[6] जिस समय पूँजीवादी वर्ग बाजार म सोना बटोर रहा था, उस समय भारत की सामान्य जनता विशेषकर मजदूर, किसान और निम्न मध्य वर्ग के लोग गरीबी और भुखमरी का सामना कर रहे थे।

---

१ हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद—विजयशकर मल्ल, पृ० १२१
२ हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० १
३ हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अध्ययन—डॉ० गणेशन, पृ० ४२६
४ हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ—डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० १२०
५ हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० २१५
६ सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास—अनु० रामविलास शर्मा, पृ० १७३

उस समय रूस की जनता को सफलता प्राप्त हुई, जिसका कारण वहाँ पहले से ही सजग सर्वहारा वर्ग की एक सुदृढ़ क्रान्तिकारी पार्टी का विद्यमान कार्यक्रम था।" अत भारतीय मजदूर जो असतोष की अग्नि में जल रहे थे, रूसी क्रान्ति की सफलता ने उनमे भी आशा तथा सफलता का उत्साह भर दिया। फलत १९१८ से भारतीय मजदूर आन्दोलन एक नई चेतना लेकर जाग उठा और हड़तालों का देशव्यापी क्रम आरम्भ हो गया।"[1] "मन्मथनाथ गुप्त देश के स्वतन्त्रता-संघर्ष के अन्तर्गत महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी आन्दोलन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहे हैं, उनके पास पूंजी के रूप मे जीवन के अनुभवों का समृद्ध भडार है।"[2] इसी रूसी क्रान्ति से प्रभावित होकर "यशपाल ने अपने उपन्यास मे मूलत दो प्रश्नों को उठाया—क्या क्रान्ति समाजवाद से होगी या आतकवाद से? यानी क्या छिप-छिपकर लूट-मार खून-खराबा करते रहने वाले आतकवादियों का कार्य सामाजिक निर्माण के लिए उपयोगी है या जनता के बीच अपार लगन और श्रम से सगठन करने वाले जनसेवियों के कार्य?"[3] अत यशपाल जी ने जनवादी चेतना को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना चाहा, क्योंकि देश पराधीन था तथा पराधीनता न केवल विदेशी शासनजन्य थी बल्कि स्वदेशी-विदेशी जीवन-पद्धति से भी पैदा हुई थी।" 'दादा कामरेड' के दादा पहले आतकवादियों के नेता के रूप मे हमारे सामने आते है तथा अन्त मे कामरेड बनकर साम्यवादी जीवन-दर्शन की विजय को घोषित करते हैं। 'दादा कामरेड' उपन्यास की रचना साम्यवाद तथा आतकवाद से प्रभावित रही है। 'दादा कामरेड' सशक्त क्रान्ति के पक्ष मे हैं। वे कहते है, "स्टडी और नये टेकनिक (अध्ययन और नई प्रणाली) की नई-नई बातें मैं न जानता हूँ तथा न मुझे इनसे मतलब है। इतने समय तक मैंने लड़कर निभाया है तथा आगे भी लड़ता रहूँगा।"[4] वे कहते है, हमारा उद्देश्य तो इस देश की जनता का शोषण समाप्त कर उनके लिए आत्म-निर्णय का अधिकार प्राप्त कराना है।

देश में मार्क्सवादी साहित्य का प्रसार-प्रचार

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद लोगों के मन मे मार्क्सवाद के प्रति जिज्ञासा व्याप्त हो गई थी और ब्रिटिश सरकार हर सभव उपाय द्वारा मार्क्सवादी विचारों के प्रवेश और प्रसार को रोकने का प्रयत्न कर रही थी। सन् १९१८ के बाद भारत मे मार्क्सवाद की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आरम्भ हुई।

---

1 Trade Union Movement in India—A S Mathur, P. 16
२ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० १७१
३ हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ११६
४ दादा कामरेड (सातवां संस्करण)—यशपाल, पृ० ४५

'नवयुग' बगाल का दैनिक समाचार पत्र था, जिसके सस्थापक मुजफ्फर अहमद तथा नजरुल इस्लाम थे। लाहौर म 'इन्कलाव' पत्र का प्रसार हुआ। श्रीपाद अमृत डागे का नाम विचारधारा के साथ प्रमुखता से जोडा जाता है। "क्योकि इन्होंने 'गाधी और लेनिन' पुस्तक लिखकर लेनिन पक्ष का समर्थन किया।"[1] "सन् १९२२ मे इन्ही के सम्पादन मे 'सोशलिस्ट' अग्रेजी साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ।"[2] इसके अतिरिक्त इन्हे मार्क्सवाद की सैद्धान्तिक पुस्तको का अनुवाद प्रकाशित करने का भारत म प्रथम श्रेय प्राप्त था। हिन्दी जगत् मे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रथम निबन्ध 'हमारे गरीब किसान और मजदूर' जनार्दन भट्ट न लिखा। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद की 'मर्यादा' तथा जबलपुर की 'श्रीशारदा', कानपुर की 'प्रभा' और 'ससार' नामक मार्क्सवादी विचार विश्लेषण की मासिक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुई। इन सभी पत्रिकाओ तथा निबन्धो के प्रसार द्वारा मार्क्सवादी चेतना प्रबल हुई तथा हिन्दी उपन्यासकारो का ध्यान भी इस ओर प्रेरित हुआ। वर्ग-वैषम्य, पूंजीवादी व्यवस्था, क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, शोषण की प्रवृत्ति, आर्थिक विषमता आदि प्रवृत्तियो ने उपन्यासकारो को इस विचारधारा से सन्दर्भित उपन्यास लिखने की प्रेरणा प्रदान की। अब हम क्रमश प्रवृत्तियो के उल्लेख म विचार करेंगे कि मार्क्सवादी चेतना को उपन्यासो मे किस प्रकार चित्रित किया गया।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचार-दर्शन

डॉ० सुषमा धवन ने लिखा है 'मार्क्स का यह भौतिकवाद अन्य भौतिकवादियो की परम्परा से भिन्न है। अन्य भौतिकवादियो का दृष्टिकोण यान्त्रिक था। इसीलिए मार्क्स के भौतिकवाद को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की सज्ञा दी है। द्वन्द्वात्मक विकास से आशय है कि विश्व स्थिर नही गतिशील है।"[3] वह द्वन्द्व तथा सयोग से निरन्तर बदलता रहता है। द्वन्द्वात्मक विचारधारा से प्रभावित लेखको ने 'आर्थिक वैषम्य के शिकार सर्वहारा वर्ग की दयनीय स्थितियो एव करुण चित्रो का प्रस्तुत करते हुए वर्ग-सघर्ष की उभरती हुई चेतना को रेखांकित करन का प्रयास किया है।'[4] "भौतिक शक्तियाँ मानव चेतना को बदलती हैं तथा मानव चेतना भौतिक शक्तियो का बदलती है। इस प्रकार भौतिक परिस्थितियो को बदलता हुआ मानव स्वय को बदलता है।'[5] अत मार्क्सवादी जीवन-

१ हिन्दी काव्य मे मार्क्सवादी चेतना—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० २२५
२ वही, पृ० २२ -२२६
३ 'हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन, पृ० २८३
४ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी पृ० १११
५ नावल एण्ड पीपल—रैल्फ फाक्स, पृ० १०५

दर्शन के अनुसार भौतिक जगत् का अस्तित्व मनुष्य के चिन्तन से स्वतन्त्र है।"[1] अतः मार्क्स की इस प्रेरणा से प्रभावित होकर उपन्यासकारों ने द्वन्द्वात्मक जीवन का विश्लेषण किया। इनमें दो श्रेणियों के उपन्यासकार हैं—जिन्होंने परम्परा की प्रबल अवरोधक शक्तियों से संघर्ष का स्वरूप दिखाया है, जैसे रामेश्वर शुक्ल 'अचल' भी इसी श्रेणी में आते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में मार्क्सीय दृष्टि से कुछ समस्याओं का अध्ययन किया है। आर्थिक संकट, विषम परिस्थितियों का संघर्ष, जीवन-व्यापी संस्कारों का घात-प्रतिघात दिखाना ही उनका ध्येय रहा है। अमृतलाल नागर का 'महाकाल' तथा रांगेय राघव का 'विषाद मठ' इसी श्रेणी में आते हैं। भगवतीचरण वर्मा का 'आखिरी दाव' भी इसी प्रकार का उपन्यास है।

आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोह

इतिहास के प्रत्येक चरण में श्रमिक वर्ग आर्थिक विपन्नता से परिपूर्ण रहा है। चाहे वह सामन्तवादी व्यवस्था हो अथवा पूँजीवादी। मार्क्सवाद की ओर आकर्षित होने वाले कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं में सी० आर० दास, नेहरू तथा डॉ० सम्पूर्णानन्द थे। 'सी० आर० दास मानवतावादी मनोवृत्ति के कांग्रेसी नेता थे, जिनके हृदय में भारत की दरिद्रता-ग्रस्त जनता के लिए सच्ची सहानुभूति विद्यमान थी।'[2] 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित उनके शब्द इस व्याख्या को स्पष्ट करते हैं, "मैं ऐसा स्वराज्य नहीं चाहता जो केवल मध्यम श्रेणी के लिए होगा। मैं वर्गों के लिए नहीं, आम जनता के लिए स्वराज्य चाहता हूँ। मुझे पूँजीवादियों की परवाह नहीं, वे हैं ही कितने।"[3] सम्पूर्णानन्द एक क्रान्तिकारी के रूप में इस जगत् में उतरे। अतः क्रांतिकारी तथा मानवतावादी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर भी उपन्यासों की रचना की गई। यशपाल आर्थिक शोषण का विरोध करते हुए मजदूर वर्ग के माध्यम से कहलाते हैं, "जब साम्राज्यवादी देश परस्पर युद्ध में भिड़ें, एक-दूसरे देश के पूँजीपति शासक श्रेणियों की व्यवस्था को निर्बल कर रहे हों, मेहनत *करने वाली श्रेणी के लिए अपने देश में शक्ति हथियाने का स्वर्ण संयोग है।"*[4] इसी प्रकार 'जब सूरज ने आँखें खोलीं' की महाजन पात्र विन्दो द्वारा शोषण की प्रक्रिया बताई है जो जाति से ब्राह्मण तथा धन्धा महाजनी का करती थी। "विन्दो की नीयत दुरुस्त नहीं थी। उसके पास बेशुमार पैसा था, फिर भी

१ हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन, पृ० २९३

२ *हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना*—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० १४८

3 The Tribune (Lahore), Nov 4, 1922, P 3 (Quoted by Overstreet and Windmiller in Communism in India, P 47)

४ देशद्रोही (चतुर्थ संस्करण)—यशपाल, पृ० १३५

उसका पेट नही भरता था। 'गौरी, अन्दर जाओ। अपना सामान और बच्चो को ले आओ। इस घर मे बिन्दो का ताला पडेगा।'[1] आर्थिक शोषण के कारण गौरी घर से बेघर कर दी गई तथा इस परिस्थिति का गाँव के किसी व्यक्ति ने *विद्रोह नही किया, कारण था आर्थिक व्यवस्था की प्रधानता, गरीबी तथा* महाजनी शोषण। यह शोषण की प्रक्रिया मार्क्सवादी चेतना द्वारा अभिव्यक्त आर्थिक शोषण की प्रक्रिया का ही एक अग थी। इस प्रकार के शोषण के प्रति विद्रोह का प्रकटीकरण 'मशाल' के क्रान्तिकारी पात्र शकूर' के द्वारा हुआ है "नही, सकीना, इसमे हमारी किस्मत का दोष नही है। दोष इस राज का है, जिसमे मेहनत करने वाले भूखों मरते है और हुकूमत करने वाले सरमायेदार और उनके एजेण्ट बैठे-बैठे मजे उडाते है। पर सकीना, अब जमाना करवट ले रहा है, दुनिया के मजदूर अब जाग गये है।"[2]

राष्ट्रीय आन्दोलन और वर्ग-क्रान्ति की भूमिका

जारशाही के पतन और रूसी क्रान्ति के पाँच माह के अन्दर ही उसकी प्रतिक्रिया से भारत को बचाने के लिए अग्रेजी सरकार ने स्वायत्त शासन की सस्थाओ का विकास करना प्रारम्भ कर दिया तथा 'रौलट एक्ट' द्वारा दमनकारी कानून भी बनाने की योजना स्थापित की, जिसका सम्पूर्ण देश मे विरोध हुआ। 'रौलट एक्ट' की प्रतिक्रिया इतनी गहरी होगी तथा सत्याग्रह व हडताल के लिए देश की जनता इतने जोर से उमड आयेगी, इसके लिए गाधीजी और सरकार दोनो ही तैयार नही थे, अतः आन्दोलन ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सुसगठित रूप धारण कर लिया। "सन् १६२३ के बाद भारत मे मार्क्सवादी विचारधारा के विकास के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो चुकी थी तथा कम्युनिस्ट पार्टी एक अखिल भारतीय मार्क्सवादी सस्था के रूप म विकसित होने लगी।"[3] अत एव नवम्बर, १६२५ को बगाल मे नजरल इस्लाम के नेतृत्व मे 'भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस मजदूर पार्टी' के नाम से नयी सस्था का जन्म हुआ। मार्क्सवादी धारणा के अनुसार असहयोग आन्दोलन व अन्य राष्ट्रीय आन्दोलनो मे क्रान्तिकारी भूमिका मे मजदूरो का योगदान किसानों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। मजदूरों मे असन्तोष की भावना बढ गयी, तथा हित-रक्षा हेतु सघर्ष व हडतालों की बाढ आ गयी जिनका वर्णन उपन्यासकारो ने सशक्त रूप मे किया है।

अग्रेजो द्वारा शोषण से मुक्ति पाने तथा पराधीनता की बेडियो से आजाद होने के लिए काग्रेस आन्दोलन जोर पकड रहा था। महात्मा गाधी के

---

१ जब सूरज ने पाँखें खोलीं—कमल शुक्ल, पृ० ६४

२ मशाल—भैरवप्रसाद गुप्त, १२२

३ हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ २६१

नेतृत्व मे समस्त देश एक विशाल आन्दोलन की आंधी लेकर अग्रेजो के विरुद्ध खड़ा हो गया। "उन्होंने 'भारत छोडो' का तूफानी नारा लगाया। आन्दोलन ने क्रान्तिकारी रूप धारण किया। जनता ने अपने सामने आने वाली हर रुकावट को दूर करने का बीडा उठाया।"[1] यह समस्त कार्य वर्गगत चितन तथा वर्ग-भावना के परिणामस्वरूप हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण 'दादा-कामरेड' उपन्यास मे भी किया गया है। इसमे मजदूर का पक्ष लेकर राष्ट्रीय चेतना की ओर सकेत है। इस उपन्यास मे यशपाल मजदूर की क्रान्तिकारी भूमिका मे मार्क्स के 'सर्वहारा वर्ग' द्वारा राज्य-स्थापना की कामना करते है। "मालिकों की दया से ही मजदूरो की अवस्था सुधर सकती है। हम तो मालिक-मजदूर का अन्तर ही मिटा देना चाहते हैं। हम मालिक को मालिक नही रखना चाहते तो फिर कांग्रेस की मालिक श्रेणी हमें कैसे सहन कर सकती है।"[2] रामप्रसाद मिश्र के विचार मार्क्सवादी विचारो से पूर्णत मेल खाते है तथा सम्पूर्ण क्रान्ति मे विश्वास करते हैं। "मैं भारतीय समाज, भारतीय राजनीति, भारतीय आर्थिक व्यवस्था सब मे क्रान्ति चाहता हूँ। रूस की क्रान्ति सच्ची क्रान्ति थी, क्योंकि उसने राष्ट्र के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक सघटन मे आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। रूस की क्रान्ति मानवता के इतिहास की सबसे बडी क्रान्ति थी, जो अन्य अनेक महाक्रान्तियों को जन्म दे चुकी है, दे रही है और देती रहेगी।"[3]

मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासों की प्रवृत्तियां

मार्क्सवादी चेतना के प्रतिनिधि कथाकारो मे यशपाल, रांगेय राघव, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतलाल नागर, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी कृतियों की सृजनात्मक प्रेरणाएँ किसी न किसी रूप मे 'वर्ग सघर्ष' और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से सम्बद्ध है। "यशपाल के उपन्यास आतंकवादी दल की क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों का उद्घाटन करते है। 'दादा कामरेड,' 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप', इनमे आतंकवादियों की रोचक और रहस्यमय प्रवृत्तियों का विस्तृत चित्रण मिलता है।"[4] द्वन्द्वात्मक-विश्लेषणवादी प्रवृत्ति के परम्परागत उपन्यासो मे 'चढती धूप' मे परम्परा की प्रबल अवरोधक शक्तियों से सघर्ष करते हुए जीवन को अग्रसर होते दिखाया गया है। अचलजी के दोनों उपन्यासों मे मार्क्सीय दृष्टि से कुछ समस्याओं का

---

१ दबदबा, पृ० २४२-२४३
२ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० १२४
३ कहाँ या क्यों—रामप्रसाद मिश्र, पृ० १६१
४. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन—डॉ० गणेशन, पृ० २२५

अध्ययन किया गया है। "उठती हुई बौद्धिक चेतना और पीढियों से चले आ रहे संघर्ष, जीवनव्यापी संस्कारों का पारस्परिक घात प्रतिघात और संघर्ष दिखाना उसका ध्येय है।"[1] मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिवादी चिन्तन केवल रामेश्वर शुक्ल अचल के उपन्यासों में मिलता है। इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में भी मार्क्सवादी चेतना से सम्पृक्त प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती है।

समाज-व्यवस्था के प्रति असंतोष की प्रवृत्ति

रूस की साम्यवादी चेतना ने मार्क्सवादी चेतना का प्रादुर्भाव किया। जार शासन-काल में रूस की समाज-व्यवस्था अत्यन्त दयनीय थी। सम्पूर्ण देश उसकी एकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था में पीडित था। 'वहा एक ऐसी क्रान्ति की आवश्यकता थी जो शासन-व्यवस्था को बदलकर साम्यवादी समाज को जन्म दे सके। कार्ल मार्क्स तथा लेनिन के विचारों न इस क्रान्ति के बीज वपन किये तथा एक दिन आया जब शासन के दमन की प्रतिक्रिया के रूप में रूसी जनता में—जिनमें अधिकाश श्रमिक, कृषक तथा शोषित वर्ग के ही लोग थे—एक महान क्रान्ति का उदय हुआ। हमारे देश की राजनीतिक व सामाजिक स्थिति भी रूस से भिन्न नही थी। जहा वह देश अंग्रेजी शासन की शोषण-नीति से पीडित था, वहाँ उसे धर्म और समाज-व्यवस्था के नाम पर प्रचलित रूढियो, अन्ध-विश्वास, उच्चवर्गीय दमन और शोषण भी बुरी तरह जर्जर कर रहे थे।"[2] जहा हमारे देशवासी भी एक ऐसी क्रान्ति की कामना कर रहे थे जो इस विश्व को एक नवीन रूप में परिवर्तित कर दे। विश्व साम्राज्यवाद और पूँजीवाद से बुरी तरह जकडा हुआ था। भारत की तरह अन्य देशों की जनता भी अनेक प्रकार की विषमताओं और अत्याचारों से पीडित थी। अत अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्ष हुआ किन्तु राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होने के उपरान्त भी आज हमारा देश आर्थिक पराधीनता से मुक्त नही है। समाज में शोषण का क्रम पूर्ववत् ही बना हुआ है।

सामाजिक व्यवस्था के प्रति असतोष, 'मशाल' के पात्र शकूर में है जो समाजवादी विचारधारा से प्रेरित है। मजूर समझता है—"हमने यह दुनिया बनाई है, दुनिया की हर चीज हमारी ताकत से बनी है। दुनिया की हर चीज हमारी है। लेकिन दुनिया के चन्द सरमायेदारों ने इन चीजों पर अपना नाजायज हक जमा रखा है, हमें बेवकूफ बनाकर। वे हमसे गुलामों की तरह काम कराते हैं और हमारी मेहनत की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं।"[3] इसी

---

१ चढ़ती धूप (भूमिका), पृ० ५

२. प्रगतिवादी काव्य साहित्य—डॉ० कृष्णलाल हस, पृ० ११७

३ मशाल—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १०८-१०९

प्रकार 'आखरी दाँव' में 'चमेली', जो फिल्म की हिरोइन बनकर हजारों रुपये के वारे-न्यारे करती है, अपने पति से कहती है, "इस पान की दुकान से काम न चलेगा, जीवन की धारा बदल चुकी है। हम लोगों को धनपिशाच न जाने कहाँ का कहाँ ले आया। उसकी भयानक पकड़ में आ चुके हैं हम दोनों, उस पकड़ से बचना गैरमुमकिन है।"[1] पूँजीवादी वर्ग-चेतना से प्रेरित स्वार्थवृत्ति का 'गंगादेवी' को अच्छा ज्ञान था। 'सबहिं नचावत राम गुसाईं' में गंगादेवी ने पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था पर असंतोष प्रकट किया है। गंगादेवी को पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का अच्छा-खासा ज्ञान था। उन्होंने कहा, "इसका मुनाफा पहले तो मजदूरों और कार्यकर्ताओं को मिलेगा बोनस के रूप में, फिर सरकार को मिलेगा विभिन्न करों तथा इन्कमटैक्स के रूप में, इन सबसे जो कुछ बचेगा वह हम लोगों को मिलेगा।"[2] इसी प्रकार पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में व्यापारी तथा महाजनों की दोहरी नीति द्वारा समाज में असंतोष व्याप्त दिखाया गया है, डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल के उपन्यास 'रूपाजीवा' में। "गोरेमल का विश्वास था, हम बड़े व्यापारी और महाजन हैं तो क्या ठलवार के दिनों में बैठे-बैठे अपना खाएँ? नहीं। इन दिनों जब अपनी दुकान के काम से फुरसत मिले तो अपने आदमियों और अपनी मेहनत से बस्ती के चार-छः वकील, मुखतार, डॉक्टर, हकीम, मास्टर, प्रोफेसर, थाना पुलिस, डाकखाना तार, स्टेशन, तहसीलदार, एस० डी० ओ०, मुन्सिफ और रजिस्ट्रार आदि को घी, गेहूँ, दाल, चावल, सप्लाई करो। व्यापार का व्यापार और ऊपर से मन-भर का अहसान। जाने किसका कौन अहसान और जान पहचान किस दिन, किस घड़ी काम आये।"[3]

मार्क्सीय सिद्धान्तों के प्रचार और प्रतिफलन की आकांक्षा

आज के समाज का प्रमुख आधार मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, जिसके अन्तर्गत वर्ग संघर्ष का प्रमुख स्थान है। हमारे देश में भी रूस की भाँति शासक और जनता, अमीर तथा गरीब, मालिक तथा श्रमिक, उच्च वर्ग व निम्न वर्ग का द्वन्द्व चल रहा है। कम्युनिस्ट पार्टी के अनुसार "मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रचार व प्रतिफलन ही इस संघर्ष और विषमता के अन्त का अमोघ उपचार था।"[4] 'मार्क्सवाद' के वैज्ञानिक विचार-दर्शन को उपन्यास कला में डालने

---

१ आखरी दाँव—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १०४
२ सबहिं नचावत राम गुसाईं—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १६१
३ रूपाजीवा—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ४५-४६
४ प्रगतिवादी काव्य-साहित्य—डॉ० कृष्णलाल हंस, पृ० ११८

का प्रथम प्रयास यशपाल ने किया है।"[1] उपन्यासकार यशपाल ने अपनी कृति 'देशद्रोही' द्वारा भी साम्यवाद के प्रति अटूट निष्ठा व्यक्त करते हुए 'मार्क्सवाद' का प्रचार किया है। "मार्क्स के सिद्धान्तो का प्रचार उनके साहित्य के प्रमुख उद्देश्यो मे से है। 'मनुष्य के रूप' उपन्यास मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तो के अनुरूप मनुष्य के बदलते हुए रूप का 'एलबम' है।"[2] इस प्रकार अन्य उपन्यासकारो ने भी अपने उपन्यासो के माध्यम द्वारा मार्क्सवादी सिद्धान्ता का प्रचार किया है। इनमे से प्रमुख उपन्यासकार अमृतराय, रागेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त तथा विश्वम्भरनाथ उपाध्याय आदि हैं।

'सर्बहि नचावत राम गुसाईं' मे भगवतीचरण वर्मा ने गगादेवी, मार्तण्ड तथा कामरेड रवीन्द्र के माध्यम से मार्क्सवादी चिन्तन प्रस्तुत किया है। मार्तण्ड जी ने व्यग किया, 'जी अपराध तो उन किसानो से हुआ है, जिनकी जमीनें हथियाई जा रही है।" गगादेवी बोली, "जमीन तो राष्ट्र और देश की है, आदमी तो पैदा होता है और मर जाता है। यह जमीन पहले जमीदारो की थी, राष्ट्र ने यह जमीन उनसे लेकर किसानो को दे दी तथा अब राष्ट्र को अपने विकास के लिए इस जमीन की आवश्यकता है, इसीलिए राष्ट्र यह जमीन किसानों से लेकर कृषि अनुसन्धानशाला और ट्रैक्टर फैक्टरी की स्थापना करना चाहती है।" एकाएक कामरेड रवीन्द्र बोल उठे, 'देवी जी, यह ट्रैक्टर फैक्टरी सरकार खोल रही है या सेठ राधेश्याम खोल रहे है? अब सवाल यह है कि इस फैक्टरी मे कुछ मुनाफा तो होगा ही, तो मुनाफा किसको मिलेगा? सरकार को या आप लोगों को?"[3] इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के सिद्धान्त का प्रतिफलन—बदलती सामाजिक व्यवस्थाओ के रूप म वर्णित हुआ, जिसका आधार धन तथा शोषण ही रहा है। सामन्तवादी व्यवस्था म नारी पर होन वाले अत्याचारो पर उपन्यासकार ने कठोर प्रहार किया है। "रूढिया के मोटे-मोटे रस्से काटना कोई आसान बात नही है। पुराने सस्कारो का अनुसरण सामन्ती जीवन का सबसे बडा हथियार है। जो लोग इनका सामना करते हैं, वही आगे बढ सकते हैं।"[4] "भैरवप्रसाद गुप्त का 'गगा मैया' समाजवादी चिन्तन से प्रेरित माना जाता है।'[5] "इस उपन्यास की रचना के पहले वह 'मशाल' (१९५१) मे श्रमिक वर्ग के सघर्ष का चित्रण सैद्धान्तिक स्तर पर कर चुके

---

१ आलोचना, जनवरी १९५७, पृ० ८८
२ हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन—ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श', पृ० २०८
३. सबहि नचावत राम गुसाईं—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १९०-१९१
४ बीज—अमृतराय, पृ० २१७
५ हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन, पृ० ३०६

थे।"[1] "लेकिन नरेन को उस रात नीद नही आयी। वह रात-भर मजदूरो के इस सघर्ष के बारे मे सोचता रहा। निहत्थे गरीब, भूखे-कमजोर मजदूरो का कितना बडा दिल है, जो ये मिल मालिको, हाकिमो और पुलिस की ताकत से इस तरह भिडने का जोर रखते हैं।"[2] मजदूरो की शक्ति अजेय है तथा वर्ग-चेतना के फलस्वरूप उनमें सघर्ष के 'बीज' पनप रहे हैं।

सामयिक समस्याग्रो के प्रति जागरूकता

मार्क्सीय दृष्टि के अनुसार सामयिक समस्याओ मे आर्थिक समस्या ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मार्क्सवादी विचार से सामयिक समस्याओ से तात्पर्य भौतिक परिस्थितियों और उन परिस्थितियों मे उत्पन्न जनजीवन की समस्याओ से यशपाल द्वारा व्यक्त प्रमुख समस्या आर्थिक ही है। "ससार की समस्त विषमताओ की जड 'अर्थ' है। आज की अर्थ-प्रधान व्यवस्था मे आर्थिक समस्या ही सबसे प्रधान है। अर्थ ही पूंजीवादी विषमता की जड है। समाज के एक छोर पर है शोषक वर्ग (जिन्हे पूंजीपति कहा जाता है) तो दूसरे छोर पर है शोषित वर्ग (सर्वहारा)। बीच मे बेचारा मध्य वर्ग आ फसता है।"[3] "नयी पीढी के उपन्यासकारो ने गृहस्थ सम्बन्धो की समस्या को राजनीतिक पृष्ठभूमि मे रखकर अकित किया है। इस प्रकार समस्याओ का सामना आज का मध्यम वर्ग निरन्तर करता रहा है।"[4] वस्तुत सामयिक समस्याओ मे आर्थिक समस्या ही प्रमुख समस्या थी, जिसके माध्यम से शोषण की प्रक्रिया चल रही थी। ठाकुर परदुमन सिंह जमीदारी व्यवस्था का ज्वलन्त उदाहरण है। "आस-पास के सौ-पचास गांवों मे ठाकुर परदुमनसिंह का बडा दबदबा था। उनके गुस्से से लोग थर-थर कापते थे और इतना ही नहीं, जितना बुरा उनका गुस्सा था उतनी ही बुरी, बल्कि उसमे भी बुरी उनकी निगाह थी। ठाकुर साहब पुराने जमीदार थे, यह सारा इलाका उन्ही का था। ठाकुर साहब से लोग मन ही मन कापते थे कि न जाने कब किसके घर मे दाग लग जाय—इस बदजात का क्या ठिकाना।"[5]

साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा पूंजीवाद के प्रति विद्रोह की प्रवृत्ति

मार्क्सवादी चिन्तन तत्वत साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और पूंजीवाद का विरोधी है। इस विचारधारा के अनुसार सभी 'वाद' समाजवाद के विरोधी हैं।

---

१. आज का हिन्दी उपन्यास—इन्द्रनाथ मदान, पृ० ६१
२ मशाल—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० २०६
३ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक, पृ० ३१
४. आज का हिन्दी साहित्य—प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० ६१
५. हाथी के दांत—अमृतराय, पृ० २४

परतन्त्र भारत मे भारतीय जनजीवन और समाज मे साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और पूँजीवाद का शोषण चक्र एकसाथ चलता रहा। देश के सामन्तवादी, जागीरदार, जमीदार, मालगुजार तथा पूँजीपति शासक के सहायक बनकर श्रमिको तथा कृषको व सामान्य जनता के शोषण म रत थे। राजा-महाराजा भी अपने वैभव और विलासपूर्ण जीवन की सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए जनता के शोषण म रत थे। इस प्रकार भारतीय जनता दुहरे तिहरे शोषण का शिकार बनी, जीवन यापन करने को विवश थी। राजा साहब को —"जब हाथी खरीदना होता है, घोडा खरीदना होता है या मोटर, तब चन्दा लिया जाता है।"[1]

पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद का विद्रोह 'कहाँ या क्यो' म इस प्रकार व्यक्त किया गया है। "प्रतिक्रियावादी पूँजीवाद ससार की सस्कृति को नष्ट करने पर तुला है। साम्राज्यवाद पूँजीवाद का बच्चा है। इन बाप-बेटो ने ससार को नर्क बना दिया है। किन्तु अब पूँजीवाद के दिन लद गए, मुर्दे मे जान डालने की असफल चेष्टा मे पूँजीवाद साम्यवाद को आमन्त्रित कर रहा है, अपनी कब्र स्वय खोद रहा है।"[2] "आज के युग की सारी अशान्ति का सम्पूर्ण श्रेय अत्याचारी साम्राज्यवादियो तथा शोषणकारी पूँजीवादियो को है। साम्राज्यवाद, पूँजीवाद अथवा शोषणवाद अपनी कब्र स्वय खोद रहा है।"[3] 'शहीद और शोहदे' उपन्यास मे भी पात्र अमरीक सिंह साम्राज्यवाद का पुर्जा मात्र बताया गया है "वह अब मनुष्य नही रहा था, वह अत्यन्त क्रूर, इतिहास म शायद सबसे क्रूर पद्धति ब्रिटिश साम्राज्यवाद का रक्त-पिपासु पुर्जा मात्र था। वह केवल एक पुर्जा था, गुलाम था, एव ऐसा गुलाम जो यह प्रमाणित करने के लिए लालायित था कि वह बहुत अच्छा विश्वास-पात्र और फर्माबर्दार गुलाम है।"[4]

शोषितो के प्रति सहानुभूति की प्रवृत्ति

मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासो मे मजदूर और किसान ही विशेष रूप से शोषित बतलाए गये हैं। मार्क्सवादी साहित्य मे तो जबकि 'मजदूर' को ही विशिष्ट स्थान है। 'शोषित एव श्रमिकवर्ग के प्रति सहानुभूति, शोषण एव अत्याचार का विरोध, श्रेणी-सजगता तथा शोषक वर्ग के प्रति घृणा एव विद्रोह की भावना, जनशक्ति मे आस्था, विजय म विश्वास, अत्याचार और अनीति और विषमता को मिटाकर साम्य के आधार पर समाज के नव निर्माण के

१ सघर्ष—विश्वम्भरनाथ कौशिक, पृ० ९७
२ कहाँ या क्यो—रामप्रसाद मिश्र, पृ० १५१
३ वही, पृ० २१२
४. शहीद और शोहदे—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० २५

लिए क्रान्ति का आह्वान था।"[1] उपन्यास 'कहाँ या क्यों ?' में मजदूरों की जाग्रत अवस्था का वर्णन किया गया है। "मजदूर भाइयो, पादरी साहब और शास्त्रीजी ने देश-विदेश, धर्म-अधर्म आदि सब पर तो प्रकाश डाल दिया, लेकिन बोनस की समस्या तो दूर रही, बोनस शब्द तक इनकी जबान पर न आया। *आखिर ऐसा क्यों है ?"*[2] *"भारत में औद्योगिक विवाद विधेयक के सन् १९४७* में पास हो जाने के बाद श्रमिकों ने 'बोनस' को एक अधिकार के रूप में माँगना शुरू कर दिया। उनका कहना था कि उद्योग के मुनाफे में श्रम और पूँजी दोनों का ही अधिकार होना चाहिए।'[3] शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति का उपन्यासकारों ने मात्र चित्रण ही नहीं किया है अपितु उन मौलिक कारणों का भी निरूपण किया है जो शोषण के लिये उत्तरदायी है।

आर्थिक वैषम्य के चित्रण की प्रवृत्ति

" 'विषमता' पूँजीवादी व्यवस्था का सबसे बड़ा अभिशाप है। यह विषमता ही अनेक रूपों में व्यक्त होकर युद्ध और कलह को जन्म देती है। लोहे की मशीनों के बने हुए शरीर में अतृप्त धन लाभ की आत्मा को धारण किए हुए, पूँजीवाद का यह विकराल दैत्य जहाँ कहीं जाता है, वहाँ युद्ध और हिंसा की विभीषिका भी अनिवार्य प्रेत-छाया के समान उसके साथ चलती है।"[4] इसी *विषमता की प्रवृत्ति के कारण प्रथम विश्वयुद्ध हुआ। 'पूँजीवादी शक्तियों के बीच संसार के पुनर्विभाजन की समस्या ही इस युद्ध का मूल कारण थी।'*[5] युद्ध की प्रतिक्रिया संसार के समस्त देशों की जनता पर लगभग एक जैसी हुई, क्योंकि युद्धजन्य गरीबी और तबाही का न्यूनाधिक मात्रा में सभी ने अनुभव किया था। रूसी क्रान्ति ने यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया कि पूँजीवाद की शक्ति अपराजेय नहीं है। समाजवादी क्रान्ति पूँजीवादी शोषण से मुक्ति पाने का एक 'अमोघ' साधन है। इसलिए मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हो आर्थिक विषमताओं का लाग पहले से ही अनुभव कर रहे थे। आर्थिक विषमता उत्पन्न करने में सेठ-साहूकार, जो 'पूँजीपति वर्ग' का ही प्रतिनिधित्व करते थे, पूर्ण सहयोग दे रहे थे। 'महाकाल' तथा 'विषाद मठ' दोनों उपन्यास बंगाल के दुर्भिक्ष पर लिखे गये हैं, जिनमें अकाल के कारण *उत्पन्न आर्थिक विषमताओं का वर्णन किया गया है।* किसानों को फसल बेचे

---

१ हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० २३२

२ कहाँ या क्यों ?—रामप्रसाद मिश्र, पृ० १४४

३. भारतीय मजदूर की समस्याएँ— सत्य प्रकाश मिलिन्द, पृ० १२२

४ हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० २१५

५. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास, पृ० १७३

लगभग डेढ माह हो चुका था। हाथ का थोडा-बहुत पैसा भी खर्च हो गया था। चावल का दाम आसमान पर चढ गया था। हाथ की पूँजी उस भाव पर चावल कितने दिन खरीद सकती थी। जो भी मिलता वह मानो दलालो की अपराजित कृपा थी। बडे-बडे व्यापारियो की दया से सारा चटगाव अकाल के दाँतो के बीच धरा था।"[1] इसी प्रकार की आर्थिक विषमता का वर्णन महाकाल म भी मिलता है। "घर-घर म चूल्हे ठडे है। क्या कुलीन और क्या अकुलीन— एक मोनाई और दयाल जमीदार तथा उनके जैसे दस-पाँच को छोडकर अब किसके यहाँ चूल्हे म बराबर आग दिखाई देती है।"[2]

आन्दोलनकारी प्रवृत्तियो का चित्रण

" 'बगाल का अकाल', नाविक विद्रोह १९४२ की क्रान्ति, साम्प्रदायिक दगे, भारत छोडो आन्दोलन ने सघर्ष की निरन्तरता को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश स्वार्थों के साथ भारतीय सुविधाओ तथा हितो की जो सघर्ष-भूमि थी, उसन भी भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण को प्रश्रय प्रदान किया।"[3] मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासकारो मे यशपाल जी अग्रणी है। 'राजनीतिक पृष्ठभूमि मे जनजीवन, सामाजिक सघर्षो और राष्ट्रीय जागृति का चित्रण मार्क्सवादी दृष्टिकोण से करने के कारण उन्हे जनवादी उपन्यासकार माना जाता है।'[4] 'दादा कामरेड' मे यशपाल का क्रान्तिकारी आन्दोलन की असफलता तथा कम्युनिस्ट पार्टी के 'मजदूर-आन्दोलन' की सफलता दिखाना अभीष्ट था। हरीश मजदूरो को सगठित करके आन्दोलन का नेता बनता है। "मजदूर लोग यदि इस ढग पर नही चलेंगे तो उनका रुख राजनैतिक नही हो सकेगा और उनका आन्दोलन बिल्कुल सकुचित हो जाएगा।'[5] मजदूर आन्दोलन अपने हकों को बदस्तूर बनाये रखने के लिए पूँजीपति व उद्योगपति के विरुद्ध कृतसकल्प था। अर्थ प्रधान व्यवस्था मे अर्थ पूँजीवादी विषमता की जड है तथा सघर्ष का कारण। 'समाज के एक छोर पर शोषक वर्ग है (जिन्हें पूँजीपति कहा जाता है) तो दूसरे छोर पर शोषित वर्ग (सर्वहारा)।'[6] इस प्रकार मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासो की विभिन्न शिल्पगत एव कथ्यमूलक प्रवृत्तियो म मार्क्सवादी चिन्तन, चेतना और विचारदर्शन की सशक्त अभिव्यजना ही प्रमुख प्रवृत्ति कही जा सकती है।

---

१ विषाद मठ—रांगेय राघव, पृ० ४७
२ महाकाल—अमृतलाल नागर पृ० २६-२७
३ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० रमेश तिवारी पृ० २०६ २०७
४ हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन—डॉ० ब्रजभूषण सिंह, पृ० १८९-१९०
५ दादा कामरेड—यशपाल पृ० ११४
६ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक, पृ० ३२

'वर्ग-संघर्ष' की उद्‌भावना के कारण

"रूस में हुई १९१७ की महान् क्रान्ति ने सम्पूर्ण विश्व में पूंजीवाद से समाजवाद के रूप में क्रान्तिकारी संक्रमण के युग का सूत्रपात किया। यह संक्रमण 'वर्ग-संघर्ष' के फलस्वरूप हो रहा है।"[1] अन्तिम शोषणकारी व्यवस्था संघर्ष के बिना आत्मसमर्पण नहीं कर रही थी, अतः संघर्ष करना अनिवार्य हो गया। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में 'वर्ग-संघर्ष' की उद्‌भावना के कारण और कुछ भिन्न रहे हैं। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :

अभिशप्त वर्ण-व्यवस्था

प्रायः 'वर्ण' और 'जाति' शब्दों को एक-दूसरे का पर्यायवाची मान लिया लिया जाता है, किन्तु वास्तव में दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। आर्यों ने 'वर्ण' शब्द का सबसे पहले प्रयोग ऋग्वेद में 'आर्य वर्ण' और 'दास वर्ण' के भेदीकरण के लिए किया था। जब तक 'वर्ण सिद्धान्त' के आधार पर व्यवसाय चुने जाते थे, तब तक उपदेशक और अध्यापक ब्राह्मण, प्रशासक और योद्धा क्षत्री, कृषक, व्यवसायी और साहूकार वैश्य, श्रमिक तथा निम्न कार्य करने वाले शूद्र कहे जाते थे। ये व्यवसाय योग्यता और स्तर के आधार पर लोगों द्वारा ग्रहण किये जाते थे। सामाजिक दृष्टि से 'वर्ण' शब्द वर्ग या व्यवस्था को घोषित करता है। तब तक व्यवस्था-संघर्ष की स्थिति उतनी तीव्र नहीं थी। वास्तव में जब तक 'वर्ण-व्यवस्था' शुद्ध रूप में बनी रही, इसके गुण अपना प्रभाव दिखाते रहे। पर शनैः-शनैः चार वर्ण सैंकड़ों-हजारों वर्गों में बँट गये और 'जातिप्रथा' का अभिशाप भारत को मिला। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था अभिशापित घोषित कर दी गई। इसके कारण हिन्दू समाज छोटी छोटी इकाइयों में विभाजित हो गया तथा इस 'अभिशप्त वर्ण व्यवस्था' ने केन्द्रित राष्ट्रीय शक्ति छिन्न-भिन्न कर दी और सामाजिक एकता के रास्ते अवरुद्ध कर दिए। "इसके कारण राजनीतिक तथा आर्थिक एकता को भीषण आघात पहुँचा। समाज में सर्वत्र संकुचित विचार-धारा का प्रसार हुआ। जाति-व्यवस्था द्वारा भारतीय समाज को इतना कमजोर कर दिया गया कि मुट्ठी भर यवनों और विदेशी आक्रान्ताओं ने सदा ही भारत को पददलित किया तथा छिन्न-भिन्न कर दिया।"[2] अतः निश्चय ही संघर्ष की स्थिति वर्णों की अभिशप्त अवस्था द्वारा उत्पन्न हुई थी। "भारतीय 'वर्ण-व्यवस्था' पर अन्तिम चोट यूरोपीय संस्कृति की पड़ी। अठारहवीं शताब्दी से विशेषकर यूरोपीय देशों के सम्पर्क द्वारा अनेक ईसाई फिरकों ने भारत की

---

१ राजनीतिक ज्ञान के बुनियादी सिद्धान्त—बी०वी० कृज़िन, पृ० ८०
२ भारतीय सामाजिक संस्थाएँ—ओमप्रकाश जोशी, पृ० २६३

जनता को ईसाई बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु वे उच्चवर्णीय को छू न सके। अग्रेजी सभ्यता ने अपनी राजनीतिक मान्यताओ द्वारा भारत को अवश्य प्रभावित किया। इससे 'वर्ण-व्यवस्था', जो अभी तक स्वय काफी जर्जर हो चुकी थी, भली प्रकार ढीली हो गई।"[1] इस प्रकार व्यवस्था मे सघर्प की स्थिति तीव्रतम हो उठी। "भारतीय 'वर्णाश्रम व्यवस्था' के आधार पर चले आने वाले 'भेदोपभेद' मनुष्य को मनुष्य का शोपण करन, उनसे घृणा करने तथा उन पर अत्याचार करन के लिए प्रेरित करते थे।[2] इसी प्रकार निम्न तथा मध्यम वर्ग की प्रतिक्रिया न 'सामन्त' एव 'पूँजीवादी' मूल्या को विश्रृखलित कर 'वर्ग-सघर्ष' को जन्म दिया। 'वर्ण-व्यवस्था' की 'अभिशप्त अवस्था' ने ही भारत मे सास्कृतिक तथा राजनीतिक प्रगतिशील आन्दोलनो को जन्म दिया। अस्तु, वर्ग-सघर्प की उद्भावना के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं

रूढिवादिता

सामाजिक रुढियो की स्थापना लाक-प्रचलित विश्वासा के आधार पर की जाती है। इन लोक विश्वासा का कोई दृढ आधार नही होता, किन्तु दैनन्दिन जीवन तथा कार्य-व्यापारा मे लोक विश्वास अर्थात् 'रूढ सत्य' एक आवश्यक भूमिका निभाते हैं। शहरो की अपेक्षा ग्रामो म रुढ सत्यो को अधिक बल मिलता है। इस 'रूढ सत्य' के आधार पर ही 'ग्रामीण सघर्प' आधारित रहता है। ग्राम म प्रचलित प्रथाआ, रीति रिवाजो, जनरीतियो और रूढियो का यथावत् पालन करना एक ग्रामीण का पहला कर्त्तव्य है। ग्राम का कोई भी निवासी उसे तोडने का साहस नही कर सकता। ग्रीन के शब्दो मे "साधारण कार्य करने के लिए महत्त्वपूर्ण सामान्य रीतिया रूढिया होती हैं, जो जनरीतियो की अपेक्षा अधिक निश्चयपूर्वक, सही व उचित समझी जाती हैं तथा उसका उल्लघन करने पर कठोर दण्ड दिलवाती हैं।"[3] अत रूढि= जनरीति+समूह कल्याण भावना, उपयोगिता का दृष्टिकोण, समूह की अधिक अभिमति। वस्तुत रूढिया व्यवहार की प्रतिमान हैं। सभ्यता के विकास के साथ-साथ 'रूढिगत' मान्यताआ मे अविश्वास होने लगता है। बदलती मान्यताओ ने दो वर्गों का निर्माण किया। एक वर्ग रूढियो म आस्था रखता है तदनुसार व्यवहार करता है, दूसरा वर्ग सभ्यता द्वारा विकास की उस श्रेणी पर पहुँच गया है, जिसे यह सब अधविश्वास तथा ढकोसला लगता है। अत दोनो वर्गों

१ भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण—भगवतशरण उपाध्याय, पृ० ११६-१२०
२ दो सौ नये निबन्ध—डॉ० कमलेश्वर' पृ० ३४०
3 Sociology—Green, P. 76

में संघर्ष 'रूढ़िवादिता' के कारण उत्पन्न हो जाता है। रूढ़ियों में औचित्य-प्रदर्शन व समूह कल्याण पर दृष्टिपात करते हुए एक निश्चित धारणा का निर्माण हो जाता है तथा लोक-विश्वासों में उसकी परिणति हो जाती है। नयी जीवन-दृष्टि भी प्राचीन मान्यताओं को समाप्त करने में निरन्तर संघर्षरत रहती है। एक ओर ये मुमूर्ष रूढ़ियां अधिक बल से अपने अस्तित्व हेतु संघर्षरत है, दूसरी ओर धर्म, राजनीति, अर्थ तथा व्यक्तिगत जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों ने नवीन तथा प्राचीन मान्यताओं के मध्य गहन संघर्ष उत्पन्न कर दिया है।

सामन्तवादी व्यवस्था

इस व्यवस्था ने 'भूदास' वर्ग का जन्म दिया। शुरू में उत्पादन-सम्बन्ध उत्पादक शक्तियां के अनुरूप थे। 'भूदास' को अपने काम के परिणाम में दिलचस्पी थी, क्योंकि फसल का एक हिस्सा उसे भी मिलता था। इसलिए वह अधिक दक्षता और उत्साह से काम करता था। किन्तु बाद में सामन्तवादी व्यवस्था में किसानों को घाटा होने लगा। ग्रामवासियों के सामुदायिक अधिकार अनुदानभोगियों को दिए जाने लगे। बहुत से अनुदत्त ग्रामों की सीमाएँ निर्धारित नहीं की जाती थी, जिससे लाभ उठाकर अनुदानभोगी निजी जायदाद की अपनी सीमा बड़े मजे में बढ़ा सकते थे। दूसरा घाटे का कारण यह था कि "इन अनुदानभोगियों को 'परती जमीन', जंगल, झाड़, चरागाहों आदि पर अधिकार दे दिए जाते थे, उनका उपयोग भी किसान बिना कर दिये नहीं कर सकते थे। अतः ग्राम में जिन साधनों का उपभोग ग्रामीण समाज करता था, इस व्यवस्था में ग्रामीण किसानों की बहुत सी सुविधाओं और अधिकारों का अन्त कर दिया गया।"[1] इस व्यवस्था में राजा व धार्मिक या गृहस्थ अनुदानभोगी अपने लाभ के लिए किसानों से तरह-तरह की सेवाएँ प्राप्त करते थे। इस सबके परिणामस्वरूप किसान आर्थिक दृष्टि से पराधीन हो गए एवं इस स्थिति से छुटकारा पाने का उनके पास कोई मार्ग नहीं था। इस व्यवस्था में किसानों की प्रतिक्रिया दो रूपों में प्रकट होती है—"एक रूप तो यह था कि किसान गांव छोड़कर चले जाया करते थे। यह बात बहुत पुराने जमाने से चली आ रही है, जिसका उल्लेख हमें जातकों में मिलता है।"[2] शोषण के खिलाफ किसानों की दूसरी प्रतिक्रिया यह हो सकती थी कि वे विद्रोह कर दें। यही प्रतिक्रिया वर्ग-संघर्ष का कारण बनी।

---

१ भारतीय सामन्त—डॉ० रामशरण शर्मा, पृ० २७४ २७५
२. वही, पृ० २७५

आर्थिक नीति में परिवर्तन

भारत की परतन्त्रता का कारण भारत मे अग्रेजो का आगमन तथा आर्थिक नीति मे परिवर्तन था। भारत के अन्य विदेशी विजेताओ की भाँति अग्रेज भारतीय आर्थिक व्यवस्था के प्रति तटस्थ नही रहे। वह व्यापारी के रूप मे भारत मे आये थे, किन्तु शासन-सूत्र हाथ मे लेते ही उन्होने अपने हित-साधन की दृष्टि से नवीन कानून बनाये। भारत मे जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन खेती रह गई थी। देशी उद्योग धन्धो के नष्ट होने पर भारत निरन्तर आर्थिक विषमता की ओर अग्रसर होता रहा। परतन्त्रता के समय राज्य का स्पष्ट लक्ष्य था, स्वार्थवश अपने पिट्ठुओ का पोषण देशीय आन्दोलनो का दलन कर अपने राष्ट्र की सुदृढता, भारत का आर्थिक शोषण तथा राष्ट्र के विभिन्न सम्प्रदायो मे पारस्परिक द्वेष का बीजारोपण।"[1] इन्ही परिस्थितियो ने 'वर्ग-सघर्ष' को प्रकट किया।

मशीनीकरण

पूंजीवादी समाज मे मशीनें शोषितो के खिलाफ शोषको के सघर्ष का अस्त्र बन जाती है। उनकी सहायता से पूंजीपति मजदूरो का शोषण करते है। वे बढ़ते हुए शोषण के विरुद्ध उनके प्रतिरोध को तोडने का प्रयत्न करते हैं। "मशीनो के उपयोग से पूँजीवादी समाज मे गहरे तथा तीव्र अन्तर्विरोध उत्पन्न हो जाते है। जब तक पूँजीवादी व्यवस्था कायम है तब तक अन्तर्विरोध भी नहीं मिट सकते।"[2] मार्क्स की भाँति मशीनीकरण मे शोषण का विरोध गाधीजी ने भी किया हालाकि उनका मार्ग दूसरा था। "वे मशीनो के उस रूप के खिलाफ थे, जिसमे वे जनता के शोषण का साधन बनती है और लाखो, करोडो नर-नारियो को काम-धन्धो से उखाडकर उनके श्रमफल को पूंजी-पतियो की ओर बहा ले जाती हैं।"[3] पूंजीवाद के विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे मशीनो के इस्तेमाल का मजदूरो ने अत्यन्त उग्रता से विरोध किया था। मशीनो ने हाथ से काम करने वाले मजदूरो के भारी समुदायो से उनकी रोजी छीन ली है और भूखो मरने के लिए उन्हे घूरे पर फेंक दिया। मजदूरो के प्रथम विरोध ने मशीनो की तोड-फोड करने का रूप लिया था। १९वी शताब्दी के आरम्भ मे बडे पैमाने पर मशीनो का लगना जब पहले पहल शुरू हुआ तो ब्रिटेन मे 'मशीन तोडने वालो' (लुड्डाइटो) का एक व्यापक आन्दोलन

---

१ सामन्तवाद — रामप्रसाद मिश्र, पृ० ११४
२ मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—एमलियोन्तीव, पृ० ८६
३ भारतीय धर्म और संस्कृति—डॉ० बुद्ध प्रकाश, पृ० १८०

उठ खड़ा हुआ था। बाद में दूसरे देशों में भी, जहाँ मशीनों पर आधारित पूँजीवादी उद्योग-धन्धों के विकास के फलस्वरूप श्रमजीवी जनता के सिर पर गरीबी और तबाहियों के पहाड़ टूटने लगे थे, इसी तरह के आन्दोलन तेजी से उठ खड़े हुए थे।"[1] संघर्षोपरान्त मजदूर वर्ग ने महसूस किया कि मजदूर वर्ग की शत्रु वास्तव में मशीनें नहीं हैं, वरन् उसका वास्तविक दुश्मन उनको इस्तेमाल करने का पूँजीवादी तरीका है। मजदूर वर्ग को जो भयंकर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, उनका कारण स्वयं मशीनें नहीं हैं बल्कि पूँजीवादी ढंग से किया जाने वाला उनका उपयोग है।

आर्थिक विषमता

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व समाज को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। कोई व्यक्ति चाहे जितना धन अर्जित कर सकता था। उस समय आर्थिक विषमता के प्रति सामाजिक दृष्टि से कोई चिन्तन विकसित नहीं हुआ था। सामान्य जनता का दृष्टिकोण कर्मवादी था, इसी आधार पर अमीरी तथा गरीबी को आंका जाता था। अर्जन के साधनों की शुद्धि, परिग्रह की सीमा तथा उपभोग के संयम द्वारा आर्थिक समानता की स्थिति कायम थी किन्तु आज आर्थिक विषमता प्रमुख समस्या बनकर सामने खड़ी है। संसार की समस्त विषमताओं की जड़ 'अर्थ' है। आज की अर्थप्रधान व्यवस्था में आर्थिक समस्या ही प्रधान समस्या है। "अर्थ ही पूँजीवादी विषमता की जड़ है। समाज के एक छोर पर है शोषक वर्ग (जिन्हें पूँजीपति कहा जाता है।) तो दूसरे छोर पर है शोषित वर्ग (सर्वहारा)।"[2] आर्थिक विषमता से मुक्ति पाने के लिए यशपाल 'देशद्रोही' उपन्यास में स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता को आवश्यक समझते हैं। यशपाल के विचार से आर्थिक विपन्नतास्वरूप उत्पन्न अनेक सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति दिलाने में यह स्वतन्त्रता सहायक होगी। प्रेमचन्द-परवर्ती युग में संयुक्त परिवार के स्थान पर व्यक्ति का अपना सीमित परिवार रह गया। बढ़ती हुई आर्थिक विषमता का वहन करने के लिए नारी-जीवन में भी आर्थिक संघर्ष प्रारम्भ हुआ। 'उसे भी आर्थिक दृष्टि से अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। इसके साथ ही परिवार के बढ़ते हुए आर्थिक बोझ को वहन करने के लिए भी उसे जीवन-संघर्ष में सामने आना पड़ा।"[3] अतः आर्थिक विषमता की खाई को पाटने के लिए नारी और नौकरी प्रमुख

---

१ मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त—एलब्रियोनीव, पृ० ८८

२ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक, पृ० ३५

३ हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग—डॉ० मंजुलता सिंह, पृ० २५

समस्या बन गई। 'झूठी प्रतिष्ठा' प्रदर्शन ने आर्थिक विषमता उत्पन्न की है। अभिजात वर्ग की तरह मध्य, निम्न वर्ग आर्थिक अभाव के कारण खोखला प्रदर्शन करते हैं। घर में धन न हो परन्तु कर्ज लेकर वे अपनी ऊपरी शान-शौकत बनाए रखते हैं। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे आर्थिक विषमताओं का शिकार बन जाते हैं। 'महाकाल' उपन्यास का प्रत्येक पात्र आर्थिक विषमता के कारण अपनी आबरू से खेलता है। शीबु अपनी पत्नी को नूरुद्दीन को बेचता है। शीबु की माँ गिडगिडाती है—"बेटा, मेरी जान ले ले, मेरी आबरू न ले।"[1] इस उपन्यास में दुर्भिक्ष के कारण अनेक आर्थिक विषमताएँ दर्शायी गयी है। 'विषाद मठ' में भी आर्थिक विषमताओं का सजीव चित्रण हुआ है। "मेहनत करके दूसरों को भरपेट खिलाने वाले आज भूखा मर रहे हैं। जिसका खाना, जमींदार, पुजारी, महाजन और सरकार ने खाया था, दवताओं ने जिसकी गंध लेकर समस्त शक्ति का लूट लिया था, आज वह मजदूर-किसान इस भयानक भुखमरी में मिट्टी में गड़े पड़े हैं।"[2] सामाजिक विकास की प्रक्रिया में सबलों ने निर्बलों को दबा लिया है। श्रेणियाँ बनी और विषमता का जन्म हुआ। "यह श्रेणी-भेद और आर्थिक विषमता वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी।"[3] आर्थिक विषमता का प्रमुख कारण गरीबी-अमीरी का भेदभाव है। दोनों वर्गों में आर्थिक विषमता की खाई पटने में नहीं आती। 'एक और मुख्यमन्त्री' उपन्यास के लेखक का विश्वास है कि 'दुनिया के मजदूरों एवं किसानो, एक हो —वाली संस्था एक दिन अर्थ विषमता को मिटाकर विश्व में मजदूरों एवं किसानों की सार्वभौमिक सत्ता स्थापित करने में अवश्य सफल होगी।"[4]

अशिक्षा

अशिक्षा के कारण सर्वहारा वर्ग का प्रत्यक्ष शोषण किया जाता रहा है। शिक्षा के प्रचार ने उनमें चेतना का उदय किया तथा अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए, अपने अधिकारों को पाने के लिए सचेष्ट किया। भारत में नारी भी शोषित सर्वहारा वर्ग की प्रतीक रही है। 'तीस चालीस पचास' में उपन्यासकार ने बताया है, "गाँव की औरतें अब भी पर्दे में हैं, वे पढ़ी-लिखी नहीं है। चूल्हे-चक्की से बँधी रहती हैं। उन्हें और भी समाजोपयोगी बनाना

---

१ महाकाल – अमृतलाल नागर, पृ० ६५
२ विषाद मठ—रांगेय राघव, पृ० ६
३ हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० २१८
४ एक और मुख्यमंत्री—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ० ८२

पड़ेगा।"[1] इसी प्रकार 'एक और मुख्यमंत्री' में "जब नक्कू ने पहली बार पचपन साल की उम्र में अपना नाम लिखा तब वह खुशी से भर-भर आया। अपने अश्रुओं को पोंछकर उसने पिघले स्वर में कहा 'बाबा, क्या मेरा बेटा पटवारी बन सकता है?' 'यदि वह पढ़ेगा तो पटवारी क्यों, कलक्टर भी बन सकता है।' "[2] इस प्रकार अशिक्षा की व्याप्तता का एक दृश्य प्रस्तुत करने का लेखक ने प्रयत्न किया है। अशिक्षा के कारण ही भारतीय समाज में रूढ़िवादी संस्कार तथा जातिवाद पनपा। अशिक्षा के कारण ही मजदूर, श्रमिक, नारी आदि वर्गों का शोषण होता रहा। वर्ग-चेतना का अभाव भी अशिक्षा के ही कारण था। अशिक्षा के परिणामस्वरूप ही बंगाल को भीषण दुर्भिक्ष भोगना पड़ा, जो प्रकृतिदत्त न होकर मानवीकृत था। "लेखक इस परिस्थिति के लिए पूँजीवादी व्यवस्था तथा पूँजीपतियों को दोषी ठहराता है। जिसने मनुष्य के प्राणों का कोई मूल्य नहीं रहने दिया।"[3] अशिक्षा के कारण जमींदार, सामन्त, महाजन, पूँजीपति द्वारा निम्न (सर्वहारा) वर्ग का निरन्तर शोषण होता रहा है। शिक्षा के अभाव में सर्वहारा वर्ग इतना चेतनायुक्त नहीं था, क्योंकि वह मानसिक गुलाम बना दिया गया था। आज आर्थिक शोषण की विषमता व प्रचुरता ने इस वर्ग में चेतनता ला दी है। आज मजदूर व श्रमिक वर्ग भी शिक्षित एवं वर्गगत चेतना से सम्पन्न हो वर्ग-संघर्ष के लिए निरन्तर तत्पर है। वह शोषण से मुक्ति चाहता है तथा समान अधिकार की अपेक्षा रखता है।

मार्क्सवादी चेतना के अनुसार वर्ग-विवेचन

मार्क्सवादी चेतना के आधार पर वर्गों के दो रूप दिखाई देते हैं—पूँजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग। पूँजीपति वर्ग की सदैव शोषक वृत्ति रहती है। इस वर्ग के अन्तर्गत जमींदार, साहूकार, सरदार-सामन्त, जागीरदार, कामदार, संघस्वामी, राजनेता आदि आते हैं, जो समय-समय पर सम्पत्ति अथवा पूँजी के आधार पर निम्न वर्ग का शोषण करते हैं। सर्वहारा शोषित वर्ग के अन्तर्गत दास, सेवक, किसान व कारीगर आदि आते हैं। वर्ग-चेतना के फलस्वरूप इनमें संघर्ष की स्थिति सदैव बनी रहती है। पूंजीपतियों में प्रत्येक वर्ग का उद्देश्य येनकेन प्रकारेण अपनी सम्पत्ति को बढ़ाना रहता है। मार्क्स ने वर्गगत शोषण का आधार आर्थिक माना है तथा वैज्ञानिक समाजवाद की स्थापना द्वारा पुराने मूल्यों पर नवीन मूल्यों की स्थापना द्वारा ही समाज-व्यवस्था की प्रगति का उल्लेख किया

---

१ तीस चालीस पचास—प्रभाकर माचवे, पृ० १३१

२ एक और मुख्यमंत्री—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ० २७५

३ हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० १५६

है। मार्क्स का मत है—"जितना ही अधिक 'वर्ग-संघर्ष' होगा, उतना ही पुराने मूल्यो के बीच नये मूल्य स्थापित होंगे और इस प्रकार समाज की व्यवस्था मे प्रगति आयेगी।"[1] मार्क्स की यह दृढ मान्यता है कि 'वर्ग युक्त समाज मे दो तरह की संस्कृति होती है, एक मेहनत करने वालो की, दूसरी उससे लाभ उठाने वालो की।"[2] अस्तु "वर्ग-चेतना का मूल आधार आर्थिक ही है।"[3] इस आर्थिक आधार पर समाज की विभिन्न अवस्थाओं मे शोषण की निरन्तरता बनी रही है।

मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासो मे निरूपित शोषक वर्ग

पूंजीपति वर्ग

"आधुनिक भारत म औद्योगिक विकास के फलस्वरूप इस वर्ग की उत्पत्ति मानी जाती है।"[4] पूंजीपति वर्ग श्रमिकों का शोषण करता है। पूंजीपति वर्ग "जमीदारो की भांति शोषितो को प्रत्यक्ष रूप से कोई शारीरिक कष्ट नही देता, बल्कि वह उसको जोक की तरह चूसता रहता है तथा उसके हृदय को धीरे-धीरे खोखला बनाता रहता है। वह शोषित व्यक्तियों को मनुष्य तो समझता ही नही।"[5] मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासों मे 'पार्टी कामरेड' मे सेठ पद्मलाल भावरिया पूंजीपति वर्ग का प्रतीक है। "यह बम्बई शहर का एक छटा हुआ बदमाश है, जुआ खेलना, सट्टा करना और नई लडकियां पर जाल फेंकना ही उसका ध्येय है।"[6] 'देशद्रोही' मे वजीरियों को शोषक वर्ग के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है। "वजीरी लोग लूट मे आये माल का लेखा-जोखा करने मे व्यस्त थे। कैम्प के हस्पताल से लाते गये कम्बलो, चादरो, दूसरे कपडो का तथा रसद का ढेर अलग-अलग कर रहे थे।"[7] बनिया मोनाई 'विषाद मठ' मे तथा सेठ गोरेमल 'रूपाजीवा' मे शोषक वर्ग के प्रतीक है। गोरेमल कहता है—"बिजनेसमेन का इन पार्टियों और संस्थाओ से क्या मतलब। बस दूर से तमाशा देखो, राम झरोखे बैठके—राम झरोखे मे इसलिए कि कोई माई का लाल भांप भी न सके।'[8] अत सेठ-साहूकारो की वृत्ति केवल स्वार्थ पर

---

१ मार्क्सिस्ट फिलोसोफी—अफानसेव, पृ० २५१
२ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ—डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० ७१
३ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना—डॉ० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० १६२
४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—रमेश त्रिपाठी, पृ० २०८
५ हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना—प्रताप नारायण टंडन, पृ० ११५
६ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक, पृ० ६६
७ देशद्रोही—यशपाल, पृ० १४
८ रूपाजीवा—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ८६

आधारित रहती है। 'आखरी दाव' उपन्यास के सेठ शीतल प्रसाद तथा सेठ शिवकुमार की वृत्ति भी इसी प्रकार की है। वह सट्टे में हारी हुई रकम पूर्ति के लिए 'चमेली' को दाव पर लगाता है। "चमेली रानी, हमें जिन्दगी में सफल बनने के लिए बहुत-सी बातें करनी पड़ती हैं, जो हमें अच्छी नहीं लगतीं। अच्छे और बुरे की परख बहुत मुश्किल है। चमेली रानी, तुम्हारे वहां चलने में मेरा-थोड़ा-सा स्वार्थ है।"[1] इस प्रकार विभिन्न उपन्यासों में पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि करने वाले पात्रों में स्वार्थी वृत्ति तथा धन के बल पर निर्मम शोषण दर्शाया गया है।

महाजन वर्ग

शोषक वर्ग के अन्तर्गत ही इस वर्ग की भी गणना की गई है। महाजनी मनोवृत्ति का परिचय अनेक उपन्यासकारों द्वारा दिया गया है। खेती से सम्बन्ध रखने वाले सभी वर्ग जमींदार, मालिक, किसान आदि ही होते हैं। इन्हीं के मध्य महाजनी शोषण की प्रक्रिया घूमती है। "गांवों में पूंजीवाद आरम्भ होने के साथ ही महाजनी शोषण का प्रभुत्व बढ़ गया था।"[2] महाजनों के शोषण को सरकारी संरक्षण भी प्राप्त था। महाजनों के यहाँ सूद का व्यापार महत्त्वपूर्ण माना जाता है, जिसमें शोषण की चरम स्थिति पाई जाती है। 'जब सूरज ने आखें खोलीं' उपन्यास की बिन्दो तथा 'विषाद मठ' का मोनाई इसी प्रकार के पात्र हैं। "मुसम्मात बिन्दा मगरू की महाजन थी। उसका हृदय पत्थर का था तथा स्वभाव क्रूर। उसकी बोली, वाणी और कार्य सभी जघन्य थे। वह कसकर सूद लेती, तनिक भी रियायत नहीं करती। बेचारे मियां-बीवी दोनों उसकी बेगार करते।"[3] इसी प्रकार 'सबहिं नचावत राम गुसाईं' में भगवतीचरण वर्मा ने मेवालाल को महाजनी पात्र घोषित किया है। 'मेवालाल का महाजनी धन्धा अब बेतरह फल रहा था। उन्होंने अपने यहाँ तीन मुनीम रख लिए थे, एक जाली बही खाते और दस्तावेज बनाता था, दूसरा व्याज का हिसाब-किताब रखता था और तीसरा मुनीम दिन-भर कचहरी में रहकर मुकदमेबाजी करता था।"[4] इस प्रकार शोषण की प्रक्रिया महाजन वर्ग में चलती रहती थी। गांवों में पूंजीवादी शोषण के साथ-साथ 'महाजनों' का प्रभुत्व बढ़ गया था। "महाजनों के इस शोषण में सरकारी कानून व संरक्षण भी उन्हें प्राप्त था, अतः यह शोषण अधिक बढ़ता गया। महाजनों के यहाँ सूद का व्यापार

१ आखरी दांव—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १४६
२ मेरी कहानी—पंडित नेहरू, पृ० ४१८
३. जब सूरज ने आँखें खोलीं—कमल शुक्ल, पृ० १३
४ सबहिं नचावत राम गुसाईं—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २३-२४

महत्वपूर्ण माना जाता है, जिसमे शोषण की चरम स्थिति पाई जाती है। किसान अगर किसी से कर्ज लेता है तो जिन्दगी-भर उसकी तबाही केवल सूद भरने मे ही हो जाती है।"[1] महाजनी सभ्यता के परिणामस्वरूप ही मजदूर तथा पूँजीपति वर्ग बने।

जमीदार वर्ग

हिंदी उपन्यास के लेखक, विशेष रूप से प्रेमचन्दोत्तर युग के लेखक, सामतो तथा जमीदारो की दुहरी चाल से पूर्णत अवगत हो चुके थे। उन्होंने यथार्थवादी शैली मे जमीदार वर्ग के काले व्यवसायो का अकन किया है। बगाल मे अकाल की स्थिति जमीदारो के कारण ही उत्पन्न हुई, जिसमे लगभग तीस लाख व्यक्तियो की मृत्यु हुई। 'विषाद मठ' मे चट्टोपाध्याय की दुहरी चाल का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—"चट्टोपाध्याय स्वय चोरबाजारी करके अकाल की स्थिति लाता है। लेकिन अपने अत्याचारो को छिपाने के लिए साप्रदायिकता की आड लेकर सारी जिम्मेदारी मुस्लिम सरकार पर डाल देता है।"[2] इसी प्रकार अमृतलाल नागर ने सामन्तवादी व्यवस्था के प्रजापालको पर तीखा व्यग किया है—"दयाल जमीदार का शराब की एक बूद तडपा रही थी और दयाल की प्रजा को चावल की कमी। कैसा विचित्र साम्य था।"[3] "आधुनिक भारतीय समाज मे नारी रूढिगत मान्यताओ तथा सामन्ती सस्कारो से अधिक ग्रस्त होने के कारण जमीदारो के शोषण की शिकार रही है। 'देशद्रोही' की राज, चन्दा, यमुना नगिम, गुलशन सभी सामन्ती युग की देन है।"[4] 'रीछ' उपयन्यास मे ब्राह्मण जमीदार का समर्थन छोटी जात के लागो को ठण्डा करने के लिए किया गया है। "ब्राह्मण जहाँ जमीदार हो वहाँ ऊपरी आतक कम रहता है। लेकिन छोटी जात को कूटनीति से ऐसा बना दिया जाता है कि उसमे दम नही रह जाता, अगर छोटी जात को ठण्डा करना है तो ब्राह्मण को जमीदार बना दो।"[5] 'मानव-दानव' उपन्याम मे भी जमीदारो के अत्याचार का निरूपण हुआ है। "जमीदार से किसी ने कह दिया कि मेरी पत्नी बहुत खूबसूरत है, बस उसने उसे जबरदस्ती पकडकर मगवा लिया, उसी दिन से मैं डाकू हो गया। पहले तो मैंने गढामे से जमीदार और उनके दो कारकुनो को खत्म किया,

---

१ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—रमेश तिवारी, पृ० २१५
२. विषाद मठ—रांगेय राघव, पृ० ३४
३. महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० ८६
४. हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन, पृ० २६४
५ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ६५

इसके बाद मैं डाकू बन गया।"[1] इसी प्रकार 'गंगा मैया' उपन्यास में मटरू जमींदार वर्ग के प्रति सचेत करते हुए कहता है कि--"यह याद रखो कि एक बार अगर जमींदारों को तुमने चस्का लगा दिया, तो तुम्हीं नहीं, तुम्हारे बाल-बच्चे भी हमेशा के लिए उनके शिकंजे में फंस जायेंगे। उनकी लोभ की जीभ सुरसा की तरह बढ़ती जायेगी और एक दिन सबका निगल जायेगी।"[2]

अधिनायक वर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत भ्रष्ट और शोषक राजनीतिज्ञ आते हैं। राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग' उपन्यास में इस वर्ग का चित्रण हुआ है। "देशबन्धु जी उर्फ 'नेता भैया' उन महान व्यक्तियों में से हैं जिनके पास बड़ी-बड़ी मिलें हैं। जिनमें गरीबों मजदूरों के रक्त तक का शोषण होता है, जिनके पास मजदूरों के उत्तर के रूप में गोलियों की बौछारें हैं, जिनकी कामुक भावनाओं की पूर्ति के लिए ऐसे ऐसे प्रकोष्ठ विद्यमान हैं, जहाँ अबलाएं जबरदस्ती ठूस दी जाती है।"[3] एक स्थान पर मजदूर की आक्रोशपूर्ण ध्वनि शोषण की प्रतिक्रिया के रूप में इस प्रकार गूंजती है--"रोओ मत रोओ मत। हमारी किस्मत में यही बदा है। जिन्दा रहोगे तो तुम्हारा खून मिलों में निचोड़ा जायेगा, हम बायलरों में जल-जलकर मरेंगे और वैसे मरने से इन्कार कर दोगे तो नतीजा सामने है। जब तक यह खद्दर के दूध के धुले चोगे राक्षस तुम्हारी हमारी छाती पर राजनीतिज्ञ है, हमारी किस्मत यही है ·····।"[4] कुटिल वर्ग का वर्णन 'एक और मुख्यमंत्री' में इस प्रकार किया गया है। "नेता को उतना ही चतुर होना चाहिए, जितना कि कौवा होता है कि वार करने के लिए शिकारी के हाथ को उठे हुए देखकर उड़ जाय, इतना सजग जितना कुत्ता, जो आहट मिलते ही जग जाय, इतना मिष्टभाषी जितना कोयल कि सब पर अपने सम्मोहन का जादू डाल सके।'[5] नेता वर्ग की राजनीतिक बातों का वर्णन 'मशाल' उपन्यास में भी हुआ है। 'काली आँधी' में जग्गी बाबू अपनी पत्नी मालती से कहते हैं--"राजनीति की तुम्हारी दुनिया के क्या-क्या उसूल हैं, मुझे तो मालूम नहीं, ये खून खौला देने वाले तनाव·· ·· दिमाग खराब कर देने वाली कमीनी हरकतें······ये नीचता की हद तक सड़ांध में उतार लेने वाली तुम लोगों की मजबूरियाँ और ये उठा-पटक, छीना झपटी यह सब मेरी दुनिया

---

१ मानव-दानव—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० २३५
२. गंगा मैया—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ३२
३. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—त्रिभुवनसिंह, पृ० २६६
४ उखड़े हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० २७१
५. एक और मुख्यमंत्री—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ८८

नही है !"[1] 'कांचघर' उपन्यास का मुकुन्दराव भी नेता वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। मारोती उसे समझाता है—"मर्द हो, धीरज से काम लेना सीखो। फिर राजनीति-कूटनीति तुम्हारा धर्म है और इस धर्म मे सब जायज है। कभी-कभी जहर भी चुपचाप पी लेना होता है।"[2]

महतो तालुकेदार तथा जिलेदार वर्ग

महतो' का भी ग्राम मे एक वर्ग होता था जो मामूली इलाज करके ग्रामवासियों का शोषण करते थे। श्री कमल शुक्ल के एक उपन्यास में महतो मगरू की टाँग टूटने पर गौरी की याचना द्वारा वे उसके इलाज के लिए आये तथा रुपये के बदले मे गौरी के यौवन से खेलने का विचार रखते थे। 'जब सूरज ने आँखें खोली' मे गौरी 'महतो' से कहती है—"तेरे पास बैठू ? मैं हरजाई नही हूँ, ब्याहता हूँ ब्याहता ! नरम चारा पाकर तू मेरी इज्जत से खेलने आया है। खून उतर आया है मेरी आँखो मे। मैं झूठी पत्तल चाटने वाली कुतिया नही हूँ जो गली-गली छुछुआती फिरूँ।" महतो थप्पड खाकर भी हसता रहा, "तुम चाहे एक नही बीस थप्पड मारो लेकिन मैं बुरा नही मानूंगा। दुधारू गाय की चार लातें भी सही जाती है और औरत कुछ भी नही बिगाड सकती मर्द का, वह तो खिलौना होती है।"[3] यह वर्ग भी सदैव शोषक वर्ग रहा है तथा सघर्ष की स्थिति का प्रेरक बना रहा है। 'धरती की आँखें' उपन्यास मे राजकुमार विजय तथा उसके तीन साथियो की योजना यह थी, यदि तालुकेदारी टूट जाती है, तो नौकर-चाकर, मजदूरो को किस प्रकार पजे मे रखा जाए तथा उनका शोषण किस प्रकार किया जाय। 'तालुकेदारी टूट जाने से पहले ही हर राजा और अच्छे-अच्छे तालुकेदारो को चाहिए कि वे अपनी वर्तमान पूंजी से एक बडी से बडी शराब की फैक्ट्री खोल लें, ताकि कम से कम राज्य की रियाया, नौकर-चाकर, मजदूर आदि उनके पजे मे तो रहे। दिन-भर कमाए और शाम को कमाई का चौथाई भाग राजा को भेंट देते जायें और जब पैसा न हो तब कर्ज पर, सूद पर, और कुछ पर। इस तरह भारत के राजे, तालुकेदारो की जमीदारी, उनके सारे आराम कही नही जा सकते।"[4] इसी प्रकार 'सघर्ष' उपन्यास का शिवसहाय जिलेदार वर्ग का प्रतीक पात्र है, जो शोषण के साथ आबरू से खेलने का प्रयत्न करता है। "यह शिवसहाय जिलेदार बडा पाजी आदमी है सरकार। जरा-जरा सी बात मे आबरू लेने

१ काली आंधी—कमलेश्वर, पृ० ६०
२ कांचघर—रामकुमार भ्रमर, पृ० १८६
३. जब सूरज ने आँखें खोलीं—कमल शुक्ल, पृ० ४२-४३
४ धरती की आँखें—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ३२४

पर उतारु हो जाता है। आप जानो रुपया हर समय किसान के पास नही होता, रखता कोई है नही, दो-चार दिन आगे-पीछे सब दे देते हैं। लेकिन यह ऐसा पाजी है कि एक-दो दिन भी मोहलत बड़ी कठिनता से देता है। जरा-जरा-सी बात में गाली दे बैठता है, कोई कुछ बोले तो पिटवा देता है। नजर-बेगार अलग लेता है। गाँव मे दारू बनवाता है। खुद भी पीता है और बिकवाता भी है।"[1]

अफसरशाही वर्ग

सरकारी महकमों मे ये अफसरशाही वृत्ति के लोग सदैव जनता के सम्पर्क से दूर रहकर उनका शोषण करते हैं। कुछ खुशामदपरस्त लोग जैसा चाहते है वैसा कार्य उनसे करवाकर शोषण को गहनतम बना देते हैं। "आई० सी० एस० वाले अच्छे नौकरशाह थे। पर राष्ट्रीय आन्दोलन जिस धारणा को लेकर चला था, वे उनसे कोसों दूर थे। जनता से वे सम्पूर्ण रूप से कटे हुए थे, यही नही वे जनता के शत्रु थे।"[2] खुशामदपरस्त लोगो का चित्रण 'रीछ' तथा 'दबदबा' उपन्यासो मे किया गया है। 'दबदबा' मे 'मैं सा खिदमत करता हूँ अफसरो की। इसीलिए याद कर लेते हैं वे। अब आपकी मातहती मे आपकी जो खिदमत कर रहा हूँ तो इसे क्या आप कभी भूल जायेंगे ? बड़े लोग अपने खादिमो को कभी नही भूलते।"[3] 'रीछ' उपन्यास मे 'खुशामदपरस्त वर्ग' को 'रीछ' की उपाधि से सम्बोधित किया गया है। "सुनो, तुम भी रीछो के खानदान के हो जो पैरों के तलवे चाट-चाटकर प्राण खीच लेते हैं।"[4] 'लेकिन ये रीछ किसी को माफ नही करते। जब तक तुम किसी चक्कर म नही पड़ते, तब तक ये तुम्हारे साथ है, लेकिन जिस दिन किसी मुसीबत म पड़े, इन्होने गोत लगवाना शुरू किया।"[5] इस प्रकार इस वर्ग के लोग भी जनशोषक रहे हैं।

उद्योगपति वर्ग

इस वर्ग मे मुनाफाखोर व्यापारी, साहूकार, ठेकेदार और मिल मालिक सभी सम्मिलित है। मशीनीकरण के प्रचार से मजदूर बेकार होने लगे। उन्हे मजदूरी कम मिलने लगी तथा उनका प्रत्यक्ष गहन शोषण होने लगा। इस शोषण के फलस्वरूप मजदूर म वर्गचेतना उत्पन्न हुई तथा अपने हितो के

१. संघर्ष—विश्वम्भरनाथ कौशिक, पृ० २२५
२. शहीद और शोहदे—मन्मथनाथ गुप्त पृ० ४
३ दबदबा—यज्ञदत्त शर्मा पृ० १८७
४. रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ७६
५. वही, पृ० १९८ १९९

संरक्षण हेतु उन्होंने 'उद्योगपति वर्ग' के विरुद्ध भी संघर्ष किया। मिलों और कारखाना के साथ ही व्यापारी बाजार अधिक विस्तृत होता गया तथा शोषण भी जम कर होने लगा। 'नया इन्सान' उपन्यास में अमृत के विचार सेठ-साहूकारों के प्रति बहुत कटु थे। "यदि ये सेठ-साहूकार जरा भी उदारता तथा बुद्धिमानी से काम लें तो वह देश का काफी हित कर सकते हैं। लेकिन यह सेठ कौम इतनी व्यक्तिवादी बन गई है कि उन्हे दूसरों के हित का कोई ध्यान ही नही। इस कौम का हर जानवर सडको पर नही, अपितु ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं या बगलों मे रहता है, जहाँ वह जन जन को अपने हिंस्र जबडो के बीच दबोच-कर उनका खून चूसा करता है।"[1] 'रीछ' उपन्यास में भी इस वर्ग का चित्रण किया गया है। "अरे भाई, ये सेठ सन् ४७ के पहले अंग्रेजो के गुलाम थे और अब कांग्रेस के नेता हैं। इस घनश्याम गुप्ता ने गवर्नर को चाँदी से तौला था और अब बगुलाभगत बना हुआ है।"[2] भ्रष्ट व्यापारी वर्ग का वर्णन 'रूपा-जीवा' में इस प्रकार किया है, "अरे, जमाने की नबज पकडो। हर आदमी को सूँघकर चलो, तब व्यापार चलता है, गद्दी पर बैठने से कुछ नही होता।"[3] व्यापार द्वारा शोषण का बीजमन्त्र गोरेलाल चेताराम को बताते हैं। 'जुलाई-अगस्त में भाव दो चार आने ऊपर चढ़ेंगे, पूरी उम्मीद थी कि पूर्वी जिला तथा बिहार-आसाम में बाढ आयेगी। चेताराम ने गोरेलाल के इन मन्त्रों को मन की तिजोरी में बन्द कर लिया था और उसी प्रकाश में वह मई के महीने का व्यापार चला रहा था।"[4] गोरेलाल की व्यापारिक दोहरी नीति इस प्रकार थी —"हम बडे व्यापारी और महाजन हैं तो क्या ठलवार के दिनो में बैठे-बैठे अपना खायें? नहीं, इन दिनो जब अपनी दुकान के काम से फुरसत मिले तो अपने आदमी और अपनी मेहनत से बस्ती के चार छः वकील, मुख्तार, डाक्टर, हकीम, मास्टर, प्रोफेसर, थाना पुलिस, डाकखाना, तार, स्टेशन, तहसील-दार, एस० डी० ओ०, मुन्सिफ और रजिस्ट्रार आदि को घी, गेहूँ, दाल, चावल सप्लाई करो। व्यापार का व्यापार ऊपर से मन-भर अहसान।"[5] 'दादा कामरेड' में इन्जीनियर तथा ठेकेदारों द्वारा शोषण की आख्यायिका प्रस्तुत की गई है। जाबर ठेकेदार के लिए प्रयुक्त हुआ है। एक इन्जीनियर, दूसरा साला ये कश्मीरी तथा तीसरा वह हरामी जाबर। इनके मारे सारी लाइन बरबाद है। यह जाबर हरेक मजदूर से महीनों दुअन्नी रुपया लिये जाता है।

---

१ नया इन्सान—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ६१
२ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ३९९-४००
३ रूपाजीवा—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ८२
४ वही, पृ० २६
५ वही, पृ० ४५-४६

साले ने अपना साहूकारा अलग खोल रखा है। आना रुपया रोज का सूद लेता है।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्सवादी चेतना के हिन्दी उपन्यासो मे विभिन्न प्रकार के शोषक वर्गों का यथार्थपरक चित्रण हुआ है जो सदैव पूंजी के आधार पर शोषण करता रहा है तथा शोषित वर्ग मे अपने हितो की टकराहट के कारण सघर्ष के लिए सन्नद्ध हुआ है। शोषितो म वर्गगत चेतना के परिणामस्वरूप 'वर्ग-सघर्ष' अनिवार्य हो जाता है। इस सदर्भ मे यशपाल का दृष्टिकोण है—"प्रेमभाव की नीति मालिको के हित की नीति है। मालिको के पास यदि धन की शक्ति है, तो मजदूरो के पास भी सगठन की शक्ति है। इसी सगठन की शक्ति के बल पर मजदूर हडताल कराते हैं। शोषण की जो भयकरता होती है, सघर्ष और हडताल उसमे परिवर्तन लाते हैं।"[2]

मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासों में निरूपित शोषित वर्ग

सर्वहारा वर्ग

आधुनिक युग मे अर्थ-वैषम्य और मशीनीकरण के कुपरिणामस्वरूप श्रम की प्रतिष्ठा घट गयी है। इसके कारण श्रमजीवी वर्ग का भी पराभव हुआ है। भारत के श्रमिक तथा कृषक वर्ग या तो परमुखापेक्षी है या व्यवस्था-विद्रोही। इन वर्गों के जीवन मे दैनिक आवश्यकताओ की वस्तुओ का अभाव रहता है तथा आर्थिक विपन्नता के कारण इनका जीवन मात्र विडम्बना बन जाता है। जनवादी प्रगतिशील चेतना से अनुप्राणित हिन्दी उपन्यासकारो ने सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए उनकी विषम स्थितियो का चित्रण किया है और उन्हे क्रान्ति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी है। इस वर्ग के लोगो की आर्थिक विपन्नता के परिणामस्वरूप हुई दुर्दशा, विवशता तथा जीवन की विभीषिका का यथार्थ चित्रण युगीन उपन्यासो मे किया गया है। इन उपन्यासो मे मानवतावादी जीवन-दृष्टि प्रमुख रही है तथा सामाजिक पुनर्व्यवस्था का सकल्प प्रकट हुआ है, जो वर्ग-सघर्ष की प्रतिक्रिया का प्रतिफलन है। वर्ग-चेतना से प्रेरित सर्वहारा वर्ग कभी अर्थाभाव के कारण सामाजिक अपराधो मे अवलिप्त दिखाई देता है तो कभी यौनाचार की स्वच्छन्दता की ओर उत्प्रेरित दिखाई देता है। इस वर्ग की नारियाँ भी यातनापूर्ण कुठाग्रस्त, अमानुषिक एव नृशस व्यवहार को सहन करती हुई उपन्यासकारो द्वारा चित्रित की गयी है।

'दादा कामरेड' की शैलबाला यद्यपि अभिजात परिवार की है, किन्तु वह

---

१ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० ६२-६३

२ हिन्दी उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० रमेश तिवारी, पृ० २१०

क्रान्तिकारी विचारधारा की सवाहक है। विवाह के पश्चात् एक पुरुष से बँध जाना वह स्त्री की गुलामी मानती है। वह हरीश से कहती है—"पुरुष कभी भी स्त्री के दृष्टिकोण से समस्या को नही देख सकता। स्त्री की सबसे बडी मुसीबत तो यह है कि उसे सन्तान पैदा करनी है। इसीलिए पुरुष जमीन के टुकडे की तरह उस पर मिल्कियत जमाने के लिए व्याकुल रहता है।"[1] "यशपाल जी के नारी चरित्रो मे स्त्री-स्वातन्त्र्य का सघर्ष अपेक्षाकृत अधिक तीव्र देखा जाता है।"[2] ये नारियाँ दुहरे सघर्ष म लगी रहती है—एक तो उन्हे, पुरानी जर्जर रूढियो से मुक्त होना है, दूसरे उन्ह पूँजीवादी शोषण तथा साम्राज्यवादी शासन को समाप्त करना है। 'देशद्रोही' उपन्यास मे डॉ० खन्ना चन्दा से कहते हैं—"जब तक स्त्री आर्थिक दृष्टि से अपने पैरो पर खडी नही हो सकती वह स्वतत्र नही हो सकेगी। तुमने अपने-आपको बलिदान कर सब सहा, अब उसके प्रति विद्रोह भी करो तो क्या कर सकती हो, जब तक जीवन के सघर्ष म अपने पैरो पर खडे होने का साधन तुम्हारे पास न हो।"[3] डॉ० खन्ना भी सर्वहारा वर्ग की चेतना से प्रेरित होकर सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन म विश्वास रखता है। 'जब तक हम पूँजीवादी व्यवस्था को बदल नही देते, हम उसके नियमो तथा सस्कारा की उपेक्षा नही कर सकते। पूँजीवादी व्यवस्था मे रहकर समाजवादी धारणा के अनुसार स्वतत्रता चाहोगे तो झझट होगा ही।"[4] इस प्रकार वे वर्ग-सघर्ष की प्रेरणा देते हुए वर्गगत चिन्तन की ओर अनुप्रेरित करते हैं।

श्रमिक वर्ग

जब किसानो की दशा अत्यधिक दयनीय हो गई तो अधिकाश किसान सम्पत्तिहीन होकर मजदूर बनने पर बाध्य किए गये। मजदूरो का सगठन शक्ति तथा वर्गगत चेतना का परिचय भैरवप्रसाद गुप्त ने 'मशाल' उपन्यास मे दिया है। "ठाकुर, जो समाजवादी चेतना से अनुप्राणित है, का दृढ विश्वास है कि रूस की राह जिन्दगी की राह है।' मजर समझता है, 'हमने यह दुनिया बनाई है। दुनिया की हर चीज हमारी ताकत से बनी है। दुनिया के सरमायादारा न इन चीजा पर अपना नाजायज हक जमा रखा है, हम बेवकूफ बनाकर। वे हमसे गुलामा की तरह काम कराते हैं और हमारी मेहनत की कमाई पर

---

१ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० २८
२ हिन्दी उपन्यास का सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० रमेश तिवारी, पृ० १७४
३ देशद्रोही—यशपाल, पृ० २६३
४ वही, पृ० २१३

गुलछर्रे उडाते हैं।"[1] वर्गगत चेतना के सम्बन्ध में प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका में भैरवप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि—"आठ मजदूर शहीदों और सत्तर घायल मजदूरों ने जो जगी एकता और क्रान्तिकारी सयुक्त मोर्चे की मशाल जलाई है, वह कभी न बुझेगी, उसकी लाल रोशनी धीरे-धीरे सारे हिन्दुस्तान में फैल जायेगी।"[2] श्रमिक वर्ग की चेतना की अभिव्यक्ति 'रीछ' उपन्यास में भी हुई है। "सेठ की कोठी के चारों ओर मजदूरों का विराट समूह एकत्र था। सहानुभूतिवश अन्य मिलों के मजदूर और अन्य लोग आ मिले थे। मजदूर जोर-जोर से नारे लगा रहे थे। अन्त में मजदूरों की ओर से एक मांग-पत्र लेकर कुछ लोग सेठ के पास उसकी कोठी म गये। पता चला सेठ मजदूरों के डर के कारण कोतवाली में बैठे हुए हैं। मजदूर हँसने लगे—भाग गया सेठ का बच्चा।"[3] इसी प्रकार "कहाँ या क्यों ?" उपन्यास में मजदूरों ने सगठन की आवाज बुलन्द करते हुए कहा है—"मजदूर भाइयो, पादरी साहब और शास्त्रीजी ने देश-विदेश, धर्म-अधर्म आदि पर तो प्रकाश डाल दिया, लेकिन बोनस की समस्या तो दूर रही, बोनस शब्द तक इनकी जबान पर न आया। आखिर ऐसा क्यों है ?"[4] शोषण के प्रति जागरूक हो अख्तर कहता है—"मजदूरों की इस शक्ति को, जो आकाश में गरजने वाली बिजली की भाँति दुर्दमनीय है, किस प्रकार के सगठन द्वारा क्रान्ति के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है ?"[5] प्रस्तुत सन्दर्भ में रूसी श्रमिक वर्ग के प्रयास उल्लेखनीय हैं। "रूस में गरीब किसानों और मजदूरों ने वहाँ के सरमायादारों की ताकत से पहली बार टक्कर ली और दुनिया में एक नये इन्कलाब को कामयाब बनाया तथा दुनिया के सारे गरीबों, किसानों, मजदूरों को एक नयी राह दिखायी। आज दुनिया का मजदूर उसी राह पर चल रहा है, आगे बढ रहा है।"[6] निश्चय ही वहाँ शोषण की भीषणता तथा 'वर्ग-चेतना' के फलस्वरूप मजदूर एक हो गये। 'मशाल' उपन्यास में इस भावना को चित्रित किया गया है—वहाँ कई मजदूर एक साथ बैठे खा रहे थे। मजदूर जब उनके पास पहुँचा तो एक ने कहा, "आओ भाई, तुम भी कुछ खा लो, सरमाने की जरूरत नहीं। कल तुम कुछ लाना तो हमें भी खिलाना। पहली दफा मालूम हुआ, कितना भाईचारा है मजदूरों में।"[7]

---

१ मशाल—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १०८
२ वही, भूमिका से उद्धत।
३ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ३४९-३५०
४ कहाँ या क्यों ?—रामप्रसाद मिश्र, पृ० १४४
५ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० ६५
६ मशाल—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १०६
७ वही, पृ० ६७

कृपक वर्ग

"कृषि-प्रधान देश होते हुए भी भारतीय किसान ब्रिटिश शासनकाल म सदैव उपेक्षित रहे। उनकी आर्थिक स्थिति इतनी हीन हाती गई कि वे अन्तत घर-बार बेचकर मजदूर बनने के लिए बाध्य हुए। किसानो की दयनीय स्थिति का कारण दुहरा शोपण था। अग्रेज सरकार के राज्याधिकारी कर्मचारी उनका शोपण तो करते ही थे लेकिन जमीदार का शोपण-चक्र अत्यन्त भयानक था।"[1] कृपक-शोपण का दूसरा कारण यह था कि वे राजनीतिक कुचक्रो से अपरिचित थे। वे जमीदारी शापण से मुक्ति तथा सरकार द्वारा सरक्षण प्राप्त करने के लिए सदैव क्रियाशील रह। 'स्वतन्त्र प्रयासा के परिणामस्वरूप ही किसानो न अपना मुक्ति आन्दोलन सगठित किया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन म सहयोग दिया।'[2] किसान की इन स्थितिया का वर्णन 'महाकाल' उपन्यास मे हुआ है। "दो-तीन उपास करना या आधे पेट रहकर जिन्दगी गुजार देना—इसकी आदत तो हमारे देश के हर किसान को जन्म से होती है। पेट की ओर से तो यह प्राय उदासीन हो चुका है लेकिन रुपया। अरे वह तो सपने की चीज है। लक्ष्मी का सुख तो सदा से बडे आदमियो के भाग मे रहा है।"[3] निरन्तर शोपणचक्र मे पिसते हुए 'रीछ' का एक किसान बुद्धिभाई अपने मित्र विमल से शोपण की निर्ममता के सम्बन्ध म कहना है— क्या बताए यार, गरीबी है। नही तो घमसानपुर के लठैत अभी मर नही गये है। इस गाँव मे मैंने खेत दिन दहाडे कटवा लिया था। तब ताकत थी बदन म।[4] 'गाँव मे जमीदारी खत्म हो चुकी है। ऐसे जुरमाने जमीदार वसूला करते थे और खुद वही काम करते थे। मेरी समझ मे यह जुरमाना गलत है और जुरमाना करना ही है तो रकम कम कर दी जाय और रुपया ग्राम सभा म जमा करा दिया जाय, ताकि सारे गाव के काम आ सक। आखिर अब सब बराबर है। दण्ड देने का अधिकार ग्राम सभा को होना चाहिए।[5] वस्तुस्थिति यह है कि किसान वर्ग सचेत होते हुए भी अन्धकार के गर्त म डूबा रहता है, 'क्योकि भारतीय किसान अशिक्षित है, अत राजनीतिक दाव-पेच तथा सिद्धान्तो का उसे ज्ञान नही।'[6] इस प्रकार अशिक्षित किसान का शोपण बहुविध किया

---

१ हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन—डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी, पृ० २११
२ हिन्दी उपन्यास का सास्कृतिक अध्ययन—डॉ० रमेश तिवारी, पृ० २२२
३ महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० २१ २४
४ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ६७४
५ वही, पृ० ६७७
६ हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन—चण्डीप्रसाद जोशी पृ० २१३-२१४

जाता है। काग्रेस द्वारा लगानबन्दी आन्दोलन के प्रश्रय के साथ किसान का सघर्ष ब्रिटिश सरकार से निरन्तर चलता रहा जो अत तक बना रहा। 'शोषण' का रूप परिवर्तित होता रहा, किन्तु उसे शोषण से मुक्ति कभी नही मिली।

निम्न तथा अधीनस्थ वर्ग

"उच्चता और निम्नता की भावना जिस वर्गगत सघर्ष को जन्म देती है, उनका चित्रण अनेक उपन्यासो मे हुआ है।"[1] 'एक और मुख्यमत्री' म उच्च वर्ग की कुप्रवृत्तियो द्वारा निम्न वर्ग का शोषण चित्रित किया गया है। "सेठ रतनलाल ऐसा व्यक्ति है जो अर्द्ध पिशाच बनकर गरीबो की हत्या करता है।"[2] "शोषण के चक्र मे अनवरत पिसते रहकर आज का 'निम्न वर्ग' दुरावस्था की उस सीमा तक पहुँच गया है, उनका जीवन अभिशाप बन गया है।"[3] निम्न वर्ग की वास्तविक स्थिति का वर्णन 'दादा कामरेड' मे किया गया है। "कानपुर शहर के उस खास तग मोहल्ले मे आबादी अधिकतर निम्न श्रेणी के लोगो की है। पुराने ढग के उस मकान म, जिसम सन् ३१ तक भी बिजली का तार न पहुँच सका था, किवाड विलायती कब्जा के नही कदरो और पँजा के थे। छत पर खपरैल का छप्पर था।"[4] वस्तुत निम्न श्रेणी के लोग सदैव उपेक्षित रहे हैं। 'रीछ' मे कामरेड सुदर्शन निम्न वर्ग के समर्थक माने गये है। "नही कामरेड विमल, किसान सभा का सभापति कोई हरिजन ही होना चाहिए। हमे गाँव के 'बुर्जुवा वर्ग' की चिन्ता नही करनी चाहिए।"[5] इसी के साथ वे काग्रेस को 'वर्ग स्वार्थ' मे रत बताते हैं। वे कहते हैं "हम गरीबो का राज्य चाहते हैं और धनियो के शत्रु हैं।"[6] 'सघर्ष' मे 'गुलाम वर्ग' का चित्रण किया गया है। "इन हिन्दुस्तानियो पर भी क्या फिटकार है। अग्रेज बनने को मरे जाते है। अग्रेज तो बनते नही, हिन्दुतानी भी नही रहते। दोनो दीन से जाते रहते है। यह दासता का परिणाम है। गुलाम की महत्वाकाक्षा यही रहती है कि वह भी अपने मालिक जैसा बन जाय।"[7]

शिक्षित देशभक्त वर्ग को दो भागो म विभक्त किया जा सकता है—एक भाग तो ब्रिटिश सरकार के उन्मूलन मे क्रियाशील था, जिसने राष्ट्रीय आन्दो-

---

१ हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युग-बोध—बसन्ती पत, पृ० १०२
२ एक और मुख्यमत्री—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ३४३
३ वही, पृ० ११
४ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० ३७
५ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ४६३
६ वही पृ० ४६८
७ सघर्ष—विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' पृ० २५२

लनो का सगठन किया तथा दूसरा प्रतिक्रियावादी तथा ब्रिटिश सरकार का समर्थक रहा। राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास वहुत कुछ पढे-लिखे तथा नौकरी पेशा लोगो के परस्पर विरोधी दलो का इतिहास है। 'देशद्रोही' मे "विश्वनाथ तथा डॉ० खन्ना समाजवादी तथा साम्यवादी दल का प्रतिनिधित्व करते हैं। डॉ० खन्ना मास्को ट्रेंड कम्युनिस्ट हैं, जहाँ उन्हे समाजवाद की शिक्षा मिली है। उनकी भावना श्रेणी-सघर्ष के माध्यम से पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके सर्वहारा वर्ग के द्वारा राज्य कायम करने की है।"[1] 'पार्टी कामरेड' मे शिक्षित देशभक्त गीता साम्यवादी विचारधारा द्वारा युग-चेतना को व्यजित करती है। वह नारी समाज के दायरे से वाहर आकर विभिन्न दलो की, जो राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग ले रहे थे, आलोचना करती है। "पार्टी वाले ऐसे बदला नही लेते। हम काग्रेस से लडेंगे तो अग्रेजो से कौन लडेगा? यह तो अग्रेजो के एजेण्ट पूँजीपति हैं जो काग्रेस म घुसकर ऐसी हरकतें करते है। उन्होने काग्रेस को वहका रखा है। काग्रेस तो देश की राष्ट्रीय सस्था है। देश की आजादी के लिए विदेशी सरकार से लडने वाली सस्था। हमारी पार्टी काग्रेस से लडती नही, उन्हे समझाती है। भाई-भाई लडेंगे तो विदेशी लुटेरा राज्य करेगा।"[2]

स्वयसेवक, कामरेड तथा नारी वर्ग

यशपाल के 'मनुष्य के रूप' नामक उपन्यास मे पुरुष द्वारा नारी शोषण का एक अन्य रूप मिलता है। "सुतली वाला अपनी शारीरिक अक्षमता जानते हुए भी मनोरमा से विवाह करता है। वह पत्नी के सुख-सतोष की चिन्ता किए विना केवल अपनी वासना की पूर्ति के लिए गृहस्थी जमाना चाहता था।"[3] सुतली वाला अर्थलाभ के लिए अपनी पत्नी को व्यभिचार के मार्ग पर ले जाने से भी नही हिचकता। 'अर्थ' के कारण नारी को गुलामी करनी पडती है। "एक किसान मजदूर श्रेणी की औरतें जो पति के वरावर काम करती हैं—और पति की गुलामी करती हैं—घाते मे।"[4] कहीं-कहीं स्त्री पुरुष वर्ग का विद्रोह भी दवी आवाज म करती है किन्तु फिर भी वह शोषित वर्ग म ही सम्मिलित है। "स्त्री पति को खोकर उसकी स्मृति के प्रति वफादार बनी रहे, यह पुरुष का गरूर है।"[5] आज का नवयुवक वर्ग भी सामाजिक स्वतन्त्रता की

---

१ देशद्रोही—यशपाल, पृ० २६३
२ पार्टी कामरेड—यशपाल, पृ० ७१
३. मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० ११६
४ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० १००
५ देशद्रोही—यशपाल, पृ० १०२

प्राप्ति के लिए सघर्षरत है। सामाजिक कुरीतियो को ठुकराने के साथ-साथ स्वस्थ जीवन यापन की प्रेरणा बदलते सामाजिक मूल्यों के आधार पर निर्मित करना चाहता है। 'मरु प्रदीप' उपन्यास की शान्ति एक विधवा स्त्री है। विमल उसे सामाजिक परम्पराओ से सघर्ष करने की प्रेरणा देता है। "प्रत्येक नवयुवक आज के जाग्रत् युग मे सामाजिक स्वतन्त्रता के लिए लालायित है। देश की विद्रोही शक्ति का अवतार है। तुमसे मेरा बारम्बार यही कहना है, न जाने कहा, किसके अमर मन्दिर मे एक ऊँचा स्थान तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"[1]

'सर्बहि नचावत राम गुसाईं', 'पार्टी कामरेड' तथा 'दादा कामरेड' उपन्यासो के रवीन्द्र, गीता, दादा सभी कामरेड है। साम्यवादी दल के कार्यकर्ता कामरेड कहलाते हैं। उनका पार्टी अनुशासन उच्चकोटि का होता है। चूकि वे सर्वहारा वर्ग का प्रतिपादन करते है। वे शोषित वर्ग की श्रेणी मे ही आते हैं किन्तु अपने अधिकारों की माग के लिए सघर्षरत व सगठित रहकर पूँजीपति वर्ग का विरोध करते हैं। कामरेड रवीन्द्र पूँजीपति वर्ग की महिला गगादेवी से पूछ बैठे—"देवी जी। यह ट्रैक्टर फैक्टरी सरकार खोल रही है या सेठ राधेश्याम खोल रहे हैं? किसानो को क्या मिलेगा, जिनकी जमीन पर कब्जा किया जा रहा है? यह किसान भूमिहीन और बिना घरबार वाले हो जायेंगे।"[2] जिसके उत्तर मे पूँजीपति वर्ग निरुत्तर रहता है। "'मनुष्य के रूप' मे कामरेड भूषण का जीवन साम्यवादी आदर्शों के अनुकूल ढला हुआ दृष्टिगोचर होता है। शोषण के विरुद्ध वह अन्त तक सघर्ष करता है।"[3] कामरेड की क्रान्तिकारी विचार-धारा मजदूर पर से पूँजीपति वर्ग का शोषण समाप्त करने के लिए कटिबद्ध रही है। "इनका प्रेरणास्रोत समाजवादी देश रूस था, जहाँ मजदूरो का राज्य स्थापित हो गया था। पूँजीपतियो के विरुद्ध हड़ताल उनका प्रमुख कार्यक्रम बना।"[4] प्रेमचन्दोत्तर काल मे 'नारी वर्ग' "जो सदियो से शोषित वर्ग की गहनतम सीढी पर उतर चुकी थी अब अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए चेतना-युक्त हो चुकी थी। परम्परागत मान्यताओ को मानने वाला पति हालांकि उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को स्वीकार नही करना चाहता।"[5] 'दादा कामरेड' की शैल 'नारी वर्ग' की चेतना का प्रतीक है जो सघर्ष की चुनौती समाज के समक्ष रखती है। "पति परमेश्वर जरूर है, परन्तु और भी बीसियो परमेश्वर हैं।

---

१ मरु प्रदीप—रामेश्वर शुक्ल अचल, पृ० ४५
२ सबहि नचावत राम गुसाईं—भगवतीचरण वर्मा, १६१
३ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रबोध नायक, पृ० ६५
४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—रमेश तिवारी, पृ० २२८
५ हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग—मंजुलता सिंह, पृ० २३६

प्रत्येक को अपने-अपने स्थान पर रहने देना ठीक है।"[1] इसी प्रकार 'मनुष्य के रूप' मे 'नारी वर्ग' शिक्षित होकर मनोविश्लेषण द्वारा अपनी वर्ग-चेतना के द्वारा शोषण से मुक्ति का समाधान प्रस्तुत करता है। "जो मर्द-औरत एकसाथ रहना चाहते हैं, उन्हें जबरदस्ती दूर रखियेगा तो वे मिलने की चेष्टा मे बद-माश बनेंगे ही। उन्हे एक साथ रहने दीजिए, वदमाशी खत्म हो जायेगी।"[2] यह 'नारी वर्ग' की शोषण के प्रति जागरूकता का दूसरा पहलू है। वह पुरानी मान्यताओ को तोड कर स्वतन्त्र व्यक्तित्व की उपलब्धि मे सघर्षरत है। 'महा-काल' मे प्रत्येक पात्र अपनी आबरू से खेलता है, नारी को सम्पत्ति मानता है। सम्पत्ति का उपयोग उदर-पूर्ति हेतु करता है। 'नारी वर्ग' के शोषण का यह गहनतम चित्रण है। "शीबु की माँ गिडगिडाती है—'बेटा, मेरी जान ले ले, मेरी आवरू न ले', परन्तु शीबु अपनी पत्नी को सम्पत्ति मानता है—'यह मेरी सम्पत्ति है, मेरी वस्तु है, मैं इसे बेचूंगा, मुझे भूख लगी है, भूख। ला चावल ला ·।'"[3] और आधा सेर चावल के बदले मे मूक पशु की भाँति बडी बहू एक मालिक से दूसरे मालिक के हाथों म चली जाती है। शोषण के प्रति विद्रोह को स्वी-कार कर सत्यवान उषा को समझाता है—"पागल लडकी, खामखा अपने सर पर धूल उछाल रही है, वह न होती तो कोई दूसरी नई रोशनी की लडकी इस घर मे आती और उसके सग भी वही होता जो उषा के सग हुआ। यहाँ व्यक्तियो की बात नही, दो युगो, दो दुनियाओ की टकराहट है।"[4] इस प्रकार मार्क्सवादी चेतना की सवाहक औपन्यासिक कृतियो मे शोषित वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न पात्रो का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। इन पात्रो का जीवन कुठाग्रस्त, दयनीय, उपेक्षित और निर्मम शोषण से सत्रस्त है। किन्तु उल्लेखनीय यह है कि इस वर्ग के पात्र जीवन को सगर मानकर परिस्थितियो से जूझते हुए बुर्जुवा वर्ग से लोहा लेते हैं।

वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियाएँ

मार्क्सवादी चेतना के रचनाकार प्रतिक्रियावादी शक्तियो के विरुद्ध प्रगति-कामो शक्तियो का चित्रण करते है। इस वर्ग के लेखक समाज म व्याप्त 'वर्ग-सघर्ष' तथा वर्गीय असगतियो का गहरा तथा सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं। इस वर्ग का लेखक—"भविष्य के क्रान्तिकारी रचनात्मक और वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न तर्कसम्मत और 'विजन' का मूर्तिकरण करता हुआ रचनाएँ लिखता

---

१ दादा कामरेड—यशपाल पृ० १७
२ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० ७४ ७५
३ महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० २४२
४ बीज—अमृतराय, पृ० २२४

है।"[1] इसीलिए, उपन्यास संरचना का विश्लेषण करते हुए राल्फ फाक्स ने उचित ही कहा है कि—"उपन्यास को आधुनिक 'बुर्जुवा' समाज का महाकाव्य कहा गया है।"[2] "जिसमें मनुष्य का पूर्ण चित्र अंकित करने की तथा महत्वपूर्ण अन्तर्मन को अभिव्यंजित करने की सुविधा प्राप्त है। युगजीवन का व्यापक चित्रण करने के कारण 'उपन्यास को गद्य युग का महाकाव्य' कहा गया है।"[3] यही नहीं, "उपन्यास के महाकार में एक साथ व्यक्ति, समाज और युग के प्रयोग, परम्पराएँ और परिवेश की परिस्थितयों का समाहार होता है।"[4] मानव चिन्तन लम्बे समय तक असमानता के कारणों की खोज में लगा रहा। आश्चर्यजनक तथ्य है कि कुछ लोग जो जीवनपर्यन्त कार्य करते थे, अपमान सहते तथा भूखे मरते रहे तथा जिन्होंने जीवन-भर हाथ नहीं हिलाया, आराम की जिन्दगी बिताते रहे। ऐतिहासिक दृष्टि से सभी देशों के श्रेष्ठ विचारकों ने अपने विचार आदर्श समाज की कल्पना तथा न्याय की लोकप्रियता के अनुरूप ही व्यक्त किए। १९वीं शताब्दी में प्रकृति और समाज की व्यवस्थाओं के विकासक्रम की वैज्ञानिक व्याख्या का आधार स्थापित किया जा सका। "सबसे पहले यूरोप में, उन वर्गों के बीच जो पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग के नाम से जाने थे, ऐसे विरोध उत्पन्न हुए कि मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण करने का प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया।"[5] "पूंजीवाद आर्थिक व्यवस्था कितनी ही विकसित क्यों न हो जाय परन्तु वह स्थायी नहीं हो सकती। अन्तत उसका पतन अवश्यम्भावी है।"[6]

समाज में 'वर्ग-संघर्ष' निरन्तर एक चक्र में घूमते रहने की बजाय, सदैव निम्नतर से उच्चतर मंजिल की ओर, मार्ग की समस्त बाधाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, विकासमान रहता है। वस्तुत यही सामाजिक प्रगति का मार्ग है। समाज में 'वर्ग-संघर्ष' निरन्तर बदलते रूपों में विद्यमान रहा है। मार्क्स के कथनानुसार समाज में, पूंजीवादी व्यवस्था में, सामाजिक क्रान्ति व सर्वहारा वर्ग के आधिपत्य के द्वारा, समाजवादी व्यवस्था में ही 'वर्ग-संघर्ष' की समाप्ति होगी। समाजवादी व्यवस्था में ही वर्गविहीन व राज्यविहीन व्यवस्था लागू होने पर वर्गों के मध्य शोषण की भूमिका भी समाप्त हो जाती है। निजी सम्पत्ति, जिसके आधार पर पूंजीपति वर्ग अर्थतन्त्र पर अपना प्रभुत्व कायम करने

---

१. आलोचना (त्रैमासिक)—अंक २८, पृ० ३०
२ द नावल एण्ड द पीपुल—रैल्फ फाक्स, पृ० ८०-८१
३ हिन्दी महाकाव्य : सिद्धांत और मूल्यांकन—डॉ० देवीप्रसाद गुप्त, पृ० ८१
४ साहित्य, सिद्धांत और समालोचना—डॉ० देवीप्रसाद गुप्त, पृ० २१२
५ राजनीतिक ज्ञान के बुनियादी सिद्धांत—वी०पी० कुजिन, पृ० ६
६ हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना—डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० ११९

और मजदूरो का शोषण करने तथा उसके श्रम के फल को हडप लेने मे सक्षम रहता है। श्रमिको के सामाजिक सगठन व उस सम्पत्ति मे अपेक्षित रूप से हिस्सा बटाने मे क्रान्तिपूर्ण तरीका ही 'निजी सम्पत्ति' को सार्वजनिक सम्पत्ति मे परिवर्तित करता है। अत दो वर्गो मे (शोषक तथा शोषित) सघर्ष ही अनेक समस्याओ को उभारता है तथा विद्रोह की अवस्था मे सगठित हो उस अवस्था का उन्मूलन करने मे सक्रिय रहता है। अस्तु वर्ग की प्रतिक्रियाए भी विविध रूपो मे सामने आती है।

आर्थिक शोषण का कुचक्र

आर्थिक परिस्थितिया ही समाज मे विभिन्न श्रणियो और उनके सघर्षो के स्वरूप को निर्धारित करती है। अत इतिहास की व्याख्या के लिए आर्थिक परिस्थितियो पर आधारित श्रेणी-सघर्ष की व्याख्या भी आवश्यक हो जाती है। इतिहास के अध्ययन द्वारा ही 'आर्थिक शोषण' की विभिन्न प्रक्रियाए उभरती है। 'दास प्रथा' से पूजीवादी व्यवस्था तक निम्न वर्ग का शोषण आर्थिक आधार पर ही किया गया है। 'दास प्रथा' व 'सामन्तवादी प्रथा' म यह शोषण प्रत्यक्ष रूप मे चलता है, जबकि पूजीवादी व्यवस्था मे छिपे तौर पर चलता रहता है। "शोषण और दमन जब पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, तब विद्रोह हो जाता है। शोषित और दमित अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ 'करो या मरा' का सकल्प लेकर शोषको और अत्याचारियो के विरुद्ध क्रान्ति का शखनाद करने लगते है।"[1] 'मार्क्सवाद' की समस्त चेतना सामाजिक व्यवस्था के आर्थिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित है। वस्तु उत्पादन शक्ति की न्यूनाधिकता के कारण ही समाज मे आर्थिक विपमता देखी जाती है, जो वर्गवाद अथवा द्वन्द्वात्मक स्थिति की जन्मदात्री है। इस द्वन्द्व की स्थिति के चरम सीमा पर पहुँचते ही 'वर्ग-सघर्ष' का अन्त भी हो जाता है तथा वर्गविहीन समाज का जन्म होता है। अस्तु, स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था की विपमता ही 'वर्ग-सघर्ष' को जन्म देती है।

'वर्ग-सघर्ष' मे समस्त मानव समाज को दो भागो मे विभक्त किया जाता है। एक वर्ग वस्तु उत्पादक का होता है तथा दूसरा उस वस्तु का उपभोक्ता होता है।"[2] प्रथम वर्ग सारी शक्ति लगाकर उत्पादन म वृद्धि करता है तथा दूसरा वर्ग उन वस्तुओ पर अधिकार करना चाहता है। द्वितीय वर्ग की अधिकार-लालसा और प्रयत्न प्रथम वर्ग के हृदय म असतोप उत्पन्न करता है तथा 'वर्ग-सघर्ष' शुरू हो जाता है। इस प्रकार 'अर्थ' के आधार पर सदैव शोषित

---

१ प्रगतिवादी साहित्य—डॉ० कृष्णलाल हंस, पृ० २६२
२. वही, पृ० ११

अथवा निम्न वर्ग का शोपण होता रहा है। 'महाकाल' उपन्यास मे पाचू के विचार मे दयाल जमीदार के द्वारा आतिथ्य-सत्कार व भुखमरी का निरीक्षण, एक दिखावा मात्र है। जमीदार के द्वारा आतिथ्य-सत्कार ही गरीवी का शोपण है तथा 'वर्ग-सघर्ष' का प्रेरक है। पाचू सोचने लगा—"वह भी इसी तरह का एक नागरिक नौकर होता। एस०डी०ओ० होकर वह भी शायद इसी तरह भुखमरो का निरीक्षण करने आता। दयाल जमीदार का आतिथ्य-ग्रहण कर स्काच की ह्विस्की के जोर पर नवाबी प्लेटें हजम करता।"[1] पाचू द्वारा शोपण की यथार्थपरक व्याख्या इस प्रकार की गई है—"इस गिलास मे जितनी कीमत का पानी भरा है, उससे दस आदमियो का पेट भर सकता है। भुखमरो की मौत ही इस गिलास के सुनहरे पानी मे नशा बनकर हम लोगो को खुश कर रही है। आइये, हम हजारो की मौत का एक जाम पीयें।"[2] अकाल एक प्राकृतिक विपदा है। अकाल के फलस्वरूप आवश्यक वस्तुओ का अभाव, पूजीपति वर्ग द्वारा वस्तु का सग्रह कर लेना ही निम्न वर्ग के शोपण का कारण व 'वर्ग-सघर्ष' का प्रेरक बनता है। 'विपाद मठ' उपन्यास मे वसन्त का पिता गरीवी के कारण व उसके पुत्र की मृत्यु के कारण अर्धविक्षिप्त हो जाता है। अकाल के कारण बढती आर्थिक विपमता से निम्न वर्ग जर्जरित हो गया है। अपनी जठराग्नि को शान्त करने के लिए जमीन तक को रहन रखना पडता है। यह 'आर्थिक शोपण', का प्रत्यक्ष रूप है। "जमीन रख दे। अगली फसल का आधा भाग इसी मे काट देना। जमीन की जमीन बच जायेगी और तेरा काम भी हो जायेगा।"[3] इस प्रकार कृपक वर्ग की वस्तु एकत्रीकरण नीति द्वारा जमीनो को भी उच्च वर्ग अथवा शोपक वर्ग हडप कर जाता है। फलस्वरूप विद्रोह होता है तथा 'वर्ग-सघर्ष' की चेतना जाग्रत् होती है। आज तो पैसा ही धर्म तथा देवता है। 'आखिरी दाव' मे चमेली सेठ शीतलप्रसाद की शोपक वृत्ति को पहचान जाती है तथा व्यग कसते हुए कहती है, "पचास हजार के शेयर आप मेरे नाम खरीदेंगे, बडी मजेदार बात कही सेठ ! मेरी कीमत बहुत अधिक लगा दी सेठ—पचास हजार रुपया।"[4] इस प्रकार चमेली शोपित वर्ग की रुपयो की सरसराहट मे यौवन की गरिमा लुटा देती है अथवा लुटा देने को बाध्य कर दी जाती है। निश्चय ही आर्थिक शोपण का यह कुचक्र अत्यन्त घिनौना है। यह शोपण विभिन्न वर्गों द्वारा किया जाता है।

---

१ महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० ६
२ वही, पृ० १२६
३ विपाद मठ – रांगेय राघव, पृ० ५६
४. आखरी दाव—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १५४

सामन्त वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण

'सामन्त वर्ग' शोषक वर्गों मे सबसे प्रमुख है। "सामन्त वर्ग के अन्तर्गत स्वतन्त्रता से पहले की देशी रियासतो के राजा-महाराजा और सम्पूर्ण भारत के जमीदार और जागीरदार आ जाते हैं।"[1] "मार्क्स के शब्दो मे देशी राजा और अग्रेजी शासन-व्यवस्था के दृढ़ स्तम्भ भारत की उन्नति के बाधक तत्त्व थे तथा इनका गहन शोषण भी उल्लेखनीय है।"[2] 'महाकाल' मे एक प्रसग है कि अच्छी फसल होने पर किसानो ने अपनी स्त्रियो के लिए गहने बनवा दिए हैं। पास पैसा होन पर वे बौरा-से गये हैं। किन्तु जमीदारी उधार-वसूली उनके स्वप्नो को ध्वस्त कर देती है। यह आर्थिक शोषण का एक भीषण पहलू है। अकाल घोषित स्थिति व उधार-वसूली प्रत्यक्ष शोषण है जो 'वर्ग-सघर्ष' का प्रेरक तत्त्व है। "दयाल और मोनाई की उधार-वसूली शुरू हुई। मोनाई की तरफ से, दयाल जमीदार की तरफ से, कचहरिया से सम्मन आने लगे। चार दिनो की चाँदनी दिखाकर सुहागिनो के तन पर चमकते हुए सोने और चाँदी के गहने उतर गये। पक्के मकान अब सुरग मे बनेंगे। दस का माल दो म लुट गया।"[3] इस प्रकार कृषक वर्ग भूखो मरने लगा तथा वर्ग सगठित हो विद्रोह की आग उगलने लगा। इस प्रकार उधार-वसूली द्वारा 'जमीदार वर्ग' 'वर्ग-सघर्ष' की भूमिका तैयार करते है। अमृतराय के 'हाथी के दाँत' म सामन्ती जीवन पद्धति को लक्ष्य बनाकर, 'शोषण' की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। 'ठाकुर साहब को हुकूमत का बल था, अपने पैसो का बल था, पुश्तहापुश्त चले आते हुए अपने दबदबे का बल था और अपने और दूसरे जागीरदारो के गुर्गो का बल था। ठाकुर-साहब से लोग मन ही-मन काँपते थे कि न जाने कब किसके घर दाग लग जाय।"[4] 'आर्थिक शोषण' के साथ-साथ वासना की दृष्टि से ठाकुर साहब नारी-सौन्दर्य के अद्वितीय जौहरी थे। 'धनसम्पन्नता' के आधार पर निम्न वर्ग की औरतो का शोषण करते थे। चन्द्रिका की मृत्यु तथा चम्पाकली के साथ सम्भोग उन्होने आर्थिक प्रभुत्व के आधार पर ही किया था। अर्थ के आधार पर इस प्रकार का शोषण सामन्तीय जीवन का ज्वलन्त उदाहरण है। वर्गगत चेतना के फलस्वरूप निम्नवर्ग की दशा-सुधार का एक दृश्य प्रस्तुत किया गया है 'एक और मुख्यमन्त्री' म। उपन्यासकार के शब्दा म 'सामन्तो द्वारा शोपित ये भूखे-नगे लोग जिन्हाने सदियो से अच्छे वस्त्र नही पहने थे, वे धीरे-धीरे विकसित होने

---

१ हिन्दी की प्रगतिशील कविता—डॉ० रणजीत, पृ० १७७

२ भारत वर्तमान और भावी—रजनी पामदत्त, पृ० २३३ पर उद्धृत

३ महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० २४

४ हाथी के दाँत—अमृतराय, पृ० ३१

लगे।"[1] जमींदार के अत्याचार से 'वर्ग-संघर्ष' की प्रेरणा मिली 'मानव-दानव' के डाकू को। "जमींदार को किसी ने कह दिया, मेरी पत्नी बहुत सुन्दर है, बस उसने उसे जबरदस्ती पकड़कर मँगवा लिया, उसी दिन मैं डाकू हो गया। पहले तो मैंने गँड़ासे से जमींदार और उसके दो कारकुनों को खत्म किया, उसके बाद मैं डाकू बन गया।"[2] 'जब सूरज ने आँखें खोलीं' उपन्यास में मगरू निम्न वर्ग का पात्र है। सरल स्वभाव का व्यक्ति है। "वह इतना सरल था कि कभी किसी काम के लिए इन्कार नहीं करता। ,तभी उसके महाजन उससे होली-दीवाली और तिथि-त्यौहारों पर बेगार लेते। बदले में रूखी-सूखी रोटियाँ मिलतीं। बेगार में वह लोगों के घरों की दीवालें लेपता, पेनिया करता, पोतता और चबूतरे आदि लीपता था।"[3]

इस प्रकार सामन्तवादी व्यवस्था बेगार प्रथा और शोषण का भयंकर अस्त्र बनी हुई थी। गाँव पार्वतीपुर में ऊँचे तबके के लोग करीब-करीब महाजन ही थे। जमींदारी उन्मूलन से पूर्व जमींदार "गरीबों से पैसा बेरहमी से वसूल करते, जो एक बार कर्ज ले लेता वह जीवन-पर्यन्त मुक्त नहीं हो पाता। वह नहीं उसकी औलाद भी कर्ज चुकाते-चुकाते थक जाती और ब्याज बढ़ता ही चलता।"[4] निश्चय ही महाजनी एवं जमींदारी शोषण ऐसा भयंकर शोषण था कि जिससे उऋण होना बहुत ही कठिन था। जब उधार माँगने पर बिन्दो गौरी को रुपया नहीं देती है तो गौरी में विद्रोहवृत्ति का उदय हो जाता है। वह कहती है—"दीदी, जिनका पेट भरा है उन्हें दिन में भी नींद आती है और जो भूखे हैं उनकी रात एक युग की तरह हो जाती है। मेरा रतन भूखा है, घर में अन्न का दाना नहीं है। मगरू की टाँग टूट गई है। मुझे सेर-भर अनाज दे दो दीदी। कल मजदूरी पर जाऊँगी जो मिलेगा तुम्हें दे दूँगी।"[5] लेकिन बिन्दो उसके लात मारती है, घर से निकाल देती है तथा मदद करने से इन्कार कर देती है। पचनामा लिखाकर उसके मकान पर दखल कर लेती है—"गौरी, अन्दर जाओ। अपना सामान और बच्चों को ले जाओ। इस घर में बिन्दो का ताला बन्द होगा अभी और इसी समय मगरू ने फैसला कर दिया है कि कर्ज के बदले बिन्दो को मगरू का मकान मिलना चाहिए।"[6] बेगार प्रथा की ये परिस्थितियाँ 'वर्ग-संघर्ष' को पनपाती हैं।

---

१. एक और मुख्यमंत्री—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० २७४
२. मानव दानव—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० २३५
३. जब सूरज ने आँखें खोलीं—कमल शुक्ल, पृ० १२
४. वही, पृ० १३
५. वही, पृ० १७-१८
६. वही, पृ० ६४

पूंजीपति वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण

भारत मे 'पूंजीपति वर्ग' का उदय काफी पहले ही हो चुका था किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् भारतीय 'पूंजीपति वर्ग' एक शक्तिशाली वर्ग बन गया। सन् १९४७ के बाद तो भारतीय शासन की बागडोर ही इस वर्ग के हाथ मे आ गई। 'नया इन्सान' उपन्यास में पूंजीवादी व्यवस्था का स्वरूप विवेचन इस प्रकार है—"इस पूंजीवादी युग के तीन वर्ग हैं—शोषक, शोषित एवं मध्यम वर्ग। इस मध्यम वर्ग के दो हिस्से है—उच्च मध्यम वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग। तुम निम्न मध्यम वर्ग के व्यक्ति हो जिसे सफेदपोश कहा है। तुम दिमागी तौर पर शोषक वर्ग यानी पूंजीपति की तरह के वर्ग के निकट ही होते हो।"[1] इस प्रकार निम्न मध्यम वर्ग कभी शोषित वर्ग मे जा मिलता है तथा कभी पूंजीपति वर्ग में। समाज मे मार्क्स ने केवल दो ही वर्गों को स्वीकारा है—पूंजीपति तथा सर्वहारा। पूंजीपति वर्ग द्वारा 'अर्थ' के आधार पर सर्वहारा वर्ग का अप्रत्यक्ष शोषण होता है। सब प्रकार के पदार्थ श्रम से ही उत्पन्न होते हैं फिर समाज में श्रम करने वालो की ही अवस्था सबसे बुरी क्यों है? इसका कारण है 'पूंजीपति वर्ग' द्वारा अतिरिक्त मुनाफा हड़प लेना। 'पार्टी कामरेड' मे—"मजदूरों को पदार्थों को बनाने की मजदूरी कम मिलती है और बाजार मे उस वस्तु का दाम काफी अधिक रहता है। यह अन्तर ही मालिक का मुनाफा तथा मजदूर का शोषण है।"[2] यह चिन्तन मार्क्स के 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत' का प्रतिफलन है तथा शोषक की वर्गस्वार्थ की वृत्ति से परिपूर्ण है। यह चिन्तन 'मजदूर वर्ग' मे वर्गगत चेतना का प्रादुर्भाव करता है। इस प्रकार "पूंजीवाद मे आधार कुछ नही, उसका आधार केवल धन का सम्मान है।"[3] 'देशद्रोही' मे मालिक तथा मजदूर को एक-दूसरे का पूरक माना है। "मालिक पूंजी लगाते हैं, इसमें सन्देह नही परन्तु पूंजी के रूप में लगाया हुआ धन भी तो मजदूरों की सहायता से ही कमाया जाता है। इसलिए मालिक उस धन के सरक्षक हैं तथा मजदूरों के हित की चिन्ता करना भी उनका कर्तव्य है।"[4] निश्चयत मजदूरो की वर्गगत चेतना व संघर्षपूर्ण स्थितियो ने ही उनके बारे मे सोचने के लिए पूंजीपतियो को विवश किया, क्योंकि मालिक लोभ के कारण आवश्यकता से अधिक धन रखते हैं तथा मजदूरो को उनकी जरूरत से कम देते है, अत वर्गगत विद्वेष बढ़ जाता है और इसका परिणाम होता है "मालिक-मजदूर मे

१ नया इन्सान—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ६८
२ पार्टी कामरेड—यशपाल, पृ० १७
३. वही, पृ० २१
४. देशद्रोही—यशपाल, पृ० ६०-६१

निरन्तर विद्वेष बढ़ना तथा समाजवादी हिंसा। मजदूर अपने प्राण बचते न देखकर मिल, कारखाने व सम्पत्ति अपने हाथ में लेना चाहेंगे।"[१] इस पूँजीवादी व्यवस्था में पैसे का महत्त्व सर्वोपरि है—"इस ससार में सभी बन्धन पैसे के माध्यम से देखे जा रहे हैं।"[२] "इस समाज मे किसी मनुष्य के गुण-विशेष का आदर नही है। आदर है पैसे का। जिसके पास जितना पैसा है वह उतना ही गुणी, चतुर और महान है। वह उतना ही आदर पाता है इस समाज मे। गुण-ज्ञान और विद्या सब गौण है इस पैसे की खनखनाती दुनिया मे।'[३] आखरी दाँव' मे चमेली *को धन का प्रलोभन देकर सेठ शीतलप्रसाद चमेली और रामेश्वर के मध्य* सघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर देता है। 'सेठ! तुम रामेश्वर को नही गिरफ्तार कर सकोगे"—"चमेली रानी रामेश्वर रहेगा जेल मे और तुम रहोगी रानी बनकर मेरे घर मे। तुम नही जानती, जो कुछ मैं कर रहा हूँ तुम्हारे लिए ही कर रहा हूँ, सिर्फ तुम्हारे लिए।"[४] इस प्रकार सेठ शीतलप्रसाद निम्न वर्ग के प्रतिनिधि पात्र रामेश्वर, जो चमेली का पति है, से उसकी पत्नी को छीनकर स्वय भोग करने की कामना रखता है। एक बार वह चमेली का शीलहरण करते पाया जाता है। चमेली जो धन के कारण बिक चुकी थी, रामेश्वर उसे सेठ शीतलप्रसाद के साथ अव्यवस्थित अवस्था मे देखकर 'सघर्ष' करने को विवश हो जाता है। वह स्पष्ट शब्दो मे चमेली से कहता है—'हम सब पैसे के गुलाम है, धन ही हमारा ईश्वर है, हमारा अस्तित्व है। इस पैसे की दुनिया मे न पाप है न पुण्य, न प्रेम है न भावना—जो कुछ है वह धन है। जिसके पास पैसा है वह सब-कुछ खरीद सकता है रूप यौवन शरीर, आत्मा।"[५] डॉ० तिवारी के शब्दो मे "प्रेमचन्द के बाद यानी सन् १९३६-३७ के बाद भारतीय राजनीतिक आर्थिक जीवन म पूँजीवाद एक शोषक के रूप मे उभर कर सामने आता है।"[६] 'दादा कामरेड' मे 'बेटा, दान देना और दया करना एक बात है और अपनी जड काट लेना दूसरी बात है।"[७] ये विचार शैल के पिता के है जो उच्च व्यापारी तथा पूँजीपति विचारो के प्रस्तोता है। 'विषाद मठ' तथा 'महाकाल उपन्यासो मे चन्द्रशेखर तथा मोनाई ऐसे व्यापारी हैं, जो चोरबाजारी करके अकाल की परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं। यही नही, वे मानवीय व सास्कृतिक

---

१ देशद्रोही—यशपाल, पृ० ६१
२ एक मुख्यमंत्री—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ८
३ वही पृ० १८
४ आखरी दाव—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २०२
५ वही, पृ० १८१
६ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० रमेश तिवारी, पृ० २४
७ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० १४७

मूल्यों की उपेक्षा करके नृशंस अत्याचारों के बल पर पैसा कमाते हुए पूंजीपति बन जाते हैं।

व्यापारी वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण

यथाकार श्री यशपाल जी के शब्दों में "इस कौम का हर जानवर सड़कों पर नहीं, अपितु ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं या बंगला में रहता है, जहाँ वह जन-जन को अपने हिंस्र जबड़ों के बीच दबोचकर उनका खून चूसा करता है।"[1] 'रूपाजीवा' में गोरेमल व्यापार के बीजमंत्र चेतराम को देता है, "मूंधा इन अखबारों को, नब्ज पकड़ो भविष्य की और उनके इशारों पर काम करना शुरू कर दो। अरे चेताराम, हाथ को पारस पत्थर जैसा बना लो, जिसे छूओ वही सोना हो जाय। जिसके पास सोना है उसी का संसार है।"[2] 'जब सूरज ने आँखें खोलीं' उपन्यास में व्यापारी वर्ग का प्रतीक है धूपचन्द। वह पूंजी के बल पर औरत की इज्जत लूट लेता है—"गौरी जैसे ही झपटी धूपचन्द पर, वैसे ही दो आदमी दौड़ पड़े। बात की बात में उसके पैर बाँध दिये गये, मुंह में कपड़ा भरा गया और फिर मार पड़ी बेंतों की। अबला बिलबिला गई। पूंजी स्तम्भ उसकी अस्मत मिट्टी में मिल गई।"[3] इस प्रकार व्यापारी वर्ग द्वारा भी आर्थिक शोषण निरन्तर चलता रहा है तथा शोषित वर्ग के लिए संघर्ष का कारण सिद्ध होता है। व्यापारी अपनी मुनाफाखोरी की नीति से सदैव इन्सान का गहन शोषण करता रहा है। "समाज और संसार का आरम्भ होता है व्यक्ति से। जब व्यक्ति अपने जीवन में रुकावट अनुभव करता है तभी वह सामाजिक संकटों के प्रति चिन्ता अनुभव करने लगता है, व्यक्तिगत और सामाजिक अधिकार की बात सोचने लगता है।'[4] यह चिन्तन ही व्यक्ति की सामाजिक चेतना का प्रतीक है, जो संगठित रूप में शोषण के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करता है।

जमींदार वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण

जमींदारी प्रथा शोषण का भयंकर प्रतिरूप है। इसने किसानों को निर्ममतापूर्वक शोषण करके उनकी भावना को झकझोर दिया। परिणामस्वरूप वे संगठित होने लगे। उनमें वर्ग चैतन्य का उद्बोधन होने लगा। *'गंगा मैया'* के किसान मटरू की कठोर परिश्रम के कारण खेती अच्छी होती है तथा दो-तीन साल में

---

१ नया इन्सान—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ६१
२. रूपाजीवा—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ८२-८३
३ जब सूरज ने आँखें खोलीं—कमल शुक्ल, पृ० १२३
४. दादा कामरेड—यशपाल, पृ० ८५

ही उसकी झोपडी बडी हो जाती है। दुधारू गाय जमुना और पारी भैंस और एक जोडा बैल दरवाजे पर झूमने लगते हैं। "उसने खूब डटकर मेहनत की और मेहनत का पसीना सोने का पानी बनकर फसलों पर लहरा उठा।"[१] जमीदार के कानो मे खबर पहुँची तो वे कुनमुनाए। तीरवाही के किसानो की भी जीभ से, छाती-छाती भर रब्बी की फसल देखकर, लार टपकने लगी। वे जमीदार के यहाँ पहुँचे और लम्बी-चौडी लगान देकर उन्होंने खेती की जमीन माँगी। जमीदारो को जैसे बेमाँगे ही वरदान मिले। उन्होंने दनादन दूनी-चौगुनी रकम सलामी ले-लेकर किसानो के नाम जमीनें बन्दोबस्त करनी शुरू की।"[२] जमीदार का कारिन्दा मटरू किसान को जमीदारो के जालिम शोषण व अत्याचार की चर्चा करते हुए सलाह देता है कि तुम जैसे किसान को उनसे उलझना ठीक नही। मटरू किसान वर्ग-चेतना का प्रतीक बनकर कहता है—"चले हैं अब जमीदारी का हक जताने। आय न जरा हल काँधे पर रखकर देखें, दिल्लगी है यहाँ खेती करना? भोले किसानो को बेवकूफ बनाकर उनसे रुपये ऐंठ लिए। उनसे कह देना कि यहाँ गगा मैया की अमलदारी है। किसी ने पाँव बढ़ाये तो देखते ही न धारा। एक की भी जान न बचेगी।"[३] 'राग दरबारी' उपन्यास के कृषक गयाप्रसाद वर्ग-चेतना से युक्त क्रियाशील व्यक्ति हैं। जब वे जमीदारी उन्मूलन का सदेश देते हैं तो एकाएक लोग उसे नही स्वीकारते—"वे जब जमीदारी-विनाश की बात करते तो लोग जान जाते कि यह बिना लगान दिये साल पार कर जाना चाहता है।"[४] और सघर्ष के लिए आतुर हो उठते। "अर्द्ध गुलामी जमीदारो के द्वारा शोषण किसानो का तीव्रतर शोषण था। अर्द्ध गुलामी के अन्तर्गत उत्पादन का मुख्य आधार तमाम जमीन जमीदारो के अधिकार म होती थी। किसानो की अनको पीढियो द्वारा जोती और तैयार की हुई जमीन पर जमीदार अपना आधिपत्य कायम कर लेते थे। वे इतने से भी सतुष्ट नही होने थे, अत वे अपनी राज्यशक्ति का प्रयोग करके किसानो को अर्द्ध गुलाम बना लेते थे।"[५] यही नही, हफ्ते मे तीन-चार दिन अपने खेत पर किसानों से काम करवाकर, अन्य स्थानो मे किसानो की उपज के अधिकाधिक भाग को जमीदार भूमि-कर के रूप मे हडप लेता था।"[६]

इस प्रकार विश्व मे किसानो के अनेक विद्रोह हुए जिन्हे जमीदारो और

---

१. गगा मैया—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ११
२ वही, पृ० १२
३. वही, पृ० १७
४ राग दरबारी—श्रीलाल शुक्ल, पृ० ११०
५ समाज का विकास—रमेश विद्रोही, पृ० २०
६ वही, पृ० २१

सरकार ने निर्ममता से कुचल दिया। 'विषाद मठ' उपन्यास में जमीदारी अत्याचार पर धर्म की धुन्ध भी चढी हुई है—"किसान सदा की भाँति किस्मत को कोसते तथा ईश्वर के नाम पर अधिक व्यय करते। गरीब किसान को अपनी बहू की सुहाग की चूडियाँ बेचकर रुपया चुकाना पडा था, इसीलिए तभी से वह पागल हो उठा।"[1] वस्तुत विभिन्न तरीकों से जमीदार वर्ग किसानों का शोषण करता रहा। किसानों से बेगार लेकर, लगान जमा करके, फसल में हिस्सा लेकर भारतीय मेहनती किसान को सदैव विपन्न रहने दिया जाता है। जमीदारों के नृशस अत्याचारों से पीडित होकर भारतीय किसान विद्रोह से भर उठे और किसान आन्दोलन चला। अकाल म यही किसान मजदूर बनने लगे। 'विषाद मठ' उपन्यास के रुद्रमोहन ने जब श्यामपद किसान को कुल सवा दो सौ रुपये थमाये तो वह विचलित हो गया, "रुद्रमोहन ने पहले पुराने कर्जे, बैनामे और रसीदें चुकता करके श्यामपद को कुल सवा दो सौ रुपये थमा दिए, तब श्यामपद के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई और उसने कहा—'मालिक, इससे कितने दिन काम चलेगा?' "[2]

धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण

प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासों में भारतीय समाज में धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण का बहुत मार्मिक चित्रण हुआ है। पण्डे-पुरोहित धर्म के बहाने हजारों रुपये लूट लेते थे तथा भारत की जनता इनके शोषण का निरन्तर शिकार होती रही थी। आज के उपन्यासों में इस प्रकार का शोषण यदा-कदा ही देखने को मिलता है। मार्क्सवादी चेतना से अनुप्रेरित मानवीय चिन्तन अनीश्वरवादी है। भारतीय उपन्यासों मे बनिया, जमीदार, पण्डे, पुरोहित सभी धर्म के नाम पर जनता का शोषण करते हैं—जनता जिसे मार्क्स के शब्दों में 'सर्वहारा वर्ग' कहा गया है। 'महाकाल' उपन्यास का मोनाई भगवान का भगत है और उसके सहारे जनता को लूटता है—"जब से कण्ठी ली, अपनी जान में तो कौने पाप किया नही मैंने। चीटी को चारा देता रहा हूँ। गाँव वाले तो भूखे मर रहे हैं। हाँ, साधु-भिखारी द्वार से भूखा लौटता तो बहुत पाप लगता। ये तो दुकानदारी ठहरी, सौदा पटा तो किया नही तो जय राधे।"[3] "भगवान जी ने अगर इस नये व्योपार में अच्छे पैसे बना दिए तो आगे चलकर एक अनाथालय और आश्रम भी खुलवाय दूँगा।"[4] इस प्रकार धर्म की आड में मोनाई अपने स्वार्थ-

१ विषाद मठ—रांगेय राघव, पृ० ९-११
२ वही, पृ० ३८
३ महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० १४५
४ वही, पृ० १४६

जाल में लोगों को फँसाकर धन बटोरने में सफल हो जाता है। इसी प्रकार का चित्रण कतिपय अन्य उपन्यासों में भी हुआ है।

शासक वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण

आर्थिक शोषण की भावना शासक वर्ग में प्रेम के स्थान पर विरोध की स्थिति उत्पन्न कर देती है। इस शोषक व्यवस्था में बँधे मालिक वेतन के अतिरिक्त नौकरशाही वर्ग अतिरिक्त प्राप्ति की अपेक्षा भी रखता है। अतः येनकेन प्रकारेण जनता का निरन्तर आर्थिक शोषण करता है। दही मथने से नवनीत का प्रादुर्भाव होता है। दही दूध से तैयार होता है। दूध गाय के शरीर से निकलता है, कोई वैज्ञानिक गाय का शरीर काटकर नवनीत निकालना चाहे तो सम्भव नहीं। मानव जीवन की भी व्यवस्था इसी प्रकार है।"[1] 'राग दरबारी' उपन्यास में "दरोगा जी रंगत के शौकीन हैं, जो भी पाकेट में मिल जाय उसी के शौकीन हैं। अचानक वे दूर से ऊपर पड़े हुए सिपाही से बोले, 'अरे भई सिपाही, यह टूटी मूँज वाली चारपाई छोड़ आओ ना, रुपया धेली में नीलामी होती हो तो हम ही ले लेंगे।'"[2] इसी प्रकार का प्रसंग अन्यत्र उपलब्ध है— 'इस क्षेत्र में सरकार तथा उसके अफसर का स्वार्थ एक नहीं है। एक लड़की को भगाने के लिए उसके बाप पर इलजाम लगाकर उसे नजरबन्द कराने तथा बाद में लड़की भगाकर अपनी रखैल के रूप में जबरदस्ती रखने में सरकार का कोई भी स्वार्थ नहीं हो सकता।"[3] ब्रिटिश साम्राज्य में मनुष्य मनुष्य नहीं रह गया था। वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का एक रक्तपिपासु पुर्जामात्र है। अब केवल वह एक पुर्जा था, गुलाम था, एक ऐसा गुलाम जो यह प्रमाणित करने के लिए लालायित था कि वह बहुत अच्छा विश्वासपात्र और वफादार गुलाम है।"[4] इसी प्रवृत्ति द्वारा शासक वर्ग ने अधीनस्थों का सभी प्रकार का शोषण किया। 'उखड़े हुए लोग' में शरद देशबन्धु जी के यहाँ कार्य करता है। वह पूंजीपति वर्ग के अधिनायक हैं। शरद कई बार चेष्टा करता है कि वह कुछ रुपया उनसे माँगे तथा जीवन यापन करे किन्तु देशबन्धु जी इतना मौका ही नहीं देते और उसे स्वदेश महल ले जाते हैं, 'देशबन्धु जी की हर बात के पीछे एक घनीभूत स्वार्थ, एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण, एक प्रतिक्रिया का प्रतिकार है—यह वही और केवल वही समझ रहा था।"[5] वह सोच रहा था—"मालिक के अगाड़ी और घोड़े

---

१ अनामंत्रित मेहमान—आनन्दशंकर माधवन पृ० ४३४
२ राग दरबारी—श्रीलाल शुक्ल पृ० २२५
३. शहीद और शोहदे—मन्मथनाथ गुप्त पृ० १५३-१५४
४ वही, पृ० २५
५. उखड़े हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० २८८-२८९

के पिछाडी कभी नही आना चाहिए, यह चाहे सच हो या न हो, लेकिन यह जरूर सच है कि जब भी आप बडे आदमी के साथ चलेंगे या तो घिसटेंगे, या लटकेंगे, क्योकि न तो आप उतने ऊँचे है और न उतना तेज चल सकते हैं।"[1] कितना तीखा व्यग्य है इस कथन मे शासक वर्ग की ओर तथा एक यथार्थ व्याख्या और प्रस्तुत है। स्वदेश महल से लौटते म शरद का बहुत देर हो जाती है, तथा खाना की प्रतीक्षा म जया झुंझला जाती है, जिससे शासक वर्ग की वास्तविकता सामने आती है। 'देखा पद्मा जीजी ? यह है आजकल का ढग। सुबह से हम तो बैठे है भूखे-प्यास, लेकिन वहाँ चिन्ता किसे है। आप भी तो खाते-फाडते— 'यहाँ कौन सा मोहनभोग खाकर आ रहे है ? तुमने चाय तब भी पी ली होगी, यहाँ चाय की सूरत अब देखी है।'"[2]

इस प्रकार शासक वर्ग नाना रूपो म आर्थिक शोषण करता है। कही निम्न वर्गों की स्त्रिया का शोषण करके तो कही उससे बेगार करवाके व कही पर उसे पूर्ण आर्थिक सहायता न देकर। इस प्रकार शोषित कर्मचारी वर्ग एकता स्थापित कर 'सघर्ष' की घोषणा कर देते हैं। अरस स दमित व घुटती आवाज बुलन्द रूप से गूंजन लगती है तथा उसकी परिणति हडताल आदि के रूप मे होती है, जो अन्तत वर्ग-सघर्ष की उद्भावक बनती है।

नारी-शोषण

"किसानो और मजदूरो के बाद भारतीय समाज का एक बृहत् शोषित समूह है—भारतीय नारी। अधिकतर भारतीय स्त्रियाँ दुहरा शोषण और पद-दलन सहती हैं। एक ओर तो वे सामन्ती और पूँजीवादी आर्थिक परिस्थितियो के कारण शोषित वर्गों के पुरुषो के साथ ही शोषण का शिकार बनती है, दूसरी ओर अपने परिवार के पुरुषो—पिता, भाई और पति के द्वारा अतिरिक्त रूप से शोषित या पददलित की जाती हैं।"[3] वस्तुत नारी जाति का गहनतम शोषण आर्थिक आधार पर ही हुआ है। समाज मे 'नारी वर्ग' सदैव उपेक्षित वर्ग रहा है। उपेक्षित जीवन तथा निरन्तर शोषण से आक्रात नारी वर्ग मे नवयुग-चेतना का उन्मेष हुआ। प्रेमचन्दोत्तर काल म नारी स्वातन्त्र्य के प्रश्न को लेकर सघर्ष-क्षेत्र म उपस्थित हुई तथा वर्ग-सघर्ष का कारण बनी—"यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि भारतीय समाज मे नारी वर्ग ही सर्वाधिक पीडित वर्ग रहा है, अछूत वर्ग से भी अधिक।"[4]

---

१ उखडे हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० १०१
२ वही, पृ० १००
३. हिन्दी की प्रगतिशील कविता—डॉ० रणजीत, पृ० १७०
४ हिन्दी उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन—चण्डीप्रसाद जोशी, पृ० ११३

"भारतीय नारी अनेक सामाजिक स्तरों, ऐतिहासिक युगों तथा राजनैतिक परिस्थितियों से होकर गुजरी है। आग और पानी उसने समान रूप से लांघा है। सेवा उसका भाव रहा है तथा त्याग उसका सम्बल।"[१] ऋग्वेद में नारी शक्ति और औदार्य की प्रतीक रही है परन्तु रामायण-महाभारत काल ने नारी को एकाकी नर की छाया के रूप में अंकित किया है। ऋग्वेद के अन्तिम युग में नारी को जुए के दाव पर रखना एक साधारण बात हो गई थी। भारतीय नारी का आचरण तो त्याग तथा सहिष्णुता की पराकाष्ठा माना गया। मनु ने नारी की प्रतिष्ठा की व्याख्या तो की, परन्तु अधिकार की व्याख्या करना वे भी भूल गए। नारी की हीन दशा का प्रमुख कारण आर्थिक ही रहा है। अधिकारों से वंचित होने के कारण ही नारी अत्यन्त पिछडी हुई है।

नारी-शोषण का एक आयाम : आर्थिक विवशताएँ

प्रेमचन्दोत्तर काल में अपने विकसित व्यक्तित्व के कारण नारी पुरुष के शोषण को सहज स्वीकृत नहीं कर पाती किन्तु विवाहोत्तर जीवन में अनेक विवशताएँ ऐसी होती हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध धन से होता है। निश्चय ही धनाभाव के कारण नारी सदैव शोषित होती रही। 'आखरी दाव' का रामेश्वर वर्गगत चेतना के फलस्वरूप यह स्वीकार करता है—"आज मैंने देख लिया कि दुनिया में पैसा ही ताकत है—सबसे बडी ताकत। पैसे के लिए इन्सान को शरीर बेचना पडता है—कम से कम मेरी चमेली को तो अपना शरीर बेचना पडा है।"[२] "यशपाल नारी की समस्या के मूल में आर्थिक पराधीनता को ही प्रमुख मानते हैं।"[३] चन्दा के जीवन में अशान्ति का कारण उसकी आर्थिक पराधीनता ही है। 'देशद्रोही' उपन्यास में खन्ना चन्दा को समझाता है—"स्त्री की स्थिति ही समाज में ऐसी है। जब तक उसे जीवन के साधन जुटाने का स्वतन्त्र अवसर नहीं मिलता, उसकी स्वतन्त्रता, प्रेम और आचार सब पुरुष का खिलौना है। तुमने अपने-आपको बलिदान कर सहा, अब उससे विद्रोह भी करो तो क्या कर सकती हो ? जब तक जीवन के संघर्ष में अपने पैरों पर खडे होने का साधन तुम्हारे पास न हो ?"[४] 'हाथी के दाँत' में चन्द्रिका की आर्थिक विवशताओं के कारण ही चम्पा का शोषण ठाकुर साहब के द्वारा किया गया। चम्पा अपनी आर्थिक स्थिति से अधिक महत्त्वाकांक्षी नारी है। ठाकुर साहब मनिहारिन के द्वारा उसके पास अनेक आभूषण व वस्त्र पहुँचाते हैं तथा एक दिन अपने यहाँ

---

१ भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण—भगवतशरण उपाध्याय, पृ० १७७
२ आखरी दाँव—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २०
३ हिन्दी उपन्यास में मध्यवर्ग—डॉ० मंजुलता सिंह, पृ० २१६
४ देशद्रोही—यशपाल, पृ० ६६

बुलवाकर उसका शीलहरण कर लेते है—"वाह, कैसा सेव जैसा रग, कैसा साँचे मे ढला हुआ शरीर। यह रूप, यह यौवन लेकर बेचारे उस घसियारे के पास पडी है। तेरी लीला भी विचित्र हैं भगवान। उफ, कैसी सजीली देह है जो बुड्ढे को भी एक बार जवान कर दे।"[१] "तभी ठाकुर साहब ने उसकी कलाई पकड ली और अपनी तरफ खीचा—जो बढकर उठा ले, मीना उसी का है।"[२]

रूढिगत मान्यनाएँ तथा नारी-स्वातन्त्र्य

सदैव से ही नारी वर्ग का सम्बन्ध रूढिगत मान्यताओ से जुडा रहा है। यही नयी व पुरानी पीढी के मध्य सघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासो मे नारी के प्रेम की मान्यता "प्रेमचन्द-कालीन प्रेम की भाँति सीधी और सरल नही है। आर्थिक-सामाजिक जीवन की विसगतियो के कारण उसमे जटिलता और उलझन आ गई है।"[३] 'मनुष्य के रूप' की सोमा पहले तो आर्थिक कठिनाइया से मुक्ति पाने के लिए और बाद मे वैभव-विलास के मोह मे पडकर प्रेमदान को अपनी स्वार्थसिद्धि का साधन बनाती है। सोमा का चित्रण, "वह पहाडिन अपने जीवन मे क्रमश धनसिह, मनोरमा के भाई बरकत और सुतलीवाला सभी से प्रेम करती है। यह ठीक है, उसने कभी भी किसी भी पुरुष को धोखा देने के भाव से प्रेम नही किया। आर्थिक परिस्थितियो के कारण ही वह ऐसा करती है।"[४] रूढिगत मान्यता है कि स्त्री को स्वतन्त्र न छोडा जाय, नही तो स्त्री का पतन अवश्यम्भावी है परन्तु आज की शिक्षित नारी उस मान्यता को तोडने म सघर्परत है। आज की नारी पति के चरणो पर गिरकर क्षमा माँगने के स्थान पर अपने मे पति के प्रति चुनौती की भावना जाग्रत् करना चाहती है—"स्त्रियो पर पुरुषो का सदा ही अविश्वास रहता है…यदि आप समझते हैं स्त्रियाँ इस विश्वास के योग्य नही कि वे घर से बाहर निकल सकें, तो घर मे ही उसका क्या विश्वास है…यदि आपको मुझ पर विश्वास नही तो कहिए…।"[५] यशोदा अपने पति के सम्मुख ये भाव प्रकट करती है। 'देशद्रोही' मे खन्ना के प्रति चन्दा का स्वातन्त्र्य-वार्तालाप राजाराम को सहन नही होता, उनके मन मे प्रतिहिसा की भावना भडक उठती है। "खन्ना जी चले गए फिर खाने की क्या फिक्र है। फिक्र तो उनकी ही करनी चाहिए। वे बडे आदमी हैं, कप्तान साहब थे, अब लीडर हैं, बडे विद्वान हैं। हम तो

---

१ हाथी के दांत—अमृतराय, पृ० २२
२ वही, पृ० २३
३ हिन्दी उपन्यास मे नारी चित्रण—डॉ० बिन्दु अग्रवाल, पृ० १८३
४ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० २८३
५ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० १५६

बेवकूफ हैं, मरें या जियें हमारा क्या है।"[1]

पुरुष के विवाहोपरान्त नारी के प्रति आकर्षण से पत्नी का समस्त जीवन दुखी और त्रस्त हो जाता है। 'मनुष्य के रूप' में सुतलीवाला अपनी शारीरिक अक्षमता जानते हुए भी मनोरमा से विवाह करता है। वह पत्नी के सुख-सन्तोष की चिन्ता किए बिना केवल अपनी वासना की पूर्ति के लिए गृहस्थी जमाना चाहता है।"[2] इधर जाग्रत् नारी इस विकट अवस्था को सहते रहना अपराध समझती है। सुतलीवाला एक फिल्मी अभिनेत्री पहाडन को घर में बसाना चाहता है, इसलिए वह भी मनोरमा से मुक्ति पाना चाहता है। नीता कामरेड के द्वारा 'सकोच' को पूंजीवादी संस्कृति का पाखण्ड-मात्र माना गया है तथा वह 'तलाक' के लिए प्रोत्साहित करती है—"वह निरन्तर जोर दिए जा रही थी कि मनोरमा इस गन्दगी से निकले।"[3] इस प्रकार आज की नारी नवयुग-चेतना के फलस्वरूप 'संघर्ष' की नवीन स्थितियाँ बन गई हैं। 'कांचघर' की रत्ना का पति मुकुन्दराव अपनी भाभी सखूबाई की ओर आकर्षित है, इसलिए रत्ना का जीवन अत्यन्त दुखी रहता है। "'सखू! ''मैं उस हरामजादी के चक्कर में तुझे भूल गया था। तुझ जैसी प्रेम करने वाली औरत को।''' रत्ना के सारे शरीर में फफोले उभर आए। ओह!'' कितना घृणित! क्या ऐसे ही होते हैं घर और घरू औरतें?'' तमाशे से भी अधिक विद्रूप और घिनौने हैं ये इज्जत वाले लोग।"[4]'''वस्तुतः रत्ना में विद्रोह की आग भड़क उठती है, वह पुरुष के अत्याचारों से तंग आकर पुनः संघ में लौट आती है।

'मरु प्रदीप' उपन्यास की शान्ति विधवा लड़की है। विमल की सलाह से वह नौकरी करने का विचार करती है किन्तु दुनिया से दूर भागने की उसकी पलायनवृत्ति तथा आत्मस्वीकरण का झूठा आदर्श जो समाज की पुरानी मान्यताओं पर आधारित है, उसे मजबूर करता है। विमल उसे पुनर्विवाह की सलाह देता है—"संसार के प्रति यह माया-ममता कब तक कर्त्तव्य-पथ पर चलेगी? मनुष्य का मन कमजोरियों का आगार होता है। नारी-जीवन असंगतियों का घर होता है। एक बार पैर फिसलते ही क्या इस प्रचण्ड प्रवाह में रुकूंगी।"[5] कभी कभी शान्ति के दृढ़ संकल्प को निहार कर विमल समाज की विधवा समस्या पर विरोध प्रकट करता है। "कभी-कभी घृणा से रोम-रोम जलने लगता है। उससे सौगुना विषाद होता है, यह देखकर कि युग-युग से

---

१ देशद्रोही—यशपाल, पृ० २८४
२ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० १६६
३ वही, पृ० २२६
४ कांचघर—रामकुमार भ्रमर, पृ० १६५
५ मरु प्रदीप—रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', पृ० ६५-६६

विधवा कही जाकर पुरुष के मर जाने के बाद उसके सम्मान-मर्यादा के नाम पर साप की केंचुली की तरह छोडे गए सतीत्व की परिपूर्ति के नाम पर नारी न जाने कितनी शताब्दियों से यह बीभत्स समर्पण सहती आयी है ।"[१] 'गगा मैया' म बडी बहू से सास कहती है—' तेरे ये लच्छन अच्छे नही हैं, तुझे यह क्या हो गया है ? बेवा को दिमाग ठण्डा रखना चाहिए। काहे पर अब तू मुझे दिमाग दिखाती है।"[२] जब सास उसे प्रताडित करती है तो बहू की विद्रोही आत्मा भभक उठती है—"बाप-भाई मर गए हैं क्या ? उनके कहने से न गई उसी का तो नतीजा भुगत रही हूँ । जहाँ जागर तोडूँगी, वही दो रोटी मिलेंगी। रोएँ वह जिनके जागर टूट गए हो ।"[३]

यह 'विधवा समस्या' भी नारी शोषण का प्रमुख साधन रही है किन्तु अब यह समस्या इतनी तीव्र नही रही है। अब तो बदलती हुई सामाजिक मान्यताओं के कारण विधवा-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, पुर्नविवाह होने लगे हैं। अब इनके स्थान पर स्त्री म सघर्ष जन्मा है—"यही तो स्त्रियों की शिकायत है कि आप युग-युग तक उस पत्नी, माता, पुत्री बनाकर परिवार मे बाँधकर रखना चाहते हैं किन्तु स्त्री अब परिवार की ही नही रही।"[४] अब उसका दायरा परिवार मे बाहर भी है—"स्त्री पति को खोकर उसकी स्मृति के प्रति वफादार बनी रहे, यह पुरुष का गरूर है।"[५] नारी के विस्तृत दायरे ने उसके जीवन मे अनेक नयी समस्याएँ पैदा कर दी है। 'मनुष्य के रूप' की सोमा अशिक्षित है किन्तु सुन्दर, गुणी और चतुर है, पहाडी विधवा औरत है—"विधवा नारी के साथ समाज जैसा व्यवहार करता है उसका सफल चित्रण यशपाल ने सोमा के माध्यम से किया है।"[६] सोमा परिस्थितियों की दास दिखाई देती है। घर से बाहर की समस्या ने उसे अनायास अभिनेत्री बना दिया जिसके आधार पर वह निरन्तर शोषित होती रही—"भारतीय जीवन का प्रतिनिधि सत्य यह है कि सोमा के समान असख्य लडकियाँ जीवन म घुट-घुटकर यो मर जाती हैं और फिल्मी दुनिया उनके लिए कल्पना के प्रासाद मात्र रहती है।"[७] आज भी समाज मे सफल पत्नी को पुरुष की मानसिक अवस्थाओं के अनुसार तथा उसकी हित दृष्टि को ध्यान मे रखकर व्यवहार करना पडता है किन्तु घर से बाहर

---

१ मरु प्रदीप—रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', पृ० ४७
२ गगा मैया—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ६५
३. वही, पृ० ६६
४ तीन चासोस पचास—प्रभाकर माचवे, पृ० ३२
५ देशद्रोही—यशपाल, पृ० १०२
६ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक, पृ० ६९
७ आलोचना (त्रैमासिक)—जनवरी १९५७, पृ० ८५

की समस्या के द्वारा इस मान्यता मे परिवर्तन होने लगा है। "पत्नीपद की इस मान्यता को मैं भीषण पराधीनता समझती हूँ। मैं तो अब मुक्ति ही चाहती हूँ, मुझसे यह धन्धा असभव है।'[१] आज 'विवाह' की मान्यता भी बदलती जा रही है। 'अर्थचक्र' से शोषित नारी अब शिक्षित होकर स्वावलम्बी बनती जा रही है। 'टूटा व्यक्तित्व' उपन्यास की वसू एक शिक्षित महिला है, वह 'पर्दा प्रथा' का विरोध करती है किन्तु सामाजिक रूढ़ियाँ उसे पर्दा करने को विवश करती हैं। यही शिक्षिता नारी के संघर्ष का कारण है—"वसू, घूंघट का विरोधी मैं भी हूँ, लेकिन जब तक बड़े भैया हैं, मैं कुछ नहीं कर सकता। तुम्हें घूंघट निकालना चाहिए।"[२]

सामन्ती व्यवस्था मे विलास व व्यभिचार द्वारा नारी शोषण

'सामन्ती व्यवस्था' म अर्थाभाव तथा पुरुष की विलासप्रियता व कामुकता के कारण नारी पर अत्याचार होते रहे हैं। 'सामन्त वर्ग' के लोग ऐयाशी प्रवृति के कारण धन के बल पर नारी का मनमाना शोषण करते थे। 'दबदबा' उपन्यास मे वेश्या रामेश्वरी को रखैल रूप म स्वीकारा जाता है। उसे व्यभिचार का साधन भी बनाया जाता है। 'दादा कामरेड' उपन्यास की यशोदा एक क्रान्तिकारी महिला है, किन्तु उसके पति अमरनाथ के विचार नारी के प्रति सामन्तवादी धारणा के अनुकूल हैं—"स्त्री पतन और अनाचार का मूल है, उसका कभी विश्वास नही करना चाहिए। परपुरुष से अपनी स्त्री के शारीरिक सम्बन्ध की बात सोचते ही सिर चकराकर उनकी आंखो म खून उतर आया।'[३] रगनाथ 'राग दरबारी' उपन्यास म एक पतुरिया की ओर आकृष्ट होता है, परन्तु सामन्तीय प्रवृत्ति के कारण शीघ्र ही उसे पतुरिया म अवगुण दीखने लगते हैं, 'बरसा से नाक मे छल्ला लटकाये घूम रही है और वह इसके ठुमरी-दादरा का नगाडा पीटता है। भैस जैसी आबरू है और बडी उत्साही बनती है। इलाके की सबसे सडियल पतुरिया है।[४] 'शहीद और शोहदे' उपन्यास म अमरीकसिह ने सामन्तीय व्यवस्था म नारी के शोषण का एक नवीन आयाम उपस्थित किया है—'अमरीकसिंह आगे बढ़ा और उसने लडके को उसकी दादी से छीनकर ऐसे पटक दिया, जैसे वह कोई लोटा हो। अमरीक ने गिरधारी की मां के साथ भी वही बात की जो उसकी पतोहू के साथ किया था, पर वह वृद्धा झटका नही सभाल सकी और वह नगी होकर जमीन पर गिर

---

१ अनामन्त्रित मेहमान—प्रभाकर माचवे, पृ० २१
२ टूटा व्यक्तित्व—मनहर चौहान, पृ० १६
३ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० १०४ १०५
४ राग दरबारी—श्रीलाल शुक्ल, पृ० १६५

पडी ।"[1] अमृतलाल नागर के 'महाकाल' मे दयाल जमीदार सामन्ती सस्कृति का प्रतीक है । "दयाल का व्यक्तित्व टूटते हुए सामन्तवादी का रूप प्रस्तुत करता है ।"[2] अकाल से विवश होकर ग्रामवासी निराश्रय तथा साधनहीन हो सामन्ती ठेकेदारो की दया पर आश्रित रहते है, परन्तु इन पूंजीवादी ठेकेदारो का शोषणक्रम ऐसी परिस्थिति मे भी नही टूटता । वस्तुत "यह उपन्यास महाजन तथा जमीदार के स्वार्थ चगुल मे कराहती ककाल-शेष जनता का मार्मिक चित्रण है ।"[3] 'सामन्ती समाज मे नारी भोग-विलास की वस्तु है, जिस पर पुरुष का पूर्ण आधिपत्य है । उसका अपना कोई अस्तित्व और गौरव नही है । उसका अस्तित्व किसी की पुत्री, श्रीमती और माता बनने म है ।"[4] 'बीज' उपन्यास मे नारी के प्रति होने वाले अत्याचार और अन्याय का मार्मिक चित्रण किया गया है—"रूढियो के मोटे-मोटे रस्से काटना कोई आसान बात नही है । पुराने सस्कारा का अनुसरण सामन्ती जीवन का सबसे बडा हथियार है । जो लोग उनका सामना करते है, वही आगे बढ सकते हैं ।'[5] सच तो यह है कि सामन्ती सस्कार अभी भी समाज मे निर्मूल नही हुए है ।

पूंजीवादी समाज मे नारी की सघर्ष-चेतना

पूंजीवादी समाज मे प्रत्येक वस्तु 'अर्थ' के आधार पर आंकी जाती है । वास्तव म "आधुनिक युग मे औद्योगीकरण, नगरीकरण एव अर्थोपार्जन के कारण विसगतियाँ उत्पन्न हुई हैं तथा जीवन मे बिखराव आ गया है । आज आर्थिक क्रान्ति के कारण आजीविका के साधन बढ गए हैं ।"[6] आर्थिक दृष्टि से स्त्रियो का भी नौकरी के अवसर उपलब्ध हुए है तथा स्त्रियों की स्वतत्र आजीविका ने उन्हे अपने अधिकारा एव स्वतत्रता के प्रति जागरूक किया है । 'देशद्रोही' मे आर्थिक विषमता को लेकर जहाँ स्वार्थ टकराते हैं, वहाँ सयुक्त परिवार की दृढ दीवार भी चकनाचूर हो जाती है । नवीन और प्राचीन विचारो के सघर्ष के कारण सयुक्त परिवार टूटता दिखाई देता है । 'बीज' उपन्यास का सत्य अपनी माँ की रूढिवादी विचारधारा स तग आकर अपना अलग घोसला बनाना चाहता है । "इन हालता म सयुक्त परिवार चल नही सकता । अब तो मैं अपना अलग ही घोसला बनाऊँगा । जहाँ सिर्फ तीन लोग

---

१ शहीद और शोहदे—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० २३-२६
२ हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन—डॉ० ब्रजभूषणसिंह, पृ० ३०७
३ हिन्दी उपन्यास—शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० ३७५
४ बात-बात में—यशपाल, पृ० ५५
५. बीज—अमृतराय, पृ० २१७
६ हिन्दी उपन्यासों मे पारिवारिक चित्रण—महेन्द्रकुमार जैन, पृ० २०१

होंगे, उषा, मैं और हमारा मुन्ना।"[1] 'संघर्ष' उपन्यास की स्नेहलता विवाह को एकमात्र आर्थिक समझौता मानती है तथा अपने से प्रौढ एवं निर्बल डिप्टी मजिस्ट्रेट से विवाह करती है। वह विवाह की आड़ में अपने सहपाठी मदन से अनैतिक यौन-सम्बन्ध जोड़े रहती है। उसकी मान्यता है, "पति तो पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक है, प्रेम के लिए नही।"[2] यशपाल की मान्यता है कि आर्थिक पराधीनता के कारण ही पत्नी पति की पराधीनता एवं दासता स्वीकार करती है। उनके मतानुसार पत्नी आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही शासक-शासित भेद-भाव को समाप्त कर आत्म-निर्भर बन जाती है। सच तो यह है कि नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता 'वर्ग-संघर्ष' का परिणाम है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र नारियों का चित्रण अनेक उपन्यासो में किया गया है। पूँजीवादी व्यवस्था में नारी-शोषण एक गहनतम रूप में चित्रित है। 'नया इन्सान' उपन्यास में अर्चना शोषित नारी है, वह माडल गर्ल है। अशेष से कहती है—"तुम मुझे प्यार नही कर सकते, क्योंकि मैं पूँजी पर अपना अस्तित्व बेचने वाली नारी हूँ।"[3] 'दबदबा' उपन्यास में हरदयाल अपनी लड़की को ससुराल नहीं भेजता है, क्योंकि वह कर्जदार है तथा उसने उसके आभूषण भी गिरवी रखे हुए हैं। "हरदयाल को लड़की की सूरत दिखाई देने लगी, जिसे ससुराल इसलिए नहीं भेजा जा रहा है कि उसकी चीजें एक बनिये के गिरवी पड़ी हैं।"[4]

वर्गगत चेतना से युक्त होकर भी आज 'नारी' पूँजीवादी व्यवस्था में बहुविध शोषित है। शोषण की प्रक्रिया ही नारी को 'वर्ग-संघर्ष' के लिए उत्प्रेरित करती है। नारी के प्रति पूँजीवादी मनोवृत्ति ने ही उसे पतनोन्मुख किया है। "पूँजी की गुलामी से आजाद मुल्कों में भी इस बात की सच्चाई का प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। व्याहता कहीं किसी कोठरी में पड़ी सिसकती रहती है और मर्द का बच्चा किसी रुपये, दो रुपये, चार रुपये, दस रुपये, पचास रुपये, पाँच सौ रुपये वाली रंडी वेश्या को लिए मौज उड़ाता रहता है। बहुत बार इस बेचारी व्याहता को खुद ही अपने हाथों पतिदेव की इन केलियों का बिस्तर लगाना पड़ता है।"[5] इस प्रकार का पूँजीवादी शोषण नारी में विद्रोह का भाव उत्पन्न कर देता है, वह 'संघर्षरत' रहते हुए इस शोषण-चक्र से निकलने के लिए प्रयत्नशील रहती है। 'रीछ' की अनुपमा शोषण के प्रति सजग हो सेठ पुत्र गणेश को प्रताड़ना देती है—'गणेश जी! आप एक धनी कांग्रेसी सेठ के

---

१ बीज—अमृतराय पृ० २१६
२ संघर्ष—कौशिक, पृ० १४६
३ नया इंसान—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ८६
४ दबदबा—यज्ञदत्त शर्मा, पृ० ३६२
५. बीज—अमृतराय, पृ० २००

सुपुत्र है सुशिक्षित हैं। आप अब राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़े हैं। आप अपना कार्य करिए, मुझे इतना महत्त्व देने की आवश्यकता नहीं।"[1] इसमें पूंजीपति वर्ग पर प्रखर प्रहार किया गया है, यहाँ नारी अपने स्वातन्त्र्य के लिए संघर्षरत दिखाई देती है।

साम्प्रदायिक संघर्ष

साम्प्रदायिक संघर्षों का मूल कारण धार्मिक कट्टरता है। संकुचित धार्मिक भावना के फलस्वरूप हुए साम्प्रदायिक संघर्षों में मानवता का रक्त बहा है। भारत विभाजन में सैकड़ों हिन्दू-मुसलमानों को मौत के घाट उतारा गया। साम्प्रदायिकता की आग देश में विभाजनोपरान्त भी शान्त नहीं हुई। इस भावना ने स्वाधीनता के पश्चात् विभिन्न समूहों में अलगाव पैदा कर दिया तथा परम्परागत नैतिक विघटन का ऐसा अवरोध खड़ा कर दिया कि राष्ट्रीय एकता मात्र नारा बनकर रह गई। भारत में साम्प्रदायिकता की जड़ें बहुत गहरी हैं। साम्प्रदायिकता का विषवमन 'आर्यों और अनार्यों के संघर्ष के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। कालान्तर में जातिप्रथा की सीमाओं में चलने वाले द्वन्द्व में साम्प्रदायिकता बढ़ती गयी। हिन्दू-मुस्लिम पारस्परिक संघर्षों में इसका नृशंस रूप प्रकट हुआ। आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता तीन रूपों में प्रकट होती है। प्रथम, उत्तर तथा दक्षिण को आधार बनाकर, द्वितीय, जातिप्रथा के बीच चलने वाले द्वन्द्व को लेकर एवं तृतीय, हिन्दू-मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को लेकर संघर्षस्वरूप में।"[2] "बीसवीं शताब्दी में आकर धर्म का वह रूप भी सामने आया, जब राजनीतिक स्वार्थों के लिए उसका खुलकर उपयोग किया गया तथा अमानवीय स्तर पर धार्मिक कट्टरतावाद तथा सम्प्रदायवाद का जन्म हुआ।"[3]

साम्प्रदायिक संघर्ष भी दो सम्प्रदायों में वर्ग-संघर्ष की भावना को लेकर पनपा। अंग्रेजों ने भारत के विभिन्न वर्गों एवं सम्प्रदायों में फूट डालकर अपने शासन को स्थिर रखने का सदैव प्रयत्न किया। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य इस कूटनीति का ही परिणाम है। यह समस्या धार्मिक न होकर तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियों का परिपाक है। "समय-समय पर अंग्रेजों ने मुसलमानों को विशेषाधिकार देकर इन दो सम्प्रदायों में एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या की भावना उत्पन्न कर दी। तत्कालीन धार्मिक नेताओं की संकीर्णता तथा व्यक्तिगत स्वार्थ ने

---

१ रीछ—डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ११८

२ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य-संक्रमण—हेमेन्द्र पानेरी, पृ० २२६

३ हिन्दी उपन्यास का साहित्यिक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० रमेश त्रिवारी, पृ० २२१

समस्या को और भी जटिल बना दिया ।"[1] "साम्प्रदायिक वैमनस्य का सबसे क्रूर और नृशस दृश्य असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद होने वाले हिन्दू-मुस्लिम दगो में देखने को मिलता है ।"[2] "हिन्दू साम्प्रदायिकता का आधार फासिज्म होने के कारण अधिक खतरनाक है । स्वतन्त्रता से पूर्व तथा बाद के साम्प्रदायिक दगो के कारणो मे काफी अन्तर है ।"[3] सबहि नचावत राम गुसाई' उपन्यास का पात्र जबरसिंह साम्प्रदायिक दगो का कारण मुसलमानो की 'फिरकापरस्ती' मानता है—"शहर के मुसलमानो ने हमारी पार्टी के खिलाफ ही वोट दिया है । इस शहर के मुसलमान बहक गये हैं । महात्मा गाधी व नेहरू जी की नेक सलाह भूलकर फिरकापरस्ती करने लगे हैं । देश म साम्प्रदायिक दगे बढते जा रहे हैं ।"[4] 'धरती की आँखें' उपन्यास मे जैनब और गोविन्द का प्रेम देखकर विजय उद्वेलित हो जाता है । लोगो को डर है एक तो विजय स्वय ही जगतपुर के लिए समस्या बना हुआ है, वही साम्प्रदायिकता की आग न भडका दे । "विजय···साम्प्रदायिकता की आग से जगतपुर को भस्म कर सकता है । यह जगतपुर की राजशाही, विजय खुद सबसे बडी समस्या है ।"[5] ग्रामो मे जातीय फूट, धर्मान्धता तथा बदले की भावना की प्रतिक्रियास्वरूप साम्प्रदायिकता की आग भडकी है, जो वर्गगत सघर्ष की प्रेरक है । इसी उपन्यास मे साम्प्रदायिकता की आग प्रज्वलित करते हुए पाडेजी गोविन्द को समझाते है—"सुनो ··बेकार तूफान मोल लेने से कुछ नही होता···राजकुमार से माफी माँग लो···अपनी भूल स्वीकार कर लो मुसलमान लडकी के पीछे तबाह न हो··· जैनब को धीरे से राजकुमार के हवाले कर दो···तुम्हारा क्या जाता है ।···वह मुसलमान जो ठहरी ।"[6] "साम्प्रदायिक सघर्ष को उकसाने के लिए शेखपट्टी मे एक घटना घटी, "शेखपट्टी की बडी मस्जिद मे एक घटना घटी है । उसमे सुअर का गोश्त फेंका मिला है, लेकिन उसी क्षण नीची पट्टी के रहमान ने सब मुसलमानो को इत्तला दी कि यह जालसाजी राजकुमार ने की है । अब वह हिन्दू और मुसलमानो को आपस मे लडाना चाहता है । इस तरह से मस्जिद मे कुछ न हुआ, दुक्खी चमार ने उस गोश्त को फौरन वहाँ से हटा दिया और सब बातें खोल दी ।"[7] 'प्रगति के पथ पर' उपन्यास मे साम्प्रदायिक सघर्ष को मुस्लिम

---

१. प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज—डॉ० रक्षा पुरी, पृ० २६६
२. वही, पृ० ३००
३. सामाजिक विघटन—सत्येन्द्र त्रिपाठी, पृ० ४३७-४६८
४ सबहि नचावत राम गुसाईं—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १७२
५. धरती की आँखें—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ५०
६ वही, पृ० ११०
७. वही, पृ० १२६

लीग की मांग से जुडा हुआ दिखाया गया है—"मेरे विचार से इस सूबे मे हिन्दू और मुसलमानो मे जबरदस्त कशमकश चल रही है। मुस्लिम लीग ने मांग की है कि इस बिहार के सूबे का उत्तरी भाग हिमालय के साथ साथ पाकिस्तान का हिस्सा होना चाहिए और उसमे मुसलमानों की आबादी अधिक कर देनी चाहिए। इसके लिए इन जिलो मे मुसलमान हाकिम भेजे जा रहे हैं।"[1] भारत में व्याप्त साम्प्रदायिक सघर्ष की भावना के प्रति चेतावनी देते हुए 'काली आँधी' मे उपन्यासकार ने सघर्ष के सम्बन्ध मे चेतावनी देते हुए कहा है कि "हमे अपने दिमाग के कपाट खुले रखने चाहिए तथा दोस्त व दुश्मन के अन्तर को समझना चाहिए···" अगर हम हिन्दू और मुसलमान की तरह सोचते रहे तो यह मुल्क गारत हो जाएगा। मैं गुलशेर साहब जैसे उम्मीदवारो के लिए क्या कहूँ जो फिरकापरस्ती मे यकीन रखते है और लोगा के मजहबी जज्बा को भडकाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते है।" मजहब बडी चीज है, पर हमारी सबसे बडी जरूरत है भूख और गरीबी को मिटना।"[2] "यह खुशहाली की लडाई हिन्दू और मुसलमान की अलग-अलग खानों मे बँटी लडाई नही है। यह गुप्ता, अग्रवाल या ब्राह्मणा की अलग-अलग लडी जान वाली लडाई नही है। यह मिली-जुली लडाई है और सबकी है। इसलिए हमे साम्प्रदायिकता, फिरकापरस्ती और हर तरफ के जातिवाद का विरोध करना चाहिए।"[3] इस प्रकार की सघर्ष-मूलक प्रवृत्तियाँ ही वर्गगत चेतना का कारण बनी है तथा 'वर्ग-सघर्ष' की उत्प्रेरक रही हैं। गुलशेर ने इस बीच जमकर साम्प्रदायिक जहर फैलाया था। "गुलशेर अहमद कलक्टरी के फाटक के सामन पागला की तरह चीख रहे थे—हमारी जमानत कैसे जब्त हो सकती है। मैं पूछता हूँ कैसे जब्त हो सकती है? जब पूरा 'इलेक्शन' जात और मजहब के नाम पर लडा गया है तो मरे साठ हजार मुसलमान कहाँ गए?"[4] 'मानव-दानव' उपन्यास मे भी साम्प्रदायिकता के जहर का प्रचार होता दिखाया गया है। 'देश तो हिन्दुओ का है, यदि मुसल-माना को इसमे नही रहना, यदि उन्ह लोकतन्त्र पसन्द नहीं है, जैसा कि जिन्ना बार-बार कह चुके है तो मजे मे वे अफगानिस्तान, ईरान, तुर्की, अरब चाहे जहाँ जा सकते हैं। उनके धर्म म इसकी व्यवस्था भी है।"[5] 'दबदबा' उपन्यास मे मुस्लिम दगे की कुछ स्थितियाँ, जो अन्तत 'वर्ग-सघर्ष' की प्रेरक बनती हैं, इस प्रकार दर्शायी गई हैं—"शहर मे बलवा हो गया। कस्साबखाने के पास

१ प्रगति के पथ पर—गुरुदत्त, पृ० १६७ १६८
२ काली आंधी—कमलेश्वर, पृ० ४५
३ वही, पृ० ४६
४ वही, पृ० १२१-१२२
५ मानव-दानव—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० ३२२

कुछ गुण्डों ने जुलूस की किसी स्त्री को छेड दिया। इस घटना से जुलूस में आग भड़क उठी। कुछ युवकों से उन गुण्डों की हाथापाई हो गई। 'वे गुण्डे मुसलमान तो नहीं थे ?' हातमसिंह ने पूछा। 'थे तो मुसलमान ही।' नायब साहब बोले। 'तब तो हिन्दू-मुस्लिम दगा होने की आशका है।'[1] साम्प्रदायिक संघर्ष को बढ़ावा देने वाली परिस्थितियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है "राजनीति इतनी गन्दी हो गई है कि उसमें कदम रखते हुए भी घृणा होती है।"[2]

साम्प्रदायिकता की भावना का बीज अंग्रेजों ने बो दिया था, उसका प्रस्फुटन राजनीति में छिपे तौर पर हो गया था, किन्तु देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् ही इस विष का फल चखना नितान्त अनिवार्य हो गया, जिसके कारण अनेक परिवार नष्ट हुए। साम्प्रदायिक भावना के कारण ही अमानवीय तथा नृशंस हत्याएँ हुईं और धार्मिकता के प्रश्नों को मानवीय सदर्भों में दोहराया गया जो मानव चेतना का कारण बना। इसान इन्सानियत भूलकर साम्प्रदायिकता के उन्माद में डूबता चला गया। भाई-चारे का रिश्ता गायब हो गया।

मूल्यगत संक्रमण

आधुनिक युग में विश्वासों और आस्थाओं, आदर्शों और जीवन-मूल्य में तीव्रगति से विघटन तथा परिवर्तन हो रहे हैं। सक्रमण का तात्पर्य एक अवस्था से धीरे-धीरे दूसरी अवस्था में पहुँचने से है। पारम्परिक मान्यताएँ तथा मूल्यांकन-दृष्टियाँ नूतन अन्वेषणा द्वारा चूर-चूर होती जा रही हैं तथा नवीन मान्यताएँ स्थापित हो रही हैं। वस्तु-मूल्य-परिवर्तन की गति अति तीव्रगामी है। "विभिन्न वर्गों की सामाजिक रीतियों, अभिवृत्तियों एव मूल्यों में विषम ढग से परिवर्तन हो रहे हैं। सामाजिक जीवन का हर पक्ष इस सक्रमण में फँसा हुआ है। इसके सभी पक्ष परस्पर सम्बद्ध हैं। सामाजिक जीवन के इस परम्परानुमोदित यह सक्रमण आधुनिक बोध का प्रतिफल है।"[3] मूल्यों का संघर्ष इस नवीन दृष्टि का द्योतक है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परस्पर विरोधी मूल्य एक-दूसरे से टकरा-टकराकर टूट रहे हैं। मूल्यों के घात-प्रतिघातों का वर्णन यथार्थ के धरातल पर किया जा रहा है। "सबसे पहले मूल्यगत आधुनिकता जीवन के धर्म निरपेक्षता, विवेकसम्मत, वैज्ञानिक और औद्योगिकीय के अन्तर्गत इसी अर्थ में भारत में अंग्रेजी शासनकाल में पश्चिम से आई।"[4] प्रत्येक समाज में बहुत-से

---

१. दबदबा—यज्ञदत्त शर्मा, पृ० ३४

२. वही, पृ० ३२७

३. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम-चेतना—डा० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० ८६

४. भारत : एक बदलती दुनिया—बीट्रिस पिटनी लैम्ब, पृ० ५

मूल्य समान रूप से महत्त्वपूर्ण नही होते। "अलग अलग समूहो के मूल्य अलग-अलग होने के कारण मूल्य-मतभेद मिलता है।"[1] जो अनक सामाजिक समस्याओ को जन्म देता है।

मूल्यो मे सघर्ष का सिद्धान्त

समाज मे रूढिवादी व्यापारी व्यक्तिगत प्रोत्साहन और लाभ उद्देश्य पर आधारित पुराने पूंजीवाद के पक्ष मे होते है, जबकि उदारवादी व्यापार पर सरकार का कठोर नियतत्र चाहते है और वे समाजवाद के पक्ष मे होते है। 'दोनो समूहो मे नीतियों के अन्तर के अतिरिक्त मूल्या मे भी अधिक अन्तर मिलता है। रूढिवादी इस कारण पूंजीवाद को व्यक्तिया के लिए अच्छा मानते है, क्योकि उनके अनुसार इस ढाचे से अभिलापा, अल्पव्ययिता तथा कठोर परिश्रम आदि जैसे मूल्यो को प्रोत्साहन मिलता है। दूसरी ओर उदारवादी इस ढांचे (पूंजीवाद) म एक औसत व्यक्ति का शोपण और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का लाभ पाते है। मूल्यो के इस तरह के सघर्ष से अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।"[2] फुल्लर का भी कहना है कि "हमारे आर्थिक स्वार्थ के कारण अपराध बढते है, पूंजीवादियो के मुनाफाखोरी के कारण बेरोजगारी उत्पन्न होती है तथा एक विवाह प्रथा पर बल देने के कारण अविवाहित माताएँ बच्चे की उपेक्षा करती है"[3] इसी प्रकार क्यूबर ने मूल्यगत सक्रमण एव सघर्ष का उल्लेख किया है। प्रौढ पीढी के मूल्य विवाह की पवित्रता, रुढियो की आस्था, परम्परानुसार कर्ता का सर्वाधिकारसम्पन्न व्यक्ति होना आदि मे विश्वास करते है, जब कि युवापीढी के मूल्य अधिनायकवाद, व्यक्तिगत योग्यता, समान अधिकार आदि पर आधारित होते है।"[4] इस मूल्य-भिन्नता के कारण ही सक्रमण की अवस्था उत्पन्न होती है। दो वर्गों की मान्यताओ और परम्पराओ की असमानता सघर्ष को जन्म देती है। वाल्वर ने मानववादी लोकाचार मे आन्तरिक सघर्ष को ही मूल्यगत सक्रमण का कारण माता है।

मूल्य-सक्रमण : सामाजिक मूल्य-परिवर्तन के रूप मे

परिवर्तन एक शाश्वत नियम है। इसकी प्रभाव-व्याप्ति के अन्तर्गत मानव-

---

१ सामाजिक समस्याएँ और सामाजिक परिवर्तन—डा० राम आहूजा, पृ० ६

२ वही, पृ० १०

3 The problem of teaching Social Problems—C. Richard Fuller (American Journal of Sociology (44) 1938), P 419

४. Problem of American Society Value in Conflict F. John Cuber. P. 305-306 (Halt, N York, 1948)

जीवन तथा मूल्य दोनो आते हैं। जीवन की विशिष्ट प्रणाली के अन्तर्गत मानव के पारस्परिक सम्बन्ध, क्रिया-व्यापार, सोचने-विचारने के तरीके तथा मान्यताएँ, विश्वास तथा उनकी रीति-नीति आती है। जिनके द्वारा उनके व्यवहार नियन्त्रित तथा नियमित होते है। इस प्रकार 'जीवन की भाँति मूल्य भी सक्रमण-काल मे निरन्तर सक्रमित होते है।"[1] "स्वातन्त्र्योत्तर मूल्य-सक्रमण सामाजिक परि-पार्श्व मे समाज के स्थान पर व्यक्ति को प्रतिष्ठा देता है। व्यक्ति को लक्ष्य तथा समाज के निमित्त स्वरूप स्वीकारा है।"[2] स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद लिखे गए उपन्यासो मे 'मूल्यगत सक्रमण' का चित्रण यथार्थवादी भूमिका पर किया गया है। 'आज की परिस्थितियो मे उत्पन्न वास्तविक सत्रास का चित्रण एव अस्तित्व की सही चुनौतियो को सार्थक ढग से स्वीकार करने का प्रयत्न इन उपन्यासो मे प्राप्त होता है।"[3] 'मूल्यगत सक्रमण' द्वारा आधुनिक परिवेश मे नारी का मूल्याकन केवल नारी के रूप मे होने लगा है। अब उसकी सत्ता पुरुष-सापेक्ष नही है। सामाजिक क्षेत्र मे स्त्री-स्वातन्त्र्य तथा नारी की प्रतिष्ठा की भावना ने परम्परागत मूल्यो मे परिवर्तन कर दिया है। "यशपाल ने नारी की नैतिकता पर मार्क्सवादी ढग से विचार किया है। उनके मत मे नैति-कता समाज-व्यवस्था पर आधारित रहती है और समाज-व्यवस्था-परिवर्तन के साथ नैतिक मूल्यो मे पतिवर्तन आवश्यक है। भैरवप्रसाद का 'गगा मैया', राजेन्द्र यादव का 'उखडे हुए लोग' तथा अमृतराय का 'बीज' आदि उपन्यासो मे नारी-समस्याओ का निदान मार्क्सीय दृष्टिकोण से किया गया है।"[4] अत बदलती नैतिक मान्यताएँ एव पारम्परिक परिवर्तित मूल्य भी आज के समाज मे दो वर्गों की स्थिति बनाने, विद्रोह करने तथा सघर्ष की भूमिका तैयार करने मे सहायक हो रहे है। 'मूल्यगत सक्रमण' का सर्वहारा वर्ग पर कोई विशेष प्रभाव नही पड रहा है क्योकि आज भी वह अपनी दैनिक आवश्यकताओ तथा रोटी-रोजी की समस्याओ मे उलझा हुआ है, आज भी उसका शोषण होता है, अलबत्ता शोषण के तरीके अवश्य परिवर्तित हो गए है।

परम्परागत मूल्यो का मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासो मे नवीन रूप मे चित्रण हुआ है। मूल्यगत सक्रमण वर्ग-सघर्ष की पृष्ठभूमि मे द्रष्टव्य है। उदाहरण के लिए प्रेम की मार्क्सवादी व्याख्या इस प्रकार की गई है--'मनुष्य के रूप' उपन्यास मे "और सभी चीजो की तरह जीवन मे प्रेम की गति भी द्वन्द्वात्मक

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम-चेतना--डा० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० ६०

२ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य-सक्रमण--डा० हेमेन्द्र पानेरी, पृ० ३१३

३ हिन्दी उपन्यासों मे नायिका की परिकल्पना--डा० सुरेश सिन्हा, पृ० १५३

४ हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो का अनुशीलन-- डा० व्रजभूषण सिह, पृ० ५४७

है। प्रेम जीवन की सफलता और सहायता के लिए है। यदि प्रेम बिलकुल छिछला और उथला हो जाता है तो वह असयत वासनामात्र बन जाता है और यदि जीवन मे प्रेम या आकर्षण का सयम विवेक से न हो तो वह जीवन के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।'[1] आज 'नारी-स्वातन्त्र्य व शिक्षा' समाज के सामने बहुमूल्य प्रश्न है। 'दादा कामरेड' की शैल स्वाधीनता की प्रबल प्रचारक के रूप मे सामने आती है। जिस स्त्री को पुरुष समाज आज तक सम्पत्ति के रूप म देखता रहा है, उसे वह सम्बोधित करते हुए कहती है, "हो रहो किसी के या कर लो किसी को अपना, क्या मतलब ? जहाँ स्त्री का कुछ शेप नही रह जाता, यदि स्त्री को किसी न किसी की बनकर ही रहना है तो स्वाधीनता का अर्थ ही क्या हुआ ?"[2] अत भारतीय नारी से जुड मूल्य शैल की दृष्टि म सक्रमित हो चुके हैं। शैल को भारतीय स्त्री का पत्नी रूप भी स्वीकृत नही है। उसके मतानुसार ससार-भर की अच्छाई एक ही व्यक्ति मे सगृहीत होना सम्भव नही और मनुष्य-हृदय का सचित स्नेह केवल एक ही व्यक्ति पर लुटा देना भी हितकर नही।"[3] वस्तुत मूल्यगत सक्रमण की प्रक्रिया के कारण आज समाज म वर्गगत सघर्ष विद्यमान है। समाज म वर्गचेतना के फलस्वरूप नयी पीढी अपनी भावना को मनवाने व पुरान मूल्यो म परिवर्तन लाने के लिए सदैव सक्रिय एव सघर्परत रही है। 'उखडे हुए लोग' उपन्यास का शरद विवाह के धार्मिक सस्कार को एक रूढि समझता है। 'आज विवाह एक समझौता है और इसके सिवा कुछ भी नही हो सकता। आपस म जब गुजायश नही रहेगी कि इसे चलाया जा सके तो यह समझौता टूट जावेगा।'[4]

इसी प्रकार 'विवाह' के मूल्यो म भी सक्रमण की स्थिति व्याप्त है। 'सबहि नचावत राम गुसाई' उपन्यास म विवाह के प्रति कुछ इसी प्रकार के विचार निरूपित हुए है। 'रामलोचन भी विवाह को बधन मानता है।"[5] 'राग दरबारी' म सामाजिक मूल्य अवमूल्यन की स्थिति म पहुँच गये हैं। "जिन लोगो के हृदय म सामाजिक मूल्यो के प्रति अटूट निष्ठा थी वे अब पहचान गये हैं कि गाँव वालो के पास बचा हुआ है सिर्फ ईर्ष्या, द्वेष, गरीबी, आपसी वैमनस्य और दुख से लबालब जीवन।"[6] 'सघर्ष' उपन्यास म भी नैतिकता का मूल्यगत सक्रमण हो चुका दिखाया गया है। शर्मा जी छोटी रानी को पढाने जाते है तथा छोटी

---

१ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० ६६
२ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० ५५
३ हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य—डा० प्रेम भटनागर, पृ० १६८
४ उखड़ हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० २८
५ सबहि नचावत राम गुसाईं—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २८३
६ माटी की महक—सच्चिदान द धूमकेतु, पृ० ३३६

रानी उन पर बहुत मेहरबान हैं। लोग इस सम्बन्ध का गलत अन्दाज लगाते हैं —"'ऐसी मौज को मैं दूर से ही नमस्कार करता हूँ—इसमे जान का खतरा है। नैतिक पतन है, पाप है। इसमे क्या नही है?' 'जान का खतरा बहुत ही कम है, जब तक रानी जी न चाहेगी आपका कोई बाल भी बाँका नही कर सकेगा। रही नैतिक पतन की बात, सो ऐसा कुछ पतन नही।' "[1] पहले समाज मे 'विधवा' एक उपेक्षित नारी समझी जाती थी किन्तु आज विधवा-विवाह प्रचलन ने वह मान्यताए बदल दी हैं। विधवा' जीवन के मूल्य परिवर्तित हो चुके है।' "विधवा से प्रेम करना कोई खास बात नही है मैं तो विधवा विवाह का पक्षपाती हूँ, पर विधवा मे प्रेम कर उसे छोड देना मैं कभी बर्दाश्त नही कर सकता।"[2] इसी उपन्यास मे निरजन का विवाह विधवा से करवाकर नैतिक साहस का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। "एक विधवा स विवाह करके उन्होने नैतिक साहस का परिचय दिया है जो सराहनीय तथा अनुकरणीय है।"[3]

मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार सामाजिक व्यवस्था मे परिवर्तन 'वर्ग-सघर्ष' के कारण सम्भव है तथा जमीदारी का अन्त, विचारधाराओ का द्वन्द्व वर्ण-व्यवस्था का पतन, सयुक्त परिवार का विघटन, खुली यौन चर्चा यह सभी मूल्यगत सक्रमण का परिणाम है। 'प्रगति के पथ पर' उपन्यास म एक ओर तो "अण्डा मुर्गी खाना पर-स्त्रीगमन से भी बुरा है।"[4] बताया गया है तो दूसरी ओर धार्मिक अनास्था का प्रचार किया जा रहा है। 'एक बात मैंने अपने गुरुओ से सीखी थी कि जब तक दुनिया म पीर-पैगम्बर, गुरु मुर्दारिश का रिवाज चलता रहेगा तब तक इसानी गुलामी की बेडियाँ नही कट सकती।'[5] प्रारम्भ से हम 'यौनेच्छा' को सदाचार का एक अनिवार्य अग मानते आये हैं। हमारा सस्कारगत और धार्मिक दृष्टिकोण जितना ही सेक्स को नगण्य, महत्त्वहीन और साधारण बताने के नारे लगाता है उतना ही स्वय को उसी पर केन्द्रित भी कर लेता है। मनुष्य की सारी अच्छाई बुराई सब कुछ उसी स नपता है। किन्तु आज इस दिशा म वैचारिक परिवर्तन हो चुका है। 'उखडे हुए लोग' उपन्यास म 'मुझे याद है समरसट माम न कही लिखा है—'जब हम सदाचार की बात करते है तो हमारे दिमाग म एक चीज होती है, वह है सेक्स किन्तु सेक्स न तो सदाचार का अनिवार्य हिस्सा होता है तथा न सबस अधिक प्रधान ही।' "[6] यश-

---

१ सघर्ष—विश्वम्भरनाथ कौशिक, पृ० ११७
२ शहीद और शोहदे—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० १०४
३ वही, पृ० १३१
४. प्रगति के पथ पर—गुरुदत्त, पृ० ६६
५ वही, पृ० १००
६ उखडे हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० १६४

पाल ने समाज मे प्रचलित काम सम्बन्धी नैतिक मूल्यों के विरुद्ध अपने मूल्यो का स्थापित करने की चेष्टा मार्क्सवादी दर्शन का आधार लेते हुए की है। वे स्त्री की यौन स्वच्छन्दता का भी महत्त्व देते हैं। " 'दादा कामरेड' मे विवाह का विरोध करके स्वच्छन्द प्रेम तथा अवैध काम सम्बन्ध को मान्यता प्रदान की गई है तथा अन्तत लेखक अवैध सतान को भी स्वीकृति प्रदान करता है।"[1] 'मनुष्य के रूप' म विवाह का वे आर्थिक समझौता मात्र मानते हैं। उनके लिए विवाह का महत्त्व नैतिक न होकर परिस्थितिजन्य समझौता मात्र है। 'नगर परिमोहन' मे "ग्राम्य वातावरण मे स्त्री का पचायत मे आना एक अस्वाभाविक घटना है किन्तु शिक्षा के प्रचार तथा नारी स्वातन्त्र्य के प्रश्न ने अब नारी की वर्तमान स्थिति में अन्तर उत्पन्न कर दिया है।'[2] प्रस्तुत सन्दर्भ म यह वक्तव्य मूल्यगत सक्रमण की दृष्टि से उल्लेखनीय है। 'परन्तु जब घर क पुरुष साहस छोड दे तो स्त्रियो को मैदान मे आना ही पडेगा। तुम सब पुरुष एक नि सहाय स्त्री को कुचल डालना चाहते हो, कोई स्त्री उसकी सहायता को भी न आये यह कैसे हो सकता है?' इसी भाति 'गगा मैया' का गोपी अपनी भाभी के साथ दु खी जीवन काटने का प्रस्ताव रखता है। तव भाभी की मौन स्वीकृति तो उसे स्वीकृति प्रदान कर देती है, किन्तु समाज की झूठी मर्यादा, सडी-गली रुढि, खोखली रीति, थोथे रिवाज खूनी जबडे म एक फूल-सी सुकुमार, गाय-सी निरीह, रोगी-सी दुर्बल, बंदी सी गुलाम भाभी को चबा डालना चाहते हैं। वह समाज के विरुद्ध आवाज उठाकर अपनी भाभी के साथ विवाह करता है। अत 'विधवा-विवाह' को मान्यता देना मूल्यगत सक्रमण का ही प्रभाव है। 'मनुष्य के रूप' की सोमा के चरित्र के द्वारा इस प्रकार का प्रभाव परिलक्षित होता है। "आदमी क्या है और उसके कितने रूप हो सकते हैं। एक दिन भूषण सोमा को 'धर्मशाला' मे कुत्तो के भय से कांपती हुई बकरी की सी अवस्था मे लाया था। धनसिंह के लिए उसका जान देना, पुलिस के भय से गर्भपात, इसका बाजार जाने से डरना, भैया की उस पर ज्यादती। बडी भाभी का अत्याचार। आज यह दुनिया को अगूठा दिखा रही है ।"[3]

आज 'मूल्यगत सक्रमण' के नाम पर नवीन मूल्यो को प्रतिष्ठित करने के अन्धाधुन्ध प्रयास भी नये उपन्यासकार कर रहे है। किन्तु जो समाज का तिरस्कार करके नैतिक मूल्यो की स्थापना का प्रयास करते हैं, वे लेखक नवीन सामाजिक रचना की क्षमता बिल्कुल नही रखते, फलस्वरूप समाज में सास्कृ-

---

१ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सास्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० ३२५
२ नगर परिमोहन—गुरुदत्त, पृ० १३१
३ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० ३२१ ३२२

तिक व सामाजिक अराजकता की ही सृष्टि होती है जो अन्ततः 'वर्ग-संघर्ष' की उत्प्रेरक बनती है। साम्यवादी चिन्तकों ने भी काम सम्बन्धों को सामाजिक सम्बन्धों के रूप में स्वीकृत किया है। वे मनमानी छूट के विरोधी हैं। लेनिन के अनुसार "पानी पीना बेशक किसी का निजी काम है। लेकिन प्रेम में दो जिन्दगियों का सम्बन्ध होता है और तीसरी नई जिन्दगी पैदा होती है। इससे उसमें सामाजिकता का सवाल उठता है, जिससे समाज के प्रति कर्तव्य पैदा होता है।"[1] "यदि समाज और संस्कृति के उज्ज्वल और प्रगतिशील तत्वों को स्वीकार करके नवीन मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न इन लेखकों की ओर से किया गया होता, तो निश्चय ही उपयोगी तथा नवीन मूल्यों के प्रतिष्ठापन में इन लेखकों को आशातीत सफलता प्राप्त हुई होती।"[2] अस्तु, उचित दिशा के चुनाव के अभाव में 'मूल्यगत संक्रमण' की अवस्था आशातीत फल नहीं दे रही है वरन् परिस्थितियों को विकट बनाते हुए अन्य नवीन समस्याओं को जन्म दे रही है। ये समस्याएँ समाज में नवीन वर्गों की उद्भावना करके वर्ग-संघर्ष की स्थितियों को उत्पन्न कर रही हैं।

सांस्कृतिक पतन

नई सभ्यता से व्युत्पन्न विसंगतियों के कारण प्राचीन भारतीय संस्कारों का पतन हो रहा है। पदार्थवादी चिन्तन के इस युग में आर्य सभ्यता और संस्कृति का ह्रास देखते हुए, इसका कारण अर्थ तथा कामभावना को माना गया है। "जब से जनता धर्म और मोक्ष को त्याग कर अर्थ और काम के चक्कर में पड़ी है, तभी से भारत का पतन सम्भव हुआ।"[3] कार्ल मार्क्स और टी० एस० इलियट ने वर्गगत वैभिन्य को दृष्टि में रखकर संस्कृति पर विचार किया है। उनका मत है कि संस्कृति का विशिष्ट वर्गों से गहरा सम्बन्ध होता है। "जब परिवार अपना कार्य बन्द कर देता है, जब संस्कृति-दान से मुँह मोड़ लेता है, तब संस्कृति का अधःपतन होने लगता है।"[4] परिवार ही उचित रूप में सुसंस्कृत बना सकता है। परिवार ही शिष्टाचार के नियमों की शिक्षा देता है, रहन-सहन के तौर-तरीके सिखलाता है और एक-दूसरे से सम्पर्क बनाने का मार्ग निर्देश करता है। इस प्रकार संस्कृति के निर्माण व पतन में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका है। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार मनुष्य का अनुभव-जगत् दो भागों में विभक्त है—एक भौतिक वस्तु-सम्बन्ध दूसरा चेतना-संबंध।

---

१ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ—डा० रामविलास शर्मा, पृ० ५८
२ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० ३२७
३ उपन्यासकार गुरुदत्त व्यक्तित्व और कृतित्व—डा० मदनमोहन सहगल, पृ० १९४
४ नोट्स टुवर्ड्स दि डेफिनिशन आफ कल्चर—टी० एस० इलियट, पृ० २१

सस्कृति का सम्बन्ध सामाजिक चतना से है। वह सामाजिक सत्ता पर अवलम्बित होती है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण विभिन्न सस्कृतियो का उनके ऐतिहासिक सदर्भो के साथ अध्ययन करना चाहता है। उसके अनुसार सास्कृतिक पतन वर्ग की गतिशीलता तथा शिथिलता पर निर्भर है। इस सम्बन्ध म मार्क्स ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किय है—"एक वर्ग कुछ समय तक गतिशील रहकर शिथिल पड जाता है। जब तक कोई वर्ग या समूह प्रगति के पथ पर गतिशील रहता है, तभी तक उसकी सस्कृति भी प्रगतिशील रहती है। उस वर्ग की प्रगति के शिथिल पडते ही उसकी सस्कृति भी शिथिल पड जाती है। मार्क्स ने तो यहाँ तक कहा है कि वह मूल्यहीन हो जाती है। अपने विचारो को प्रमाणित करने के लिए मार्क्स ने बुर्जुआ वर्ग की सस्कृति का उल्लेख किया है तथा यह बताने का प्रयास किया है कि जब उसन सामन्ती व्यवस्था का विनाश किया था तब तो वह प्रगतिशील थी, किन्तु इस समय मजदूर वर्ग की सस्कृति की अपेक्षा पूँजीवादी वर्ग की सस्कृति प्रतिक्रियावादी और प्रगतिहीन बन गई।"[1]

आधुनिक भारत मे सास्कृतिक दृष्टि से गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई है। सास्कृतिक निर्माण के प्रमुख तत्त्व विज्ञान, औद्योगिक-आर्थिक व्यवस्था, राष्ट्रीयता तथा जनतत्रीय भावना हैं। ये चारो एक-दूसरे के सहयोगी रहते हैं। 'वैज्ञानिक शिक्षा के अभाव म तथा मशीनों की अनुपस्थिति म औद्योगिक व्यवस्था पनप नहीं सकती थी, अत आगे चलकर एक ऐसे वर्ग का निर्माण इस व्यवस्था ने किया जो आर्थिक हितो के मामले म अग्रेजो के प्रतिद्वन्द्वी थे। आर्थिक शोषण की नीति के विरुद्ध इस वर्ग ने विद्रोह किया परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन का सगठन हुआ।"[2] इसी आन्दोलन का व्यापक समर्थन जनतत्रीय शासन के आधार पर स्वीकृत हुआ। 'सास्कृतिक पतन' तथा गतिरोध उत्पन्न करन म पूँजीपति वर्ग का स्वार्थी होना प्रमुख कारण है। व्यक्ति और समाज अतर्विरोधी सास्कृतिक तथा नैतिक मूल्यो से जितना ही ग्रस्त होगा, सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य म उतनी ही उलझनपूर्ण, अनिश्चित, अराजकतापूर्ण तथा पतनोन्मुखी स्थिति बनी रहेगी। भारतीय सास्कृतिक पतन का एक कारण पाश्चात्य सस्कृति के अनुपयोगी तत्त्वो का भारतीय सस्कृति पर प्रभाव भी रहा है। "सामाजिक अराजकता और धार्मिक विषमता का सीधा प्रभाव हमारे सास्कृतिक जीवन पर पडा है। रेल यातायात, प्रेस सुविधाएं और उच्च वर्ग के लोगो तक ही उच्च शिक्षा का योग सीमित रहा। इस प्रकार अग्रेजो की दोहरी चाल ने सास्कृतिक परम्पराओ को

१ हि दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० ६
२ वही, पृ० २६६

नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।'[1] इलियट के अनुसार सस्कृति विभिन्न क्रियाओ का योग-मात्र है और यह जीवन यापन की एक पद्धति भी है। "सस्कृति वह है जो जीवन को जीने योग्य बनाती है।"[2] इस प्रकार की सास्कृतिक-वैचारिक परपरा को आत्मसात् करने पर मनुष्य को वर्गगत चेतना मिलती है। यह वर्गगत चेतना शोषण से मुक्ति का मार्ग 'वर्ग-सघर्ष' के माध्यम से खोजती है तथा जीवन को समानता से जीने के योग्य बनाती है। जब मनुष्य के सामाजिक जीवन व सास्कृतिक परम्परा मे विपरीतता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो वह सास्कृतिक पतन की अवस्था कहलाती है। "धर्म और सस्कृति का गहरा सम्बन्ध है। धर्म से जिन मान्यताओ और स्थापनाओ का बोध होता है उसके अनुसार ही मनुष्य कर्म मे प्रवृत्त होता है और उससे सस्कृति का रूप बनता है। इसी प्रकार सस्कृति जिस सृजनात्मक कार्यकलाप की सूचक है, उससे धर्म की परिकल्पना बनती, बदलती और सुधरती है।"[3] प्रेमचन्दोत्तर काल म मार्क्सवादी दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण भारतीय जीवन तथा सस्कृति का रूढ और परम्परित रूप स्थिर न रह सका। अग्रेजी साहित्य तथा सस्कृति का आक्रामक रूप भी इसमे सहायक बना। फलत आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था के विघटन के फलस्वरूप मध्ययुगीन सस्कृति का भी पतन हुआ। "समाज का उच्चवर्ग जो सामाजिक-सास्कृतिक मूल्यो को प्रतिष्ठा करता है, अपने स्वार्थों म लिपटा रहता है तथा व्यावहारिक जीवन म प्रत्येक नियमो तथा निषेधणा को उपेक्षित करता रहता है। व्यावहारिक जीवन म अपनी सास्कृतिक मान्यताओ का निषेध करता है। इस भाँति सम्पूर्ण आधुनिक भारत इस अन्तर्विरोधी प्रक्रिया स ग्रस्त है।"[4] यही सांस्कृतिक पतन का कारण बन रहा है।

सास्कृतिक पतन का सबसे बडा कारण है पूँजीपति वर्ग का स्वार्थी होना। 'देशद्रोही' म खन्ना इसी पूँजीपति प्रवृत्ति का परिचय देते हैं—"पूँजीपति युद्ध से फायदा भी तो कितना उठा रहे है। मरते तो गरीब ही हैं। पच्चीस फी सैकडा टैक्स देकर भी यह लाखो बचा सकते है।"[5] इनके लिए कोई भी धार्मिक, नैतिक या सास्कृतिक बन्धन नही है। सस्कृति का विकास अविच्छिन्न रूप म होता रहता है। मार्क्स ने एक युग की सस्कृति को दूसरे युग की सस्कृति से सम्बन्धित बताते हुए केवल एक ही सम्बन्ध की कल्पना की है, वह है—निषेध अथवा विरोध

---

१ हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य—डा० प्रेम भटनागर, पृ० ३६१
२ नोट्स टुवर्ड्स दि डेफिनिशन ग्राफ कल्चर—टी० एस० इलियट, पृ० २६
३ भारतीय धर्म और संस्कृति—डा० बुद्धप्रकाश, प्राक्कथन
४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० २६६
५ देशद्रोही—यशपाल, पृ० १६६

का सम्बन्ध। मार्क्स को इन नये-पुराने वर्गों मे कोई समझौता दिखाई नही देता। इसीलिए मार्क्स क्रान्ति पर अधिक जोर देता है। प्रत्येक मनुष्य अपने लिए उपयोगी और आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद कार्यों को ही करता है, यही कार्य सास्कृतिक कार्यों के अन्तर्गत आते हैं। वस्तुत अन्तर्विरोध ही सास्कृतिक पतन का कारण बनते हैं। पुरुष के मन मे कौतूहल जगाकर सभ्यता और विश्वास द्वारा पाये गये सस्कारो से स्त्री अपने अभिप्राय को दबाती है और छिपाती है। सस्कारवश स्त्री समझती है कि पुरुष उसको झपट लेगा। किन्तु फिर भी आस्था बनाये रखती है। आज विधवा स्त्री जो पति मे निरन्तर आस्था बनाते हुए अपना जीवन गुजार देती थी, उसमे परिवर्तन आ गया है। 'व्यक्ति, समाज तथा परिस्थितियाँ परिवर्तनशील हैं अत सामाजिक मूल्य भी परिवर्तनशील हैं। यशपाल जी ने निश्चय ही सामाजिक और सास्कृतिक धरातल पर गहराई से विधवा समस्या को मौलिक दृष्टि दी है।"[1] 'मनुष्य के रूप' उपन्यास म सोमा के व्यवहार द्वारा यशपाल जी न पूंजीवादी मनोवृत्ति से उत्पन्न स्वार्थान्धता और मानवीय महज गुणो के पतन की ओर सकेत किया है। भूषण का वक्तव्य पुरातन मूल्या मे नवीन चेतना प्रदान करता है। वह प्रेम और आदर्श की व्याख्या करते हुए कहता है—"और सब चीजो की तरह जीवन मे प्रेम की गति भी द्वन्द्वात्मक है। प्रेम जीवन की सफलता और महायता के लिए है।"[2] सास्कृतिक व धार्मिक क्षेत्र मे 'आबरू' की रक्षा की चेष्टा जो निरन्तर चली आ रही थी, वह पूंजीवादी मनोवृत्ति के कारण समाप्त हुई 'महाकाल' उपन्यास मे दिखाई गई है। "आबरू नाम की कोई चीज उनके पास नही रह गई थी, उनकी बहू-बेटियाँ भी खुले आम धर्मशाला व अनाथालयो म भेजी जाने लगी थी। हर एक हर एक के घर का राज अच्छी तरह जानता था, फिर भी आबरू शब्द की रक्षा बराबर की जा रही थी।"[3] यह छलावामात्र व सस्कारगत पतनोन्मुख कदम था। 'महाकाल' म अकाल प्रकृतिदत्त नहीं वरन् पूंजीपतिया की चाल द्वारा घोषित व्यवस्था मात्र था। 'विषाद मठ' मे बगाल दुर्भिक्ष के माध्यम से मानवीय और पाशविक वृत्तियो का सघर्ष दिखाया गया है। 'हाथी के दाँत' उपन्यास म चम्पा का पति चन्द्रिका गरीब होकर भी सम्मानप्रिय है। "चन्द्रिका गरीब सीधा आदमी था, मगर उसकी भी अपनी इज्जत थी और कोई उसकी स्त्री के बारे मे ऐसी-वैसी बात कहे वह उसे मजूर नही था।"[4] निश्चय ही

---

१ हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन—चण्डीप्रसाद जोशी, पृ० ३६४
२ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० ८६
३ महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० २११
४ हाथी के दाँत—अमृतराय, पृ० ३५

इस बदलती हुई सभ्यता तथा अर्थ-प्रधान युग में आज परम्परागत सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का कोई मूल्य नहीं है। उपन्यासकार अनन्त गोपाल शेवडे ने 'कोरा कागज' में कहा है—"भावना और बुद्धि के समन्वय से ही सम्कारशील व्यक्तित्व का निर्माण होता है। बुद्धि के अभाव में भावना ही भावुकता और अन्ध श्रद्धा में परिवर्तित हो सकती है और भावना के अभाव में बुद्धि कोरी वितण्डा और हृदयशून्यता में बदल सकती है। इसलिए आधुनिक युग की आवश्यकता के अनुसार धर्म का पुनर्निरूपण करने की आवश्यकता है।"[1] स्पष्ट है कि सांस्कृतिक पतन का कारण भावना तथा बुद्धि में समन्वय न होना माना गया है। इसी उपन्यास में लेखक सांस्कृतिक उत्थान का प्रेरक तत्त्व आत्मदान तथा त्याग को मानता है। कमलावती की त्यागमयी वृत्ति व अपनाये हुए पेशे के दो "परस्पर विरोधी पहलुओं के बावजूद उसके जीवन में कुछ ऐसी प्रसन्नता है, शक्ति है, जो अद्भुत है।"[2]

सांस्कृतिक पतन के कारण ही अमृतलाल नागर 'महाकाल' में सामाजिक परिस्थितियों से समझौता करने के लिए सचेत दिखाई देते हैं—"दुनिया से अलग रहकर मैं अपनी असलियत का अनुभव क्योंकर कर सकता हूँ? सम्मिलित रूप से समाज की प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया का प्रभाव मुझ पर पड़ता है। और मुझे चैतन्य बनाता है। मैं अपने हर अच्छे और बुरे काम का निर्णय समाज की तराजू पर करता हूँ।"[3] 'आखरी दाँव' उपन्यास में चित्रपट का संसार अनैतिक भावनाओं और घृणित वासनाओं से भरा हुआ दिखाया है जो लेखक के उद्देश्य की पूर्ति करता है। इस "उपन्यास का उद्देश्य धन की शक्ति के फलस्वरूप व्यक्ति के नैतिक पतन को चित्रित करता है। पूँजीवादी युग में धन की शक्ति ने व्यक्ति के रूप को विकृत बना दिया है। अतः दर्शाया है कि मानव आर्थिक परिस्थितियों का दास है।"[4] 'विषाद मठ' उपन्यास में अमिताभ तथा फ्लोरा का शराब के नशे में चूर होते हुए भी भूखों की तन्दुरुस्ती के लिए एक पैग और पीना आदि इस बात के प्रमाण हैं कि समाज में सांस्कृतिक तथा नैतिक ही नहीं वरन मानवीय मूल्य भी शोषण का साधन मानता है। विडम्बना तो यह है कि अपने कुकृत्यों के लिए जमींदार चट्टोपाध्याय (विषाद मठ) तथा गोसाईं (महाकाल) धर्म और ईश्वर की शरण लेते हैं। "माँ, इस देश का तूने यह क्या किया? हे महिषमर्दिनी! यह तूने क्या किया? शस्य श्यामला श्मशान हो गई, किन्तु

---

१ कोरा कागज—अनन्त गोपाल शेवड़े पृ० २६०
२ वही, पृ० ३०६
३ महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० १६३
४ हिंदी उपन्यास—सुषमा धवन पृ० १०६

तेरी भूख अभी तक नहीं मिटी।[1] प्रेमचन्दोत्तरकालीन उपन्यासों में सांस्कृतिक पतन बदलती मान्यताओं तथा परिस्थितियों को आधार बनाकर दिखाया गया है सांस्कृतिक पतन के मूल कारणों में भी आर्थिक स्वार्थपरता ही प्रमुख रही है जो परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित न करके वर्ग विद्रोह का कारण बनती हैं तथा सांस्कृतिक चेतना को धूमिल करती हैं।

राजनीतिक भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार (पु०सं०) भ्रष्ट + आचार के योग से बना है। इसका मूल अर्थ तो आचार से भ्रष्ट रहित या हीन होना ही है परन्तु अब इसका प्रयोग कुछ विशिष्ट प्रकार के बुरे आचरणों और व्यवहारों के सम्बन्ध में होने लगा है। आजकल राजनीतिक व्यापारिक और सामाजिक आदि क्षेत्रों में जो बहुत से नये प्रकार के विधि विरुद्ध और निन्दनीय आचरण तथा व्यवहार होने लगे हैं यह उन सबके सामूहिक रूप का सूचक हो गया है। चोरबाजारी मुनाफाखोरी तस्कर व्यापार सरीखे जितने अनुचित काम लोग स्वयं अथवा राजकीय कार्यकर्ताओं के सहयोग तथा सहायतार्थ करते हैं अथवा राजकीय कर्मचारी अनेक प्रकार के पक्षपातपूर्ण बेईमानी के काम करते हैं अथवा बड़ी-बड़ी रिश्वतें लेकर उस प्रकार के काम होने देते हैं अथवा धन-पद आदि के लाभ में पड़कर अनेक प्रकार के अनुचित काम करते हैं उन सबकी गिनती अब भ्रष्टाचार में होती है।[2] अपनी नेतागिरी बनाये रखने के लिए अनुयायियों को अन्धकार में रखना (उन्मुक्त प्रेम में साम्यवादियों द्वारा मजदूरों में चेतना लाना) देश के हितों से अपने हितों को विशेष महत्त्व देना तथा अनाधारित लोगों द्वारा जनता को पथभ्रष्ट करना राजनीतिक भ्रष्टाचार के सजीव उदाहरण हैं।[3] उपन्यासकार यशपाल ने राजनीतिक भ्रष्टाचार का अपने उपन्यासों में नानाविध अंकन किया है। उनके अनुसार चुनाव की उत्तेजना और वैमनस्य के कारण भारत माता की जय के स्थान पर विरोधियों का नाम लेकर माँ-बहन की गालियों के नारे लगाये जाते थे। अश्लीलता और उच्छृंखलता राजनीतिक जोश प्रकट करने के साधन बन रहे थे। गली-कूचों और सड़क पर गन्दे गाने और चूने से विरोधियों के लिए अश्लील गालियाँ लिख दी गयी थीं।[4] ये उदाहरण भ्रष्ट राजनीति के हैं। सरमायादारों और साम्राज्यवादियों के छनियादूत इस प्रकार

१ विषाद मठ—रांगेय राघव पृ० २२४
२ [illegible]—रामचन्द्र वर्मा, पृ० १२३
३ उपन्यासकार गुरुदत्त व्यक्तित्व और कृतित्व—डा० मनमोहन सहगल पृ० १०८
४ पार्टी कामरेड—यशपाल पृ० ६३

के कुचक्र से हमारे और कांग्रेस के विरोध को बढ़ाकर अपना उल्लू सीधा करने का प्रयत्न करेंगे।"[1] इस प्रकार के राजनीतिक भ्रष्टाचार का रूप भी देश में पाया गया है। यशपाल ने 'दादा कामरेड' उपन्यास में 'अर्थ' के आधार व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के परिश्रम के फल को छीन लेना राजनीतिक भ्रष्टाचार माना है। "एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे देश से परिश्रम का फल छीन लेना अनुचित है, अन्याय है, अपराध है।"[2] राजनीतिक भ्रष्टाचार के कारण जनता आक्रान्त है। यशपाल के विचार में, "मैं सर्वसाधारण जनता को शापित और अन्याय-पीड़ित समझता हूँ। इस अन्याय से जनता की मुक्ति का उपाय कम्युनिज्म की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा को मानता हूँ।"[3] 'दबदबा' उपन्यास का रामदयाल रिश्वत लेकर राजनीतिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। "रामदयाल की खूबी यही है कि उसके झगड़े उससे आगे बढ़ने नहीं पाते। फिर मिल-बाँटकर खाने का यह शुरू से हामी रहा है। खुदगर्जी को इस सामने में जरा भी पास नहीं फटकने देता, पैसे को हाथ का मैल समझता है।"[4] "दीवान रोजनामचे का मालिक होता है। उसके हाथ में खुदा की कलम होती है। उसके किये को खुदा के फरिश्ते भी नहीं बदल सकते हैं। दुनियाँ की अदालतों के लिए यह खुदा का फरमान माना जाता है।"[5] लेकिन दीवान रामदयाल में कुछ ऐसी चारित्रिक दुर्बलताएँ विद्यमान हैं जो राजनीतिक भ्रष्टाचार में योग देती हैं तथा संघर्ष का कारण बनती है।

श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास 'राग दरबारी' में ग्रामीण मेले का यथार्थ चित्रण बड़ी ही गंभीर दृष्टि से किया है। कृत्रिमता और धोखा वहाँ चारों ओर है। माल में मिलावट और भ्रष्टाचार, माल खाकर पैसे न देना, गुण्डई—यह सब वहाँ के परिवेश की सामान्य बातें है। दुकानदार एक से एक नई धोखे की विद्या खोजता है। "ऐसा झगड़ा इस मेले में हर साल होता है। झगड़ा करने वाले होते बस यही गजहे हैं, बड़े लुच्चे है। पर इनके मुँह कौन लगे।"[6] इसी उपन्यास में शिवपालगंज स्थित कालेज तो पार्टीबन्दी और राजनीतिक भ्रष्टाचार का अखाड़ा है। महाविद्यालय का वातावरण बड़ा ही विचित्र है। मास्टर खन्ना को दी गई प्रिंसिपल महोदय की चेतावनी इस प्रकार

---

१ पार्टी कामरेड—यशपाल, पृ० ८४
२ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० १७४
३ देखा सोचा और समझा—यशपाल, पृ० १०८
४ दबदबा—यशपाल शर्मा, पृ० १६
५ वही, पृ० ४४
६ राग दरबारी—श्रीलाल शुक्ल, पृ० १६६

है—"अइसी फिर देखि परिहौं तो मारे जूतन के पटरा कई देवें। जान्यो मास्टर साहब। हमहूँ का जान लेव। भले मनइन का हम भले हन, और गुन्डन के बीच मा महागुण्डा।'[1] राजनीतिक भ्रष्टाचार के अन्तर्गत चन्दा एकत्रित करने की क्रिया भी उल्लेखनीय है। क्योकि भ्रष्टाचार के मूल मे मनुष्य की स्वार्थलिप्सा आती है। सघर्ष उपन्यास मे राजा द्वारा चन्दा एकत्रित करना भी लोगो को इतना बुरा नही लगता जितना जिलेदार का व्यवहार—'खैर चन्दा तो हम लोगो को नही अखरता परन्तु जिलेदार साहब का व्यवहार बहुत अखरता है। वे दवाब, गाली गलौच, मारपीट जबरदस्ती जमीन छीनकर दूसरे को देना, ये बाते बहुत अखरती है।[2] इसी प्रकार विषाद मठ' म अकाल पीडित लोगो का पूँजीवादियो द्वारा शोषण भ्रष्टाचार का ही एक घातक रूप है। गरीब किसान पूँजीपति से जब सहायता चाहता है तो वह स्वार्थलिप्सा से पूर्ण उत्तर देता है— गहना क्या बेच आया, हमारे पास नही ला सकता था? फसल तुमने बढाकर बेची ? कर्ज तो सब चुका गय, फिर अब आकर झूठ बोलता है! यहाँ कौन कुबेर का भडार है।[3] उस समय शोषित वर्ग की मदद करने की बजाय उन पर लाठी चार्ज कराया गया —'लाठी चार्ज से घायल भूखे सडक पर कराह कराहकर तडफ रहे थ। किसी का सर फट गया, किसी का हाथ टूट गया, कोई गिर कर कुचल गया बताशे के महल फूट गये।[4] 'इसी भाति नैतिकता के लिए जो अवसरवादी रोज रोज अपना राजनीतिक खेमा बदलते है उनके मुह से नीति के बारे म बातें सुनकर हसी आती है।'[5] राजनीतिक भ्रष्टाचार का सचित्र वर्णन तीस चालीस पचास उपन्यास म इस प्रकार किया गया है— ये अवसरवादी लोग सभी प्रकार के कुकर्म करते है। कानून इन्हे छूता भी नही। गाँव म, मदिर म, देवताओ के आगे मानतायें चढाई जाती है कि कैसे जल्दी से जल्दी पैसा मिले।[6] रूपाजीवा म राजनीतिक भ्रष्टाचार का वर्णन घूसखोरी के रूप म हुआ है— तुमने कमिश्नर साहब को 'वारफण्ड' के नाम पर बडी से बडी रकम भेट की घूस की थैलियाँ दी, फिर भी तुम्हारे लाडले, देश के प्राण मुरादाबाद जेल म ठूस दिये गये।'[7] 'काली आँधी उपन्यास मे जग्गी बाबू अपनी पत्नी मालती स राजनीति के सम्बन्ध म अपने विचार प्रकट करते हुए

---

१ राग दरबारी—श्रीलाल शुक्ल पृ० ३११
२ संघर्ष—विश्वम्भरनाथ कौशिक, पृ० २२६
३ विषाद मठ— रांगेय राघव, पृ० ४१
४. वही, पृ० ६०
५ तीस चालीस पचास—प्रभाकर माचवे, पृ० १२६
६ वही, पृ० १३०
७ रूपाजीवा—डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० २१७

कटाक्ष करते है, "यह तो तुम्हारी दुनिया की बातें है, तुम बेहतर जानती होगी। मुझे तो मालूम नहीं कि राजनीति की तुम्हारी दुनिया मे क्या-क्या उसूल हैं। ये खून खौला देने वाले तनाव 'दिमाग खराब कर देने वाली कमीनी हरकतें' ये नीचता की हद तक सड़ाध मे उतार देने वाली तुम लोगो की मजबूरियाँ और ये उठा-पटक, छीना झपटी यह मेरी दुनिया है ही नहीं।"[1] 'शहीद और शोहदे' उपन्यास का पात्र रामनारायण इस भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपनी आवाज उठाता है। वह कहता कि राजनीतिक भ्रष्टाचार आज शोषण की प्रमुख कड़ी बना हुआ है। अमरीक सिंह के पूछने पर वह जवाब देता है कि—'सरकार मुझे इसलिए पैसे नहीं देती कि मैं बड़े अफसरों की लोगो की बहू-बेटियाँ भगाकर छिपा रखने मे मदद करूं, यदि आप या मिस्टर दयाल मुझसे सचमुच पूछते हैं तो मैं नैतिक रूप से बिलकुल निश्चित हूँ कि जो अभियोग आपके विरुद्ध लगाया गया है, उसका एक-एक हर्फ सत्य है।"[2] 'कभी-कभी सरकारी अफसरो का स्वार्थ और सरकार का स्वार्थ एक हो जाता है, उस समय प्रत्येक सम्बद्ध अधिकारी का यह काम है कि वह उस अफसर की हर तरीके से रक्षा करे। एक लड़की को भगाने के लिए उसके बाप पर झूठे इल्जाम लगाकर उसे नजरबन्द रखे।'[3] इसी प्रकार के अनेक उदाहरण अन्यान्य उपन्यासों मे भी मिलते हैं।

राजनीतिक भ्रष्टाचार मे व्यक्ति का आचरण अनैतिक तथा निन्दनीय हो जाता है। सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्ति के प्रलोभन मे व्यक्ति सामाजिक हितो की ही उपेक्षा कर देता है। श्री गोयल के शब्दो मे—"राजनीतिक सत्ता प्राप्त व्यक्तियों के द्वारा अपने साथियो या समर्थकों को अनुचित लाभ पहुँचाना या स्वय अपने स्वार्थ के लिए अपने पद और शक्ति का दुरुपयोग करना या अपने अधीन प्रशासन तंत्र मे गलत कार्य करने को कहना, प्रोत्साहित करना या रोकने का प्रयत्न न करना या ईमानदार व्यक्तियों को तंग करना आदि राजनीतिक भ्रष्टाचार के अन्तर्गत आते हैं।"[4] राजनीतिक भ्रष्टाचार का कुचक्र प्रशासनिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों मे दृष्टिगत होता है। जन-सामान्य (सर्वहारा वर्ग) का शोषण राजनीतिक भ्रष्टाचार के माध्यम से सदैव होता रहा है। सर्वहारा वर्ग चेतनायुक्त होकर इस शोषण से मुक्ति पाने के लिए 'वर्गगत संघर्ष' में सन्नद्ध होता है। 'वर्ग-संघर्ष' निरन्तरता मे भ्रष्टाचार एक प्रेरक तत्त्व रहा है।

---

१ काली आँधी—कमलेश्वर, पृ० ६०
२ शहीद और शोहदे—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० १२०
३ वही, पृ० १२१
४ भारतीय सामाजिक समस्याएँ—द्वारिका प्रसाद गोयल, पृ० २०६-२१०

मार्क्सवादी चिन्तन की संवाहक विचारधाराओं की अभिव्यक्ति

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों मे—"साहित्य वास्तव मे 'वर्ग-सघर्ष' के ऐतिहासिक विकासक्रम मे आये हुए विभिन्न युगो के अधिकारी वर्ग की प्रवृत्तियों का परिचायक है ऐसी अवस्था मे साहित्य का सम्बन्ध ऐतिहासिक विकास से है जो यथार्थ की वस्तु है।"[1] आर्थिक सघर्ष तथा श्रेणी-सघर्ष की व्याख्या ही सघर्षों के स्वरूप को निर्धारित करती है। मार्क्सवादी चेतना पूंजीवाद से उत्प्रेरित वर्ग-सघर्ष की अन्तिम परिणति म पनपती है। मार्क्सवादी चेतना के हिन्दी उपन्यासों मे मार्क्सवादी, साम्यवादी एव समाजवादी चिन्तन की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है और इसी अनुक्रम मे 'वर्ग-सघर्ष' का स्वरूप उभरा है।

मार्क्सवाद

"मार्क्सवाद के अनुसार आर्थिक उद्देश्य से किए जाने वाले कार्य व प्रयत्न समाज के सगठन, विचारो और शासन का रूप निश्चित करते हैं। मार्क्सवाद आर्थिक परिस्थितियो को भाग्य की बात नही समझता। आर्थिक परिस्थितियों के कारण पैदा हो जाने वाली अडचनो को दूर करने के लिए मनुष्य जो विचार और कार्य करता है, मार्क्सवादी उन्हे भी आर्थिक परिस्थितियों का अग समझते है।"[2] मार्क्सवाद वर्ग-सघर्ष की चेतना मजदूरो म उभारना चाहता है। 'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र पढकर सत्य का सचमुच ऐसा लगा जैसे किसी ने उस अँधेरे कुएँ म से निकालकर सूरज की रोशनी मे ला खडा किया हो, जैसे उसे दो आँखें मिल गई हो।"[3] मार्क्सवाद के सिद्धान्तो के आधार पर सत्य को ऐसा अनुभव होता है कि मार्क्सवादी सिद्धान्तो पर चलकर ही भारत मे भी वर्गविहीन राज्य की स्थापना, शोषण का अन्त तथा वर्ग-सघर्ष की भावना का अन्त होगा। मार्क्सवाद के चतुर्दिक प्रकाश ने वर्ग-सघर्ष को सामने रख, उससे उत्पन्न विषमताओ का उल्लेख किया—"जब रोशनी नही थी, तब भी वर्ग-सघर्ष था और वह तब तक समाज से नही जा सकता, जब तक कि वर्गों का खात्मा करके एक नये तरह के वर्गविहीन समाज की रचना नही की जाती।"[4] समाज की आर्थिक व्यवस्था ठीक रखने के लिए 'दादा कामरेड' उपन्यास मे परिवार नियोजन एक आवश्यक अग माना गया है—' जिस सन्तान का स्वागत करने के लिए परि-

---

१ नया साहित्य नये प्रश्न—नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० १
२ मार्क्सवाद—यशपाल, पृ० ६१
३ बीज—अमृतराय पृ० ५६
४ वही पृ० ५१

स्थितियाँ न हों, उसे संसार में लाना अन्याय है।"[1] "हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने परिश्रम के फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी दूसरी श्रेणी से, एक देश दूसरे देश से परिश्रम का फल छीन ले तो यह अनुचित है, अन्याय है, अपराध है।"[2]

श्री शिवदान सिंह चौहान का मत है कि "मार्क्स का जितना गहरा प्रभाव पड़ा है, आज तक उतना अन्य किसी विचारक का नहीं पड़ा। मनुष्य के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक जीवन का कोई स्तर और कोई क्षेत्र मार्क्सवाद से अछूता नहीं रहा।'[3] मार्क्सवाद को वैज्ञानिक-भौतिक यथार्थ भी कहा जाता है और मार्क्सवादी रचनाकार इस बात का आग्रह करते हैं कि साहित्य का सम्बन्ध ठोस और व्यावहारिक सत्य से है। मार्क्सवादी चिन्तन के अनुसार आर्थिक परिस्थितियों को भाग्य की बात नहीं समझा जाता। 'आर्थिक परिस्थितियों के कारण पैदा हो जाने वाली अड़चनों को दूर करने के लिए मनुष्य जो विचार और कार्य करता है मार्क्सवादी उन्हें भी आर्थिक परिस्थितियों का अंग समझते हैं।'[4] 'महाकाल' उपन्यास का पाँचू सोचता है—"घर से भाग जाना मेरी कायरता है। मैं अपने कर्तव्य से भाग आया। भूख शर्म की बात नहीं सबको लगती है। मैं सबकी भूख के लिए माँगूँगा, मैं लड़ूँगा मोनाई से, दयाल से, उन सब लोगों से जिनके पास सबकी भूख के साधन छीनकर जमा हैं।"[5] निश्चय ही समाज में धन की प्रधानता है। धन के कारण ही समाज में वर्ग-संघर्ष है और धन ही सामाजिक शक्ति की सबलता का परिचायक है। 'बहता पानी' उपन्यास का सव्यसाची क्रान्तिकारी मनोवृत्ति का उन्नायक है। परन्तु एक ओर वह सरलता का तिरस्कार कर उसे रसिक लाल के पास भेजकर मनोवृत्ति और क्रान्तिकारी होने का ढिंढोरा पीटता है, दूसरी ओर सुजाता के लौट आने पर उससे भी विवाह कर प्रतिक्रियावादियों का अगुआ बनता है। "क्रान्तिकारी की कथनी और करनी समान कर्मा होती हैं परन्तु सव्यसाची की वाणी और कर्म में भारी अन्तराल है।"[6] स्पष्ट है कि मार्क्सवाद कथनी व करनी में समानता चाहता है। मार्क्सवाद मजदूरों का निर्बाध शासन नहीं चाहता वरन "यह एक ऐसी शासन-व्यवस्था कायम करने का साधन है, जिसमें शोषक तथा शोषित श्रेणियों का अस्तित्व समाप्त हो जाये

---

१ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० १२१

२. वही, पृ० १७५

३ साहित्यानुशीलन—शिवदान सिंह चौहान, पृ० १४०

४ मार्क्सवाद—यशपाल, पृ० ३।

५ महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० २३६

६ हिंदी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य—डा० प्रेम भटनागर पृ० १८६

और किसी भी श्रेणी का शासन दूसरी श्रेणी पर न रहे।" समाज में शोषण-रहित अवस्था तभी सम्भव हो सकती है जब समाज में श्रेणियों का अन्त हो जाये।"[1]

समाजवाद

प्रेमचन्द-युग के उपरान्त भारतीय समाज का एक भाग समाजवादी विचार-धारा से प्रभावित हो रहा था। नवीन परिस्थितियां द्वारा उत्पन्न नवीन समस्याओं का समाधान समाजवादी सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है। यशपल के 'दादा कामरेड' में साम्यवादी जीवन दर्शन का आग्रह है किन्तु सामाजिक जीवन की विषमताओं को अंकित करना समाजवादी चेतना का प्रतीक है। 'देशद्रोही' की चन्दा और यमुना समाजवादी चेतना से प्रभावित है। 'मनुष्य के रूप' में पूंजीवादी युग में प्रेम का एक सौदा मात्र दिखाया गया है। "भूषण साम्यवादी दल का सदस्य है जो परिस्थितियों तथा पात्रों की व्याख्या करता हुआ समाजवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है।"[2] "'गंगा मैया' उपन्यास में लेखक समाजवादी चेतना और समाजवादी यूटोपिया का मिश्रित रूप चित्रित करता है।"[3] उदाहरण के लिए "मालिक पूंजी लगाते है, इसमें सन्देह नहीं परन्तु पूंजी के रूप में लगाया गया धन भी मजदूरों की सहायता से ही कमाया जाता है।"[4] इसी प्रकार के विचार समाजवादी चेतना का प्रचार-प्रसार करते हैं। वस्तुतः "मार्क्सवाद केवल सम्पूर्ण संसार में समाजवादी व्यवस्था कायम करना ही अपना उद्देश्य समझता है। समाजवाद और कम्युनिज्म की स्थापना साधनहीन और शोषित श्रेणी द्वारा शोषक श्रेणी पर विजय प्राप्त कर, शोषक श्रेणी के अस्तित्व मिटा देने से होती है।"[5] "समाजवादी यथार्थ के चित्रण के रूप में रांगेय राघव का 'विषाद मठ' बंगाल के दुर्भिक्ष की वास्तविकता में पूंजीपतियों के शोषण का घिनौना रूप प्रस्तुत करता है।"[6] 'देशद्रोही' उपन्यास को डॉ० सुषमा धवन राजनीतिक रोमांस या साम्यवाद का प्रचारवाहक नहीं मानती। उनके मतानुसार इसका मूल उद्देश्य समाजवादी मान्यताओं के आधार पर जीवन का विकास दिखाना है। 'दादा कामरेड' में भी समाजवादी विचारधारा का उल्लेख किया गया है—"समाजवादी विचार दो तरह के हैं—'समाजवाद का रूप

---

१ मार्क्सवाद—यशपाल, पृ० ६६
२. हिंदी उपन्यास—सुषमा धवन, पृ० ३०१
३ हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—रामदरश मिश्र, पृ० १४५
४. देशद्रोही—यशपाल, पृ० ६१
५ मार्क्सवाद—यशपाल, पृ० ५८
६ हिंदी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन—डा० ब्रजभूषण सिंह, पृ० २१६

हो सकता है कि बडे आदमी गरीबो पर दयाकर अपनी स्थिति कायम करते हुए उनकी अवस्था सुधारने की बात सोचें। दूसरा यह है कि गरीब आदमी शासन और अधिकार स्वय अपने हाथ म ले लें। पहला हुआ मन्तो का या गाधीवादी समाजवाद और दूसरा है मार्क्सवादी समाजवाद।"[1] 'देशद्रोही' उपन्यास के राजाराम बहस करते हुए कहते है—"समाजवाद म पूँजी सरकार के हाथ मे होगी तो सरकार मुनाफा ले जायेगी, हम-तुम गरीबो को क्या मिलेगा ? लेकिन सरकार की नीति गरीबो के हाथ मे होगी तो सरकार लम्बा-चौडा मुनाफा बचाने के बजाय मेहनत करने वालो की मेहनत का पूरा फल दे सकती है।"[2] लेखक का कथन है कि समाजवादी क्रान्ति के लिए स्वर्ण सयोग का अवसर है—"जब साम्राज्यवादी देश परस्पर युद्ध म भिडकर एक-दूसरे देश की पूँजीपति शासक श्रेणियों की व्यवस्था निर्बल कर रहे हो, मेहनत करने वाली श्रेणी के लिए अपने देश म शासन-शक्ति हथियाने का स्वर्ण सयोग है।'[3] इस प्रकार समाजवाद के उद्देश्य व व्यवस्था की सुदृढता भी अन्तत समाज म वर्ग-सघर्ष के ही परिणाम है। वस्तुत वर्ग-सघर्ष समाज मे समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की उत्प्रेरणा देता है।

साम्यवाद

कुछ आलोचको की धारणा है कि साम्यवादी चेतना के उपन्यासो म सिद्धान्तो का प्रतिपादन इतना अधिक किया गया है कि उनमे सवदनशीलता क्षीण दृष्टिगोचर होती है 'सैद्धान्तिक ढग से तो उस रचना मे मार्क्सवादी दृष्टिकोण आ जाता है, किन्तु वह रचना अनुभूति के उथलेपन की वजह से जीवन्त नहीं हो पाती।'[4] 'बीज' उपन्यास म अन्य प्रगतिवादी उपन्यासो की तरह साम्यवादी विचारो का पात्रो पर इतना आरोपित नही किया गया, जितना उनका विकास पात्रो के जीवन म दिखाया गया है।[5] यशपाल के उपन्यासो का प्रधान स्वर आर्थिक है तथा सहयोगी स्वर राजनीतिक है। इसीलिए यशपाल कट्टर मार्क्सवादी माने जाते है। साम्यवादी विचारधारा का प्रभावपूर्ण वर्णन पुरुष व नारी के सम्बन्धो के समान तत्त्वो म किया गया है। 'दादा कामरेड' मे क्रान्तिकारी आन्दोलन के साथ मजदूर आन्दोलन की सफलता घोषित की गई है। 'देशद्रोही' तथा 'पार्टी कामरेड' उपन्यासो म नारी अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के

---

१ दादा कामरेड—यशपाल पृ० ६१ ६२

२ देशद्रोही—यशपाल, पृ० ११५

३ वही, पृ० ११४

४ आलोचना (त्रैमासिक), अक १३, पृ० २०५

५. हिन्दी उपन्यास—सुषमा धवन, पृ० ३२६

लिए तथा मार्क्सवादी विचारधारा के प्रसार-प्रचार के लिए प्रयत्नशील है। 'अनामन्त्रित मेहमान' मे साम्यवादी विचारधारा की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। "वह समाज को एकदम बदल लेना चाहते है। जाति भेद खत्म करके ब्राह्मण के घरो मे हरिजन लडकियो और हरिजन के घरो मे ब्राह्मण लडकियो का विवाह करना चाहते हैं।"[1] "साम्यवादियों का राज्य आने वाला है और तब सब साधुओ को पकड-पकड कर व्याह करा दिया जाएगा। वह कहता है, साम्यवदी समाज मे किसी भी पुरुष को, चाहे वह कितना भी बूढा क्यो न हो, बगैर स्त्री के रहने नही देंगे।"[2] साम्यवादी चिन्तन के सम्बन्ध मे लेखक के निजी विचार हैं। यथा "साम्यवाद ही नही कोई भी आदर्श मुझे मोहित कर सकता है। साम्यवाद मुझे सबसे बेहतर लगता है। मेरे ख्याल मे साम्यवाद अब जल्दी देहातो मे प्रवेश करेगा। साम्यवाद धर्म है यह कहकर ही इसका प्रचार करना होगा।"[3] "धन और सौन्दर्य का आदर करना पूंजीवादी सस्कृति है। साम्यवादी सस्कृति मे कुरूपता और निर्धनता की ही प्रतिष्ठा होगी।"[4] 'उखडे हुए लोग' उपन्यास मे देशबन्धु जो शरद से कहते हैं, "नौकर यहाँ कोई नही है शरद बाबू। सभी एक परिवार के सदस्य है। यह नौकर-मालिक की भावना मुझसे नही चल पाती। भाई मैं तुम्हारी आवश्यकताओ की पूर्ति का प्रयत्न करता हूँ, तुम मेरी जरूरतो को पूरा करो। इसमे क्या नौकर और क्या मालिक।"[5] ये विचार साम्यवाद लाने की उत्प्रेरणा प्रदान करते हैं। "यशपाल यद्यपि साम्यवादी उपन्यासकार है जो सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति पर विश्वास करते हैं। उनके उपन्यासो की नारिया एक ओर परम्परागत समाज और उनकी मान्यताओ के प्रति विद्रोह करती है, दूसरी ओर राजनीतिक क्षेत्र मे पूंजीवादी शोषण तथा साम्राज्यवादी शासन को समाप्त करने के निमित्त साम्यवादी पार्टी म कार्य करने के लिए तत्पर हैं।"[6] 'मनुष्य के रूप' उपन्यास की मनोरमा लेखक के जागरूक साम्यवादी नारी पात्रो की परम्परा है। पार्टी कामरेड की गीता कालेज की छात्रा है तथा साम्यवादी दल की सदस्या है। इस प्रकार यशपाल जी के अनुसार नैतिक मान्यता मे छूट साम्यवादी विचारो का परिणाम है। 'विषाद मठ' म दो गीत जो गद्यात्मक रूप मे दिए गए है वे क्रान्तिपरक और साम्यवादी भावना से अनुप्राणित है। "पूर्व के पिशाच वनो की गरज मे तुम्हारी कराहो को डुबोने का

---

१ अनामन्त्रित मेहमान—आनन्दशंकर माधवन, पृ० ११
२. वही, पृ० १०
३ वही, पृ० २६८
४ वही पृ० ४१२
५ उखडे हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० ४६
६ हिंदी उपन्याम समाजशास्त्रीय अध्ययन—डा० चण्डीप्रसाद जोशी, पृ० १५०

प्रयत्न किया है। और मीर जाफरो ! गगा की शपथ है कि साम्राज्यवाद के छक्के छूट गए है। फासिस्टवाद का गढ ठोकरा मे काँप रहा है। इस खून का वदला लेना हिन्दुस्तान के मेहनतकश कभी न भूलेंगे।"[१] 'देशद्रोही' उपन्यास मे "उपन्यासकार की साम्यवाद पर अटूट निष्ठा है तथा इस कृति द्वारा मार्क्सवाद का प्रचार किया है।"[२] 'दादा कामरेड' उपन्यास मे मजदूरो की हडताल का चित्र तो स्पष्टत साम्यवाद की ओर सकेत करता है। "त्रिभुवन सिह के शब्दो मे 'देशद्रोही' के अन्दर 'दादा कामरेड' की भाँति अन्य राजनीतिक दलो की छीछालेदर नही की गई है, वल्कि लेखक का एकमात्र लक्ष्य भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन करना है। वह साम्यवाद का प्रचार करना चाहता है।"[३] इस प्रकार मार्क्सवादी चेतना के सभी उपन्यासा म इस चिन्तन की सवाहक विचारधाराओ की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

आन्दोलनात्मक प्रवृत्तियाँ

आन्दोलन वह प्रयत्न होता है, जिसमे जीवन की एक नई व्यवस्था छिपी रहती है। आन्दोलन प्राय तीन स्तरो पर पाये जाते हैं—(१) सामाजिक आन्दोलन, ये समाज-सुधार की दृष्टि से किए जाते है। (२) राष्ट्रीय आन्दोलन, (३) अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्वव्यापी आन्दोलन। सामाजिक आन्दोलना की अवधारणा से सभी विकासशील देश एव विकसित देश प्रभावित रहे है। आज सारे विश्व मे 'गरीबी हटाओ' का नारा बुलन्द है। सम्पूर्ण विश्व इस आन्दोलन मे सलग्न है। "भारतवर्ष म सामाजिक आन्दालन बीसवी शताब्दी मे, विशेषकर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के वाद अधिक सबल हुआ। आज इस आन्दोलन के अन्तर्गत पिछडे वर्ग का सुधार, स्त्री-शिक्षा, उद्योग-प्रबन्ध मे श्रमिको का भाग लेना, छात्र आन्दोलन तथा गरीवी हटाओ आदि कुछ ऐसे कार्यक्रम अनायास ही सभी का ध्यान केन्द्रित कर लेते हैं। सामाजिक-राष्ट्रीय आन्दोलनो का मुख्य उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था मे उन सशोधनो स है, जो वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रतीत होते है।"[४] "प्रेमचन्दोत्तर काल म राजनीतिक स्वाधीनता को सवैधानिक रूप मे स्वीकृति मिलने से तथा मार्क्सवादी विचारधारा के परिणाम-स्वरूप समाजवादी प्रवृत्तियो का आग्रहपूर्वक प्रतिपादन उपन्यास की विषयवस्तु वनी। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जीवन दर्शन के अनुरूप सर्वहारा वर्ग की स्थिति

१ विषाद मठ—डा० रागव राघव, पृ० १२३
२ हिंदी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन—डा० ब्रजभूषण सिंह, पृ० २०१
३ हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद—डा० त्रिभुवन सिह पृ० २०६
४ आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन—डा० के० के० मिश्र पृ० ५७

का चित्रण कर आर्थिक विषमता का साग्रह चित्रण और वर्ग-सघर्ष की चेतना से उपन्यास का शृगार किया जाने लगा।"[1] विभिन्न आन्दोलनात्मक प्रवृत्तियों —क्रान्ति, हडताल, तालाबन्दी आदि मुख्यत वर्गगत चिन्तन के परिणामस्वरूप पनपती है। मार्क्सवादी चेतना के प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासो म वर्णित इन प्रवृत्तिया का उल्लेख किया जाना अनिवार्य है, क्योकि य प्रवृत्तियाँ ही अन्तत वर्ग-सघर्ष की उत्प्रेरक बनी हैं और कहीं-कही पर 'वर्ग-सघर्ष' के परिणामस्वरूप पनपी हैं।

क्रान्ति

क्रान्ति के प्रेरक तत्त्व समाज म वर्ग चेतना से जुडे हुए हैं। 'रीछ' उपन्यास म क्रान्ति के प्रेरक तत्त्वों का उल्लेख किया गया है— कारखाने का मालिक कहता है कि मजदूरा का वेतन कम करो और काम के घटे बढा दो तो इस कथन मे भी सत्य का अश है। और मजदूरो के इस कथन म भी कि काम के घटे कम करो और वेतन अधिक दा। धनी लागा का यह कथन भी सही है कि देश मे धनी और गरीब रहे और गरीबो का यह कथन भी ठीक है कि देश म क्रान्ति हो और धनी और गरीब का भेद न रहे।"[2] इसी उपन्यास मे मोहन एक क्रान्तिकारी नेता है जो सशस्त्र क्रान्ति मे विश्वास रखता है। सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन म वह मार्क्स के विचारा से सहमत है। जमीदारी प्रथा उन्मूलन के लिए उसने हमला बोल दिया, "आज ही खबर आई है कि जमीदारो पर उसने सशस्त्र किसानो को लेकर हमला बोल दिया है।'[3] इस प्रकार क्रान्ति का बहुमुखी चित्रण मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासा म किया गया है। 'धरती की आँखें' उपन्यास मे—' मैं इतना कहे देता हूँ कि अब लडाइयाँ बढ़ेंगी, खून से खून की लडाई होगी, जात से जात की लडाई होगी, जात-बेजात से लडाई होगी, जिन्दगी और मौत से लडाई होगी, इन्ही लडाइया से तो इतिहास बनता है और बिगडता है बडी-बडी क्रान्तियाँ होती है।"[4] क्रान्तिकारी की भूमिका तथा अनुशासन का महत्त्व बताते हुए 'कोरा कागज' उपन्यास म क्रान्तिकारी पात्र नरन्द्रमोहन को आश्रयदात्री वेश्या की आलिंगन की मोहिनी भी रोकने म असमर्थ हो गयी, ' वह बोला, उसके क्रातिकारी दल का उसे आदेश पूरा करना है, एक और सौंपा हुआ काम निपटाना है। मोहग्रस्त होकर उससे मुँह मोडेगा तो अनुशासन भग होगा तथा देशद्रोह भी होगा।"[5] क्रान्तिकारिया की आस्था

१ हिंदी के राजनीतिक उपन्यासो का अनुशीलन—डा० ब्रजभूषण सिह, पृ० ४३
२ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० १७८
३ वही, पृ० ४५८
४ धरती की आँखें—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ५३
५ कोरा कागज—अनत गोपाल शेवडे, ३२१

है कि दुश्मन जब लडाई मे फँसा हो, वर्ग-विस्तार के साथ उस पर हमला किया जाय, तब सफलता अवश्य मिलती है। इतिहास तथा बदलती सामाजिक व्यवस्था इसकी साक्षी है—"महायुद्ध के छिडते ही जहाँ जो भी क्रान्तिकारी, अर्द्ध क्रान्तिकारी, भूतपूर्व क्रान्तिकारी थे, सब चौकन्ने हो गये थे। न केवल भारतीय क्रान्तिकारियों मे बल्कि सभी देशों के क्रान्तिकारियों मे यह पुराना विश्वास है कि जब दुश्मन लडाई मे हो, उस पर हमला करना चाहिए।"[1] क्रान्ति मे ही वह सामर्थ्य थी कि अपनी तरल आग से उसके अन्दर की खाइयो को भर सकती थी।"[2] 'देशद्रोही' मे भी खन्ना व शिवनाथ सशस्त्र क्रान्ति के लिए बम बनाने की तैयारी करके विस्फोट पैदा करना चाहते है। क्रान्ति म मजदूर तथा सर्वहारा श्रमिक वर्ग सलग्न है। वह समाज म आर्थिक वैषम्य को मिटाना चाहता है। अतिरिक्त मूल्य-सिद्धान्त का प्रतिफलन जो 'वर्ग-सघर्ष' का उत्प्रेरक बनता है, उसकी एक स्थिति इस उपन्यास म बताई गयी है जो क्रान्ति की चेतना प्रदान करती है। "कौन कहता है मिलें मजदूर का नहीं है? मजदूर मेहनत नही करेगा तो मालिक मुनाफा किधर से करेगा? मुनाफा नही होने से मिल किधर से बनेगा? मजदूर की मेहनत की कमाई को जमाकर मालिक मिल बनायेगा तो मिल मजदूर का होगा या मालिक का?"[3] मार्क्सवादी क्रान्ति का समर्थक अवश्य है परन्तु निरुद्देश्य क्रान्ति का नही। प्रतिषेध के प्रतिषेध के नियम की व्याख्या करते हुए निष्कर्ष निकाला जाता है कि आन्तरिक असगतियो के फलस्वरूप एक स्थिति का विनाश दूसरी ओर उससे उच्च स्तर की स्थिति निर्माण के लिए पथ प्रशस्त करता है। "मार्क्सवाद क्रान्ति को सहार और विनाश के अर्थ म न लेकर समाज के स्वस्थ निर्माण के अर्थ मे ही लेता है।"[4] मन्मथनाथ गुप्त का 'बहता पानी' जेल से मुक्त हुए नायक सव्यसाची की क्रान्तिमूलक विचारणाओं को प्रतिपादित करने वाला उपन्यास है। सव्यसाची की सामाजिकता और क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का क्षेत्र व्यापक है। "यही क्रान्तिकारी मनोवृत्ति है। क्रान्तिकारी प्रवृत्ति खण्डश दुनिया का उद्धार नही करना चाहता। एक दुख से सैकडो दुखो की चिन्ता मे पड जाता है। एक की दवा खोजने के लिए निकलकर वह सबके लिए सजीवनी की तलाश करता है। एक प्रदीप से वह सन्तुष्ट नहीं होता, वह रात को अविच्छिन्न दिवाली कर देना चाहता है।'[5] 'दादा कामरेड' मे कांग्रेस के अहिंसात्मक आन्दोलन के साथ साथ

---

१ मानव दानव—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० ७०

२. वही, पृ० २१२

३ देशद्रोही—यशपाल, पृ० ७६

४ हिंदी काव्य मे मार्क्सवादी चेतना—डा० ज्ञानचद गुप्त, पृ० ६४

५ बहता पानी—मन्मथनाथ गुप्त पृ० १७४

चलने वाले क्रान्तिकारियों के अहिंसात्मक आन्दोलन तथा क्रान्तिकारियों के अनुशासन सम्बन्धी कठोर नियमों का सजीव तथा इतिहाससम्मत चित्रण किया गया है।"[1] इस प्रकार क्रान्तिमूलक चेतना का विकसित स्वरूप अनेक उपन्यासों में द्रष्टव्य है।

हड़ताल और तालाबन्दी

पूँजीपति जहाँ हड़ताल को मनुष्य की कार्यक्षमता के ह्रास का कारण तथा देश के अनुशासन का सबसे बड़ा शत्रु मानते है, वहाँ मजदूर या सर्वहारा वर्ग के लोग समाज में व्याप्त आर्थिक वैषम्य की खाई को पाटने का व निजी हक दिलाने का सर्वश्रेष्ठ साधन मानते हैं। मजदूर इसे अपने शोषण से मुक्ति प्राप्ति का एक हथियार समझते हैं। "हड़ताल का दिन ज्यों-ज्यों करीब आता था मिस्टर राबिन्स हड़ताल से उतना नहीं डरते थे, जितना बदनामी और विशेषकर मजदूरों की बदल जाने वाली प्रवृत्ति से।"[2] 'देशद्रोही' में "कम्युनिस्ट हड़ताल के समय कांग्रेस के नेतृत्व का झगड़ा न उठाकर उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा को मजदूर के उपयोग में लाना चाहते थे। हड़ताल की तैयारी की भनक मिल मालिकों के कान में पड़ी। आने वाले संकट का उपाय करने के लिए मिल कमेटी ने मजदूर संगठन में प्रमुख भाग लेने वाले मजदूरों को चुन-चुनकर बर्खास्तगी के नोटिस दे दिए।"[3] इस प्रकार दोनों वर्गों की स्थिति वर्ग चेतना से प्रेरित स्वार्थवृत्ति से परिपूरित है, जो वर्ग-संघर्ष को जन्म देती है। हड़ताल में संगठन प्रबलता का दृश्य इस उपन्यास में वर्णित है—'देहली की कपड़ा मिलों की हड़ताल ने विकराल रूप धारण किया। मजदूर सभा के नेतृत्व की प्रतिद्वन्द्विता न रहने के कारण फूट की सम्भावना न रही। हजारों मजदूर बेरोजगार होकर भूखे मर रहे थे। सैकड़ों जेल गए परन्तु हड़तालियों के दृढ़ संगठन के विरुद्ध मिलों में काम करने जाने का साहस हड़ताल से घबरा जाने वाले मजदूरों को भी न हुआ।"[4] 'रीछ' उपन्यास में सेठ हड़ताल होने पर तालाबन्दी की धमकी देता है। लेकिन मजदूर एकता, दृढ़ता, एकनिष्ठता से अपने कार्य में संलग्न हैं, "तालाबन्दी हो जाये तो हम भूखों मरने के लिए तैयार हैं, लेकिन हम हड़ताल अवश्य करेंगे।"[5] हड़ताल व जुलूस का निकटतम सम्बन्ध है तथा हड़ताल तालाबन्दी के विरुद्ध अभियान है। "मोहन वगैरह जुलूस के आगे चलें। 'हमारी माँगें पूरी

१ हिंदी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन—ब्रजभूषण सिंह, पृ० १६६-१६७
२. कहाँ या कर्मों—रामप्रसाद मिश्र पृ० १३६
३. देशद्रोही—यशपाल पृ० १२५-१२६
४ वही, पृ० १२७
५ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ३४२

हो, यह सरकार निकम्मी है, सेठों के एजेन्टों से सावधान'। आदि के नारे गूँज उठे।"[1] हडताल करने पर मालिक की धमकियो का जब मजदूरो पर कोई असर नही होता तो प्राय तालाबन्दी की घोषणा करते है। 'मशाल' मे भी प्रथम तो मजदूरो को बर्खास्तगी के एलान से डराया जाता है और अन्त मे तालाबन्दी से—"जब यह वार भी खाली गया, तो मालिक एक कदम और आगे बढे। तालाबन्दी का एलान हुआ। मजदूरो के पेट पर लात मारना था।"[2] नरेन ने इस व्यवहार के विपरीत मजदूरो को अपनी लडाई को निरन्तर बनाये रखने को उकसाया—"यह मजदूरो की लडाई न्याय की लडाई है, रोजी-रोटी की लडाई है और ये मिल मालिक मजदूरो पर बरजोरी करते हैं, उनकी रोजी पर हमला करते हैं और उनके इस हमले पर सरकार उनकी सहायता करती है। यह सरकार उन्ही के पक्ष की है। उससे मजदूरो की भलाई नही हो सकती। मजदूरो को अगर अपना हक लेना है, अपने साथ न्याय करना है अपनी रोजी की हिफाजत करनी है तो उन्हे यह लडाई लडनी ही होगी।"[3]

दलीय प्रतिबद्धता

विश्वभरनाथ उपाध्याय के 'रीछ' उपन्यास मे दलीय प्रतिबद्धता को बहुत कुछ स्वार्थो पर आधारित दिखाया गया है। दलबदलू प्रवृत्ति यहाँ भी प्रतिबद्धता को तोड रही है—"तुम बताओ सो करें, लाहिया पोइया से हमें क्या लेना-देना है ? केसरी न कहा तो लाल टोपी पहन ली। तुम कहोगे तो गेहूँ की बाल और हँसिया वाला झण्डा उठा लेंगे। हम केसरी और तुमसे मतलब निकालना है।"[4] इस प्रकार स्वार्थ-भावना से पूर्ण दल-बदलू प्रवृत्ति भी संघर्ष की जन्मदात्री है। यशपाल के उपन्यासो मे मार्क्सवादी चेतना के अन्तर्गत दलीय प्रतिबद्धता का चित्रण हुआ है।

मजदूर आन्दोलन

मजदूर आन्दोलन से मजदूरो का भविष्य जुडा हुआ है। 'मशाल' उपन्यास मे कहा गया है—'जो दुनिया के मजदूर आन्दोलन का अगुआ है जिसके साथ दुनिया के मजदूरो का भविष्य जुडा है, जिसकी कामयाबी दुनिया के मजदूर आन्दोलन की कामयाबी है।"[5] इसी मजदूर आन्दोलन की कामयाबी के लिए

---

१ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ३४४
२ मशाल—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १९९
३ वही, पृ० २००
४ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय पृ० ७१९
५ मशाल—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ११३

'दादा कामरेड' मे रफीक अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करता है । "रफीक मजदूर और दूसरे लोगो मे केवल आर्थिक प्रश्नो को उठाने पर जोर दे रहा है । मजदूर लोग यदि इस ढग पर ही चलेंगे तो उन लोगो मे राष्ट्रीय चेतना नही आ सकेगी तथा उनका आन्दोलन बिलकुल सकुचित हो जाएगा ।"[1] मजदूर-आन्दोलन के साथ सहकारिता का सम्बन्ध भी जुडा रहता है । "सहकारिता मे किसी की अपनी सम्पत्ति नही होती । वह सामूहिक सम्पत्ति हो जाती है । कई व्यक्तियो की सम्पत्ति एक स्थान पर एकत्रित की जाती है उसकी सुरक्षा वह करता है जिसकी सम्पत्ति नही है ।"[2] 'देशद्रोही' उपन्यास मे 'मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी का चित्र है जो अपनी उलझना के बावजूद मजदूर आन्दालनो की ओर आकृष्ट होता है । उसकी आत्मा व्यक्ति से समाज की ओर जान के लिए छटपटाती है ।"[3] "मजदूर क्रान्ति की ओर खिचता है लेकिन लगातार उसकी आत्मा व वह स्वय अपनी यौन समस्याओ से उलझा रहता है ।'[4] 'दादा कामरेड' का हरीश स्वय मजदूरो की सगठित शक्ति बनाकर सुल्तान नाम रखकर स्थानीय मिलो मे हड-ताल कराता है तथा कहता है, 'मजदूर लाग यदि इस ढग पर चलेंगे तो उनका रुख राजनीतिक नही हो सकेगा और उनका आन्दोलन बिलकुल सकुचित हो जाएगा । मैं चाहता हूँ कि भिन्न भिन्न पेशे के मजदूरा की केन्द्रीय कमेटी मे कुछ आदमी मध्यम श्रेणी के भी रहे जो आन्दोलन को राजनीतिक रूप दिये रहे ।'[5]

विभिन्न दलो की सघर्षात्मक भूमिका

'सघर्ष'रत रहकर समाज की व्यवस्था मे परिवर्तन के साथ उच्च स्तर पर पहुँचना विभिन्न दलो का ध्येय रहा है । ग्रामो म गुप्त दलो की सक्रियता के कारण 'रीछ' उपन्यास का पात्र विमल चिन्तित हो जाता है । "उसे इस घरेलू झगडा मे एक दूरागत विनाश की दुर्गन्ध मिली । भोजन के उपरान्त विमल गुप्त दल की बैठक के लिए तैयार हो गया । गुप्त दल के नेता थे सूरजभान । दु शासन और तेजशकर इस दल के सेनापति माने जाते थे । विमल की गुप्त दल पर दृष्टि पडते ही यह सब भाव उसके मन मे आए, लेकिन उमन धैर्य से दल के रूप को समझन का प्रयत्न किया ।"[6] " 'उखडे हुए लोग' उपन्यास मे भी वर्तमान

---

1 दादा कामरेड—यशपाल पृ० ११८
2 राग दरबारी—श्रीलाल शुक्ल पृ० ३७१,
3 हिंदी साहित्य क बसमी वर्ष—शिवदानसिंह चौहान, पृ० १६६
4 आधुनिक हिंदी साहित्य—प्रकाशचद्र गुप्त, पृ० १४०
5 दादा कामरेड—यशपाल पृ० १३४
6 रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ३३२-३३३

का स्वामी यदि देशबन्धु है तो भविष्य का निर्माता यह न टूटने वाला सघर्षशील वर्ग है, जिसके प्रतिनिधि शरद और जया हैं तथा जिसका नेता सूरज जी जैसा दृढ व्यक्ति है।"[1] 'शहीद और शोहदे' उपन्यास मे काग्रेस तथा ब्रिटिश सरकार सघर्षरत दिखाए गए हैं। "जब काग्रेस मत्रिमण्डल ने १६३६ मे युद्ध-विरोधी नारे देकर पद त्याग किया, तो जनता ने इसे अपनी लडाई समझा और देश मे एक बार फिर वह परिस्थिति हो गई जो क्रान्ति नही तो क्रान्ति के लगभग थी। सचमुच उस समय ब्रिटिश सरकार के लिए अपना अस्तित्व कायम रखना मुश्किल हो गया था।"[2] 'पार्टी कामरेड' म सर्वहारा वर्ग की जागृति का परिचय हडताल की घोषणा के रूप मे किया जाता है। "बम्बई का बच्चा-बच्चा, हर एक मर्द और औरत, हिन्दू और मुसलमान, ईसाई और पारसी जान देकर भी सरकार के इस जुल्म का मुकाबला करेगा। हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी आपसे अपील करती है कि अत्याचार का विरोध करने लिए आप कल बम्बई मे पूरी हडताल करें।"[3]

अपने अधिकारो व रोटी रोजी की सुरक्षा हेतु 'मनुष्य के रूप' मे यशपाल सामूहिक प्रयत्न के लिए प्रेरित करते है। सघर्ष के लिए मनुष्य का सगठित प्रयत्न वे एक आवश्यक परिस्थिति मानते है—"हम चर्चिल गुट के समाजवादी बन जाने मे विश्वास नही करते। हमारा काम दोहरा है। कम्युनिस्ट यह विश्वास नहीं करता कि परिस्थितियाँ स्वय क्रान्ति कर देंगी, कभी नही। मनुष्य का सगठित प्रयत्न स्वय एक आवश्यक परिस्थिति है।"[4] 'दादा कामरेड' का हरीश भी सघर्ष मे सफलता-प्राप्ति के लिए मजदूरो की शक्ति को सगठित करना चाहता है। "मजदूरो की शक्ति को जो आकाश मे गरजने वाली बिजली की भाँति दुर्दमनीय है, कैसे सगठन के द्वारा क्रान्ति के उपयोग मे लाया जा सकता है।"[5] इसी प्रकार "हरीश के अन्दर क्रान्ति ज्वाला भी है और हृदय म मानवता के सिद्धान्तो का निरूपण भी।"[6] यशपाल ने नाविक विद्रोह के बडे ही सफल और यथार्थ चित्र उपन्यास मे चित्रित किए है। नौ सेना के लोगो ने अपनी माँगें पूर्ति के लिए एक सगठित जुलूस निकाला। "जहाजी सिपाही नीले कालर की सफेद वर्दियाँ पहने फौजी ढग से मार्च करते हुए और उसके साथ फौजी लारियाँ जिस पर काग्रेस के तिरगे, मुस्लिम लीग के हरे और कम्युनिस्ट पार्टी के लाल झण्डे

---

१ आधुनिक उपन्यास उद्भव और विकास—डा० बेचन, पृ० २६०
२ शहीद और शोहदे—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० १२०
३ पार्टी कामरेड—यशपाल, पृ० ८२
४ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० १७१
५ दादा कामरेड—यशपाल पृ० ७२
६ हिंदी साहित्य के उपन्यासकार—यशपाल शर्मा, पृ० २०१

लहरा रहे थे और नारे लगा रहे थे—इन्कलाब जिन्दाबाद ! जयहिंद ! हिन्दुस्तान को आजाद करो ! आजाद हिन्द फौज को रिहा करो !"[1] अंग्रेजों से मुक्ति पाने के लिए भारत में संघर्ष जारी रहा। इसकी एक झलक 'दबदबा' उपन्यास में मिलती है—' बेगम पुल पर जाते हुए एक अंग्रेज और उसकी मेम का कत्ल कर दिया गया और उनकी लाशें नाले में फेंक दी गईं। बाजार बन्द हो गया। कैसर-गंज की रेलवे लाइन उखाड़कर फेंक दी।"[2]

मजदूर वर्ग को आन्दोलनात्मक दृष्टि से सर्वत्र प्रोत्साहित किया गया है क्योंकि मजदूर ही आज समाज में सर्वत्र संघर्षरत दिखाई देता है। "मजदूर वर्ग की समस्या औद्योगिक युग की उपज है। मजदूर वर्ग का शोषण मार्क्सवादी दर्शन का आधार है। मार्क्सवाद की प्रेरणा से १६ ६ ई० में साम्यवादी दल ने अखिल भारतीय मजदूर संघ पर अपना अधिकार जमा लिया था।"[3] शोषण की भयंकरता से संघर्ष, हड़ताल और क्रान्ति परिवर्तन लाते हैं। 'दादा कामरेड' उपन्यास में वर्ग-संघर्ष के उग्र रूप का चित्रण मिल-मजदूरों की हड़ताल के माध्यम से किया गया है। इस हड़ताल में कम्युनिस्ट और कांग्रेस दोनों दलों के सदस्य मजदूरों का नेतृत्व करते हैं परन्तु बाद में केवल साम्यवादी ही मैदान में रह जाते हैं।"[4] 'अचल' जी ने भी अपने दोनों उपन्यासों में मार्क्सीय दृष्टि से कुछ समस्याओं का अध्ययन किया है। "उठती हुई बौद्धिक चेतना और पीढ़ियों से चले आ रहे जीवनव्यापी संस्कारों का पारस्परिक घात-प्रतिघात और संघर्ष दिखाना ही उनका ध्येय है।"[5] 'देशद्रोही' की चन्दा को भी राजाराम यही समझाते है कि संघर्ष की स्थितियाँ मालिक और मजदूर में आज व्याप्त हैं। बद्रीबाबू के शब्दों में—"इसका परिणाम यह होगा, मालिक और मजदूरों में निरन्तर द्वेष बढ़ना और समाजवाद की हिंसा। समाजवादी लोग तो चाहते ही यह है कि दोनों श्रेणियों में विरोध बढ़े और श्रेणी हिंसा का भाव पैदा हो।"[6] "'मनुष्य के रूप' उपन्यास में धनसिंह सर्वहारा वर्ग का एक अशिक्षित व्यक्ति है, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन संघर्षों में बिता दिया है। दूसरा पात्र भूषण का जीवन साम्यवादी आदर्शों के अनुकूल ढला हुआ दृष्टिगोचर होता है। शोषण के विरुद्ध वह अन्त तक संघर्ष करता रहता है।"[7] इस प्रकार आन्दोलनात्मक प्रवृत्तियाँ सदैव 'वर्ग-संघर्ष' की उत्प्रेरक हैं।

---

१ पार्टी कामरेड—यशपाल, पृ० ११६
२ दबदबा—यज्ञदत्त शर्मा, पृ० २४६
३ हिंदी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० २२७
४ हिंदी उपन्यास में नारी चित्रण—बिंदु अग्रवाल, पृ० २४६
५ हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन—डा० गणेशन, पृ० २२८
६ देशद्रोही—यशपाल, पृ० ६३
७ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० ६०

धार्मिक तथा नैतिक पतन

जब धर्म की आड म विपन्न, निम्नवर्ग तथा भोले-भाले व्यक्तियों को लूटा जाता है। तब वह धार्मिक शापण कहलाता है। "अलग-अलग देवी-देवताओ और पितरों की पूजा करने की प्रथा आज भी समाज मे पाई जाती है। यह कार्य सम्पन्न पण्डे लोग करवाते हैं तथा धर्म की आड म नैतिकता का शोषण भी करते पाये गए हैं।"[1] "धर्म एक मूल्यबोधक है, क्योंकि उत्कर्ष इसके लिए मूल प्रत्यय है और उसकी उपलब्धि मूल प्रेरणा। व्यावहारिक धर्म मे पौराणिकता अन्तर्व्याप्त रहती है तथा साम्प्रदायिक चिह्नों, रूढियों और मर्यादाओं को इनम पवित्रता से मंडित कर दिया जाता है।"[2] धार्मिक पतन का प्रमुख कारण धर्मान्तर्गत निहित विभिन्न धारणाएँ तथा विश्वास ही है—"धर्म एक शक्ति भी है और विश्वास भी। इसकी धारणा अमूर्त तथा अति प्राचीन है। इसके स्वरूप चिन्तन म कल्पना का सहयोग अनिवार्य है। हमारा अतीत काल धार्मिक दृष्टि से गौरवमय रहा है तथा उसके नियम शाश्वत नियमो की भाँति समाज मे मान्य रहे है।"[3] किन्तु डा० राधाकृष्ण की इस सम्बन्ध मे दूसरी ही सकल्पना रही है—' धर्म वह अनुशासन है जो अन्तरात्मा को स्पर्श करता है और हम बुराई और कुत्सितता से सघर्ष म सहायता देता है।'[4] "धर्म के अन्तर्गत व्यवहार के वे सभी प्रतिमान आ जाते है, जिनम मनुष्य के दैनिक जीवन की अनिश्चितताओ को न्यूनतम करने का एव अप्रत्याशित तथा भविष्यवाणी न किए जाने वाले सकटो की क्षतिपूर्ति का प्रयत्न करते है।"[5]

समाज के बदलते परिवेश म धर्म और नैतिकता की मान्यताएँ भी परिवर्तित होती जा रही है। परिवर्तित पृष्ठभूमि मे स्थायित्व न होने के कारण वर्गों मे सघर्ष की स्थिति पनपती है। समाज म मार्क्स के अनुसार सदैव दो वर्गों की स्थापना रहती है। धर्म व नैतिकता म आस्था रखने वाला वर्ग तथा धर्म तथा नैतिकता के बदलते परिप्रेक्ष्य म आस्था रखने वाला वर्ग दोनों के दृष्टिकोण तथा मान्यताओं मे अन्तर रहता है। एक वर्ग दूसरे वर्ग को हीन दृष्टि से देखता है। यह स्थिति सघर्षमूलक है और समाज के बदलते दृष्टिकोण के कारण नैतिक व धार्मिक पतन भी वर्ग-सघर्ष का प्रमुख कारण सिद्ध होता है।

---

१ सामाजिक मानवशास्त्र—श्रीमती कुसुम नारायण, पृ० १६१-१६४

२ सस्कृति—मानव कर्तव्य की व्याख्या—यज्ञदेव शल्य, पृ० ११६-११७

३ हिन्दी उपन्यासों में ग्राम चेतना—डा० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० १८८

४ धर्म और समाज—डॉ० राधाकृष्णन, पृ० ४५

५ भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र—तेजमल दक, ४३८

जीवन-यथार्थ की स्वीकृति तथा नैतिकता के बदलते मानदण्ड

"परम्पराओं के विरोध से एव मूल्यो के अवमूल्यन से सामाजिक परिवेश मे नैतिकता की नई स्थितियो ने जन्म लिया है।"[1] आज स्थिति यह है कि "प्रतिष्ठित सत्य एव स्वीकृत नैतिक मानदण्ड झूठे पड गए हैं। और न केवल समाज के प्रति वरन् अपने प्रति भी लोग विद्रोह करने के लिए आकुल हैं, प्रयत्नशील है। उनके लिए हर सदर्भ अर्थहीन हो गए है। और नैतिक मान्यताएँ बल्कि सारी की सारी आचारसहिताएँ खोखली एव जर्जर पड गई है। जितना ही वह सार्थक अर्थ प्राप्त करने की चेष्टा करता है, उसमे व्यर्थता का बोध गहराता जा रहा है तथा वह असमर्थ होता जा रहा है।"[2] 'नैतिक पतन' के व्याख्यायित स्तर ज्ञात करने से पूर्व नैतिकता की सामाजिक नियन्त्रण मे क्या भूमिका रहती है, इसकी जानकारी अनिवार्य हो जाती है। नैतिक नियमो की व्यवस्था समाज करता है। इन नियमो का निर्धारण उचित-अनुचित की भावना के आधार पर होता है। अनुचित कार्य करते हुए व्यक्ति को समाज मे कोई मान प्रतिष्ठा नही रहती। अत ऐसी क्रिया जिसमे व्यक्ति लगातार अनैतिक क्रिया या अनुचित कार्य करता रहे, उसे हम नैतिक पतन की सज्ञा देते है—" 'नैतिकता' शब्द कर्त्तव्य की आन्तरिक भावना पर बल देता है अर्थात् शुभ अशुभ की भावना से इसका सम्बन्ध है।"[3] 'जिन कार्यों को हम अशुभ समझते है। उनसे जब तक हम बचे रहते है, नैतिक मार्ग पर चलते रहते है, लेकिन ज्योंही हम उसके शिकजे मे फँस जाते है। हम अनैतिक मार्ग के राही बन जाते हैं। नैतिकता का सम्बन्ध चारित्रिक दृढता तथा पवित्रता से है।"[4] जहाँ धर्म के नियम पूर्ण निरपेक्ष है वहाँ नैतिकता सापेक्ष है। उदाहरणार्थ जहाँ धर्म सदैव सत्य बोलने पर जोर देता है, भले ही परिस्थितियाँ कैसी भी हो, वहाँ पर नैतिकता ऐसी परिस्थिति में झूठ बोलने की अनुमति दे देती है, जहाँ पर समाज की कोई हानि न हो। स्पष्ट है कि नैतिकता के मूल्य अधिक गत्यात्मक होते है। न्याय, पवित्रता, दया, कर्त्तव्य-परायणता, ईमानदारी, निष्पक्षता आदि धारणाएँ नैतिक धारणाएँ हैं जो समय तथा परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती हैं। चारित्रिक नियमों के आधार पर अच्छाई व बुराई का भेदभाव बताते हुए नैतिकता हम मानव मूल्यो को बनाए रखने की प्रेरणा प्रदान करती है। मनुष्य की आत्मा और सामाजिक बुराई का डर प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक नियमो के उल्लेख करने से रोकता है।

---

१ समाजशास्त्र—टी० बी० बाटोमोर, पृ० २१२
२ हिन्दी उपन्यास—सुरेश सिन्हा पृ० १ ५
३ मानव समाज—किंग्सले डेविस, पृ० ६१
४ समाजशास्त्र के सिद्धांत—डॉ० ओमप्रकाश जोशी, २६१

मार्क्सवादी चिंतन के अनुसार नैतिकता में समूह-कल्याण की भावना छिपी रहती है। नैतिकता इस रूप में अधिक सामाजिक हो गयी है। वह व्यक्तिगत सद्गुणों की अपेक्षा सामाजिक न्याय से उत्तरोत्तर सम्बद्ध होती जा रही है। अत नैतिक विश्वासों का अधिकतर राजनीतिक विचारधाराओं में समावेश हो गया है।[१] चोरी असत्य बोलना व्यभिचार, धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण आदि अनैतिक कार्य हैं तथा धार्मिक व नैतिक पतन के प्रबल तत्त्व हैं— नवीन नैतिक धारणाएँ परम्परागत मूल्यों से संघर्ष कर रही हैं। प्रारम्भिक अवस्था में पाप पुण्य के विश्लेषण में कभी धर्म निर्णायक था। परन्तु आज पाप पुण्य शुभ-अशुभ उचित अनुचित तथा यौन सम्बन्धी नैतिकता में मानवीय दृष्टिकोण का प्रधानता मिलने लगी है।[२] कार्ल मार्क्स के अनुसार नैतिक मानदण्डों में न कुछ शाश्वत है न कुछ चिरन्तन। अच्छे-बुरे का मानदण्ड साधारणतया वर्ग-स्वार्थों की सापेक्षता में ही किया जाता है। अत समाज में जितने वर्ग हैं उतने ही प्रकार की वर्ग-नैतिकता होती है। इस नैतिकता के अनुसार हम उसी कार्य को अच्छा समझते हैं जो हमारे वर्ग स्वार्थों की पूर्ति करता है।[३] इस प्रकार धर्म व नैतिकता का प्राचीन मान्यता नवीन मान्यताओं से मेल नहीं खाती है। अत उचित दृष्टिकोण के अभाव में संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और पतन का क्रम प्रारम्भ होता है। हिन्दू समाज में स्त्रियों से सच्चरित्रता की अत्यधिक अपेक्षा की गयी है। प्राचीन समय की मान्यता प्राय इस प्रकार रही है— स्त्री के भ्रष्ट होने में सारा कुल तथा वंश भ्रष्ट हो जाता है। पुरुष के भ्रष्ट होने से इसकी कोई सम्भावना नहीं रहती।[४] किन्तु आज धर्म के प्रति आस्था का बिम्ब टूटता सा नजर आ रहा है। स्त्री तथा उसकी स्वतन्त्रता के प्रति मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार इस पृष्ठभूमि में आज परिवर्तन आ चुका है। पुरानी पीढ़ी के लोग इस धार्मिक पतन की स्थिति कहते हैं। हमारे हिन्दू धर्म से बढ़कर सड़ा और मरा संसार में कोई भी धर्म नहीं ब्राह्मण का जूठा अमृत के बराबर है ब्राह्मण किसी भी जाति की लड़की से भाग और विवाह कर सकता है। वस्तुत उनके जैसे ढोंगी और पाखण्डी संसार के इतिहास में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलते।[५] इसलिए भारतीय धर्म दिन दिन मर रहा है तथा पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। इसी उपन्यास में लेखक सामाजिक झगड़ों का बुनियादी

---

१ समाजशास्त्र—टी० बी० बाटोमोर पृ० २५५ २५६
२ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य-संक्रमण—डा० हेमेन्द्र पानेरी पृ० २७४
३ हिन्दी साहित्य कोश—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ६१२
४ संघर्ष—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय पृ० ८६
५ अनामन्त्रित मेहमान—ग्यानशंकर माथुर, पृ० ७७

कारण आर्थिक पहलू तथा आर्थिक असमानता से उत्पन्न वैमनस्य के साथ-साथ ईश्वर-विश्वास को भी मानता है, जिसका मार्क्स भी विरोध करता है—"जनता के सारे अन्ध विश्वासो और कमजोरियो का कारण ईश्वर-विश्वास है। जिस दिन यह उठ जायगा, उसी दिन जनता शेर जैसी उठ खडी होगी और आत्मविश्वास के साथ ससार म गरजती फिरेगी।"[1] इस प्रकार की वर्गगत चेतना व आत्मविश्वास ही धर्म सम्बन्धी अन्धविश्वासो का पतन करती है तथा धार्मिक शोषण से मुक्ति प्रदान करती है—"मानिनी भारतीय कन्या अपना अधिकार पाने के लिए सघर्ष कर सकती है, मगर हाथ पसार कर भीख मागने नही जा सकती।"[2] इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि ज्यो-ज्यो समाज के वर्गों म जागृति व आत्मविश्वास की भावना का उदय हो रहा है, धार्मिक आस्थाएँ ध्वस्त होती जा रही हैं।

नैतिकता का सम्बन्ध भी धर्म तथा धार्मिक मान्यताओ से जुडा रहता है। बदलती धारणाओं के आधार पर 'उखडे हुए लोग' उपन्यास म लेखक अपने विचार एक पात्र के माध्यम से व्यक्त करता है—"वह भगवान, वह धर्म, वह नैतिकता—सब कुछ इतने मर चुके हैं कि यदि हम उनसे और भी चिपटे रहते तो निश्चित रूप से हम मर जाते।"[3] 'कल के पाप और पुण्य की परिभाषाएँ ओछी और छिछली हो गयी हैं और आने वाले कल पर भी हम विश्वास नही।'[4] पूर्व धारणा के आधार पर ईमानदारी, सत्य, न्याय आदि नैतिकता के अग हैं तथा चोरी करना, असत्य बोलना तथा व्यभिचार करना आदि अनैतिक कार्य माने गए हैं। ये अनैतिक कार्य सदा से ही नैतिक पतन के प्रेरक तत्त्व रहे हैं। वर्गगत चिन्तन, सघर्ष एव वैज्ञानिक चिन्तन की नूतन दिशाओ ने नैतिक दृष्टि मे अन्तर ला दिया है। जीवन-दर्शन के बदलाव के साथ-साथ परिवर्तित युग म परम्परागत नैतिक मूल्यो का ह्रास हुआ है। नवीन नैतिक धारणाएं परम्परागत मूल्यो से सघर्ष कर रही हैं। प्रारम्भिक अवस्था मे पाप-पुण्य के विश्लेषण मे कभी धर्म निर्णायक था, परन्तु आज नैतिकता-सम्बन्धी परम्परागत मूल्यो की आधारभूमि खिसकने लगी है। अब नैतिकता कोरा दिखावा मात्र रह गयी है। वर्ग चेतना के फलस्वरूप 'सघर्ष' की उत्प्रेरक नैतिकता की धारणाएँ तथा मान्यताएं भी नवीन रूप ग्रहण कर रही हैं। 'राग दरबारी' उपन्यास म "नैतिकता समझ लो वह चौकी है जो एक कोने मे पडी है। सभा-सोसाइटी के वक्त पर इस पर चादर बिछा दी जाती

---

१ अनामंत्रित मेहमान—आनंदशंकर माधवन, पृ० ३७
२ वही, पृ० २११
३ उखडे हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० २०६
४ वही, पृ० १२६

है। तब बडी बढिया दीखती है। इस पर चढकर लेक्चर फटकार दिया जाता है। यह उसी के लिए है।"[१] 'मरुप्रदीप' मे धार्मिक तथा नैतिक पुरातन तथा आधुनिक मान्यताओ मे वर्ग-चेतना से प्रेरित परिस्थिति बताई गई है। विधवा शान्ति व चाची के विचार-सघर्ष की स्थिति बनाये हुए हैं। "'पीडित देश-वासियो की सेवा का व्रत लेना पाप नही ।' चाची ने कहा—'पाप तो नही पर समाज ने जो नियम-कायदे बनाये हैं, उनका उल्लघन करने से कैसे काम चलेगा। जवान मर्दों के साथ रहेगी—उठे बैठेगी तो चित्त डिगते क्या देर लगेगी।'"[२] किन्तु आज मान्यताएँ बदल गयी है। इसी उपन्यास मे कमलकान्त के अनुसार "जिन्दगी खण्डित होकर रह जाने के लिए नही, उससे बडी और मनोज्ञ होती है वह। उसकी अगाधता को यो कम न करो। जीवन की सज्ञा पाने दो।"[३]

'रीछ' उपन्यास मे बताया गया है कि "नैतिकता तथा अनैतिकता किसी समाज की भौतिक आवश्यकताओ पर आधारित होती है।"[४] 'बदलता युग' उपन्यास म धार्मिक नीति का उल्लेख किया गया है, जो आज की परिस्थिति मे ह्रासोन्मुख दिखाई देती है। "मैं धर्म-नीति का आचार्य हूँ। सभी नीतियो का जन्म धर्म-नीति से हुआ है। धर्म की सर्वदा विजय होती है। धर्म-नीति के सम्मुख राजनीति नही ठहर सकती। किन्तु देख रहा हूँ कि देश और काल की परिस्थिति के अनुसार उसका भी पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है।"[५] 'दादा-कामरेड' उपन्यास मे "मौजूदा परिस्थितियो और प्राचीन नैतिक और आचार-सम्बन्धी धारणाओ मे कदम-कदम पर विरोध खटकता है, इससे इन्कार नही किया जा सकता। प्रश्न यह है कि अनुभव होने वाले विरोधो और उनके कारणो की उपेक्षा कर इस प्रवृत्ति का दमन कर दिया जाय या पुरातन धारणा को सुरक्षित रखने के लिए, परिस्थितियो म आ गये वैषम्यो को मिटाकर, हम फिर से प्राचीन युग म लौट जायँ, या फिर समाज के आचार और नैतिक धारणा मे नई परिस्थितियो के अनुकूल समन्वय करें?"[६] "समाज मे मौजूद सकट और अन्तर्द्वन्द्व के लिए 'उपचार' के नुस्खे का दावा नही कर सकते वे तो 'निदान' का प्रयत्न मात्र है। उद्देश्य है—मनुष्य की मौजूदा परिस्थिति मे और क्रमागत आचार और नैतिक धारणा म वैषम्य और विरोध की ओर

---

१ राग दरबारी—श्रीलाल शुक्ल, पृ० १२६
२ मरु प्रदीप—रामेश्वर शुक्ल 'अचल', पृ० १७३
३ वही पृ० १६५
४ रीछ—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ५०६
५ बदलता युग—यज्ञदत्त शर्मा, पृ० ७
६ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० ६

सकेत करना । आचार और नैतिकता का यह प्रयोजन यदि मनुष्य को बेहतर व्यवस्था और विकास की ओर ले जाना है तो मानना पड़ेगा कि उद्देश्य हमारी वर्तमान नैतिक और आचार सम्बन्धी धारणा से पूरा नहीं हो रहा । मनुष्य की यह प्रवृत्ति उसे वासना के अगारो पर सेक सेककर झुलसाये है ।"[1] इस प्रकार आचार, नैतिकता व धर्म सम्बधी विभिन्न परिवर्तित मान्यताओं व पुरातन मान्यताओ म सामजस्य आज के समाज मे परिलक्षित नही होता । मार्क्स की विचारधारा के अनुसार विकसित सामाजिक व्यवस्था के अभाव मे यह विचार वर्ग-वैषम्य का कारण सिद्ध होते हैं ।

सामाजिक कुरीतियाँ

भारतीय समाज म धर्म के नाम पर अनेक बुराइयो को सरक्षण प्राप्त होता रहा । ' इनमे से कुछ कुरीतियाँ अत्यधिक भयकर थी जैसे सती प्रथा, मानव-बलि, बालहत्या, देवदासी प्रथा, अस्पृश्यता और वेश्यावृत्ति आदि जबकि कुछ कुरीतियाँ अपेक्षाकृत कुछ कम गम्भीर थी जैसे पर्दा प्रथा, बहु-विवाह, विधवा-विवाह, कुलीन विवाह पर होने वाले नियत्रण, मृत्यु के उपरान्त होने वाले भोज तथा सस्कार-सम्बन्धी कुरीतियाँ आदि ।"[2] पश्चिमी सस्कृति के सम्पर्क से भारतीयो को आत्मावलोकन करने तथा सामाजिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर सघर्ष करने की प्रेरणा उत्पन्न हुई । सामाजिक कुरीतियाँ समाज मे सदैव से सघर्ष का कारण बनी रही है । आर्थिक अभाव तथा रूढिवादी परम्परा के कारण समाज का एक वर्ग सदैव से पिसता चला आ रहा है । उसी वर्ग म विद्रोह का भयकर रूप प्रकट हुआ और वह अपनी प्रतिष्ठा के लिए सघर्षरत एवम् प्रयत्नशील हुआ है ।

सयुक्त परिवार प्रथा की प्रतिक्रियाएँ

नवीन सामाजिक परिस्थितियो के कारण आज सयुक्त परिवार का विखण्डन होता जा रहा है । "सयुक्त परिवार सयुक्त सगठन के आधार पर निकट के नाते रिश्तेदारो की एक सहयोगी व्यवस्था है, जिसमे सम्मिलित सम्पत्ति, सम्मिलित वास, अधिकारो तथा कर्त्तव्यो का समावेश होता है ।"[3] 'टूटा व्यक्तित्व' उपन्यास म सयुक्त परिवार का विवेचन हुआ है । इसम नयी पीढ़ी को नही चाहते हुए भी समर्थन करना पडता है तथा यही पारिवारिक सघर्ष का कारण बनता है । वसू नयी पीढ़ी की लडकी है, वह अपना स्वतत्र

1 दादा कामरेड—यशपाल, पृ० ७
2 भारतीय सामाजिक संस्थाएँ—जी० के० अग्रवाल, पृ० ३७४ ३७५
3 भारतीय जनता तथा सस्थाएँ—रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, पृ० २५८

अस्तित्व चाहती है किन्तु उसको संयुक्त परिवार के कारण यह अवसर प्राप्त नहीं होता। 'स्वाभाविकत ही इस घर मे किसी अकेले व्यक्ति का कोई अस्तित्व ही नहीं है लेकिन तुमने अपना अलग अस्तित्व बना रखा था। सभी तुम्हें इस तरह देखते थे कि यह बहू विचित्र है। बच्चे भी निधडक पास आ हमें घेरकर खडे हो गए और उत्सुकता से ताकने लगे।"[1] इसी प्रकार उसे पार्टी आदि देने से रोका जाता है। "तुम बहू बनकर आयी हो, होटल खोलने नहीं। पार्टियाँ दी जा सकती है, दी भी जानी चाहिए, लेकिन हर बात की हद होती है।"[2] इस प्रकार स्वतन्त्र व्यक्तित्व की चाह मे अनेक संयुक्त परिवार टूट जाते है। वस्तुत नयी व पुरानी पीढी म विचार-विसगतिपूर्ण संघर्ष है। यह संघर्ष दोनो पीढियो के वर्गों म चेतना का प्रतीक है। आधुनिक पीढी को यह प्रथा खोखली तथा निराधार प्रतीत होती है। अमृतराय के 'बीज' उपन्यास का सत्य अपनी माँ की परम्परागत एवम् रूढिवादी विचारधारा स तग आकर अपना अलग घोंसला बनाना चाहता है। वह अपनी डायरी म लिखता है, "दुनिया खामखा संयुक्त परिवार की लाश ढो रही है। संयुक्त परिवार मर गया। इन हालतो म संयुक्त परिवार चल नहीं सकता। कितना संघर्ष मैंने इसके लिए नहीं किया, मगर कोई नतीजा नहीं निकला। सिवाय बदमगजी और मनमुटाव के और भी जिन्दगी, ऐसी कि एक दूसरे की शक्ल से नफरत हो जाय। बस यही नतीजा निकला। मगर अब बहुत काफी चख चुका इसके मजे, अब तो अलग ही अपना घोसला बनाऊँगा। जहाँ सिर्फ तीन लोग होगे। उषा, मैं और हमारा मुन्ना।'[3] यशपाल जी न देशद्रोही उपन्यास म संयुक्त परिवार के खोखले रूप को चित्रित किया है। आर्थिक विषमता को लेकर जहाँ स्वार्थ टकराते है, वहाँ संयुक्त परिवार की दृढ दीवार भी चकनाचूर हो जाती है—इसी प्रकार उपन्यास के "डा० खन्ना को वजीरिस्तान के लुटेरे कैद कर लेते है। वह अपने बडे भाई ईश्वरदास को तावान भरने हेतु रुपया के लिए लिखता है। ईश्वरदास केवल इसी आधार पर रुपये नहीं भेजता कि यदि वही छोटा भाई आ जाएगा तो पैतृक सम्पत्ति का आधा अधिकारी हो जाएगा।'[4] इस प्रकार लेखक न भ्रातृ प्रेम का खोखलापन दिखाकर संयुक्त परिवार का मखौल उडाया है। 'मनुष्य के रूप म यशपाल न संयुक्त परिवार के जर्जर रूप का वर्णन किया है। "एक विशेष अवसर पर परिवार की सभी बहुओ और नौकरानी सोमा को एक-सी साडियाँ दी जाती है। इस

---

१ टूटा व्यक्तित्व—मनहर चौहान, पृ० ४६
२ वही, पृ० ४५
३ बीज—अमृतराय, पृ० २१९
४ देशद्रोही—यशपाल, पृ० ४२

घटना से बडी बहू के अह को चोट पहुँचती है कि उसे जेठानी तथा कमाऊ पति की पत्नी होने का विशेष सम्मान क्यो नही दिया गया ?"[१] इस प्रकार हम देखते है कि वर्गगत चेतना के आधार पर इस अर्थवादी युग मे सयुक्त परिवारो का निरन्तर विखण्डन हो रहा है।

विवाह-सम्बन्धी कुरीतियाँ

"आधुनिक काल मे विवाह सस्था, दाम्पत्य जीवन, सयुक्त परिवार प्रथा एवम् अन्य जीवन-प्रणालियो के क्षेत्र म क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं और दिनो दिन अपेक्षाकृत अधिकाधिक वेग से होते जा रहे है। विशेषकर दाम्पत्य, नारी और विवाह की स्थिति मे बहुत बडा अन्दर आया है।"[२] लावी का मत है कि "विवाह उन स्पष्ट स्वीकृत सगठनो को व्यक्त करता है, जो इन्द्रिय-सम्बन्धी सतोष के अतिरिक्त भी स्थिर रहता है तथा पारिवारिक जीवन को आधार प्रदान करता है।"[3] 'अनामन्त्रित मेहमान' का दत्तात्रेय का विवाह सम्बन्ध म मत है "मैं विवाह करूँगा तो अवश्य ही किसी ऐसी लडकी से जो अछूत हो, कुरूप हो, गरीब हो, मूर्ख हो। शादी का तात्पर्य होना चाहिए रसातल से किसी प्राणी को पकडकर स्वर्गलोक मे पहुँचा देना। घोडे जैसी शादी मैं नहीं चाहता।"[४] निश्चय ही इस प्रकार विचारो मे निर्धन तथा निम्न वर्ग का समर्थन दिखाई देता है, जो आज के युग मे अनिवार्य है। इस दृष्टिकोण का समर्थन 'टूटा व्यक्तित्व' उपन्यास मे नगर परिमोहन मे किया है। "विवाह मे बेकार खर्च करन का मैं सख्त विरोधी हूँ। विवाह मे जितना कम खर्च हो, मैं उतना ही अच्छा समझता हूँ। चीन-जापान मे गरीब कुटुम्बो के सघ होते है। सघ हर साल सामूहिक शादियाँ करवाते हैं। एक पादरी एक साथ कई कुटुम्बो को निपटा देता है। एक शादी मे मुश्किल से २० रुपये खर्च होते है।"[५] "आर्थिक समानता के युग मे सम्भव है कि स्त्री-पुरुष अपनी वास्तविक स्वतत्र इच्छाओ को महत्त्व देकर ही विवाह-बन्धन मे बँधें।"[६] 'उखडे हुए लोग' उपन्यास मे लेखक ने विवाह-सम्बन्धी स्वतत्र विचार प्रकट किये हैं। इसी सन्दर्भ मे 'मानव दानव' उपन्यास मे मन्मथनाथ गुप्त के विचार द्रष्टव्य हैं—"केवल फेरो वाली शादी ही शादी नही है। आज घर-घर मे फेरे वाली

---

१ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० १६५-६६
२ हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण—महेन्द्रकुमार जैन, पृ० ६६-७०
3. Cyclopaedia of Social Sciences—Vol X, P. 146 (Marriage)
४. अनामन्त्रित मेहमान—आनंदशकर माधवन, पृ० ८४
५. टूटा व्यक्तित्व—मनहर चौहान, पृ० ६६
६ उखडे हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० १४

शादी के कारण हजारों शिकार निरन्तर कराह रहे हैं और खून के आंसू रो रहे हैं।"[1] इस प्रकार के वैवाहिक बन्धनों के बल पर ही पुरुष नारी पर एकाधिकार स्थापित करता है तथा नारी एकांगी आदर्श को निभाती चलती है। यह कुचक्र अनेक कई कुरीतियों को जन्म देता है—जैसे वेश्यावृत्ति, तलाक, पर्दा प्रथा, विधवा प्रथा तथा दहेज प्रथा आदि।

वेश्यावृत्ति

" 'वेश्यावृत्ति' दो विषम लिंगियों का अवैध यौन सम्बन्ध है। यह यौन सम्बन्ध अवैध इसलिए होता है कि इसमें दो विषम लिंगी विवाह की संस्था को नहीं मानते हैं। धन के प्रलोभन के कारण स्त्री जब किसी पुरुष से यौन सम्बन्ध स्थापित करती है तो उसकी यह क्रिया वेश्यावृत्ति कहलाती है।"[2] मार्क्स पैसे के बल पर नारी के इस शोषण को नहीं स्वीकारता। पुरुष अपनी स्वेच्छाचारिता के कारण घर की पत्नी को 'घर की मुर्गी दाल बराबर' समझकर वेश्यागमन करते हैं। 'बीज' उपन्यास में इस प्रकार की स्थितियों का उल्लेख हुआ है—"ब्याहता कहीं किसी कोठरी में पड़ी सिसकती रहती है और मर्द का बच्चा किसी रुपये, दो रुपये, चार रुपये, दस रुपये, पचास रुपये, पांच सौ रुपये वाली रंडी वेश्या को लिए मौज उड़ाता रहता है।"[3] हमारे समाज की यह धारणा है—"जिसमें पुरुष देवता स्त्री दासी, पुरुष राजा और स्त्री बांदी, पुरुष हीरा और स्त्री को धूल मानी जाती है।"[4] सामाजिक उच्च-नीच की धारणाओं ने तथा आर्थिक विवशताओं ने स्त्री को वेश्यावृत्ति करने पर मजबूर किया है। 'मशाल' की बेला भी इसी प्रकार की विवशता के कारण वेश्या बनी है। *"व्याकुल आत्मा, दुख, पीड़ा, प्रतारणा, अत्याचार, हिंसा और बलात्कार की ठोकरें* खाती, भेड़िया से भयंकर जल्लादों से अपना मांस नुचवाती, चीखती, तड़पती, कराहती रहती और बेला की मुंदी आंखों के सामने एक एक घटना अपना अन्धकारपूर्ण हिंसक, भयंकर जबड़े खोले आ खड़ी होती।"[5] वेश्यागमन में आर्थिक विवशता के साथ साथ अन्य कई कारण भी हैं, जैसे—पुरुष की यौन अनुभव की विचित्रता की इच्छा, स्त्री की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति, प्रेमपूर्ण यौनतुष्टि, पति का नपुंसक होना, निम्न कोटि का साहित्य, मादक द्रव्य आदि। इस वेश्यावृत्ति उन्मूलन के अनेक अधिनियम बने हैं। क्योंकि इस वृत्ति ने पति-पत्नियों

---

१ मानव-दानव—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० ५५
२ भारतीय सामाजिक समस्याएँ—द्वारिकाप्रसाद गोयल, पृ० ४४४
३ बीज—अमृतराय, पृ० ४
४ वही, पृ० २६८-२६६
५ मशाल—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ६६

के सम्बन्धों मे तनाव उत्पन्न करके तलाक नामक कुवृत्ति को जन्म दिया है। तलाक से जुडा हुआ पक्ष स्त्री का स्वातन्त्र्यप्रिय जीवन तथा स्वच्छन्द प्रेम भी है। 'सघर्ष' उपन्यास मे स्नेहलता के विचार हैं—"पति तो पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक है, प्रेम के लिए नही।"[1] इसी प्रकार 'दादा कामरेड' की शैलबाला "विवाह की अपेक्षा स्त्री के एक साथ कई साथी रखने मे विश्वास करती है।"[2] मार्क्सवादी चिन्तन के अनुसार "पूँजीवादी व्यवस्था मे पति-पत्नी के सबध भी स्वार्थ पर ही आश्रित होते है। सच्चे प्रेम-सम्बन्ध तो केवल समाजवादी व्यवस्था मे स्थापित हो सकते है।"[3]

दाम्पत्य-सम्बन्धो की बदलती भूमिका

"पति-पत्नी के असतुलित यौन सम्बन्धो के कारण दाम्पत्य-जीवन केवल कटु ही नही बनता वरन् विघटन की स्थिति मे आ पहुचना है।"[4] "'उखडे हुए लोग' उपन्यास के साथी दम्पति शरद और जया सम्मिलित जीवन व्यतीत करते है। किन्तु पारस्परिक वैमनस्य के कारण उनका दाम्पत्य जीवन भी कभी-कभी कटु बन जाता है।"[5] सफल दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी मे पारस्परिक निष्ठा आवश्यक है। विश्वासघात होने से दोनो का जीवन अभिशाप बन जाता है। 'सघर्ष' के राजा सुलोचनसिह भी अपनी पत्नी के साथ एकनिष्ठ नही रह पाते हैं। वे वेश्यागमन के कारण अपनी पत्नी ज्योत्स्ना की उपेक्षा करते हैं। "ये महल नही सोने का पिंजरा है, कैदखाना है, लानत है इस रानी पद पर, लानत है इस वैभव पर। फूक दो इस शृगार सामग्री को, इनमे आग लगा दो।"[6] 'उखडे हुए लोग' उपन्यास की मायादेवी अपने पति के प्रति निष्ठावान नही रहती है। वह लाखो की सम्पत्ति वाले व्यक्ति से विवाह करती है, किन्तु पति के प्रति निष्ठा भग करती हुई वह एक अन्य व्यक्ति देशबन्धु जी के प्रेम मे पागल हो जाती है।"[7] असफल दाम्पत्य जीवन ने विवाह को एक निरर्थक बन्धन प्रमाणित किया है। 'उखडे हुए लोग' उपन्यास में प्रो० कपिल का दाम्पत्य जीवन आर्थिक विपमता एव कुठाजनित हीन भावनाओ के कारण सुखी नही है। दोनो परस्पर कलह करते हैं, जिसके कारण परिवार मे सर्वत्र नारकीय जीवन-

---

१ सघर्ष—कौशिक, पृ० १४६
२ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० १
३ हिंदी उपन्यास में नारी चित्रण—बिंदु अग्रवाल, पृ० २४०
४. हिंदी उपन्यासो मे पारिवारिक चित्रण—महेन्द्रकुमार जैन, पृ० १२०
५ उखडे हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० ३२४
६ सघर्ष—कौशिक, पृ० १०७
७ उखडे हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० १६४

त्य दिखाई देते हैं।"[१] 'बीज' में उपन्यासकार सत्य और उषा के माध्यम से हता है—"पति-पत्नी एक-दूसरे से ऊबते हैं। करोड़ों पति-पत्नी एक-दूसरे से ऊबे हुए, एक ठंडी ऊब की रस्सी से बंधे हुए जीवन बसर करते हैं, यह एक सच्चाई है।"[२] 'मनुष्य के रूप' में बरकत का विवाह अभिभावकों के निर्णय से हुआ। "एक-दूसरे को न समझ पाने के कारण वे मिलन की प्रथम रात्रि में ही लड़ पड़ते हैं।"[३] वस्तुतः पति पत्नी के असंतुलित यौन सम्बन्धों के कारण दाम्पत्य जीवन केवल कटु ही नहीं बनता वरन् विघटन की स्थिति में पहुंच जाता है। 'मनुष्य के रूप' की मनोरमा ने यौवन की पूर्ण सुरक्षित शक्ति को अपने पति सुतलीवाला को समर्पित करना चाहा किन्तु पति की शारीरिक शिथिलता ने उसके मन में ग्लानि उत्पन्न कर दी। "कवार जीवन में कौन-सा अभाव था जो अब पूरा हो रहा है? दूसरी मर्दानियां विवाह के बाद कैसी हरी-भरी गुदगुदाई-सी जान पड़ती हैं। जैसे कोई रहस्य उनके होंठों पर आकर फूट जाना चाहता हो, परन्तु वह केवल प्रवंचना की ग्लानि अनुभव कर रही थी।"[४] इस स्थिति के परिणामस्वरूप तलाक हो जाता है।

अनमेल विवाह तथा वृद्ध विवाह

अनमेल विवाह तथा वृद्ध-विवाह दाम्पत्य-जीवन के विघटन का महत्त्वपूर्ण कारण बने हैं। 'बीज' उपन्यास में 'राजेश्वरी भी अभिभावकों द्वारा आयोजित अनमेल विवाह के कारण पति से अलग रहकर एकाकी जीवन व्यतीत करती है।"[५] कई बार लड़की पैसे की कमी के कारण वृद्ध के गले मढ़ दी जाती है तथा उसका पारिवारिक जीवन कुठित हो जाता है। वस्तुतः वृद्ध-विवाह वेश्यावृत्ति, रखैल प्रथा, प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि अनेक कुरीतियों को जन्म देता है। यहीं संघर्ष की चेतना का प्रादुर्भाव होता है।

तलाक का प्रावधान

"दाम्पत्य-जीवन में तनाव बढ़ जाने के कारण यह सिद्ध हो जाय कि पति-पत्नी साथ साथ जीवन व्यतीत नहीं कर सकते तो एक-दूसरे से मुक्ति प्राप्त करने के लिए विवाह-विच्छेद की व्यवस्था है। प्राचीन काल में भी विवाह-विच्छेद का एक निश्चित विधान था, जिसकी हिन्दू धर्मशास्त्र में एक निश्चित पूर्ण व्यवस्था

---

१ उखड़े हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० २१८-२१९
२ बीज—अमृतराय, पृ० ३२२
३ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० २३०
४ वही, पृ० १९७
५ बीज—अमृतराय, पृ० १०

है।"[1] 'मनुष्य के रूप' मे "मनोरमा अपने नपुसक पति सुतलीवाला से तलाक द्वारा छुटकारा प्राप्त करती है।"[2] यशपाल जी असतुलित वैवाहिक सम्बन्धो की मुक्ति विवाह-विच्छेद मे ही मानते है। उनके प्राय सभी उपन्यासो के पात्र इस मुक्ति के प्रति सजग है। अधिकतर तलाक सन्देहवृत्ति के कारण भी हो जाते है। यशोदा पर जब सन्देह हो जाता है तो वह अपनी आत्म-प्रतिष्ठा बनाये रखने हेतु 'दादा कामरेड' मे पति से कहती है—"यदि आप समझते है कि स्त्रिया इस विश्वास के योग्य नही कि घर से बाहर निकल सकें तो घर मे ही उनका क्या विश्वास है।"[3] "हिन्दू समाज मे स्त्रियो को हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है। पत्नी पति के दुराचारी होने पर भी उसे छोड नही सकती थी। इसी प्रकार पति भी पत्नी के व्यभिचारिणी बनने पर भी विवाह को एक धर्म समझ कर सम्बन्ध को बनाये रखता था।"[4] पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव, समानता के अधिकार की माग, पारिवारिक कलह आदि ने इस कुरीति का जन्म दिया। विवाह-विच्छेद को न्यायिक पृथक्करण का आधार माना गया है। नारी सदैव से शोषित वर्ग का प्रतीक रही है। उसका शोषण निरन्तर होता रहा है। प्रेमचदोत्तर काल मे यह वर्ग आर्थिक और शैक्षिक विकास के कारण वर्ग-चेतना से युक्त होकर शोषण से मुक्ति पाने के लिए निरन्तर सघर्षरत है।

कुरीतियो से त्राण : अन्तर्जातीय विवाह

भारतीय समाज मे अति प्राचीनकाल से ही अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित थे। राजाओ के रनिवास अनेक जातियो की रानियो से भरे रहते थे। विवाह-सबधी अनेक कुरीतियो के शोषण से मुक्ति पाने का मार्ग अन्तर्जातीय विवाह को माना गया है। 'मनुष्य के रूप' मे मनोरमा अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह करना पसन्द नही करती। "मनोरमा अपने अभिभावको की इच्छा के विरुद्ध अन्तर्जातीय विवाह करती है।"[5] 'राग दरबारी' उपन्यास मे अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया गया है, "जाति-पाति के कारण ही हमारे देश की दुर्दशा हुई है। इसीलिए मैं अपने पुत्रो का अन्तर्जातीय विवाह करना चाहता हूँ।"[6] लेखक जाति-पाति के भेद-भाव को मिटाना चाहता है। 'मनाव-दानव' मे "रामलाल का विवाह एक भगिनि हेमा से सम्पन्न कराया है।"[7] 'उखडे हुए लोग' उपन्यास

१ हिन्दी उपन्यासों मे पारिवारिक चित्रण—महेन्द्रकुमार जैन, पृ० १६१
२ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० २६५
३ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० १२६
४ भारतीय सामाजिक सस्थाएँ—डा० के० के० मिश्र, पृ० १५२
५ मनुष्य के रूप—यशपाल, पृ० २६५
६ राग दरबारी—श्रीलाल शुक्ल, पृ० ३७८
७ मानव दानव—मन्मथनाथ गुप्त, पृ० ८१

मे "जया और शरद वैवाहिक विधियों का विरोध करते हैं। वे साथ-साथ रहकर जीवन व्यतीत करने का तय करके दम्पति रूप मे रहने लगते हैं।"[1] हिन्दी उपन्यासकारो ने अन्तर्जातीय विवाह के प्रति सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। "आधुनिक युग मे पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण अन्तर्जातीय विवाह अधिक प्रचलित हो रहे है। किन्तु सर्वश्री यशपाल, राजेन्द्र यादव, नागर आदि ने अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह की असफलता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।"[2] अन्तर्जातीय विवाह सर्वहारा वर्ग का समर्थक तथा आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाने का साधन है। अत समाज मे प्रचलित कुसस्कारो, कुपरम्पराओ तथा आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने व परिवर्तन लाने के लिए युवा पीढी ने इसे अपनाया है।

यौन विकृतियाँ

मनोविश्लेषणवादियो का मत है कि मनुष्य के जीवन मे यौन आवश्यकता अत्यन्त गहन और शाश्वत है। जिस प्रकार व्यक्ति भूखा नही रह सकता, उसी प्रकार वह यौन आवश्यकता की पूर्ति किए बिना नही रह सकता। भूख की तृप्ति की भाँति शारीरिक सम्बन्ध-निर्वाह मे यौनतृप्ति अपेक्षित है। वस्तुत यौन सम्बन्धो तथा स्थितियो से उत्पन्न मानसिकता ही यौन चेतना है। विज्ञान प्रदत्त जन-सचारी साधन, रेडियो, टेलीविजन, सिनमा आदि यौन चेतना को उद्दीप्त कर रहे हैं। इन सभी साधनो के मूल म कलात्मक प्रेरणाएँ सन्निहित है। फैशन की दौड-धूप, शहरी सभ्यता क मनमण एव जीवन-मूल्या क टूटन से यौन-सम्बन्धी नैतिकता के प्रतिमान उभर रह है। आधुनिक युग म ग्राम व शहर म अपरिपक्व अवस्था मे ही यौन अभिलाषा विकसित होती दिखाई दती है। छोटी आयु मे यौन चेतना अपन बृहत्तर परिवेश म एक राष्ट्रीय समस्या से जुडी हुई है। इस चेतना का शिक्षालय घर ही बनता है। सयुक्त परिवार म बच्चे जब बडे-बूढो की बातें सुनते तथा क्रियाकलापो का अवलोकन करते हैं तो उनमे यौन चेतना बचपन से ही जाग्रत् हो जाती है। 'स्वाभाविक यौन वृत्ति तथा यौन व्यापार के स्थान पर जब अत्यन्त अस्वाभाविक रूप से मनुष्य यौन तृप्ति पा जाए, तो वही 'यौन विकृति' है। ये विकृतियाँ एक ओर तो दमन, वर्जना और अवरोध का परिणाम है तथा दूसरी ओर स्वाभाविक विकास विछिन्न या वियोजित अवस्था म है।"[3] "यौन विकृति के मुख्यत दो प्रकार हैं—एक तो

---

१ उखडे हुए लोग—राजेन्द्र यादव, पृ० १२४

२ हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण—महेन्द्रकुमार जैन, पृ० १८६

३ हिंदी साहित्य कोश—डा० धीरेन्द्र वर्मा (भाग १), पृ० ६६८

कर्मेन्द्रियो का अन्यथा प्रयोग तथा दूसरा कामोत्तेजना के विषय के साथ अस्वाभाविक क्रिया करके सतुष्टि प्राप्त करना।"[1] मानवीय जीवन-सदर्भ मे इस खुले रगस्थल की यौनवृत्ति पर प्रचीन परम्पराओ और सामाजिक मूल्यो के कपाट लगे है। "जहाँ तक यौन विकृतियो और विसगतियो का प्रश्न है, वह कोई अकेली घटना नही, अपितु वह समन्वित उत्पादन है। जिसमे विभिन्न सामाजिक कार्य-कारण निहित होते हैं।"[2] कही सामाजिक प्रथाएँ इन विसगतियो को उभारती हैं तो कही इनकी सहायक बनती हैं।

मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतन्त्रता देता है परन्तु 'कामचेतना' पुरुष वर्ग की कमजोरी है, जिसकी पूर्ति के लिए वह तरह-तरह के कुचक्र और अत्याचारो म निमग्न रहता है। "स्त्री के पीछे दौडना निस्सन्देह मर्द की एक कामनात्मक कमजोरी है। सिर्फ कामवासना ही है जी। काम-सम्बन्धी कार्य के लिए अनुपयुक्त से क्या नही प्यार होता है? क्यो बूढी अच्छी नही लगती? सबका गोरा-ताजा मास चाहिए। सीधी और सत्य बात यह है कि वह प्यार नही, पूरी पाशविक कामुकता है, अनियन्त्रणीय काम-चेतना मात्र है।[3] 'जो मनुष्य जितना ही निम्न स्तर का होता है, वह उतना ही अधिक काम-चेतन होता है।'[4] "पुरुष स्वभावत गुण्डे होते हैं। उनम बुनियादी तौर पर एक अदम्य पाशविक कामुकता ही अधिक काम करती होगी। इसीलिए सम्भव है कि लडकियो के चेहरे को सदा कामुक दृष्टि से घूरते फिरते हो।"[4] समाज म परिवर्तन हुए हैं "किन्तु शोषित मानव उसी प्रकार सम्भवत उससे भी अधिक हीनतर जीवन बिता रहा है।'[5] 'आखरी दाँव' उपन्यास म रतनू चमेली को सेठ हीरालाल की वासना की वस्तु बनाने म नही हिचकता, तब चमेली का नारीत्व विद्रोह कर उठता है। "हूँ, तुम मुझसे यह काम करवाने के लिए मुझे यहाँ लाये हो। नरक के कीडे! भगवान ने मेरे पापो का अच्छा दण्ड दिया, लेकिन यह सब कुछ नही होगा—इतना समझ लो।"[6] धन के कारण चमेली बिकती है—इसे रामेश्वर स्वीकार करता है। "आज मैंने देख लिया दुनिया मे पैसा ही ताकत है। सबसे बडी ताकत है। पैसे के लिए इन्सान को शरीर तक बेचना पडता है, कम से कम मेरी चमेली को तो अपना शरीर बेचना

---

१ स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में काम-चेतना—डा० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० ११६
२ पथभ्रमित मेहमान—प्रानदशंकर माधवन, पृ० ५४५
३ वही, पृ० ५६२
४ वही, पृ० ८१२
५. आलोचना १३, पृ० २०८
६ आखरी दाँव—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २०

पडा हैं।''[१] इस प्रकार धनी-मानी लोग पैसे के बल पर यौन तृप्ति करते हैं।

''यौन वृत्ति के सम्बन्ध मे भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोणों मे पर्याप्त अन्तर है। इसका कारण हमारी आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक परिस्थिति या मानसिक स्थिति हो सकती है।''[२] हिन्दी उपन्यास सरचना के सन्दर्भ मे विचार करें तो ''यशपाल के पात्र जन-जीवन के प्रतिनिधि नही। वे उस वर्ग के लोग हैं, जिनके लिए सेक्स व आत्मपीडा की समस्याएँ प्रधान हैं।''[३] इसके विपरीत यशपाल जी का कथन है—''आज का पाठक और आलोचक वर्ग यौनाक्रान्त है, क्योकि वह मेरे साहित्य मे यौन वृत्तियो को ही मुख्य रूप देता है। मैं जीवन का आधार तो भौतिक मानता हूँ तथा जीवन की मुख्य प्रवृत्ति को आत्मरक्षा। मैंने मुख्यत यौन विकृति के आर्थिक कारणों का परिणाम दिखाने की चेष्टा की है।''[४] 'देश-द्रोही' उपन्यास मे नूरन अपनी कामवासना की प्रबलता से उन्मत्त हो—''एक दिन खन्ना की बाँह थामकर कहती है 'अब ?' और उसे बाँहो मे ले गाल पर दाँत मार दिया। नूरन के गले की भारी हमेल डाक्टर की हसली मे चुभ जाती है। डाक्टर का चेहरा पुराने कागज की तरह पीला पड जाता है और वह पसीना-पसीना हो गया। नूरन डाक्टर को देख घृणा मे थूक देती है'' कहती है—'नामर्द, बोदा'।''[५] स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धो तथा नारी के प्रति पुरुष के विचार व यौन चेतना का वर्णन विभिन्न उपन्यासो मे मिलता हैं। 'महाकाल' मे केशव बाबू की यौनाक्रात अवस्था का चित्रण किया गया है। ''केशव बाबू के खून मे फिर गर्मी चढने लगी। अपनी परवशता पर वह मन मसोस-मसोसकर रह जाते थे। *भूखे शरीर और भूखी वासना के घात-प्रतिघात से उनका मन जर्जर हुआ जा* रहा था। सिर मे चक्कर आने लगा। तन थकने लगा। सास भारी चलने लगी।''[६] पुरुष की कामोत्तेजना से आक्रान्त अवस्था का बडी बहू जिक्र करती है—' *तन की मशीन जिन्दा रखने वाली अन्तिम सास तक वह अपने स्वामी की* मिल्कियत है। पारसाल एक सौ तीन डिगरी के भरे बुखार मे भी न छोडा था—मरने से बची थी उस बार।''[७] य वर्णन यौन विकृति के परिचायक है।

'विषाद मठ' मे ठेकेदार अधिक लखपति होने के लालच मे स्त्रिया को विधवा-लयों से सस्ते दामो मे खरीद लेता है। उन स्त्रियों से व्यभिचार करवाता है।

---

१ आखरी दाँव—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १६८-१६६
२ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक, ३६
३ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ—डा० रामविलास शर्मा, पृ० ११६
४ हिंदी के प्रतिनिधि कथाकार—डा० नलिन विलोचन शर्मा, पृ० २०
५ देशद्रोही—यशपाल, पृ० ४७
६ महाकाल—अमृतलाल नागर, पृ० ४६
७ वही, पृ० ५३

"दिन मे वे लडकियां अन्दर घुटा करती और रात मे वे निर्लज्ज रूप से बिका करती। उन्हे दो या तीन दिन मे बीमारियां पकड लेती और वे भयानक रूप से कामुक हो जाती।"[1] नारी वर्ग पर अत्यधिक कामुक वृत्ति के फलस्वरूप हुए अत्याचार का एक उदाहरण इस प्रकार है—"वह स्त्री ऐसे पड़ी-पडी कराह रही थी जैसे राह के किनारे कुतिया प्रसव यन्त्रणा से चिल्लाया करती थी।"[2] 'हाथी के दांत' उपन्यास मे राजा परदुमन सिंह की यौन वृत्ति का उल्लेख इस प्रकार है—"अब उनके शरीर मे वह पुरानी तेज भूख न थी और जो कुछ भूख थी, उसको अब किसी तेज चरपरे खाने की तलाश थी।"[3] इस प्रकार यौनवृत्ति के कारण राजा, ठाकुर, जमीदार आदि ने स्त्रियों पर भरपूर अत्याचार किया। वर्ग-चेतना के फलस्वरूप आश्रित अथवा शोषित वर्ग इस अत्याचार के विरोध मे आवाज उठाने का प्रयत्न करता है। परन्तु आर्थिक अभाव मे यह आवाज घुटकर ही रह जाती है। "चम्पा ठाकुर साहब के संग लेटी हुई थी" नंगी, एकदम नंगी, बेशर्म, बेफिक्र"'और शराब की झाग सी हँसी दोनों के चेहरों पर थी। केलि-विभोर उनके बेसुध शरीर,[4] इसी समयावधि मे चम्पा का पति चन्द्रिका का जब आगमन होता है तो ठाकुर उसका गला दबाकर उसकी हत्या कर देते है तथा चम्पा को सदा-सदा के लिए अपनी गुलाम बना लेते है। "सुख के लिए आदमी पत्थर सा कठोर और सांप सा विषाक्त हो जाता है। यह पूंजीवादी और भ्रष्ट युग मे हमे एक ही विचार देगा—इन्सान के लिए इन्सान की कोई कीमत नहो।"[5] उच्च वर्ग या कुलीन वर्ग की यह सोसाइटी हमारे मानवीय सम्बन्धो को समाप्त कर रही है। यह सिर्फ आदान-प्रदान चाहती है।

इस प्रकार आज के समाज म यौन विकृति आर्थिक विपन्नता तथा कुंठा के परिणामस्वरूप विद्यमान है तथा उसका विकराल रूप मुह फाडे नारी को निगल जाने को तैयार खडा रहता है। खन्ना की यौन विकृति, जो परलिंगीय के प्रतीकात्मक स्पर्श से ही संतुष्टि प्राप्त करना चाहती है, उसका उल्लेख—'देशद्रोही' उपन्यास मे इस प्रकार है—"मुझे तुम्हारी गोदी मे सिर रखकर संतोष होता है। मैं समझ सकता हूँ कि तुम मुझे अपना समझती हो। मन चाहता है जैसे शशि तुम्हारी गोद म छिप सकती है वैसे ही शशि बन जाऊँ।"[6] "गजनी मे नर्गिस कस्तूरी से भीगी और मादक गंध स सुवासित अपना सिर खन्ना के हृदय पर

१ विषाद मठ—रांगेय राघव, पृ० २०१
२ वही, पृ० २०३
३ हाथी के दांत—अमृतराय, पृ० ७८
४ वही, पृ० ३८
५ एक और मुख्यमंत्री—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ३६
६ देशद्रोही—यशपाल, पृ० २०६

रखकर आत्म समर्पण कर देती है।"[1] 'धरती की आखें' उपन्यास म गोविन्द और जैनब की प्रेम प्रक्रिया यौन विकृति का ही एक रूप है—"गोविन्द जैनब के ओठो के भीतर अपनी जबान डालकर उसके मुह के अमृत को पीता रहा और दायें हाथ से उसकी पतली कमर म न जाने क्या टटोलता रहा। गोविन्द का बायाँ हाथ जैनब के घुघराले बालो म खेल रहा था, और उसके पैर जैनब के मासूम पैरो से लिपटे थ।"[2] 'राग दरबारी' म 'गयादीन की बेटी बेला को क्वारी रहकर भी वैवाहिक स्थितिया भोगनी पडती है। यही कारण था कि रात को उसे स्वय अपने-आपको समर्पित करन के लिए रुप्पन की चारपाई तक जाना पडता है। उसकी यौन मूल नैतिकता की सीमाए तोडती है।"[3] इस उपन्यास म सरपच सनीचर की ग्रामीण मल म की गई शरारतें यौन विकृति का ही प्रतिरूप है—"उसन सैकडा बुड्ढा का दायें-बायें फेंका, कई औरतो के कन्धा पर प्रेम से हाथ रखा, उनकी छातिया के आकार प्रकार का हाल-चाल लिया और यह सब ऐसी निस्सगता स किया जैस भीड स निकलन के लिए ऐसा करना धर्म म लिखा है।"[4] 'सघर्ष' उपन्यास म यौन विकृति का एक रूप इस प्रकार दर्शाया गया है कि पुरुष की अनक स्त्रियो की कामना प्रेम नही वरन् यौन कुठा मात्र है—"अनक स्त्रिया की आकाक्षा करन वाला पुरुष प्रम का नाटक ही खलता है—सच्चा प्रेम किसी से भी नही करता।'[5]

'कामुकता पूजीवादी वर्ग का पतनशील आचरण है।'[6] यौन विकृति को डाक्टरा ने सेक्स की अतृप्ति की प्रतिक्रिया भी माना है। 'नया इन्सान' उपन्यास म इसकी पुष्टि मिलती है। आइस्टिन पात्र के लिए डाक्टर का कहना है कि उसकी उन्मादावस्था का कारण यौन अतृप्ति है—'यह उसक सक्स की अतृप्ति की प्रतिक्रिया है। बेहतर यही होगा कि अच्छी होन पर विवाह कर ले।'[7] इसी उपन्यास म यौन विकृति का एक ज्वलन्त उदाहरण इस प्रकार दिया गया है—'मैंन तारा को सिवाय अपनी वासना की तृप्ति क उस थोडा भी सुख नही पहुचाया। मैं केवल रात क मिलन को ही अपन जीवन का महान आनन्द मानता था, फिर यह बच्चा पेट म पडा। वासना का भूत गर्भावस्था म भी अपनी

---

१. यशपाल के औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक, पृ० ७५
२ धरती की आँखें—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ३०५
३ स्वातत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना—ज्ञानच द गुप्त, पृ० १८
४ राग दरबारी—श्रीलाल शुक्ल, पृ० १५५
५ सघर्ष—विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक पृ० ७१
६ नया इसान—यादवे द्र शर्मा 'चद्र', पृ० १४१
७ वही, पृ० १०७

वासना की तृप्ति के किए बिना नही रह सका था।"[1] निश्चय ही 'यौन विकृति' को स्वभावजन्य माना है किन्तु *यौन विकृति 'अर्थच्युत' लोगों मे अधिक* पाई जाती है। अर्थाभाव मे यौनवृत्ति की अतृप्ति के कारण भी व्यक्ति संघर्षरत होता है। मानसिक कुंठाओं तथा गरीबी से घिरा और जीवन मे उदास व्यक्ति यौन को ही आनन्द-प्राप्ति का एकमात्र माध्यम मान लेता है। सामाजिक यौन सम्बन्धो की विकृतिया स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासो म कम दिखाई देती है क्योंकि *मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार अब यौवन पर प्राचीन परम्पराओं और सामा*जिक मूल्यों के कपाट नही लगे हैं, जहाँ जमींदारी प्रथा म हर जवान लड़की को पहली रात ठाकुरों के पास बितानी पड़ती थी। क्या जमींदार, क्या पुलिस सभी इस भांति यौन शोषण मे संलग्न थे—अब मान्यताए बदल गई है। अब नारी व पुरुष यौन विकृति से इतने ग्रसित नही हैं। वे यौनाचार मे स्वच्छन्द है किन्तु सामाजिक परिस्थितिया तथा नैतिक मान्यताए कहीं-कहीं अब भी अवरोधक बनी हुई हैं। 'मशाल' उपन्यास मे पुलिस द्वारा यौनवृत्ति भयानक दृश्य विकृति का रूप ग्रहण कर लेती है—"सकीना अपनी गिरफ्त न जाने किस ताकत से छुड़ा बेहोश होती-सी चीखती हुई अलीम के ऊपर घहरा पड़ी। दरोगा की क्रूर आवाज सकीना के सुन्न होते कानों से टकराई और जब आख खुली तो उसका सारा शरीर दर्द के मारे ऐंठ रहा था। ठुड्डी, गालों, होठों पर, छातियों और कमर के जख्मो मे दर्द हो रहा था।"[2] सकीना पर किया गया यह अत्याचार यौन विकृति का ही प्रतिरूप है। 'दादा कामरेड' का हरीश भी विषम लिंगीय प्रदर्शन मे रुचि दिखाकर यौन विकृति का परिचय देता है। "मैं कुछ न करूँगा ' मैं केवल जानना चाहता हूँ, देखना चाहता हू कि स्त्री कितनी सुन्दर होती है। मैं स्त्री के आकर्षण को पूर्ण रूप से देखना चाहता हू ' तुम्हे बिना कपड़ो के देखना चाहता हू।"[3] इसी संदर्भ मे 'बहता पानी' उपन्यास म "सुजाता किन्ही परिस्थितियोंवश भावुक नारी बन जाती है। यौन व्यापार की परम विरोधी यह पात्र हरिकिशन की प्रेम-विनती मे बहकर यौनवृत्ति का शिकार हो जाती।"[4] यौनावस्था तथा प्रेम मे अन्तर नही कर पाती तथा जब गर्भवती होती है तो द्वन्द्वात्मक बोध की अनुभूति करती है। यह द्वन्द्वात्मक बोध आज व्यक्तिगत प्रश्न न होकर सामाजिक प्रश्न है। यौन के क्षेत्र मे स्त्री का सर्वनाश कर पुरुष अपने को निश्चित, उत्तरदायित्वहीन और सहज समझ लेता है। जब कि स्त्री के सम्मुख

---

१ नया इंसान—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ६६
२ मशाल—भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० ७६
३ दादा कामरेड—यशपाल, पृ० ५५
४ हिंदी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य—डा० प्रेम भटनागर, पृ० १८६

जीवन की विकटतम स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार अनेक उपन्य
मे यौन विकृतियो को चित्रित करके सघर्ष की भूमिका को उजागर किया गया

निष्कर्ष

इस प्रकार मार्क्सवादी चेतना के हिन्दी उपन्यासो का वर्ग सघर्ष निरू
की दृष्टि से अनुशीलन करन के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँ
हैं कि वर्ग सरचना के मूलभूत कारणो, वर्ग-सघर्ष की उद्भावना की अनुप्रे
परिस्थितियो तथा वर्ग सघर्ष की लोमहर्षक प्रतिक्रियाओ का वास्तविक चित्र
इन्ही उपन्यासो म हुआ है। वर्ग-सघर्ष वास्तव म मार्क्सवादी चिंतन प्रक्रिया
ही परिणाम है। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि वर्ग-सघर्ष की प्रेर
और प्रक्रिया म गतिशील शोषित वर्ग मार्क्सवादी चिन्तन की आधारभूत मान्
ताओ स सम्प्रेरित होता है। सर्वश्री यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, रामेश्वर शुक्
'अचल', भैरवप्रसाद गुप्त, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, अमृतलाल नागर, यादवे
शर्मा 'चन्द्र', यज्ञदत्त शर्मा, रागेय राघव, अमृतराय, आनन्दशकर माधव
मनहर चौहान, कमल शुक्ल, भगवतीचरण वर्मा, रामप्रसाद मिश्र, श्रीला
शुक्ल, लक्ष्मीनरायण लाल, प्रभाकर माचवे, कमलेश्वर, अनन्त गोपाल शेव
प्रभृति उपन्यासकारो ने बडी सूक्ष्मता और गम्भीरता से शोषित वर्ग की दय
नीय स्थिति और शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रो की मदान्ध विला
सिता का तुलनात्मक चित्रण किया है। सर्वहारा वर्ग का जमीदारो, सामन्त
अधिनायको, ठेकेदारो, ताल्लुकेदारो, उद्योगपतियो ने किस प्रकार निर्मम शोषण
किया है, उसे बेनकाब करने म मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासकार तटस्थ औ
निरपेक्ष रहे है। सच तो यह है कि वर्ग सघर्ष का स्वरूप अपने सम्पूर्ण आयाम
म इन्ही उपन्यासकारो की कृतिया के माध्यम से उद्घाटित हुआ है।

अध्याय ४

हिन्दी के सामाजिक-यथार्थवादी उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष

सामाजिक यथार्थवादी चेतना के उपन्यासों में वर्ग संघर्ष के स्वरूप विश्लेषण से पूर्व सामाजिक यथार्थवादी प्रवृत्तियों का सैद्धान्तिक विवेचन अभीप्सित है।

यथार्थ और यथार्थवाद

यथार्थ सत्य प्रकृत उचित शब्दों की प्रतिक्रियामात्र है। साहित्यिक समालोचना में उन कृतियों को यथार्थवादी कहा जाता है जो जीवन का यथावत चित्रण करती हैं। यथार्थवादी कलाकार की यही चेष्टा रहती है कि उसके द्वारा प्रस्तुत घटनाएं तथा पात्र यथार्थ जगत की प्रतिच्छाया मात्र हों।[1] इस दृष्टि से यथार्थ और यथार्थवाद के बीच एक निश्चित भेदक रेखा का खींचना अत्यन्त कठिन है। यथार्थवाद यथार्थ के आवरण के अतिरिक्त कुछ नहीं। यथार्थवाद का प्रयोग साहित्य के अन्दर आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के विरोधी अर्थों में किया जाता है।[2] यथार्थवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि शुद्ध विदेशी है। फलत यथार्थवाद शब्द यथातथ्यवाद के अर्थ में प्रयुक्त होता है।[3] यथार्थवाद यथार्थता की आधार भूमि पर जीवन का नूतन चित्र है। यथार्थवाद हृदय की वस्तु है और यथार्थ उसका मूलस्रोत जो अपनी विषयवस्तु जीवन की यथार्थता से ग्रहण करता है। अत साहित्य का यथार्थ जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह जीवन से उद्भूत होता है जीवन की कला है और उसका प्रयोजन जीवन के लिए है।[4] अत यथार्थवाद में मनुष्य की बाहरी परिस्थितियों और चेष्टाओं के विशदीकरण का जो महत्त्व है वही बल्कि उससे भी

---

१ मानविकी पारिभाषिक कोश साहित्य खण्ड—डॉ० नगेन्द्र पृ० २१८
२ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—डॉ० त्रिभुवन सिंह पृ० ७
३ आलोचना प्रक्रिया और स्वरूप—ए० डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित पृ० ७७
४ हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवादी परम्परा—डा० जयनारायण मंडल पृ० ६

अधिक महत्व उसके अन्तर्निहित सत्यों का उद्घाटन करने में और उसकी सकुल मानसिक ग्रन्थियों को खोल दिखाने में है।"[1] अतः स्पष्ट है कि बौद्धिक धरातल पर ही यथार्थ की व्याख्या नहीं हो सकती, जब तक कि उसमें मनुष्य के आन्तरिक भावों का विवेचन न हो। वस्तुतः यथार्थवाद एक ऐसी मानसिक प्रवृत्ति है जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और स्थापित होती रहती है। यथार्थवाद में जो प्रगतिवाद का एक दृष्टिकोण है, वह माना जाता है कि व्यक्ति का स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं है, वह तो समाज का एक अंग है। "समाज में वह आर्थिक सम्बन्धों से बंधा हुआ है। समाज की रचना और विकास आर्थिक सम्बन्धों पर निर्भर है। यदि आर्थिक सम्बन्ध बदल जाते हैं तो समाज भी बदल जाता है। समाज के आर्थिक सम्बन्धों को बदलना चाहिए, परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने-आप बदल जाएगे।"[2] जार्ज ल्यूकाच के अनुसार साहित्यकार यथार्थ चित्रण में निष्पक्ष रहता है। वह निर्भीकतापूर्ण अपने वातावरण के चहुँओर व्यक्त यथार्थ का यथावत् चित्रण करता है। "वास्तव में यथार्थवादी साहित्य में यह विशेषता मिलती है कि उसमें लेखक निष्पक्ष और निर्भीक रूप से अपने निकट के यथार्थ वातावरण का चित्र उपस्थित करता है।"[3] अस्तु यथार्थवाद का आरम्भ मूलतः एक प्रतिक्रियात्मक साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में हुआ था। यूरोप में भी दीर्घकाल तक रोमांटिक प्रवृत्ति का जो प्रचलन रहा, उसका यथार्थवादी रचनाकारों ने विरोध किया। 'यथार्थ' तभी यथार्थ माना जायगा जब वह व्यक्ति की सीमा लांघकर समूह का यथार्थ बनने की क्षमता रखता हो। अनेक यथार्थवादियों की यह दृढ़ धारणा है कि वस्तु के पूर्ण और विस्तृत विवरण से यथार्थ का बोध होता है किन्तु उपन्यास का यथार्थ इससे नितान्त भिन्न होता है। उपन्यास का यथार्थ जीवन सत्य की सभावनाओं से जुड़ा होने के कारण जीवन्त और वास्तविक होता है।

यथार्थवाद : सैद्धान्तिक स्वरूप-विवेचन

किसी भी रचना को यथार्थवादी साहित्य सरचना की संज्ञा तभी दी जाती है जब उसमें उन निश्चित समस्याओं का समावेश हो, जो जीवन के यथार्थ से जुड़ी होती है। कजामियां के अनुसार—'यथार्थवाद साहित्य में एक शैली नहीं बल्कि एक विचारधारा है।'[4] जार्ज ल्यूकास के मतानुसार—"सच्चे यथार्थ-

---

१ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन—डॉ० गणेशन, पृ० ३६५

२. हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा—डॉ० मक्खनलाल शर्मा, पृ० १११-११२

३ स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म—जार्ज ल्यूकास, पृ० १३७-१३८

4 "Realism in art is not a method but a tendency". A History of English Literature—Cazamian, P. 3

वादी साहित्य की यह प्रमुख विशेषता है कि लेखक बिना किसी भय अथवा पक्षपात क, ईमानदारी के साथ जो कुछ भी अपन आस पास दखता है उसका चित्रण करे।"[1] यह वस्तुपरक यथार्थवाद की परिभाषा कहलाता है किन्तु भावपरक यथार्थवाद के लिए एक भिन्न परिभाषा अपेक्षित है। साहित्यकार की स्थिति म चित्रकार की स्थिति स अन्तर रहता है क्योंकि साहित्यकार निर्माता कहलाता है। निर्माण म निमाता की मौलिक कृति रहती है, जिसमे कृतिकार की रचनात्मक शक्ति का चमत्कार परिलक्षित होता है। हैवर्ड फास्ट का मत है— साहित्य क अन्दर रचनात्मक प्रक्रिया सदैव एक सयोग है तद्वत् चित्रकारिता नही। लखक का काय वस्तुओ को गिनान का नही, बल्कि चुनाव करने का हुआ करता है।[2] जयशकर प्रसाद के अनुसार वास्तविकता एकागी नहीं होती। यथार्थवाद क्षुद्रो का ही नहीं अपितु महाना का भी हैं। वस्तुत यथार्थवाद का मूलभाव है वदना, जब सामूहिक चेतना छिन्न भिन्न होकर पीडित होन लगती है तब वेदना की निवृत्ति आवश्यक हो जाती है।'[3] मानव एक जिज्ञासा प्रधान प्राणी है। प्रत्यक्ष रूप म जिज्ञासा के दो रूप माने जाते हैं—एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य जगत म सभी जीव प्रभावित होते हैं परन्तु मनुष्य उस प्रभाव का अनुभव भी करता है और वही वह अन्य प्राणियो से ऊपर उठ जाता है। उसकी अनुभव दृष्टि ही उसे अन्तमुखी बना देती है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो म 'यथार्थवाद कला के क्षेत्र म ऐसी एक मानसिक प्रवृत्ति है जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और रूपायित होती रहती है।[4] प० न द दुलारे वाजपेयी के मतानुसार यथार्थवाद वस्तुओ की पृथक् सत्ता का समर्थक है वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तु जगत् से हैं।[5] वास्तव म 'यथार्थवाद एक जीवन दृष्टि है जिसका प्रभाव साहित्य के विकास पर पडता है। यथार्थवादी लेखक का मानव जीवन और मानव समाज के प्रति इस प्रकार का निष्पक्ष और अनासक्त दृष्टिकोण होता है जिस प्रकार फोटोग्राफर का। वह अपनी कृति को अपने व्यक्तिगत विचारो तथा अनुभूतियो से सर्वथा निर्लिप्त रखने का प्रयास करता है।[6]

1 Study in European Realism—George Lukaccs P 137 138
2 Literature and Reality—H Fast, P 17
३ काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—जयशकर प्रसाद पृ० १२०
४ विचार और वितर्क—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ९८
५ आधुनिक साहित्य—प० नन्ददुलारे वाजपेयी पृ० ७०
६ मानविकी पारिभाषिक कोश—डा० नगेन्द्र पृ० २१९

यथार्थवाद : भेद-प्रभेद

साहित्यिक सरचना मे यथार्थवाद की अभिव्यक्ति को तद्यीभूत करके उसके अनेक भेद-प्रभेदो का विवचन साहित्य शास्त्रियों ने किया है। इनमे से प्रमुख प्रभेद इस प्रकार हैं (१) वस्तुपरक यथार्थवाद (२) आदर्शोन्मुख यथार्थवाद (३) ऐतिहासिक यथार्थवाद (४) समाजवादी यथार्थवाद (५) मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद (६) प्रकृतवाद और (७) अति यथार्थवाद।

वर्ग-सघर्ष के कारण भारतीय परिवेश के सदर्भ मे

मामाजिक यथार्थवादी उपन्यासा मे वणित वर्ग-सघर्ष वास्तव मे कुछ और नही अपितु दासता, शोषण तथा समस्त शक्तियो के केन्द्रीकरण की आयडियोलाजी के विरुद्ध जनता का सघर्ष है। "यह सघर्ष अधिक व्यापक अर्थों मे धार्मिक रूढियो, निर्दयता एवम् अत्याचार का भी प्रतीक बन जाता है।[1] भारत म शोषित वर्ग सदैव शोपण के चक्कर म उलझा रहा है। जिसके शोपण का प्रमुख आधार अर्थ तथा धर्म रहा है। भारत की अधिकाश अशिक्षित जनता धार्मिक अधविश्वासो स ग्रस्त, कर्ज स लदी हुई, पूँजोपति वर्ग को यौन-लिप्सा की परितृप्ति का साधनमात्र बनी रही है। सर्वहारा वर्ग आर्थिक विषमता तथा आर्थिक शोषण क दोहरे पाट म निरन्तर पिसता रहा है। निरन्तर शोषण की प्रक्रिया मे जकडा हुआ यह वग आज चतनायुक्त हाकर पुरातन मान्यताओ के परिमार्जन म सलग्न है। यह वर्ग सचत होकर सघपरत हुआ है। भारतीय परिवश मे 'वर्ग-सघर्ष' को उभारन वाले अनेक कारण है, उनम स प्रमुख कारणो का उल्लेख अनिवार्य हैं।

रूढिवादिता

रूढिवादी समाज म पुरुष प्रत्यक दृष्टि से अपनी स्थिति को सर्वोच्चता प्रदान करना चाहता है। किन्तु नारी वर्ग की इसी स्वतन्त्रता का यह निषेध करता है। नारी को यह सदैव निम्नवर्ग की मानता आया है। अत नारी भी पुरुष निर्मित समाज के प्रति अपना विद्रोह प्रदर्शन करती है और यही स्थिति वर्ग-सघप का कारण बन जाता है। झूठा सच उपन्यास म जयदव पुरी अपनी बहिन तारा के विवाह के प्रति विरोध नही स्वीकारता—"सुना है लडकी न इस विवाह का विरोध किया, परन्तु उसक परिवार और भाई ने उसका विरोध दबा दिया।' 'दिस इज लिमिट (असह्य अन्याय) सब स्वतन्त्रता अपने ही लिए है।"[2]

---

१ हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तिया—डॉ॰ सुरेश सिन्हा, पृ॰ १०
२ झूठा सच (वतन और देश)—यशपाल, पृ॰ २६५

भारतीय कृषक वर्ग भी रूढिवादिता से पूर्णत ग्रस्त दिखाई देता है। रूढिप्रेमी होने के कारण वह अचेतन मानस मे क्रान्ति की सकल्पना नही रखता न ही कृषिक्रान्ति म विश्वास करता है। रूढिवादिता ही भारतीय औद्योगिक विकास मे मन्थर गति का कारण है। अत "भारत का औद्योगिक विकास अतिशय मन्द और अवरुद्ध रहा इसीलिए यह गावो तक फैलकर कृषिक्रान्ति का सूत्रपात नही कर सका। फलत भारत के गावो की गरीबी का कारण भारत मे कृषिक्रान्ति का अभाव था।"[1] भारतीय कृषक वर्ग की अशिक्षा व धार्मिक अधविश्वास ही उसके शोषण के प्रमुख कारण रहे हैं। अभिजात वर्ग की आर्थिक सम्पन्नता व पुरातन मान्यताएँ भी निम्न वर्ग के शोषण का कारण बनी रही हैं। 'घरौंदा' उपन्यास मे लवग आर्थिक साधनसम्पन्न है तथा उसका अहम् भगवती पर अकुश रखता है—'तुमने अपने मालिक के दोस्तो से नौकरो की तरह पेश न आकर बराबरी का दर्जा पाने की कोशिश की। तुम्हे मैंने इसलिए नौकर रखा है कि तुम नौकरो की तरह रहो।"[2] इस दृष्टि स आर्थिक विषमता व अभिजात वर्ग की अहम्मन्यता भी वर्ग सघर्ष का कारण बनी है। वस्तुत 'आधुनिक समाज व्यवस्था मे वर्ग सघर्ष की भावना अनिवार्य रूप से लक्षित होती है।"[3]

आज का सामाजिक इन रूढिवादी परम्पराओं को तोडने म अपने-आपको असमर्थ पाता है। 'सूरज का सातवाँ घोडा' मे—"लेकिन इन सब परम्पराओ, सामाजिक परिस्थितियो, झूठे बन्धनो मे इस तरह कसे हुए है कि उमे सामाजिक स्तर पर ग्रहण नही कर पाते और बाद मे अपनी कायरता और विवशताओ पर सुनहरा पानी फेरकर उसे चमकाने की कोशिश करते हैं।"[4] नारी द्वारा पुरुष की अधीनता-स्वीकृति का सम्बन्ध भी रूढिवादिता से जुडा हुआ है। आर्थिक दृष्टि मे पराधीन स्त्री मर्यादा का ढाग रचाती है तथा रूढिवादिता मे जकडी हुई वर्गगत चेतना होने पर भी विरोध करने का साहस नही करती। ऐसी परिस्थिति का उल्लेख 'काली लडकी' मे किया गया है। वस्तुत ऐसी परिस्थितिया मानसिक सघर्ष को जन्म देती हैं, जो अन्तत वर्गगत चेतना को जन्म देता है। एक ओर तो लीला का वक्तव्य "मुझे पत्नी और बहू का हक नही चाहिए, मैं दासी बनकर रहूगी।'[5] रूढिवादी मर्यादा से जकडा हुआ है तो दूसरी ओर

---

१ हिंदी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष—डॉ० ओंकारनाथ श्रीवास्तव, पृ० ११४
२ घरौंदा—डॉ० रांगेय राघव, पृ० २५६
३ हिंदी उपन्यास म नारी चित्रण—बिन्दु अग्रवाल, पृ० १५५
४ सूरज का सातवा घोडा—धर्मवीर भारती, पृ० ६६
५ काली लडकी—कमल शुक्ल, पृ० १६

उसका वक्तव्य शोषण से मुक्ति की कामना हेतु विचारो का सघर्ष प्रतीत होता है—"माँ, पुरानी लकीर को कब तक पीटती रहोगी ? लकीर के फकीर बनने से काम नही चलता ।"[1]

जातिवाद की विडम्बना

'जातिवाद' की भावना भी रूढिवादिता का कारण बनी रही है । उच्च व निम्न जातियों के व्यक्ति आपस मे समझौता न रखत हुए एक-दूसरे पर दोषा रोपण करते हैं । यही प्रतिद्वन्द्विता की भावना 'सघर्ष' को जन्म देती है । 'समझौता' उपन्यास म 'अतुल व 'अधिकारी' के वार्तालाप द्वारा यह दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है । "अतुल बोला—'निम्न वर्ग का समाज अधिक कुटिल बन गया हैं, वह पग पग पर आत्महीनता का परिचय दता है । जब खाने को नही मिलता तो चोर-डाकू बनता है ।' अधिकारी बोला— यह वर्ग आज ज्यादा सुरक्षित है । मजदूर और किसान दोनों पैस के पीछे भागते हैं ।' मिल मालिक हँस दिया—'धनिक वर्ग और कारखानेदारो को तो बदनाम किया जाता है । वास्तविकता यह है कि मजदूर खाता है और गुर्राता है । जब मन मे आता है हड ताल कर बैठता है, तोड फोड की वारदातें भी करता है ।"[2] इस प्रकार की भावनाएँ शोषित वर्ग को वर्गगत चेतना प्रदान कर 'वर्ग-सघर्ष' की ओर अग्रसर करती है । जातिवाद' वह दृष्टिकोण और प्रथा है जो अन्तर्विवादो को प्रोत्साहित करती है ।"[3] जातिवाद वह दृष्टिकोण है जो श्रम के आदर को स्वीकृति नही देता । श्रम को आदर न दना ही शोषण की प्रक्रिया को जन्म देना है । डा० धर्मवीर भारती ने 'सूरज का सातवा घोडा' म निम्न वर्ग की रूढिवादिता को कायरता का प्रतीक माना है । जो अन्तत सघर्ष का कारण बनती है । "जो इम नैतिक विकृति म भी अपने को अलग रखकर इस तमाम व्यवस्था के विरुद्ध नही लडते उसकी मर्यादाशीलता सिर्फ परिष्कृत कायरता होती है । सस्कारो का अधानुकरण ।"[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि रूढिवादिता और जातीय तनाव देश की एकता म बाधक तथा श्रम की अकुशलता के परिचायक रहे हैं । यशपाल अपने उपन्यासो म रूढिवादिता से मुक्ति दिलाने की ओर सदैव प्रयत्नशील दिखाई देते हैं—"हम पवित्रता के अहकार को तोडना है, सतीत्व की धारणा को

---

१ काली लडकी—कमल शुक्ल, पृ० २०
२ समझौता—श्रीराम शर्मा राम पृ० ८२
३ भारतीय सामाजिक समस्याएँ—द्वारका प्रसाद गोयल पृ० ६६
४ सूरज का सातवा घोडा—धर्मवीर भारती, पृ० ५२

फोडना है, जड मूल्यो का विरोध करना है।"[1] रूढिवादिता सामाजिक पृष्ठभूमि मे सदैव से सघर्ष का कारण बनी रही है। किन्तु १६३० से ५० के वर्षों मे सामाजिक मान्यताओ मे इतनी द्रुतगति से परिवर्तन आया कि प्राचीन मान्यताएँ प्राय विशृ खलित-सी दिखाई देती है। नवीन व पुरातन मान्यताओ व विश्वासो की आपसी टकराहट से समाज मे सघर्ष की भीषण स्थिति जन्मी है। 'अधूरा स्वर्ग' उपन्यास मे इस स्थिति मे आशा का सचार दिखाई देता है। "प्राचीनता से ऊपर नवीनता की विजय सदैव हुई है। प्राचीन रूढियो तथा परम्पराओ मे सदैव सुधार होते रहे हैं।"[2] निश्चय ही सामाजिक रूढियो को नष्ट किए बिना नव समाज निर्माण के प्रयत्न उसी तरह विफल हो जाएँगे जैसे देवाजी का देवनगर। इसका माध्यम प्रेम तथा सघर्ष दोनो ही है। "ऐसा प्रेम है जो गिराता नही उठाता है। जो मन को वह आखें देता है जो अनजाने भेद जान लेती हैं।"[3]

आर्थिक विषमता

'आर्थिक विषमता' के इस युग मे पैसा ही सबसे समर्थ साधन है। आज प्रत्येक व्यक्ति धनवान बनने की लालसा रखता है। धनवान बनकर वह अपने अभावो की पूर्ति करना चाहता है। आर्थिक विषमता ने निम्न तथा उच्च वर्ग के मध्य एक बहुत बडी खाई खोदी है। दोनो वर्गो मे शोषक वृत्ति व शोषण की प्रक्रिया की निरन्तरता बनी रहती है। इसी अर्थ-विषमता के कारण अनेक कुरीतिया व सघर्ष उत्पन्न होते हैं। निम्नवर्ग जब दैनिक आवश्यकता की पूर्ति की लालसा के कारण पूजीपति वर्ग से अधिक मजदूरी की मांग करता है तभी सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। 'तीन वर्ष' उपन्यास मे रमेश ने पैसे की महिमा बताई है—"दुनिया मे प्रेम कहा ?···जो कुछ हैं वह पैसा है। वह सब कुछ खरीद सकता है। मनुष्य की आत्मा तक, रुपया ही शक्ति है तथा रुपया ही मुक्ति है।"[4] 'न्यायमूर्ति' मे भी कहा गया है—"आर्थिक विषमताओ के इस पूंजीवादी युग मे पैसा ही सबका समर्थ साधन है।"[5] 'समाजवाद' 'आर्थिक विषमता' का उत्तर है, क्योकि आर्थिक विषमता समाज के लिए घातक होती है। 'आर्थिक विषमता' मे मनुष्य के जीवन-मरण की समस्या है। इसी आर्थिक

---

१. आज का हिन्दी उपन्यास—डॉ० इन्द्रनाथ मदान, पृ० ८७
२. अधूरा स्वर्ग—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० १६
३. बडी-बडी आखें—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० १२६
४. तीन वर्ष—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २०४
५. न्यायमूर्ति—श्री गोपाल आचार्य, पृ० ६३

विषमता म मनुष्य के रोटी-कपड़े का प्रश्न है । अत पूजीवाद मनुष्य मे भयानक विषमता का द्योतक है ।"[1] 'विषमता' संघर्ष का कारण बनती है और दो वर्गों मे सघर्ष छिड जाता है ।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था मे आर्थिक विषमता ही 'वर्ग-सघर्ष' का कारण बनी हुई है । "औद्योगीकरण ने 'आर्थिक विषमता' और नागरीकरण ने जटिल सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया है ।"[2] आर्थिक विषमता के फलस्वरूप ही चन्द पूजीपति मौज उडाते हैं और शोषण करते हुए निम्न वर्ग को और भी लाचार बना देते हैं । 'काली लडकी' में कमल शुक्ल ने पूजीपति वर्ग के विरुद्ध अपना रोष व्यक्त किया है—"यहा के मुट्ठी-भर पूजीपति मौज मारते हैं । यहा के राज्य कर्मचारी खुशहाली मनाते हैं । मन्त्री और मिनिस्टर बिना छत्र के बादशाह कहलाते हैं लेकिन मजदूरा की कोई नहीं सुनता । जब जनता भूखी है तो सरकार कैसे खुशहाल रह ? इन पूजीपतियो का नाश हो । इनकी कब्रो पर कभी चिराग न जले । ये काले नाग हैं, इनकी अकाल मौत हो ।"[3] इस प्रकार हम देखते हैं सम्पन्नो व विपन्नो मे सदैव विद्रोह भाव बना रहता है । 'गिरती दीवारें' उपन्यास मे "पडित मुशीराम और उनके भाई मे कभी नही बनी । एक को अपनी सम्पन्नता का गर्व था, दूसरे को अपनी विपन्नता का स्वाभिमान ।"[4] 'गर्म राख' मे अश्क जी ने सामाजिक स्थितियो मे सघर्ष' का कारण आर्थिक विषमता को माना है । दूरो व जगमोहन इस विषमता की चक्की मे पीसे गये पात्र है । 'बूद और समुद्र' मे पात्र महिपाल के हृदय म, धन के सर्वव्यापी प्रभुत्व ने पूजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध उसकी रग-रग म तीखे विद्रोह की भावना भर दी है । "पूजी का वैभव बुझते दिए की तरह अन्तिम बार तेजी से प्रकाशित हो रहा है ।"[5] 'घरौंदा' उपन्यास मे पूजीपति वर्ग के प्रति सर्वहारा वर्ग के पात्रो की विद्रोही आवाज वर्ग सघर्ष को जन्म देती है—' यह है धन । तुम एक गरीब का घर नही बनवा सकती, सेठ करोडा का दान देते हैं । कौन नही जानता यह धन मजदूरो का खून चूसकर पैदा किया जाता है । धर्मादा कहकर लिया गया है लेकिन प्रसिद्धि सेठा को मिलती है ।"[6] इसी उपन्यास म धन का महत्त्व बताते हुए भगवती कहता है—"मैं तो धन को ही एकमात्र शक्ति समझता हू ।

---

१ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ११८-११६
२ भारतीय सामाजिक समस्याएँ—द्वारकाप्रसाद गोयल, पृ० ११६
३ काली लडकी—कमल शुक्ल पृ० ६-१०
४ गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ३०
५ बूँद और समुद्र—अमृतलाल नागर, पृ० ३६०
६ घरौंदा—डॉ० रांगेय राघव पृ० ४४

धन के लिए ही तो सारा संघर्ष है :"[1] आर्थिक विषमता से निष्पन्न वर्ग संघर्ष के सैद्धान्तिक पक्ष का विश्लेषण 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में भी हुआ है। आर्थिक समस्याओं की दृष्टि से 'भूले-बिसरे चित्र' की चौथी पीढ़ी सबसे अधिक संघर्षरत दिखाई देती है। 'आर्थिक विषमता' का परिचय नवल के वक्तव्य में मिलता है—'आप देख रहे हैं न कितने युवक पढ़-लिखकर बेकार घूम रहे हैं। उनके अन्दर कटुता भर गई है। हजारों युवक वकील बन गए हैं और उन्हें खाने तक को नहीं मिलता। हजारों नवयुवक बी० ए० और एम० ए० पास करके दफ्तरों के चक्कर लगा रहे हैं और उनके लिए कोई काम नहीं।'[2] इस प्रकार आर्थिक विषमता वर्ग संघर्ष की प्रेरक तथा जन्मदात्री रही है।

मशीनीकरण

यान्त्रिकी आविष्कारों ने औद्योगिक क्षेत्र में क्रान्ति की। उल्लेखनीय बात यह रही कि तेज काम करने वाली मशीनों के द्वारा सौ गुना तेज उत्पादन होने लगा। "मशीन जिस पर काम करने के लिए एक या दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी। वह उतना ही उत्पादन कर सकती है जितना हजारों मजदूर अपनी शक्ति से नहीं कर सकते।"[3] आर्थिक संरचना में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के कारण तथा ग्रामीण उद्योग एवं कृषि में मशीनीकरण के कारण बेकारी बढ़ी। मशीनीकरण के कारण व्याप्त बेकारी एक मानवीय दशा एवं परिस्थिति है, जिसमें व्यक्ति कार्य करने की इच्छा रखते हुए तथा कार्य करने की सक्षमता व सामर्थ्य होते हुए भी कार्य नहीं कर पाता। 'मशीनें पूंजी के हाथ में श्रमजीवी मजदूरों को अधिकाधिक गुलाम बनाने तथा उनके शोषण को तेज करने का साधन बन गयी।'[4] "समाज में औद्योगीकरण के कारण मानव जीवन विषम होता जाता है।'[5] "यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति (इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन) हुई उसके बाद हमारे समाज ने एक नितान्त नया रूप धारण कर लिया। बनिया एकाएक भयानक रूप से शक्तिशाली बन गया। इस औद्योगिक क्रांति के कारण समस्त शक्ति धन में केन्द्रित हो गई। धन उत्पादन का माध्यम बन गया। इस इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन से मशीन-युग का श्रीगणेश होता है। बनिया जो अभी तक विलरक था, मशीन का बल प्राप्त

---

१ घरौंदा—रांगेय राघव, पृ० ८६
२ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ७३६
३ भारतीय सामाजिक समस्याएँ—द्वारकाप्रसाद गोयल, पृ० २६५
४ मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त—एम० नियोन्तीव, पृ० ८६
५. न्यायाधिकरण—गुरुदत्त, पृ० ११४

व्याख्या करती हुई कहती है—"इस सामन्तवाद की सब प्रकार की गन्दगी को एक स्थान से उठाकर यदि दूसरे स्थान पर रख देंगे तो वह अवश्य किसी दूसरे स्थान पर अपना अड्डा जमा लेगी।...अनैतिकता के विषाक्त पंजे में आवर्त सामन्तों की संस्कृति और सभ्यता का सूर्य झूठी आन-शान, और अत्याचार के कारण मृतप्राय सा हो रहा है।"[1] अतः वत्सला 'वर्ग-संघर्ष' की उत्प्रेरणा प्रदान करती है साथ ही कामना करती है इस व्यवस्था के पूर्ण विध्वंस की ताकि कहीं भी, किसी भी रूप में इसके चिह्न पुनः देखने को न मिलें। 'तट के बन्धन' की शशि भी कहती है, "अच्छा हो, काश, सिर पीटने के साथ पुरानी रूढ़ियाँ भी सिर पीट लें।"[2] वह यह भी कहती है—"सामन्ती पद्धति मुझे पसंद नहीं है।" 'सामर्थ्य और सीमा' में 'मकोला' पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है, वह अपने वर्ग की विकृतियों पर पर्दा डालने के लिए कहता है, 'सामन्तकाल में लोग नंगे घूमते थे, आधा पेट भोजन करते थे। कौन-सी सुविधाएँ इन नरेशों ने अपनी प्रजा को दी थीं। दूसरों की शक्ति का शोषण करके ही हम शक्तिशाली बन सकते हैं चाहे वह शक्ति सेना की हो, चाहे वह शक्ति किसानों की हो, चाहे वह शक्ति मजदूरों की हो।"[3] परन्तु यह धारणा भ्रामक और शोषण की उत्प्रेरक है। 'पतन' उपन्यास में अधिकांश पात्र नवाब वाजिदशाह के दरबार से संबंधित तथा सम्पन्न हैं। इस उपन्यास में लेखक ने सामन्तवादी व्यवस्था में जाति व्यवस्था पर कठोर प्रहार किया है—"भारतवर्ष में दुर्भाग्यवश सामाजिक गठन बड़ा असुविधाजनक है। एक मनुष्य चाहे जितना श्रेष्ठ क्यों न हो, यदि निम्न श्रेणी का है, तो समाज में सदैव उसका अपमान होगा।"[4] इस प्रकार भारतीय श्रेणी विभाजन भी समाज में वर्ग संघर्ष का कारण बनता है।

पूँजीवादी व्यवस्था

पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर श्रमजीवियों का निजी स्वामित्व नहीं होता। इस व्यवस्था में "कल कारखानों पर पूँजीपतियों का स्वामित्व होता है और उसके अन्दर किराये के मजदूर काम करते हैं। उत्पादन पूँजीवाद के आगमन के लिए रास्ता तैयार करता है। छोटे-छोटे माल पैदा करने वाले जनसमूह देखने में तो स्वतन्त्र मालूम होते हैं, किन्तु वास्तव में वे पूँजीवाद के जुए के असह्य भार से दबकर त्राहि-त्राहि करते रहते हैं। सामाजिक 'संघर्ष' व क्रान्ति

---

१ दीया जला दीया बुझा—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १३१
२ तट के बन्धन—विष्णु प्रभाकर, पृ० १४०
३ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २४०
४ पतन—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ६२

मे वे मजदूर वर्ग की सहायता करते हैं।"[1] 'टेढे मेढे रास्ते' मे उमानाथ के विचार 'वर्गवाद' तथा पूजीपतियो को पराजित कर 'वर्गरहित' समाज की स्थापना के साथ जुडे हुए हैं। यह तभी सम्भव है जब पूजीवाद का विनाश विश्वक्रान्ति द्वारा हो। वह 'वर्ग सघर्ष' का भी आह्वान करता है। 'इस राष्ट्रीयता की लडाई मे हमें, हम मजदूरो को, हम किसानो को न कोई दिलचस्पी हो सकती तथा न होनी चाहिए। हम तो पूजीपतियो से लडना है। हमे सगठित होकर श्रेणीवाद का विनाश करना है।"[2] 'दीया जला दीया बुझा' उपन्यास मे भी पूजीवादी शोषण को दिखाने का प्रयत्न किया गया है—"मनुष्य की प्रवृत्ति पर पूंजी ने सदैव विजय पाई है। बडे-बडे बुद्धिजीवी पूंजी के प्रकाश-पुज मे पथ विस्मृत होकर बिक गये है।'[3] 'सामर्थ्य और सीमा' उपन्यास का रघुनाथ सिंह भी 'पूजी' का महत्त्व बताते हुए उसे शोषण का कारक सिद्ध करता है—"इस पूजीवाद का देवता—पैसा, यह सब कुछ कर सकता है। हर एक आदमी इस देवता का गुलाम है। एक मे एक लुटेरो और बदमाशो को इस पूंजीवाद ने जन्म दिया है।"[4] मार्क्स पूजीवादी व्यवस्था को वर्ग सघर्ष की अन्तिम सीढी मानता है। उसकी अवधारणा है कि समाज मे इस व्यवस्था के पश्चात् वर्ग-भेद नही रहेगा। 'चादी की रात' मे सगीत कहता है कि मैं जानता हूँ कि अगर अमीरो की बस्ती बढती चली गयी तो व गरीबो को गाजर-मूली की तरह चबा जायेंगे। अत पूजीवाद का समाप्त करन के लिए वह निम्नवर्ग को वर्ग-सघर्ष की प्रेरणा देता है—' इस देश मे श्रम पर पूजी का शासन है तभी ता यह बहुत पीछे है। यहाँ के चन्द पूजीपति लोग जनता को कठपुतली की तरह नचाते हैं। आज देश म प्रजातन्त्र है। अत इसको फलन-फूलने के लिए पूजीवाद का अन्त हाना बहुत आवश्यक है।'[5] इस प्रकार सगीत सर्वहारा वर्ग की चेतना का प्रतीक बनकर सर्वहारा वर्ग मे 'सघर्ष' की भूमिका तैयार करने की प्रेरणा देता है। इसी क्रम म श्री शम्भूदयाल सक्सेना जी के विचार द्रष्टव्य है —' पूजीवाद केवल धन का ही नही है। नाना प्रकार का पूजीवाद दुनिया मे छाया हुआ है। यो तो सभी भेडिये हैं। आप जैस अध्यापक ज्ञान के पूंजीवाद से दूसरा को आत्मसात् कर लेना चाहते हैं। किसी समय ब्राह्मणों न सास्कृतिक पूजीवाद स आधी दुनिया को ग्रस्त कर डाला था। क्षत्रियो न शक्ति

१. समाज का विकास—रमश विद्रोही, पृ० २७-२८
२. टेढे-मढे रास्त—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४८२
३. दीया जला दीया बुझा—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ११४
४. सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १५३
५. चादी की रात—रमश गुप्त, पृ० ६३

के पूंजीवाद से सभ्यता को रौंदा था। वैश्यों ने सम्पत्ति पर एकाधिकार करके वही किया। वह लूट का समय था और अभी तक वह युग मजे से चला आ रहा है।"[1]

विकसित व्यक्तित्व की टकराहट

आधुनिक युग में शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने शोषित वर्ग में चेतनता का उदय किया है। अब शोषित वर्ग शिक्षा के प्रभाव के कारण प्राचीन रूढ़ियों से बन्धनमुक्त होकर अपने वर्ग के विकास के स्वप्न देखने लगा है। 'नारी वर्ग' भी सदैव से शोषित वर्ग रहा है। आज शिक्षित-सुसंस्कृत नारी पुरुष की अधसत्ता का विरोध करती है किन्तु पुरुष नारी से प्राचीन पद्धति के अनुसार ही व्यवहार की अपेक्षा करता है। फलतः 'संघर्ष' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। रांगेय राघव के 'घरौंदे' में नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता और सतीत्व की बदलती मान्यता को स्थान दिया गया है—'सतीत्व पूंजीवाद को बनाये रखने का ढकोसला है, रूढ़ि मरे धर्म की एक दाई है।"[2] किन्तु रूढ़िवादी समाज में यह मान्यता स्त्रियों को प्राप्त नहीं होती तथा शिक्षित नारी इस स्थिति को असहनीय मानती है। फलतः, विचारों व मान्यताओं की टकराहट होती है। 'शोले' उपन्यास में 'वर्ग-संघर्ष' व सामाजिक क्रान्ति द्वारा नारी को मुक्ति दिलाने का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है। 'नारियों' को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना होगा और उसकी व्यवस्थाओं को तोड़कर ऐसा समाज बनाना होगा जिसमें पुरुष और नारी के बराबर अधिकार हों, उनमें विवाह, नैतिकता, कलंक और व्यभिचार की मर्यादाएं बदल जाएं।...स्त्रियों को सामाजिक क्रान्ति द्वारा ही मुक्ति मिल सकती है।'[3] कभी-कभी वैचारिक असमानता भी 'संघर्ष' का कारण बनती है। 'गुनाहों के देवता' में सुधा अतिशय भावुक तथा साहित्यानुरागी है, दूसरी ओर उसका पति कैलाश बौद्धिक एवम् राजनीतिक कार्यकर्ता है। इस वैचारिक असमानता के कारण सुधा अपनी स्थिति से खिन्न रहती है। "मैं चाहता था, कोई लड़की जो मेरे साथ राजनीति में काम करती, मेरी सफलता और दुर्बलता दोनों की संगिनी होती। इसीलिए इतनी पढ़ी-लिखी लड़की से शादी की। लेकिन इन्हें धर्म और साहित्य में रुचि है। वैसे मेरी शारीरिक प्यास को इन्होंने चाहे समर्पण किया, लेकिन मन तो प्यासा ही रहता है।"[4] वैचारिक संघर्ष अन्ततः

---

१ मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० ४८
२ घरौंदा—रांगेय राघव, पृ० १७७
३. शोले—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १२३
४ गुनाहों का देवता (सातवां सं० १९६२)—धर्मवीर भारती, पृ० ३३४

वर्गगत सघर्ष का कारण बनता है। वकिंग गर्ल्स की वर्गगत चेतना भी इस सघर्ष को बढावा देती है। 'एक इच मुस्कान' उपन्यास मे अमर इस समस्या से पीडित है। वह पति की अधीनता स्वीकार नही कर पाती। "आपके भीतर वही पुराना सामन्तवादी पति जिन्दा है···आप चाहते हैं कि पत्नी नौकरी तो करे हो, चौका-चूल्हा करे, हाथ-पाव दबाये। पति को सारी छूटें है—वह दुनिया-भर की खुराफातें करें, मटरगश्ती करें, दोस्तो मे घूमे और चाहे जितना खर्च करें।"[1] 'अधेरे बन्द कमरे' की नीलिमा का जीवन भी इसी सघर्ष से पीडित है। अपने पति से टक्कर लेते हुए कहती है—'एक तो तुम्हारे लिए कमाकर लाती हू—दूसरे घर मे नौकरानी का सारा कार्य करती हू, उस पर तुम्हारे यह कहने का हौसला पडता है कि मैं तुम्हारे लिए सिरदर्द पैदा कर रही हू।"[2] इस जोशीले वक्तव्य से ज्ञात होता है कि वह प्रत्येक स्थिति म वर्गगत' सघर्ष के लिए तैयार है।

नारी-परतन्त्रता

परतन्त्रता की भावना भी 'वर्ग-सघर्ष' का एक कारण रही है। आर्थिक अभाव व शिक्षा के अभाव मे सदैव से निम्न वर्ग पराश्रित रहा है तथा उसका निरन्तर शोषण होता रहा है। सचेतन प्राणी ही सामाजिक यथार्थवादी परिस्थितियो पर चिन्तन कर सकता है। चेतना तभी आ सकती है जबकि उसे (निम्न अथवा शोषित वर्ग) अपनी रोटी-रोजी की समस्या से मुक्ति मिले। ऐसा लगता है कि दुनिया मे जीवन का मूल्य एकमात्र पैसा सस्थापित हो गया है। "दुनिया मे केवल दो ही वर्ग हैं, एक अमीर और दूसरा गरीब। अमीर सर्वदा और अधिक सम्पत्तिशील होना चाहता है। जिसकी प्रक्रिया मे गरीब और अधिक गरीब होता चलता है। अमीर की आकाक्षाओ और साधन पूर्ति के लिए गरीब को सिर्फ उनकी सेवा के लिए जिन्दा मात्र रखा जाता है। जिससे वे सबल भी न हों तथा मरें भी नही।"[3] 'दीया जला दीया बुझा' मे बाली नत्थू से कहती है कि इस ठाकुर परिवार की पराधीनता अब मैं स्वीकार नहीं कर सकती ···नत्थू। चाहे कुछ भी हो, पर अब मैं यहां घडी-भर भी नहीं रहूगी। ऐसे जीवन से तो डूबकर मर जाना ही अच्छा है।"[4] परतन्त्रता की इन बेडियों ने गुलाम नत्थू मे चेतना का उदय किया है—"मैं जानता हू बाली, पर भगवान ने

१. एक इंच मुस्कान (प्रथम स० १९६३)—राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी, पृ० १९०
२. अधेरे बन्द कमरे (प्रथम स० १९६१)—मोहन राकेश, पृ० २१७-२१८
३. न्यायमूर्ति—श्री गोपाल आचार्य, पृ० २६
४. दीया जला दीया बुझा—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ४१

हमें इतना निर्बल बना दिया है कि हम इस ठाकुर का कुछ बिगाड़ भी नहीं सकते। मैं भी सोचता हूँ कि इस ठाकुर को दो हाथ बताऊँ, पर उसके सामने आते ही मेरी छकड़ी क्यों गुम हो जाती है समझ नहीं सकता।'[1] स्त्री की परतन्त्रता को कायम रखने के लिए समाज ने धर्म का आडम्बर रचा नारी को शिक्षा से वंचित रखने का प्रयास किया। 'ठुकराये हुए लोग' में 'मुमताज' को विश्वविद्यालयी पढ़ाई से इसलिए रोका जाता है कि वह धर्म के विरुद्ध है। मुमताज अपनी परतन्त्रता का आभास तो करती है किन्तु संचेतन हो इस व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने की अभी उसमें सामर्थ्य नहीं है। उनके विचार से लड़कियों का जन्म इसलिए होता है कि इन बूढ़ी हवेलियों की दीवारों में कैद होकर व हमेशा-हमेशा के लिए अपने आप को खतम कर दें।'[2] गिरती दीवारें उपन्यास में चेतन चन्दा को परतन्त्रता से मुक्ति का मार्ग एकमात्र शिक्षा बताता है। बुद्धिजीवी को वह समाज की चेतना का प्रतीक मानता है क्योंकि यही वर्ग समाज की वास्तविक परिस्थितियों को समझते हुए वर्ग संघर्ष की भूमिका तैयार करता है। अतः वर्ग चेतना लाने के लिए भी शिक्षा अनिवार्य है। अज्ञान भी एक नींद है चन्दा महानिद्रा सी भयानक। इस महानिद्रा पर विजय पाने के लिए तुम्हें अपनी साधारण नींद से कुछ घड़ियों का त्याग करना होगा। नहीं तो अज्ञान रूपी निद्रा अपने अंधकार में तुम्हें भी निगल लेगी।'[3] अस्तु स्पष्ट है कि 'परतन्त्रता से मुक्ति के लिए वर्गगत चेतना अनिवार्य है। वर्गगत चेतना शिक्षा से उजागर होती है। वर्गगत चेतना ही सर्वहारा वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाती है। वैषम्य ही मूलतः संघर्ष का कारण है— वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप अर्थनीतियों पर आधारित होने के कारण समाज में पग पग पर संघर्ष दिखाई देता है। संघर्ष का जन्म वैषम्य से होता है।'[4] आज के जीवन में अर्थ ही सामाजिक विषमता का मूल कारण है और अर्थ पर ही आधारित आधुनिक नये वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ है। फलतः वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष आधुनिक युग में ही विशेष रूप से प्रतिध्वनित हुआ है।'[5] आज उपन्यास की सफलता का मापदण्ड वर्ग संघर्ष के सफल चित्रण द्वारा आंका जाता है। कोई भी उपन्यास तब सफल कहा जाता है जबकि उसमें सामाजिक विकास की प्रेरक व अवरोधक शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष का चित्रण किया गया हो। इस संघर्ष का चित्रण

---

१. दीया जला दीया बुझा—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० ४२
२ ठुकराए हुए लोग—शचीन्द्र उपाध्याय पृ० १०६
३ गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क पृ० २१६
४ हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युगबोध—बसन्ती पन्त पृ० १०१
५ प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र के उपन्यास मनुष्य का बिम्ब—डॉ सुरेन्द्रनाथ तिवारी पृ० २६

शोषक-शोषित वर्ग, उच्च व निम्न वर्ग, सामन्ती व कृषक वर्ग तथा पूजीपति व श्रमिक वर्ग के माध्यम से व्यजित होता है।

सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों मे विवेचित वर्ग

हिन्दी के सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासो म मुख्यत वर्ग-भेद के आधार पर युग-विशेष की वर्गीय स्थिति के चित्रण का प्रवल आग्रह रहा है। वर्गों का सम्बन्ध उत्पादन के साधनो से जुडा रहता है। जब सम्पत्ति नही थी तो वर्ग भी नही थे। वर्गों का उद्भव तो निजी सम्पत्ति के साथ हुआ। मार्क्स की धारणा है 'जब सम्पत्ति का उन्मूलन हो जायगा तो य वर्ग भी धीरे-धीरे समाप्त हो जायेंगे।'[1] वर्ग अन्तर के मूल कारण आर्थिक क्षेत्र म अन्तर्निहित रहते हैं। अर्थसम्पन्न वर्ग शोषक तथा अर्थविहीन वर्ग शोषित कहलाता है। शोषित पर शोषक वर्ग का प्रभुत्व रहता है। विभिन्न देशो मे व्याप्त आर्थिक परिस्थितिया ही समाज मे विभिन्न वर्गों तथा उनके सघर्ष के स्वरूप को निर्धारित करती हैं। आज पूजीवादी युग मे दो श्रेणिया प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं—पूजीपति तथा मजदूर वर्ग। श्रेणिया तो प्रत्यक्ष है किन्तु शोषण अप्रत्यक्ष ढग से किया जाता है। 'सामाजिक यथार्थवादी' उपन्यासो मे सामन्तवादी तथा पूजीवादी युगो के शोषक एव शोषित वर्गों की विवेचना व्यापक रूप मे की गई है।

सामन्ती व्यवस्था के शोषक वर्ग

कतिपय उपन्यासो मे सामन्तीय शोषक वर्गों की विवेचना की गई है। "सामन्ती समाज मे सामन्तो या (ठाकुरो) का एक छोटा गुट विशाल जन समुदाय का शोषण करता था, भूमि पर किसान काम करते थे। उस पर सामन्तो का अधिकार था। खेती के वास्ते भूमि प्राप्त करने के लिए किसानो को इन सामन्तो की तरह तरह की सेवा करनी पडती थी।"[2] "सामन्तवाद के विकास की अन्तिम अवस्था अर्द्ध गुलामी थी। अर्द्ध गुलामी जमीदारो द्वारा किसानो के शोषण का सबसे तीव्र स्वरूप है।"[3] इस श्रेणी के अन्तर्गत प्रमुख वर्ग इस प्रकार हैं :

ठाकुर वर्ग

'ठाकुर वर्ग' सामन्ती सस्कृति का प्रतीक है। ठाकुरो के अनेक राणियां,

---

१. राजनीतिक विज्ञान के बुनियादी सिद्धान्त—वी० वी० कुजिन, पृ० २५
२. समाज का विकास—रमेश विद्रोही, पृ० १६
३. वही, पृ० २०

गोलियाँ व गोले हुआ करते थे, जिनसे वे अपनी वासना-पूर्ति करते हुए अत्याचार करते थे। बाली ठाकुर जसवन्तसिंह के दहेज में आयी एक बाल विधवा गोली थी। वह ठाकुर के अत्याचारों से आक्रान्त हो 'दीया जला दिया दीया बुझा' उपन्यास में अपना मानसिक विद्रोह इस प्रकार प्रकट करती है—"···यह ठाकुर? बाप रे बाप। पूरा राक्षस है। कहता है कि ऐश करना हमारी आन है, किसानों से बेगार कराना हमारा धर्म है और जब गाँव पर विपदा आती है तो सबसे पहले खुद भाग जाता है।"[1] बाली अपना दुखड़ा 'नत्थू' को आकर बताती है तो ठाकुर उसे मारते पीटते हैं—' 'गले से लिपट कर···चाण्डाल।' —एक जोर की लात मारी ठाकुर सा'ब ने— 'तुझे लज्जा नहीं आती। हमारी नजर के नीचे ऐसा पाप। मार-मार के हड्डी-पसली एक कर दूंगा आज तेरी।"[2] 'बाली' का विद्रोह इस प्रकार प्रकट हुआ— उसने मेरी छाती पर बनी बत्तीसी देखकर मुझे गले से लगा लिया, तो आकाश जमीन में धंस गया और अन्नदाता हमेशा मेरा धर्म बिगाड़ते रहते हैं, उस समय मेरा कुछ नहीं बिगड़ता?"[3] इन्हीं ठाकुरों के रजवाड़े में ठकुराइन अपने नौकर को चाहती है और उसके साथ सम्भोग कर मानों वह ठाकुरों के अत्याचार का बदला लेती है। 'मगर-मच्छ' की विधवा ठकुराइन तथा 'दीया जला दीया बुझा' की ठकुराइन अपने नौकर से प्यार करती है तथा सम्भोग भी, क्योंकि वह वयस्क और हमउम्र होता है। 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में "ठाकुर गजराजसिंह बड़े जमींदार थे। इनके इलाके से उन्हें बीस हजार साल का मुनाफा था। लेकिन उनके खर्चे भी वैसे ही थे। उनमें एक नहीं अनगिनत व्यसन थे।"[4] 'ठाकुर बरजोरसिंह के पिता भी किसी समय एक बड़े जमींदार थे।"[5] 'ठाकुर रामसिंह, बीकमपुर ठिकाने के जागीरदार के छुटभाई थे।"[6] इस प्रकार 'ठाकुर वर्ग' के अत्याचारों का चित्रण अनेक उपन्यासों में किया गया है।

जमींदार वर्ग

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' उपन्यास का संबंध विशेष रूप से सामन्तवादी उच्च वर्ग से है। इसके अधिकांश पात्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं। परोक्ष रूप में इसमें वर्ग

---

१ दीया जला दीया बुझा—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० ३८
२ वही पृ० ४३
३ वही, पृ० ४५
४ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा पृ० ३६
५. वही, पृ० ३७
६. न्यायमूर्ति—श्री गोपाल आचार्य, पृ० १४०

सघर्ष' का ही तात्त्विक विवेचन किया गया है। "रामनाथ तिवारी के विरुद्ध झगडू मिश्र का सघर्ष जमीदार और किसान का सघर्ष है।"[1] रामनाथ तिवारी सामन्ती वर्ग के प्रतीक हैं। 'अधूरा स्वर्ग' म जमीदार वर्ग के अत्याचारो तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियो का उल्लेख हुआ है। "बडे ठाकुर को उसने अपना भेद बता दिया कि वह खून करके आया है क्योकि एक रात जमीदार ने उसकी बहन को धोखे से अपने कमरे मे बन्द कर लिया था तथा वह प्रात वहा से निकलकर कुए मे कूद पडी थी।"[2] जमीदार वर्ग मे झूठी प्रतिष्ठा तथा दिखावे की प्रवृत्ति भी होती है—"देवीसिंह मुझे यह दिखाना चाहता था कि वह एक बडा जमीदार है। गाव के सारे खेत उसी के हैं। वह जो चीज चाहे बे-खटक किसी भी खेत से मेरे लिए ला सकता है।'[3] लाला प्रभुदयाल 'भूल-बिसरे चित्र' का ऐसा पात्र है जो लेन-देन का कारोबार करता है—'लाला प्रभुदयाल बहुत बडे जमीदार तो न थे लेकिन उनकी मान-मर्यादा अच्छी थी और वह लगातार जमीदारिया खरीदते जाते थे। प्रभुदयाल जाति के बनिया थे और उनके पिता की परचून की दुकान थी। प्रभुदयाल ने लेन-देन का कामकाज शुरू किया। यह कहा जाता है कि जिसने प्रभुदयाल से कर्ज लिया वह जीवन-भर के लिए नही, बल्कि पुश्त-दर-पुश्त के लिए प्रभुदयाल का कर्जदार बन गया।"[4] 'अधूरा स्वर्ग' उपन्यास म पडित तोताराम कल्लू के गाव के जमीदार हैं। कल्लू निम्नवर्ग का पात्र है और उसका विद्रोह पडित तोताराम के प्रति है—"पडित तोताराम उसके गाव के जमीदार थ। कल्लू को इस दशा म पहुचाने का श्रेय उन्हीको था। पहले तो उसके मन मे प्रतिशोध की भावना न जन्म लिया परन्तु यह ज्ञात होते ही कि पण्डित जी के वश का प्रत्येक प्राणी लाऊन की भेंट चढ गय, उसे बडा सतोष हुआ।"[5] इसी प्रकार अनेक उपन्यासो म जमीदार वर्ग के शोषण का उल्लेख किया गया है। इसी शोषण तथा अत्याचार ने निम्न वर्ग मे चेतना का उदय किया और उन्ह 'वर्ग-सघर्ष' की ओर प्रेरित किया। जमीदार वर्ग के भीषण शोषण का चित्रण 'पतन' उपन्यास म भी किया गया है। रणवीर समाज के आतयायियो का विनाशक है, वह कहता है—"यह जमीदार वर्ग अपन ऐश्वर्य से सन्तुष्ट नही था। तृष्णा के प्रभाव म उसने अमानुषिक कार्य करन आरम्भ कर दिए थे। शराबी और व्यभिचारी होना कम दुर्गुण नही है, पर इसने गरीबो

---

१ हिंदी उपन्यास मे मध्यवर्ग—डा० मजुलता सिंह पृ० २३४
२ अधूरा स्वर्ग—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० ७६
३. मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० २४४
४. भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ३१
५ अधूरा स्वर्ग—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० २०७

को लूटना और भूखा मारना आरम्भ कर दिया था। इसका जीवन हजारों की मृत्यु के बराबर था। [1]

ताल्लुकदार वर्ग

सामन्ती व्यवस्था में इस वर्ग के द्वारा अत्यधिक शोषण हुआ है। ताल्लुकेदारी का सीधा सम्बन्ध जमींदारी प्रथा से था। अतः जमींदारी के समाप्त होते ही यह वर्ग भी मिट गया। सामर्थ्य और सीमा में विश्वनाथसिंह के पिता अवध के छोटे से ताल्लुकेदार थे और उन्होंने अपने पुत्र को शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत भेजा था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ समय बाद ही जमींदारी प्रथा समाप्त हो गई और ताल्लुकेदारी मिट गई। [2] इसी वर्ग पर मानकुमारी ने व्यंग्य कसते हुए कहा है— आपका दया धर्म ढकोसला है आडम्बर है। आप क्या किसी की सहायता करेंगे? आप तो स्वयं लूटने में विश्वास करते हैं। [3] भूले बिसरे चित्र में अली रजा कहते हैं कि—मलका वेश्या किसी ताल्लुकेदार की कन्या है वे उसे घर में डाल लेने की सलाह देते हैं— आप बड़े खुशकिस्मत हैं बाबू गंगा प्रसाद वरना रण्डी की मुहब्बत किसे मिलती है, बड़ी पाक व नेक औरत है मलका। सुना है किसी ताल्लुकेदार के नुत्फे से पैदा हुई है यह। लम्बी रकम है इसके पास। तो मेहरबान मेरी अर्ज यह है कि आप इसे घर में डाल लीजिए। आप नुकसान में नहीं रहेंगे। [4] गंगा बाबू इज्जत वहाँ है जहाँ रियासत है पैसा है मैं फिर कहूँगा कि इस मलका को अपने घर पर ही रख लीजिए। ये बड़े बड़े रईस और ताल्लुकेदार इन सबके पास रखैल है। [5] यह वर्ग संघर्ष का ही परिणाम था कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ तथा साथ ही साथ ताल्लुकेदार वर्ग तथा उसके शोषण की समाप्ति हुई।

व्यापारी वर्ग तथा महाजन वर्ग

व्यापारी तथा महाजन वर्गों की दृष्टि सदैव अतिशय मुनाफा प्राप्ति की ओर रहती है। व्यापारी तथा महाजन वर्ग दोनों ही पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि हैं। महाजन लेन देन का कार्य करते हैं किन्तु उनकी शोषक बुद्धि वर्ग संघर्ष की उन्नायक है। आज इस वर्ग का भी जनता में कोई सम्मान नहीं। समझौता

---

१ पतन—भगवतीचरण वर्मा पृ० ८
२ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा पृ० १७
३ वही पृ० २३८
४ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा पृ० ३६३
५ वही पृ० ३६४

उपन्यास में कहा गया है कि "आज जनता का क्षुद्र और निर्धन समाज सचमुच ही सिसक रहा है। वह जीवन के स्थान पर मौत चाहता है। फिर भी उसे अतुल सरीखे धनिक लोगों की मान्यता कदापि मान्य नहीं। यह वर्ग नहीं चाहता था कि धनिक लोग समाज के सिरमौर रहे।"[1] इस प्रकार की वर्गगत चेतना 'वर्ग-संघर्ष' का परिणाम ही थी क्योंकि व्यापारी तथा महाजन वर्गों से जनता बहुत पीड़ित थी। 'महाजनों के इस शोषण में सरकारी कानून का संरक्षण भी उन्हें प्राप्त था, अतः वह शोषण और अधिक बढ़ता गया। महाजनों के यहाँ सूद का व्यापार महत्वपूर्ण माना जाता है।"[2] 'मगरमच्छ' उपन्यास के नारायणी और लच्छी के माँ-बाप गाँव के साधारण व्यक्ति थे किन्तु 'तीसरी पीढ़ी के उत्तराधिकारी लेन देन का काम करते थे। व साहूकार थे। जमींदार थे। घर में उनका सब कुछ अपना था।"[3] व्यापारी वर्ग के स्वभाव का चित्रण 'अधूरा स्वर्ग' में किया गया है—"मैं व्यापारी हूं। खरे सौदे पर विश्वास करता हूं। सटोरिया नहीं, जो भविष्य की कल्पना मात्र पर सब कुछ दाँव पर लगा देता।"[4] "गाँव में किसी बात की सुविधा नहीं है। जो पैदा कर पाते हैं, उसके लिए बनिया, साहूकार, नम्बरदार, मुखिया, जात-बिरादरी के सभी मुंह बाये रहते हैं। बाबा के समय का यह कर्ज है। उसका सूद चुकाते-चुकाते तीन पीढ़ियों के लोग पच मरे। न जाने उससे कब उद्धार होगा।"[5] 'चाँदी की रात' में महाजन उगे आये दिन कहता है, "संगीत डाकू है।" संगीत विद्रोही है। उसका कहना है, 'एक दिन उसने सुना, उसके मकान की कुर्की हो गई है। इसके अलावा भी पिताजी पर कर्ज है। मैं सीधा गाँव गया, मालूम हुआ कि पिताजी ने विष खाकर आत्महत्या कर ली है। एक महीना भी नहीं बीता, माँ का भी प्राणांत हो गया। महाजन मेरे पास आया, उसने मुझे भी तंग करना शुरू किया। बात बढ़ गई मैंने उस पर हाथ छोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि उसने मुझ पर इस्तगासा कर दिया। मेरी पढ़ाई चौपट हो गई, साल बरबाद गया। मुझे आठ महीने की सजा हो गई।"[6] इस प्रकार के भीषण महाजनी अत्याचार कहीं कहीं गाँवों में अब भी दृष्टिगत होता है।

---

१ गमभौना—श्रीराम शर्मा राम, पृ० ४२
२ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० २१३
३. मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० ११३
४ अधूरा स्वर्ग—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० ४३
५. मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० ४१६
६. चाँदी की रात—कमल शुक्ल, पृ० ६२

पूँजीपति वर्ग

'मगरमच्छ' मे उपन्यासकार ने पूजीपतियो को मगरमच्छ की सज्ञा देते हुए व्यग किया है कि "हम बड़े-बड़े लोग भी इन गरीबो के श्रमफल को खाकर डकार तक नही लेते—इनकी आह-कराह भी तो हमारे कानो तक नही पहुचती।"[1] 'भूले-बिसरे चित्र' मे ज्ञानप्रकाश कहता है कि "पूजीपति वर्ग जबरदस्त मुनाफा उठाता है।"[2] 'सामर्थ्य और सीमा' मे मकोला कहते हैं—"वर्तमान हमारे सामने है और इस वर्तमान मे सारी सामर्थ्य पूजी मे है। मैं पूजीपति हू इस बात से इन्कार नही कर सकता। जब तक बल किसी मे कम है, किसी मे अधिक है तब तक सघर्ष चलता रहेगा। सबल निर्बल पर शासन करेगा, सबल निर्बल पर अत्याचार करेगा।"[3] "इस हिन्दुस्तानी पूजीपति को तो मुनाफा चाहिए। और शर्माजी, फिर हिन्दुस्तान मे लोगो की जिन्दगी की कीमत क्या है? यहाँ पर लोग पैसे पैसे मे बिक्ते हैं। एक गुलामी से निकल-कर हम सब उससे भी भयानक गुलामी मे आ घिरे हैं।"[4] तनाव बढता जा रहा है। 'वर्ग सघर्ष' की प्रेरणा द्वारा ही मुक्ति का मार्ग मिलेगा। अत पूजीवादी व्यवस्था समाप्त करने के लिए क्रान्ति अनिवार्य है। 'मगरमच्छ' मे ही पूजीपति वर्ग को भेडिये कहा गया है तो कही मगरमच्छ की सज्ञा दी गई है। "वे कहते हैं कि पैसे वाले सब भेडिये हैं। जिनके पास पूजी है—धन, शक्ति, ज्ञान, सस्कृति किसी भी तरह की पूजी, वह शेष समुदाय को पददलित करता जा रहा है।"[5] पूजीपति की यही भावना 'वर्ग-सघर्ष' को जन्म देती है। 'झूठा सच' उपन्यास मे पूजीपति की उदार वृत्ति पर व्यग किया गया है—"मुनाफे को ही धर्म समझने वाले बड़े-बड़े पूँजीपति काग्रेसी लोगो के प्रति श्रद्धा और उदारता घाटा उठाकर नही दिखा रहे हैं।"[6] मुनाफे मे सरकारी साठ-गाठ दिखाने का प्रयास किया है तथा वर्गगत सघर्ष की असफलता का कारण भी यही पूजीपति वर्ग व पूजीवादी सरकार है जो पूजीपतियो की सहायता करती है। अत समाज मे वर्ग-साम्य लाना है तो पूजीवादी व्यवस्था का नाश करना होगा और यह विनाश 'वर्ग-सघर्ष' द्वारा ही सम्भव है।

---

१. मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० ४८
२ भूले-बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ३६१
३ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १५४
४ वही, पृ० ५४
५ मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० ४८०-८१
६. झूठा सच (भाग २)—यशपाल, पृ० ३६३

शोषित वर्ग

शोषित वर्ग अपनी रोटी-रोजी की समस्या मे उलझा रहता है। शोषण के चक्र मे अनवरत पिसते हुए आज निम्न वर्ग उस दुरावस्था तक पहुच गया है जहा उसका जीना असम्भव सा हो गया है तथा उसका जीवन अभिशाप बन गया है। 'मगरमच्छ' उपन्यास मे कहा गया है— 'भूखे पेट और नगे शरीरो के लिए सौन्दर्य-बोध का तो सवाल ही नही उठता। इन्ही दो आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वह (निम्न वर्ग) तपस्या मे लगा रहता है तो भी उसे भर पेट खाना नही मिलता, न पहनने को कपडा ही नसीब होता है।'[1] पूजीपति वर्ग निरन्तर श्रमिक वर्ग के शोषण मे लगा रहता है। मजदूर वर्ग का विश्वास मालिक व अफसर पर न होकर नेताओ पर हाता है क्योकि उनके द्वारा उसे निरन्तर शोषण के विरुद्ध चेतना का पाठ पढाया जाता है। 'कटी' उपन्यास म सक्सेना का विश्वास था —"मजदूर उन्हे हितचिन्तक समझकर उनकी बात मान लेंगे। पर अब उनका विश्वास टूट गया था। उन्हें लगा कि मजदूरों का जितना विश्वास अपने नेताओ पर होता है उतना स्वय पर भी नही। मालिक-अफसरो पर तो हो ही नही सकता। उन्हें प्रतिदिन शोषक वर्ग और शोषित वर्ग का पाठ जो पढाया जाता है।"[2] 'बदलते रग' उपन्यास की आशा विचार करती है— "इन मजदूरो का भी क्या है। इनका कोई अपना नही, कोई मकान नही, खानाबदोशो की तरह एक जगह का काम पूरा करते ही दूसरी जगह डेरा जमा लेते हैं। शाम तक टोकरी ढोते हैं फिर सुबह की प्रतीक्षा करते हैं। ठेकेदार को सलाम करना है। पैसा कमाना है। रोटी के लिए पैसा चाहिए। रोटी ! रोटी ! पैसा ! पैसा !"[3] 'ठुकराए हुए लोग' उपन्यास मे तारा को मजदूर व्यक्तियो के रास्ते नये से लग रहे हैं, "सुबह ही स्त्रिया मजदूरी करने निकल जाती हैं और सध्या होने पर लौटते वे इतनी थक जाती है कि उनकी चलने-फिरने की शक्ति जैसे जवाब दे जाती हैं।'[4] इस प्रकार मजदूर वर्ग की स्त्रियो का दोहरा शोषण होता है। एक उनसे काम अधिक कराया जाता है दूसरे मजदूरी कम दी जाती है। कृपक और श्रमिक की अपेक्षा भारत म सर्वथा उपेक्षित और शोषित वर्ग 'नारी वर्ग' रहा है किन्तु नारी वर्ग का शोषण किस प्रकार किया गया है इसकी विवेचना अलग से की गई है।

---

१ मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० २९२
२ कटी—डा० पुष्करदत्त शर्मा, पृ० १५२
३ बदलते रग—रजनी पनिकर पृ० ६६
४ ठुकराये हुए लोग—सचीन्द्र उपाध्याय, पृ० २२

कृषक वर्ग

'चांदी की रात' में कृषक वर्ग का यथार्थ चित्र खींचा गया है। इस उपन्यास का पात्र संगीत कृषक वर्ग का होने के कारण कर्ज के भार में दब जाता है। फलस्वरूप आर्थिक कठिनाई उसे डाकू बनने पर मजबूर करती है। उसकी चेतना वर्गगत चेतना थी, जिसका उद्देश्य शोषण की निरन्तरता से मुक्ति पाना था। इस मुक्ति के लिए 'संघर्ष' की प्रेरणा उसे मार्क्स के द्वारा विवेचित 'वर्ग-संघर्ष' के प्रतिक्रियास्वरूप मिलती है—"मैं किसान का बेटा था। मेरे मां-बाप के पास थोड़ी-सी खेती थी। परिवार में मैं था, मां-बाप और छोटी दो बहनें। खर्च की बड़ी तंगी थी। पिताजी पर हमेशा कर्ज बना रहता था। एक बहन का ब्याह किया, उसमें उन्होंने जमीन भी बेच दी। इसके बाद वे लगान पर जमींदारों के खेत जोतने लगे।"[1] इस प्रकार मेरे घर का विनाश महाजन वर्ग द्वारा हुआ। मुझमें विद्रोह की भावना ने जन्म लिया—"मैं अपने उन साथियों से मिला जो महाजन के अत्याचार से पीड़ित थे। मैंने उनको संगठित किया, फिर घुस गया महाजन के घर में, उसके घर को लूट लिया।"[2] 'घरौंदा' उपन्यास में "जहां मनुष्य और मनुष्य समान नहीं हैं, जिनके वैभव के नीचे खेतिहर कभी भी पेट-भर खाना नहीं खा सकते, कभी अपने-आपको सीधा खड़ा हुआ नहीं सोच सकते, सदा के दास, सदा के गुलाम'''कितना अत्याचार। कितने पर्दों की आड़ में चलने वाला अनाचार।"[3] इस प्रकार सदैव से गुलामी के चक्र में पिसता हुआ यह कृषक वर्ग सचेतन होते हुए भी सदैव अर्थाभाव से पीड़ित रहा है। 'बदलते रंग', 'गर्म राख', 'उड़े पत्ते', 'मढ़ी का दीवा', 'कटी', 'यह पथबन्धु था', 'सूरज का सातवां घोड़ा' आदि सभी उपन्यासों में कृषक वर्ग को उपेक्षित वर्ग के रूप में चित्रित किया गया है। कृषक वर्ग सामयिक परिवर्तनों के संदर्भ में अपने-आपको रखकर देखने लगा—"जमींदार वर्ग के शोषण के विरुद्ध वह भी अपनी मुक्ति का अभियान छेड़ने को प्रस्तुत हुआ। लेकिन किसानों की इस राजनीतिक चेतना का बहुत कुछ श्रेय इनको स्वयं प्राप्त है। किसी अन्य पार्टी तथा नेता को नहीं।"[4] 'कृषक वर्ग' के शोषण का मुख्य कारण इनकी अशिक्षा रही है।

---

१ चांदी की रात—कमल शुक्ल, पृ० ६१
२ वही, पृ० ६२-६३
३ घरौंदा—रांगेय राघव पृ० ३२०
४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—रमेश तिवारी, पृ० २२२

मजदूर वर्ग

मजदूर वर्ग की समस्या औद्योगीकरण की उपज है। मजदूर का शोषण मार्क्सवादी दर्शन का आधार है। "नये क्रान्तिकारी नेतृत्व के कारण मजदूर वर्ग पूंजीपति वर्ग का शोषण समाप्त करने के लिए कटिबद्ध था। पूंजीपतियों के विरुद्ध हड़ताल उसका मुख्य कार्यक्रम बना।"[1] जो कि 'वर्ग-संघर्ष' का ही एक आधारशिला थी। 'समझौता' उपन्यास में अनिल मजदूर की विवशता की व्याख्या करता हुआ कहता है—"जिस मशीन पर मजदूर काम करता है, उसको तेल अधिक मिलता है, आदमी को भोजन कम। मजदूर अपने परिवार का गुजर भी नहीं कर पाता।"[2] 'बदलते रंग' उपन्यास में मजदूरों के जीवन के सीमित दायरे का वर्णन हुआ है—"मजदूरों के जीवन का दायरा कितना सीमित है। एक सुबह, एक शाम। कल दूसरी सुबह आयेगी तो दूसरा काम होगा। ठेकेदार इनसे लिखवाएगा ज्यादा, देगा कम। इनसे दिन भर काम करवाएगा। बेचारे चुप रहेंगे।"[3] यह पूंजीवादी शोषण का एक रूप है। पूंजीपति चन्द रुपयों के बदले में मजदूर का मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार का शोषण करता है। शोषण की भीषणता से तंग आकर मजदूर संगठित हो संघर्ष में भाग लेता है। अन्त में यह संघर्ष 'वर्ग-संघर्ष' में परिणत हो जाता है। 'गिरती दीवारें' उपन्यास में लेखक ने कहा है—"ये इतने क्लर्क, मजदूर, किसान ये सब घोड़े हैं, विभिन्न गाडियों में जुते हुए घोड़े। अपने आराम और सुख की परवाह किए बिना, पसीने में तर, थकन से चूर, दिन-रात काम किए जाते हैं।"[4] 'गर्म राख' उपन्यास में हरीश और द्रौपदी निम्न अथवा शोषित वर्ग के जागरूक पात्र है। ये मजदूरों में जागृति लाने का प्रयास करते हैं। "मुझे अपार बल, जनता को समझने की शक्ति और समझकर ठीक पथ पर चलाने की प्रखर बुद्धि मिल जाए तो मैं ऐसी क्रान्ति लाऊं कि गुलामी की बेड़ियाँ पलक झपकते ही खटखट गिर जाएँ। और जहाँ आज चन्द लोगों के स्वार्थ का राज्य है, वहां जनता का, जनता के हित का राज्य हो।"[5]

मजदूर तथा श्रमिक वर्ग वर्तमान औद्योगीकरण की उपज है। 'गर्म राख' के सभी पात्र स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील हैं—"उनमें मजदूरों और किसानों के

---

१ *हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन*—रमेश तिवारी, पृ० २२९
२. समझौता—श्रीराम शर्मा राम, पृ० १५३
३. बदलते रंग—रजनी पनिक्कर, पृ० ६७
४. गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ४०२
५ गर्म राख—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ३०६

'वर्ग सघर्ष' की प्रतिक्रियाओ के रूप मे दृष्टिगत होती हैं । ये समस्याए शोषक वर्ग के लिए वरदान तथा शोषित वर्ग के लिए अभिशाप सिद्ध हुई हैं । बडे-बडे राजा-महाराजा और ठाकुर सामन्त 'यौन विकृति' से आक्रान्त होकर निम्न वर्ग को परितुष्टि का माध्यम बनाते रहे हैं । इस प्रकार 'यौन' विकृति भी वर्गगत शोषण से जुडी रही है ।

विज्ञान तथा औद्योगिकी के विकास के कारण अब व्यक्ति कार्य और कारण मे सम्बन्ध देखे बिना किसी चीज को स्वीकार नहीं करता । यही कारण है कि उसके विचारो तथा विश्वासो म परिवर्तन आया है । जिस प्रतिक्रिया को हम आज 'धार्मिक नैतिक पतन' कहते हैं वह धर्म पर आधुनिकता का प्रभाव मात्र है । *आदिम समाज म धर्म और अलौकिक सत्ता को महत्व मान कर उसे* स्वीकार कर लिया जाता था । किन्तु आज का व्यक्ति विज्ञान के आविष्कारो से इतना प्रभावित है कि वह प्रत्यक्ष घटना के पीछे वैज्ञानिक कारणो को देखता है । ग्रीन ने अपनी पुस्तक 'सोशियोलोजी' म लिखा है कि विज्ञान ने बुद्धिवाद को विकसित किया है । वह धर्मान्धता तथा धर्मरूढिता को खुली चुनौती देता है । *अत धर्म क अनेक विश्वास तथा अभ्यास तर्क के सामने नहीं टिकते ।*[1] 'कार्ल मार्क्स ने यह व्यक्त किया कि धर्म के कारण ही समाज मे शोषण तथा अत्याचार बढता है । शोषित वर्ग अपने शोषको का विरोध तभी कर सकते हैं जब धर्म का प्रचार कम होगा ।'[2] अत जिसे हम धार्मिक नैतिक पतन कहते हैं, वह वर्गगत चेतना का प्रतिरूप मात्र है । नारी शोषण भी वर्ग सघर्ष मे परिलक्षित होता है भगवतीचरण वर्मा के नारी पात्र पतिपरायण हैं । कारण है सदियो से चली आ रही रूढिवादिता । नारी के प्रति हेय दृष्टिकोण तथा नारी की प्राकृतिक दुर्बलता को पुरुष की दासता स्वीकार करनी होगी यह मत 'नारी-शोषण' को प्रभावपूर्ण बनाता है । एक ओर तो रूढिवादिता दूसरी ओर समाज की बदलती मान्यताए, दोनो विपरीत धारणाए नारी म सघर्ष की स्थिति उत्पन्न करती हैं । इलाचन्द्र जोशी तथा यशपाल 'कामकुण्ठा' द्वारा बलात्कार को भी नारी शोषण का एक रूप मानते हैं ।

वर्ग सघर्ष के परिणामस्वरूप समाज म अनेक कुरीतियो का प्रचलन हुआ । जैसे अन्तर्जातीय विवाह, तलाक (विवाह विच्छेद) आदि । कई सामाजिक कुरीतियाँ समाप्त भी हो गई । नारी की सामाजिक मान्यताओ तथा आचरण-सम्बन्धी मर्यादाओ म शिथिलता आई । नारी को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त

हुई। "रागेय राघव ने तो इसी आर्थिक परतन्त्रता को ध्यान म रखकर सामन्ती युगीन नारी की तुलना वेश्या से की है और उसके सतीत्व का ढकोसला माना है।'[1] मार्क्स के विचार मे—'सतीत्व' की रूढिवादी मान्यता पूजीवादी व्यवस्था को बनाये रखने का ढकोसला-मात्र है। अत इसे त्यागना तथा मुक्ति के लिए निरन्तर 'सघर्ष' करते हुए विचारो व मान्यताओ मे परिवर्तन लाना अनिवार्य है। यह जीवन क्या जीवन है जो अपने पर नही दूसरो के सहारे पर गर्व किया जाय। "कुत्ता जजीर से बाँधकर भूखा रखा जाये तो वह कैसा भी मास खा सकता है और जब उसे मालूम हो जाय कि यह मास उसे चौकीदारी किये बिना नही मिलेगा तो वह भूकने लगेगा। कहाँ वीरासिह, सतीत्व पूंजीवाद को बनाये रखने का ढकोसला है, रूढि मरे धर्म की एक दाई है।"[2]

'वर्ग-सघर्ष की प्रतिक्रिया सास्कृतिक धरातल पर भी हुई। 'पाश्चात्य सस्कृति और भारतीय सस्कृति के सघर्षकाल मे दो अतिवादी सास्कृतिक दृष्टि-कोण अपनाये गये।'[3] यही दोनो दृष्टिकोणा न पारस्परिक मतभेद पैदा कर दिए। सास्कृतिक मानदण्डो की उलझनपूर्ण अवस्था का एक कारण यह भी रहा कि सास्कृतिक मूल्यो का निर्धारण व परिवर्तन उच्च वर्ग प्रतिष्ठित करता है जो निम्न वर्ग के समकक्ष नही उतरती। 'ईश्वरीय आस्था' म मार्क्सवादी विचारधारा ने परिवर्तन ला दिया है। 'बूद और समुद्र' मे महीपाल बाबा राम जी के मत का प्रत्याख्यान करता हुआ इस आस्था का विरोध करता है जो 'वर्ग सघर्ष' का ही परिणाम है। "ईश्वर क्या है—ईश्वर पूजीपतियो का सबस बडा सहायक और लाक्षघातक ढकोसला है।"[4] जाति विधान भी सास्कृतिक अवमूल्यन का एक कारक है। 'हमारी नागरिक सभ्यता महाजनी गणतन्त्र की सभ्यता है जिसका आधार आर्थिक है। जब तक पूरी तौर पर नही टूटता, तब तक जाति-विधान नहीं टूट सकता।'[5] सयुक्त परिवार वास्तव म पूजीवादी व्यवस्था को कायम रखन की व्यवस्था है जहा मानव मानव का शोषण करता है। अतः 'सयुक्त परिवार का विघटन' भी 'वर्गगत चतना' का प्रतिफलन तथा वर्ग सघर्ष का परिणाम है। 'वर्ग सघर्ष' क परिणामस्वरूप अनेक विवाद खडे हुए तथा अनेक आस्थाए टूटी, अधविश्वासो का भय समाप्त हुआ, आर्थिक शोषण से मुक्ति पान का प्रयास किया गया। नैतिकता मे रूढिवादिता का पुट

१. हिन्दी उपन्यास मे नारी-चित्रण—बिन्दु अग्रवाल, पृ० २३१
२. घरौदा—रागेय राघव, पृ० १७७
३. हिन्दी उपन्यास . समाजशास्त्रीय अध्ययन—चण्डीप्रसाद जोशी, पृ० २६१
४. बूद और समुद्र—अमृतलाल नागर, पृ० २६१
५ वही, पृ० २२६-२७

समाप्त हुआ। पुरातन दृष्टिकोण का मूल्यगत विघटन हुआ। क्योंकि मार्क्सवाद यथार्थ की व्यावहारिकता में विश्वास रखता है अतः मान्यताएं तथा विश्वास टूटे व नवीन धारणाएं विकसित हुई। नारी के साथ जो पशुवत व्यवहार हो रहा था इसकी स्थिति में वर्गगत चेतना के फलस्वरूप परिवर्तन आया। यद्यपि नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व ने समाज में अनेक नई समस्याएं भी खडी कर दी। वर्ग संघर्ष की प्रतिक्रियास्वरूप नारी वर्ग भी सचेत हुआ तथा विद्रोह को अपनाते हुए विवशताओं को टालते हुए उसने भी आर्थिक मुक्ति पाने का प्रयत्न किया। अब वह मान्यताएं समाप्तप्राय हो गई है कि 'मुझे उसमें सुख है जिसमें आपको सुख है आप अपने घर में रहें मैं तो आपकी दासी हूं।'[1] इस प्रकार वर्ग संघर्ष की अनेक प्रतिमाए सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों में अभिव्यंजित हुई हैं।

यौन विकृतियां

जब तक मानव की यौन भूख तृप्त नहीं होती तब तक उसका मन अशान्त रहता है। पति पत्नी के असंतुलित यौन सम्बन्धों के कारण दाम्पत्य जीवन विघटित स्थिति में पहुंच जाता है। यौन विकृति के अनेक कारण हैं— दमित कामवासना सन्देह की प्रवृत्ति एवं अहंभाव से ग्रस्त पति का दाम्पत्य जीवन प्रायः कटु ही रहता है। अहंभाव से पीडित पति पत्नी पर प्रायः अधिकार जमाना चाहता है।[2] फलस्वरूप दोनों के जीवन में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। व्यभिचार इसी वृत्ति अथवा विकृति का परिचायक है। 'अमृत और विष' में व्यभिचार की वृत्ति मोक्षदायिनी है क्योंकि दोनों पक्षों में किसी की कोई जिम्मेदारी उसमें नहीं रहती। व्यभिचार एक ऐसा जंगल है जिसके ओर छोर पर कहीं भी भूत या भविष्य का लगाव नहीं होता। वह केवल वर्तमान में होता है। पुरुष केवल अपने देह सुख के स्वार्थवश ही होता है और स्त्री अपने सुख स्वार्थ के बस में। उनका केवल एक ही दायित्व है सम्भोग।[3] यौन चेतना के अन्तर्गत 'कटी' उपन्यास में सबल तथा निर्बल का संघर्ष बताया है। नारी स्वभावतः दुर्बल है। इसके विपरीत पुरुष सबल है। दुर्बल सदा सबल का आश्रय ढूंढता है। विवाह के पीछे यही सिद्धान्त काम करता है। यौन सिद्धान्त सभी जगह एक सा है। इस दृष्टि से सभी प्राणी समान हैं।[4] इसमें यौनेच्छा समान होते हुए भी श्रेणी की सबलता एवं निर्बलता का

---

१ टेढ़े मेढ़े रास्ते—भगवतीचरण वर्मा पृ० २०८
२ हिन्दी उपन्यासों का पारिवारिक चित्रण—महेन्द्र कुमार जैन पृ० १२८
३ अमृत और विष—अमृतलाल नागर, पृ० २०८
४ कटी—पुष्करन्त शर्मा पृ० ८७

भेद करके उपन्यासकार वर्ग-सघर्ष की चेतना उभारने का प्रयास करता है। सम-यौन प्रदर्शन की प्रथा यौन विकृति कहलाती है। 'न्यायमूर्ति' म कहा गया है कि—"सम-यौन प्रदर्शन की प्रथा समाज मे जोर पकड रही है।"[1] 'प्रेम, भावना' की भी विभिन्न दृष्टियो से उपन्यासो म व्याख्या की है। कोई इसे दैवी शक्ति मानता है तो कोई कर्त्तव्य। वस्तुत प्रेम भी वासना की एक परोक्ष प्रतिक्रिया है जो दो विपरीत यौन के व्यक्तियो मे मानसिक सघर्ष उत्पन्न कर देती है। यह मानसिक सघर्ष भी वर्ग-सघर्ष की भावना को जन्म देता है। 'बदलते रग' उपन्यास की आशा सघर्षरत होकर प्रेम पर व्यग करती है—"'आशा, तुम होश मे हो?' 'हा, खूब होश मे हू। तुम मुझसे खिलवाड क्यो करते हो?' 'मैं तुमसे प्रेम करता हू आशा।' प्रेम से तुम्हारा क्या मतलब है? जैसे रोशन ने मिस्टर चौधरी का हाथ पकडा है? या कर्नल सिह-मैडम के साथ एक ही सोफे पर बैठकर शराब पी रहे हैं क्या उसे प्रेम कहते है?"[2] प्रेम मे वासना की पुष्टि करते हुए 'विष्णु प्रभाकर' 'तट के बन्धन' उपन्यास मे लिखते हैं—"प्रेम हो या पैशाचिक कामवासना दोनो के मूल मे ही स्त्री-पुरुष का प्राकृतिक सम्बन्ध है।"[3] स्पष्ट है कि यौन अतृप्ति ही विभिन्न मानसिक विकृतियो को जन्म देती है। उसके लिए मनुष्य प्रेम का स्वाग रचता है तथा मानसिक सघर्ष मे उलझा रहता है।

यौनेच्छा स्वाभाविक है किन्तु उसके लिए सामाजिक बन्धनो का आवरण अनिवार्य है अन्यथा पशु की तरह मानव भी यौन का खुला प्रदर्शन करने लगेगा। शारीरिक भूख स्त्री-पुरुष को कहा तक हीन बना सकती है इसकी कल्पना 'अमृत और विष' उपन्यास का रमेश कर भी नही सकता था—"नशे मे धुत लालसाहब की मर्दानगी सहसा उबलकर एकदम बलात्कार की मुद्रा मे वहीदा बेगम पर आक्रमण कर उठी। रमेश क लिए सारा दृश्य असह्य हो उठा। वह एकदम उठ खडा हुआ और जाकर सकीना के सामने खडा हो गया, गोया अपनी आड करके वह एक कुवारी कन्या को निर्लज्जता के घिनौने दृश्य स बचा रहा हो।"[4] इस प्रकार के यौन विकृतिपूर्ण दृश्यो न समाज मे एक नवीन सघर्ष खडा कर दिया है तथा युवा वर्ग म यौन कुठाए उत्पन्न की हैं। इन सब दृश्यों व यौन विकृति के प्रति चेतना का आभास व वर्ग सघर्ष की स्थिति की प्रतिस्थापना को उपन्यासकार वर्ग-सघर्ष की प्रतिक्रिया मानता है। 'पतन' उपन्यास मे सरस्वती की यौन चेतना तथा प्रतिक्रिया ने स्थिति को बोझिल बना दिया है। यह

१. न्यायमूर्ति—श्री गोपाल आचार्य, पृ० १२८
२ बदलते रग—रजनी पनिक्कर पृ० ११७
३ तट के बन्धन—विष्णु प्रभाकर, १५७
४. अमृत और विष—अमृतलाल नागर, पृ० २८२

स्थिति यौन विकृति की परिचायक है—"सरस्वती आगे-आगे थी और रणवीर पीछे। द्वार पर जाकर वह रुकी—रणवीर भीतर चला गया। सरस्वती ने झपटकर भीतर से किवाड़ बन्द कर लिए, रणवीर चौंक उठा। सरस्वती अर्द्धनग्नावस्था में पलंग पर बैठ गयी "उसने रणवीर का हाथ पकड़ लिया।"[1] इसी प्रकार की स्थिति, जो स्त्री वर्ग की यौन विकृति की परिचायक है, 'तीन वर्ष' उपन्यास में भी चित्रित हुई है। यह यौन विकृति पाश्चात्य सभ्यता से ओत प्रोत भारतीय धरातल पर घटित दिखाई गई है। भारतीय नैतिक सामाजिक जीवन में इस प्रकार की विकृति स्वीकार्य नहीं। अतः संघर्ष की स्थिति को जन्म देती है। शरीर समर्पण के लिए अधीर वासनामयी परमा से रमेश को कहना पड़ा था—'परमा, तुम विनोद की हो।'"[2] और उसके हठ करने पर यह कहता हुआ तेजी के साथ नीचे उतर गया था—'तुम होश में नहीं हो परमा'''यह याद रखना विनोद मेरा मित्र है।'[3]

"स्त्री पुरुष और विवाह के सम्बन्ध में मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतन्त्रता देता है परन्तु उच्छृंखलता और गड़बड़, भोग को पेशा बना लेने का उसके साथ अपनी वासना के लिए व्यक्तियों और समाज की जीवन व्यवस्था में अड़चन डालने को वह भी भयंकर अपराध समझता है।'[4] इस प्रकार नग्न यौन प्रदर्शन की विकृत प्रक्रिया, अत्याचार, निम्न वर्ग पर ज्यादती आदि वर्ग संघर्ष को जन्म देते हैं। लेनिन भी भूख प्यास-नींद की तरह स्त्री पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध अनिवार्य मानता है। इसमें पूर्ण स्वतन्त्रता की भी स्वीकृति देता है किन्तु प्यास लगने पर गन्दे पानी की नाली में मुंह डालकर पानी पीने की स्वीकृति वह भी नहीं देता। 'न्यायाधिकरण' के महाराज सर्वथा नपुंसक है और अपनी तृप्ति के लिए ये विकृत यौन क्रियाओं के बहुत शौकीन हैं। ये बलवीरसिंह को धोखा देकर अपनी पत्नी के पास भेजते हैं। यह प्रतिक्रिया उनकी नपुंसकता व यौन विकृति की परिचायक है। डाक्टर राय विस्मय करते हैं तथा बयान पढ़कर स्तब्ध रह जाते हैं, कौन अपनी पत्नी के पास, स्वयं ही, किसी दूसरे को भेज सकता है? पूर्वी देशों विशेष रूप से मुसलमानी देशों में प्रचलित विकृत यौन क्रियाओं का चित्र उसमें था। नत्थूराम का कथन तो उसमें स्पष्ट था कि महाराज सर्वथा नपुंसक है और वह विकृत यौन

१ पतन—भगवतीचरण वर्मा पृ० १४४
२ तीन वर्ष—भगवतीचरण वर्मा पृ० १८०
३ वही, पृ० १८१
४ मार्क्सवाद—यशपाल, पृ० ६०

क्रियाओ के बहुत शौकीन हैं।"[1] नपुंसकता महाराज के लिए यौन-कुंठा की प्रतीक है क्योंकि दूसरों के साथ अपनी पत्नी को सम्भोग करते सामने देख उन्हें यौन तृप्ति मिलती है जो यौन विकृति का ही एक रूप है। मानसिक विकृति, सामाजिक संघर्ष को जन्म देती है। उपन्यासकार इस विकृति को वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रिया मानता है। 'न्यायाधिकरण' की मोहिनी को विवाहित जीवन से विरक्ति हो जाती है। कारण है उसके पति दास बाबू में यौन चेतना का अभाव। यह अपनी यौन तृप्ति डाक्टर का मुंह चूमकर करती है। इस प्रकार की प्रतिक्रिया भी यौन विकृति की परिचायिका है। यह प्रतिक्रिया मानसिक संघर्ष के द्वारा वर्ग-चेतना की प्रतीक बनती है—"मोहिनी डाक्टर के गाल पर फोमेन-टेशन करते-करते, डाक्टर का मुख चूमने के लिए झुकी ही थी कि बाहर से किसी के खांसने का शब्द हुआ। डाक्टर राय ने कह दिया, मोहिनी ! द्वार बन्द कर दो। अब तो घर में भी जासूस बैठे हैं।"[2] 'अधूरा स्वर्ग' का राजेन्द्र सुखदा और कामिनी दोनों से ही अपनी मनोविकृति का सम्बन्ध बनाये हुए है। यौन चेतना से मानसिक तृप्ति भी यौन विकृति के अन्तर्गत आती है। यौन चेतना द्वारा मानसिक तृप्ति वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रिया मात्र है जो उच्च तथा निम्न का भेद त्यागकर साम्य को प्रदर्शित करती है। "कामिनी का ध्यान आते ही उसको प्राप्त करने की इच्छा होती है और इसको पूजने की। कामिनी का सौन्दर्य सुषुप्त वासना को कोड़े मार-मारकर जागृत करता है।"[3] इसी उपन्यास में चतुरसिंह को अपना आत्मसमर्पण करके कामिनी मानसिक संघर्ष से ग्रस्त हो जाती है—"उसकी आत्मा का स्वर गूंज उठा—तुम वासनामयी हो। इसी भांति उस दिन भी तुम राजेन्द्र को वासना के पंक में ढकेल रही थी। छि, तुम साकार वासना हो।"[4]

इस प्रकार यौन विकृति मानसिक संघर्ष की परिचायिका एवं वर्ग-संघर्ष की जन्मदात्री है। नारी को कोमल की संज्ञा देकर नारी की वासना को जगाकर पुरुष ने उसे अग्निकुंड में झोंका है। यौन विकृतियां अन्ततः नारी-शोषण से मुक्ति का मार्ग हैं—"इन्द्रियों की तृप्ति की इस घिनौनी लालसा को मनुष्य ने यहां तक बढ़ाया है कि नारी को लाकर बाजार के कोठे पर भी बैठने को बाध्य किया। उसे नचाया। उसे प्रदर्शित किया।"[5] "पुरुष ने नारी के नख-शिख और यौवन

---

१ न्यायाधिकरण—गुरुदत्त पृ० ३०-३१
२ वही, पृ० ४४-४५
३. अधूरा स्वर्ग—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० १५
४. वही, पृ० १३५
५ समझौता—श्रीराम शर्मा राम, पृ० १०५

को शराब समझा, युग-युगों से वह उस शराब को पीता रहा और मदहोश बना रहा।"[1] परन्तु आज नारी यौन धरातल पर स्वच्छन्द है तथा शोषण-मुक्त है।

आलिंगन यौन तृप्ति का एक माध्यम बना है तथा यौन विकृति का एक कारक भी। 'गिरती दीवारें' उपन्यास का चेतन अपनी पत्नी चन्दा को आलिंगन-पाश में बांधकर यौन तृप्ति का परिचय देता है—"चेतन ने उसे आलिंगन में ले लिया। चन्दा ने एक बार अपनी अर्द्धनिमीलित, अलस, सजीली आंखों से उसकी ओर देखा और आलिंगन में चेतन ने ऐसा महसूस किया जैसे मीलों चक्कर लगाकर वह किसी भरे-पूरे सरोवर के किनारे घने वृक्षों की छाया में आ बैठा हो।"[2] यौन की अतृप्ति मानसिक संघर्ष को जन्म देती है जो विभिन्न प्रकार से कुत्सित रूपों में प्रकट होती है। यौन विकृतियां वे मार्ग प्रशस्त करती हैं, जिनसे मानसिक संघर्ष कभी घटता है तो कभी बढ़ता है। 'गुनाहों का देवता' उपन्यास में पाश्चात्य सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए हैराल्ड को अपनी भतीजी पर मुग्ध हुआ दिखाया गया है। उनके समाज में ऐसी परिस्थितियां मान्य हैं परन्तु चन्दर को बड़ा अटपटा प्रतीत होता है। वह अपने मानसिक संतुलन को बनाए रखने के लिए प्रश्न करता है—"लेकिन हैराल्ड अपनी भतीजी पर ही मुग्ध हो गया?" "तो क्या हुआ! यह तो सेक्स है मि० कपूर! सेक्स कितनी भयंकर शक्तिशाली भावना है यह भी शायद तुम नहीं समझते। तुम रूप की आग के संसार से दूर मालूम पड़ते हो।"[3] वासनात्मक पहलू से तंग आकर पम्मी के हृदय में विद्रोह की भावना जाग्रत होती है तथा वह अपने पति को तलाक दे देती है। वह विद्रोह वर्गगत संघर्ष की प्रतिक्रियास्वरूप ही उसमें जाग्रत हुआ। "मेरा पति मुझे बहुत चाहता था। लेकिन मैं विवाहित जीवन के वासनात्मक पहलू से घबड़ा उठी। मुझे लगा, मैं आदमी नहीं हूं बस मांस का लोथड़ा हूं जिसे मेरा पति जब चाहे मसल दे, जब चाहे......ऊब गयी थी।"[4] आलिंगन एक ओर यौन विकृति बनकर यौन चेतना को शान्त करता है तो दूसरी ओर मन को बेचैन बनाकर मानसिक संघर्ष को जन्म भी देता है—"और चन्दर ने पम्मी को अपनी बांहों में घेरकर, अपने वक्ष तक खींचकर छोड़ दिया। वक्ष की गरमाई चन्दर के रोम-रोम में सुलग उठी, वह बेचैन हो उठा।"[5] भारतीय समाज में विवाह यौन

१. समझौता—श्रीराम शर्मा राम, पृ० १०४
२. गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० १६५
३. गुनाहों का देवता—धर्मवीर भारती, पृ० ६६
४. वही, पृ० १००
५. वही, पृ० १०३

तृप्ति का साधन है। "जब तक शरीर है, तब तक भूख लगती है और भूख को शान्त करने का भी उपाय होना चाहिए।"[1] इस तरह पाश्चात्यो की अपेक्षा भारतीयो मे यौन सयम अधिक तथा यौन विकृतिया कम दिखाई देती हैं।

यौन विकृतिया सामन्तवादी युग मे बहुत पनपी। 'यथार्थवाद' के नाम पर मार्क्सवाद के दर्शन की दुहाई देकर स्वच्छन्दता के नाम पर कही-कही लेखक भारत की आस्था को कलुषित करने का प्रयत्न करते हैं। समाज इसको मान्यता नही देता फलत यह भावना सघर्ष को जन्म देती है। सामन्ती समाज मे ठाकुर लोगो के कई ठकुराणियाँ, गोलिया थी जो ठाकुर साहब की बगलगीर हुआ करती थी। इसके उपरान्त भी, कोई भी ग्रामीण सुन्दर बालिका उनकी हविस की शिकार बने बगैर नही रहती थी। 'दीया जला दीया बुझा' मे राधुडी सुन्दर ग्रामीण बालिका है। ठाकुर उसे विभिन्न प्रकार के कुचक्रो को रचकर अपनी वासना का शिकार होने के लिए बुलवा लेते हैं। ठाकुरो की गहन कामुकता यौन विकृति व व्यभिचार की परिचायिका है—" 'राधुडी!' ठाकुर सा धीरे से बोले। बोलने के साथ ही उनके मन की हविस आखो म चमक उठी। उनका विवेक वासना के उन्माद मे विस्मृत हो गया। ऐसा मालूम पडता था कि ठाकुर सा वृद्धावस्था मे और कामुक होते जा रहे हैं।"[2] साधारणत देखने मे आता है कि—"कुठित व्यक्ति अगर निराश और निर्बल न हो तो अधिक उत्साह से अपनी इच्छापूर्ति का प्रयत्न करता है।"[3] 'गिरती दीवारें' मे चेतन भी मनोनुकूल पत्नी न पाकर कई स्त्रियो के प्रति उन्मुख होता है। उसकी वासना इतनी प्रबल होती है कि उसे स्त्रियो की उम्र तथा सामाजिक स्थिति तक की चिन्ता नही रहती। अत यौनकुठा ही यौन विकृतियों को उभारती है तथा सघर्ष का रूप ग्रहण करती है—"सेक्स की समस्या का सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ विश्लेषण करनेवाले दो उपन्यास १९४६ म निकले—भारती का 'गुनाहो का देवता' और अश्क का 'गिरती दीवारें'। दोनो म लैंगिक विकारो का मन शास्त्रीय अध्ययन है।'[4] 'गुनाहा का देवता' की सुधा अच्छा वर पाकर भी कुठित रहती है। चन्द्र की दमित वासना उजागर होकर एक सामाजिक समस्या का रूप धारण कर लेती है। पम्मी वासनामय जीवन मे सतृप्ति न पाकर पति से माफी मागकर फिर वैवाहिक जीवन मे प्रविष्ट होने की कामना करती है। वह चन्द्र को लिखती है—"स्त्री बिना पुरुप के आश्रय के नही रह सकती। उस अभागी

---

१ गुण्ठन—गुरुदत्त, पृ० २६१
२ दीया जला दीया बुझा—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ८०
३. ऐब्नार्मल साइकोलोजी—पृ० ३३
४. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन—डॉ० गणेशन, पृ० २१०

को प्रकृति ने ऐसा अभिशाप दे दिया है'''मैं थक गयी हू । इस प्रेत-लोक की भटकन से'''मैं अपने पति के पास जा रही हू ।'[१]

कामवासना की प्रवृत्ति मानव के मानस मे उद्भूत भावो और क्रियाओ पर जो प्रभाव डालती है, उसका प्रकटीकरण विभिन्न संघर्षों के रूप मे होता है । वासना की प्रतिक्रिया अत्यन्त जटिल होती है । इन जटिल प्रतिक्रियाओ से जीवन मे अनेक उलझनें तथा विकृतिया आती हैं जो तरह-तरह के मानसिक संघर्षों को जन्म देती है। मानसिक संघर्ष ही वर्गगत चेतना को उभारते हैं। हरदम अशान्त चेतन की वासना उसके सम्पर्क मे आनेवाली प्रत्येक स्त्री की ओर उन्मुख रहती है । *यहा तक कि वह नौकर यादराम की पत्नी तक से प्रेम कर बैठता है परन्तु* किसी भी तरह उसे शान्ति नही मिलती --"बढ़ता हुआ मानसिक संघर्ष अत्यन्त विषादमय वातावरण उपस्थित करता है ।"[२] मानसिक संघर्ष द्वारा हिंसात्मक प्रेरणा का एक ज्वलन्त उदाहरण 'मगरमच्छ' म मिलता है । सोनेलाल दारोगा को अपना बयान देता है—"मैंने गड़ासे मे अपने भाई का सर काट लिया था। वह मेरी औरत से नाजायज ताल्लुक रखता था । मेरे मना करने पर भी जब वह नही माना तो मैंने उसका कत्ल कर दिया । आज अपनी औरत का भी कत्ल करके मैं सीधा आ रहा हू ।"[३] 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा यौन विकृति से ग्रस्त होते हुए भी एक सचेत नारी है । वह नील से कहती है—"'नही, नील ! अब तुम जाओ,' उसके शरीर की पुकार जैसे कोई यथार्थ वस्तु बन गयी थी और वह अपने पावों के नीचे इसका स्पर्श अनुभव कर रही थी । अगर नील न उसे छू भर लिया तो फिर वह शापग्रस्त की तरह कभी उस मायाजाल से नही निकल सकेगी ।'[४] उसके मस्तिष्क म सदैव संघर्ष पनपते रहते हैं। नौकरी, शादी का न होना आदि परिस्थितिया मानसिक कुठाए उत्पन्न कर देती है । 'दीया जला दीया बुझा' उपन्यास की ठकुराणी भी यौन अतृप्त है क्योकि ठाकुर सा के लिए अनेक ठकुराणिया तथा गोलिया हैं अत वे गोला लधिया के द्वारा अपनी यौन तृप्ति करना चाहती है । महलो के कुचक्रो म भी मानसिक संघर्ष वर्गगत संघर्ष का कारण बन जाता है। " 'लधिया, क्या तू मेरे इशारो को समझता है ? ''''''नही, तो सुन, ठाकुर सा मरे हृदय की आग को ठडी नही कर पाते और तू ठहरा एकदम लट्ठमारती । न संकेत को समझता है और न बोली का। इस वास्ते तुझे यहा बुलाया है ।'[५] " 'लधिया,

---

१ गुनाहों का देवता—धर्मवीर भारती, पृ० ३६०-३६१
२ गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क पृ० ५४२
३ मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० ४१०
४ पचपन खम्भे लाल दीवारें—उषा प्रियम्वदा, पृ० १३८
५ दीया जला दीया बुझा—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० ८१

तू बहुत चोखा है।'—मासल भुजाओ को पकडकर वह नजरें मिलाकर बोली—'तू बहुत तगडा है, तेरे अग-अग से लहू चूता है, पक्का मोट्यार है। और ठाकुर······?' ठकुराणी की आखो मे घृणा तैर उठी, 'एक तो बुड्ढे है, इस पर गाव की छोरियो और गोलियो पर चौबीस प्रहर अपनी नीयत रखते हैं। फिर तू ही बता, मैं क्या करू ?' "[1] 'मगरमच्छ' म "नारी का जादू मुझ पर चल गया। मेरे रोम-रोम मे उसने आग लगा दी। मैं अधा बन गया और फलस्वरूप मैंने उस बेचारी पर विषम अत्याचार किए। वासना का इतना उत्कट वेग मेरे अन्दर छुपा था इसका मुझे पता न था।"[2] इस यौन अत्याचार से वर्गगत चेतना उभरती है तथा शोषण से मुक्ति की दिशा ढूढने के लिए वर्ग-सघर्ष अनिवार्य हो जाता है।

नारी को पुरुष के अधीन सदैव से ही माना गया है। पुरुष वर्ग शोषक तथा नारी वर्ग शोषित वर्ग कहलाते है। यौन विकृतियो का नग्न प्रदर्शन करके पुरुष-वर्ग ने सदैव नारी का शोषण कर, उस पर अनेक अत्याचार किए हैं। अत्याचारो के विरुद्ध आवाज उठाना ही वर्गगत चेतना की प्रतिक्रिया कहलाती है। आज पुरुष अपनी प्रगति, पदोन्नति के लिए अपनी पत्नी को भी मोहरा बनाने लगे हैं। यही कारण है कि नारी-वर्ग अपने आपम सचेत होकर ऐसी स्थितियो से घृणा करते हुए उसके विरुद्ध आवाज उठाने म सक्षम हो गया है। 'ठुकराये हुए लोग' मे जयदेवी रोष म भरकर कहती है—"एक अपरिपक्व और मूर्ख व्यक्ति को किस प्रकार क्षमा कर पाऊगी, लेकिन उसकी मूर्खता की तो उस दिन हद हो गई जब अपने अफसर के बगले पर मुझे छोडकर ये चले आये थे। गोपाल ने ध्यान से जयदेवी के चेहरे को देखा था। क्षत-विक्षत हुआ मुह जगह-जगह से नुचा हुआ था और घावो पर लगी दवाई से उसका चेहरा बदरूप हो गया था।"[3] "क्षमा करना डार्लिंग, मैं साहब के ही जरूरी काम से चला गया था। तुमने साहब का मनोरजन कर दिया होगा।'[4] आज इन्ही परिस्थितियों ने मानसिक कुठा एव मानसिक सघर्ष को जन्म दिया है। 'यह पथ-बन्धु था' उपन्यास मे श्रीधर व दीदी का व्यवहार भी यौन विकृति का ही अग है—"उन्होने जल्दी से उसे चूम लिया और वे हथेलियो मे मुह छुपाकर बिस्तरे पर औंधी लेट गयी। श्रीधर की समझ मे कुछ नहीं आया। उसे चूमते समय

---

१ दीया जला दीया बुझा—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ८३
२. मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० ३३८
३ ठुकराए हुए लोग—गधीन्द्र उपाध्याय, पृ० १३५
४. वही, पृ० १३६

उन्होंने अपनी बडी-बडी आखें कैसे मूद ली थी।"[1] 'अंधेरे बन्द कमरे' उपन्यास मे शमी यौनाक्रान्त है। वह अपना ड्रेसिंग गाउन उतार देती है तथा कहती है—"मुझे अचानक ही एक जलन महसूस होती है। न जाने क्यो? शायद कॉफी बहुत पीने की वजह से···।" "मेरा मतलब है कि कई बार आदमी को इस तरह की जलन या घुटन का अनुभव होने लगता है। इसमे अस्वाभाविक कुछ नही है।"[2] "दीवारो ने जैसे बहुत पास आकर हमे ऊपर से ढक लिया और हम एक अंधेरे गुम्बज मे एक-दूसरे के स्पर्श मे खो गए। जब मेरे होंठ उसके होठो से हटे, तो मुझे लगा जैसे उसकी जडे कही रह गई हो।"[3] 'परपीडन' द्वारा शोषण यौन विकृति के अन्तर्गत आता है। आज नारी इस शोषण के प्रति विद्रोह करने के लिए सन्नद्ध हो गई है। नारी द्वारा किया गया विरोध अथवा विद्रोह वर्ग-सघर्ष की प्रथम सीढी है—"तुम्हारे लिए मैं सिर्फ औरत का शरीर हू, तुम्हारी वासना-पूर्ति का साधन, और तुम यह बर्दाश्त नही कर सकते कि मैं इससे ज्यादा कुछ और बन सकू। तुम खुद एक असफल आदमी हो इसलिए तुम मुझे भी अपनी तरह असफल बनाकर रखना चाहते हो। मगर मैं असफल चाहे रहूं, तुम्हारे घर मे अब नही रहूगी।"[4] नारी की यही भावना वर्ग सघर्ष को जन्म देती है। 'बदलते रग' उपन्यास की मालकिन व विवेक के सम्बन्ध भी यौन विकृतियो से पूर्ण हैं—"मालकिन ने विवेक की ओर इस सहलाती हुई दृष्टि से देखा कि उस दृष्टि को देखकर ही आशा को रोमाच हो आया। उसको लगा, जैसे उसकी सास रुक जायेगी।" राघवन की भूखी दृष्टि का विचार आशा को हो आया परन्तु मालकिन व विवेक के बीच जो आग लगी थी वह झुलसा देने वाली थी। "वासना का नगा रूप आज आशा की समझ मे आ गया। विवेक केवल दो-तीन वर्ष छोटा है मालकिन से। मालकिन उसके विवाह का कोई आयोजन नही कर रही।"[5]

यौन विकृति मे कोई नाता-रिश्ता, नैतिकता, मर्यादा नही रहती। यही कारण है कि सघर्ष की अनेकानेक स्थितिया उभरती चली जाती हैं। 'निशिकान्त' का कुमार यौनाक्रान्त है। वह बहुचर्चित पात्र है—'दुराचारी के सिर पर सीग नही होते।'[6] वह अनेक विधवाओ को पथभ्रष्ट कर उन्हे अपनी हविस का शिकार बनाता है। "मनोविज्ञान ने यह बात स्थापित कर दी है कि काम-

१. यह पथबन्धु था—नरेश मेहता, पृ० १०३
२ अंधेरे बन्द कमरे—मोहन राकेश, पृ० ४३१
३ वही, पृ० ४२६
४. वही, पृ० ४७६
५ बदलते रग—रजनी पनिकर, पृ० २३
६. निशिकान्त—विष्णु प्रभाकर, पृ० १६१

अभुक्ति प्राय चित्तविकृति का कारण बनती है।"[1] कामकुण्ठा के कारण अधिकाश पात्र चित्तविकृति से पीडित रहते है। 'भूले-बिसरे चित्र' मे गगाप्रसाद की चित्तविकृति, यौन विकृति की ही परिचायिका है—"गगाप्रसाद सतो पर टूट पडा—ठीक उसी तरह, जिस तरह एक हिंसक पशु अपने शिकार पर टूटता है। उसने सतो को आलिगनपाश मे कसते हुए कहा, 'आज नही बचने पाओगी सतो रानी! यहा कोई नौकर तुम्हारी मदद करने नही आ सकता और तुम्हारी चीख पुकार इस ग्रामोफोन की आवाज से उठकर दूर के खेमो तक नही पहुच पायेगी।"[2] 'वह फिर नही आई' उपन्यास मे ज्ञानचन्द भी विलासी जीवन मे आर्थिक व्यवस्था को ही महत्त्व देकर सघर्ष की स्थिति उत्पन्न करता है। 'रेखा' उपन्यास मे योगेन्द्रनाथ का प्रेम एक परिस्थितिजन्य विवशता है। एक ओर प्रोफेसर के प्रति कृतज्ञता की भावना और दूसरी ओर योगेन्द्रनाथ की शारीरिक भूख ने नैतिकता को कुठित कर दिया है—"रखा के रूप और यौवन का आकर्षण उसम मानसिक सघर्षपूर्ण स्थिति को जन्म देता है।"[3] योगेन्द्रनाथ की नैतिकता को कायरता की सज्ञा दी गई है। प्रेम के पागलपन को भी यौन विकृति की सज्ञा दी गई है। "पागलपन वही होता है जहा अतृप्ति हो, जहा हम अपने प्रेम को पूर्णरूप से प्राप्त न कर पायें।"[4] 'गर्म राख' उपन्यास के जगमोहन को शरीर की भूख की उपेक्षा स्वीकार्य नही। यही प्रवृत्ति आज की युवा पीढी के वर्गगत सघर्ष का प्रमुख कारण है। प्रेम हो या यौनकुठा, सभी समस्याए, अर्थ के अभाव मे मानसिक सघर्ष उत्पन्न कर वर्ग चेतना का उदय करती हैं। यौन अतृप्ति के साथ आर्थिक पक्ष सदैव जुडा रहता है। आर्थिक अभावो के कारण ही सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न होती है। वर्ग सघर्ष व्यक्ति की आर्थिक दुर्बलता को दूर करने की प्रेरणा देता है। महीपाल के कथन के द्वारा इसकी पुष्टि होती है—"ताल्लुकेदारी के वातावरण मे पलकर मेरे सस्कार भी राजसी हो गये थे। उनके लिए पिछले कुछ वर्षों से, जब मे मेरा आर्थिक जीवन सकटग्रस्त हो गया था, मेरे मन मे एक जबर्दस्त अतृप्ति उत्पन्न हो गई थी।"[5] अत यौन विकृति का सीधा सम्बन्ध 'अर्थ' से जुडा हुआ है। निम्न वर्ग आर्थिक अभाव म रहता है और वह यौन तृप्ति को ही अपने मनोरजन का एकमात्र साधन मानता है। एक ओर अभाव और दूसरी ओर पैसे का आधिक्य इस विकृति को और भी अधिक घृणित बना देता है। उच्च वर्ग पैसे के आधार पर

१. ऐब्नार्मल साइकोलोजी, पृ० २८६
२ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २३३
३ हिन्दी उपन्यासो में मध्यवर्ग—मंजुलता सिंह, पृ० ७६८
४. रेखा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ३२६
५. बूँद और समुद्र—अमृतलाल नागर, पृ० ६०२

नित्य नई लडकी से सम्भोग की इच्छा रखता है। उच्च वर्ग का ध्यान सदैव इसी ओर लगा रहता है कि किसी भी सुन्दर नारी का उपभोग किस भांति किया जाय ?

इस प्रकार आर्थिक अभाव व अर्थाधिक्य दोनो ही यौनकुंठा एव यौन विकृति को जन्म देते हैं। यौनकुंठित तथा अर्थ-अभावग्रस्त व्यक्ति सदैव मानसिक संघर्ष-पूर्ण अवस्था में रहते हैं और यही अवस्था आगे चलकर वर्गगत संघर्ष का रूप ग्रहण करती है। आर्थिक-अभावपूर्ण वर्ग की स्त्रिया अधिकारी वर्ग की यौन विकृति की पूरक बनती हैं। 'न्यायमूर्ति' म एव यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है— 'सुरेश ने देखा कि दो पुरुष और एक युवती अर्द्धचेतन अवस्था मे जमीन पर लुढके पडे थे। सब वस्त्र अस्तव्यस्त थे। युवती अर्द्धनग्न अवस्था मे थी। शराब की बोतलें और चार गिलासें जीप और उसके आसपास भग्न अवस्था मे बिखरे हुए थे।'[1] जीप का एक्सीडेंट हो जाने पर यह यथार्थ स्थिति का चित्र लेखक ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा व नील के प्यार को भी यौन विकृति का ही प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार यौन विकृति अनेक समस्याओ को जन्म देते हुए वर्गगत संघर्ष को उभारती है—"'मुझे हिलाना मत नही तो मेरी बिन्दी टेढी हो जायेगी।' 'तुम्हारा शृगार भी मेरे लिए बन्धन हो गया।' सुषमा ने मुस्कराकर कहा—'कहो तो मैं शृगार करना छोड दू ?' 'छोड दो, मुझे तो आराम ही रहेगा, कम से कम कमीज पर बिन्दी के दाग तो नही जायेंगे।' "[2] सम्पूर्ण वार्तालाप मे यौन की बू झलकती है। मानसिक विकृति के कारण ही सुषमा अपने-आपको मिटा देती है। 'तीन वर्ष' में प्रभा कहती है—"मैं तो यौवन की अराजकता मानने को तैयार नही हू।"[3] "यौवन का प्राण है प्रेम, और प्रेम मे नियन्त्रण होना असम्भव है।"[4]

अब प्रश्न उठता है कि क्या यौवन पर नियन्त्रण त्याग दिया जाय ? यौवन को अर्थ-पिशाचो के हाथो मे विकृत बनने दिया जाय ? अर्थाभाव की पूर्ति व जीवन को सही ढग से जीने के लिए निम्नवर्ग क्या चेष्टा करे ? सभी प्रश्नो का एक ही उत्तर आता है कि दोनो वर्गो मे साम्य की स्थिति उत्पन्न हो जावे क्योंकि अर्थाभाव एव अर्थाधिक्य दोनो से ही यौन विकृतियो के प्रदर्शन का खतरा टल जायेगा तथा समाज मे स्वस्थ वातावरण पनपेगा। अत वर्ग-संघर्ष में यौन

---

१ न्यायमूर्ति—श्रीगोपाल आचार्य पृ० ७९

२ पचपन खम्भे लाल दीवारें—उषा प्रियम्वदा, पृ० ५५

३ तीन वर्ष—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४१

४, तीन वर्ष—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४२

दोनो का एक है। यदि दैहिक कार्य रोक दिए जाए तो गुलाम क्षणभर भी जीवित नही रह सकता। शरीर का यह प्राकृतिक नियम है। वासना का वेग और वह फिर भी एक भूख है जिसे पूर्ण करना, मिटा देना, मनुष्य का एक सहज स्वभाव है।"[1] जब स्वाभाविक ढग से यौन भूख की सतुष्टि नही होती, तब सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यही सघर्ष की स्थिति मानसिक विकृति को जन्म देती है।

सास्कृतिक पतन

मार्क्स ने सस्कृति को मनुष्य की प्रगति से जोडकर उसका विश्लेषण किया है। मार्क्स न सस्कृति का सम्बन्ध मानवीय चेतना से जोडा है। सस्कृति का सम्बन्ध सामाजिक चेतना स है और य सम्बन्ध सामाजिक सत्ता पर अवलम्बित रहते हैं। इन्ही सम्बन्धो के आधार पर भौतिक उत्पादनो के क्षेत्र म प्रगति होती है जिस पर समाज का आर्थिक रूप निर्मित होता है। इसी आर्थिक ढाचे के आधार पर वैधानिक और राजनीतिक रूप खडा रहता है। अस्तु, जब तक कोई वर्ग या समूह प्रगति के पथ पर गतिशील रहता है, तभी तक उसकी सस्कृति प्रगतिशील रहती है अन्यथा सस्कृति शिथिल और पतनोन्मुखी हो जाती है। पतनोन्मुख सस्कृति ही वर्ग सघर्ष को जन्म देती है। 'जब सस्कृति अपनी उपलब्धियो के स्तर पर पहुचकर अपना विस्तार करती है तब सभ्यता का जन्म होता है और जब मूल चेतना को जगाती है तो सस्कृति का जन्म होता है।"[2] आज भारतीय सस्कृति पर पाश्चात्य सस्कृति का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। मार्क्स के अनुसार कोई सस्कृति यदि सामाजिक चेतना मे शोषण से मुक्ति दिलाने मे सहयोग प्रदान करके प्रगतिगामी होती है तो उस अपना लेना चाहिए, किन्तु आज सघर्ष है पाश्चात्य सस्कृति के अधानुकरण पर। पाश्चात्य सस्कृति के रग म रगकर भी एक वग भारतीय सामाजिक रूढिया का एकदम छोड नही पा रहा है। दोनो रूढियो स आक्रान्त महिलाआ के सघर्ष का जिक्र करते हुए 'घरौंदा' उपन्यास मे लेखक कहता है—'यह हिन्दुस्तान का अजीब वर्ग था, जहा स्त्रिया न पूर्व की थी न पश्चिम की। जहा आजादी और गुलामी का ऐसा विचित्र सयोग हुआ था कि न कोई आगे जाने की राह थी और न पीछे हटने को ही। अपने भीतर ऐसी कशमकश थी कि निरुद्देश्य दिन पर दिन समय का कुछ पुरानी रूढियो मे कट जाना आवश्यक सा था।'[1] इसी उपन्यास का पात्र

---

१ घरौंदा—रागेय राघव, पृ० २५०

२ भारतीय सस्कृति की कहानी—भगवतशरण उपाध्याय पृ० १२

भगवनी अभिजात्य वर्ग पर व्यग करता हुआ कहता है—"तुम लोग इतने कमीने हो कि अपने आप अपने पापो को पुण्य कहकर उसे पूजा का नाम देते हो। मैं तुमसे घृणा करता हू क्योकि तुम जो बडे घराने का ढाचा बनकर खडे हो तुम्हारे यहा स्त्रिया नही होती वेश्याए होती हैं।"[1] इस प्रकार दो सस्कृतियो के विचारो और मान्यताओ आदि मे अन्तर ही वर्ग सघर्ष को जन्म देता हैं।

मार्क्स के अनुसार प्रगतिगामी सस्कृति के तत्वो का समावेश करना हानिकारक नही, किन्तु समावेश उतना ही किया जाय जो भारतीय सास्कृतिक चेतना के अनुरूप हो तथा उन्नति का मार्ग प्रशस्त करे। वर्ग चेतना का उदय करे। शोषण से मुक्ति की दिशा दिखाए। पुरातन सस्कृति की एक झलक 'न्यायाधिकरण' मे दी गई है—"हमारी सस्कृति के अनुसार राज्य कानून नही बनाता, कानून धर्मशास्त्री निर्माण करते हैं। व जनसाधारण के मतदान स ही नही प्रत्युत अपनी धर्म एव योग्यता स बनते हैं।"[2] किन्तु आज भारतीय सस्कृति मे परिवर्तन हुआ है। कानून के स्रष्टा एव द्रष्टा सरकार ही होती है जो राज्य भी करती है। अत पुरातन व नवीन मान्यताओ का सघर्ष अभी भी समाज मे व्याप्त है। भारतीय सास्कृतिक मान्यताओ म परिवर्तन का दोष पुराने लोग युवा पीढी पर मढते हैं। 'अमृत और विष' का रूपन लाला पुरातन सस्कृति म विश्वास रखनेवाले हैं। अत वह मदिर बनवाने के विरोध को सहन नही कर पाते—"जी नही, इसम पोइण्ट ये हैं कि लडके दरअसल मदिर बनवाने का विरोध कर रहे हैं। यह सब कमिनिस्टी असर हैगा। डाक्टर आत्माराम के बल पर कूद रहे हैं। डाक्टर साहब बडे देशभक्त तो अवश्य हैं, पर विचार उनके नास्तिक हैंगे। यही ये लोग सीखे हैं। भाई साब, आज का मदिर नई बनन देंग, कल कहगे कि पूजा बन्द करो परसो धर्माचार बिगाडेंगे, जात-पात तोडेंगे, तो फिर भारतवर्ष म भारती सस्कृति का रही क्या जाएगा?"[3] इस उपन्यास म सास्कृतिक मान्यताओ के आधार पर सघर्ष का चित्रण हुआ है—पुरातनवादी वर्ग मे तथा नवयुवा पीढी मे। अन्तत प्रगतिगामी दिशा मे सास्कृतिक सघर्ष भी वर्ग सघर्ष को ही जन्म देता है। दूसरी ओर कुछ विद्वानो का यह कथन है कि यह वर्ग सघर्ष का ही परिणाम है कि भारत के सामाजिक जीवन म भी नवचेतना का उदय हुआ है। 'बारहदरी' म अपना अधिकार पाने के लिए युवा-वर्ग अनशन कर देता है। उन्हें तो यह सघर्ष बनिये की लोभवृत्ति

१. घरौंदा—रागेय राघव, पृ० २५६
२. न्यायाधिकरण—गुरुदत्त, पृ० ३५
३ अमृत और विष—अमृतलाल नागर, पृ० ३२७

के खिलाफ लडना था जो वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियास्वरूप था—"मैं अन्न से थोडे ही लड रहा हू चाची ! मैं तो बनिये बक्काल से लड रहा हू और वो भी जाति से नही, उनके पेशे की अति पर पहुची हुई आसुरीवृत्ति से लड रहा हू।"[1] रमेश ने कहा। इस प्रकार युवावर्ग में पुरातन सास्कृतिक मान्यता के आधार पर अर्थवादी शोषण के खिलाफ संघर्ष की स्थिति को सामने रखा है। भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण हुई प्रगति को ध्यान में रखकर युवावर्ग तसल्ली कर लेते हैं। 'अपने दुःख को अपने हृदय में छिपा रखो। समय स्वयं सबसे बडी औषधि है। आज जो पीडा असहनीय प्रतीत होती है वह पात्र भरने के साथ साथ समाप्त हो जायगी।'[2] भारतीय सास्कृतिक चेतना व एकता को बनाए रखने के लिए यह अनिवार्य है कुछ भारतीय सास्कृतिक तत्त्वों को विस्मृत न किया जाय, अन्यथा भारतीय संस्कृति पतन के गर्त में गिर जायेगी, जिस पर अन्य देश की संस्कृति का शासन हावी हो जायगा। 'झूठा सच' के प्रथम भाग में भारतीय सास्कृतिक तत्त्व संयम का उल्लेख हुआ है—'स्वाभाविक क्या है, स्वाभाविक पर नियन्त्रण जरूरी होता है। संयम ही संस्कृति है। व्यवहार रूढि बनकर संस्कृति कहलाता है।'[3]

एक ही काल खण्ड में विभिन्न सास्कृतिक दृष्टिकोणों तथा भिन्न मान्यताओं के कारण एक भारतीय का व्यक्तित्व अन्तर्विरोधी तत्त्वों से निर्मित हुआ है। 'सास्कृतिक पतन' में यही अन्तर्विरोध सहायक है। समाज का शिक्षित वर्ग प्रगतिशील तबका समझा जाता है और सामाजिक-सास्कृतिक मूल्यों की प्राण प्रतिष्ठा करता है। दूसरी ओर समाज का उच्च वर्ग, जो सामाजिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक नियन्त्रण रखता है तथा सामाजिक-सास्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा एवं सुरक्षा का दावा करता है, स्वयं अपने स्वार्थों के लिए उन्ही स्थापित मूल्यों का विध्वंस भी करता है जबकि शिक्षित वर्ग अनेक सामाजिक रूढियों को तोडने की कोशिश करता है। फलत समाज में वर्गगत संघर्ष व्याप्त हो जाता है—"ताकत जिन लोगों के हाथ में आ गई है, व मनुष्यता छोड चुके हैं, वे बदनीयत हैं, बेईमान हैं, बदतमीज हैं। चरित्रहीनता की हद हो गई है। हर तरफ लूट मची हुई है। जान माल, इज्जत-ईमान सभी कुछ खतरे में है।"[4] 'अंधेरे बन्द कमरे' का उपन्यासकार वर्ग-विभेद के आधार पर संस्कृति का उल्लेख करता है जो वर्ग संघर्ष का कारण बनी हुई है—"एक तरफ बडी-बडी, नई-नई योजनाओं

---

१ अमृत और विष—अमृतलाल नागर, पृ० ३२९

२ मधुरा स्वर्ग—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० १६८

३ झूठा सच (वतन और देश)—यशपाल, पृ० ३५४

४ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ७८

और नये प्रयोगों की जिन्दगी है जिनकी एक अपनी सस्कृति है। दूसरी तरफ बदबू और गन्दगी मे पलती हुई एक सीलनदार कोठरियो की जिन्दगी है, उनकी अपनी सस्कृति है।"[1] श्रीगोपाल आचार्य ने अपने उपन्यास 'न्यायमूर्ति' मे सस्कृतियो का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है। उनकी दृष्टि मे एक सस्कृति का पतन दूसरी सस्कृति को नव चेतना प्रदान करता है—'सस्कृतियो के जन्म और उत्थान के इतिहास का यदि हम अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि कोई भी सस्कृति अमर नहीं रही है। पृथ्वी के एक कोने म यह जन्म लेती है, विकसित होती है और फिर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। हमारी इस पृथ्वी पर उत्पन्न विभिन्न सस्कृतियो को हम नौ भागो म विभाजित कर सकते हैं। ईसा से चौंतीस सौ वर्ष पहले से बारह सौ पाच वर्ष पहले तक मिस्र एक सस्कृति का घर था। इसी समय म भारत में ईसा से पन्द्रह सौ वर्ष पहले भारतीय सस्कृति ने जन्म लिया जो ईसा से ग्यारह सौ वर्ष पहले तक इस भारत-भूमि मे फलती फूलती रही। ईसा से तेरह सौ वर्ष पहले चीन म एक सस्कृति का उदय हुआ जो ईसा की दूसरी सदी तक प्रकाश मे रही। इसी तरह यूनान मे यूनानी सस्कृति ने ईसा से चार सौ वर्ष पहले दम तोड दिया।"[2] आज हमारे देश मे पश्चिमी सस्कृति और सभ्यता का दौर-दौरा है, किन्तु यह सस्कृति भी अमर नहीं है। इस सस्कृति ने यात्रिक युग का श्रीगणेश किया था और इसी महानता मे ही इसका सर्वनाश भी होगा। प्रत्येक सस्कृति की भिन्नता एव अपनी विशेषता होती है। इसके उदय, उत्थान और पतन के विधान तथा उसकी प्रक्रिया को कोई नही रोक सकता—'कारण, ये सब प्राकृतिक हैं। उदय मे उत्थान और पतन उसी प्रकार निहित हैं जिस प्रकार जन्म मे मृत्यु...।"[3] इस प्रकार विभिन्न सस्कृतियो का समावेश, विभिन्नता, उत्थान और पतन वर्ग-सघर्ष को जन्म देते हैं। भारतीय सस्कृति मानव सस्कृति है, अमर सस्कृति है। हमारा कोई ऐसा धर्म नहीं है जो मानवता के विरुद्ध हो। इसी एक मूल्य और आस्था पर हम जीवित हैं किन्तु पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति के प्रभाव ने हमारी आस्था तथा मूल्यों की जडो को खोखला कर दिया है और सघर्ष को जन्म दिया है। एक ओर हम आस्था रखते हैं—हिन्दू सस्कृति मे, दूसरी ओर उसे रूढ़िवाद कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं। सस्कृति के तत्त्वो के आधार पर किए गए सघर्ष व शोषण के विरुद्ध यह वर्ग, जो सर्वहारा-वर्ग का प्रतीक है, अपनी आवाज उठाता है। मार्क्स के अनुसार पूजीपतियों का तख्ता पलटने व

---

१ अधेरे बन्द कमरे—मोहन राकेश, पृ० २६६
२ न्यायमूर्ति—श्रीगोपाल आचार्य, पृ० २३६
३. वही, पृ० २३७

वर्गों को मिटाने के लिए, मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त करने के लिए, सर्वहारा वर्ग क्रान्तिकारी के हित व दृष्टिकोण ही उसकी संस्कृति की अभिव्यक्ति हैं।

धार्मिक और नैतिक पतन

धर्म समाज की आर्थिक व्यवस्था को भी प्रभावित करता है। धर्म परम्परागत जीवन जीने के ढंग का समर्थन करता है। यही कारण है कि सामाजिक संगठनों में दृढ़ता बनी रहती है। जो आचरण तथा व्यवहार परम्परागत रूप से चले आ रहे हैं उन्हें उचित माना ही जाता है। सभी धर्मों का सम्बन्ध नैतिकता से होता है। 'प्रत्येक धर्म की एक आचार संहिता होती है जिसका आधार नैतिक भावना ही है।'[१] नैतिक भावनाएं समाज में निरन्तर बदलती रहती हैं, जैसे बाल विवाह किसी जमाने में आदर्श माना जाता था तथा जो माता पिता ऐसा नहीं कर पाते थे उनके व्यवहार को अनैतिक माना जाता था। लेकिन आज इस विचारधारा में परिवर्तन हो गया है। यह आवश्यक नहीं कि सभी धर्मों में नैतिक भावनाएं एक जैसी हों। जैन धर्म में सन्ध्याकालीन भोजन इसलिए अनिवार्य मानते हैं क्योंकि रात्रि में भोजन करने पर जीवहत्या न हो, परन्तु इस्लाम धर्म में पशुओं की बलि देना उनके धर्म का आवश्यक अंग है। अतः बदलते हुए समाज के साथ नैतिक आचारों का कोई न कोई संशोधित रूप अवश्य होता है। आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के कारण धार्मिक विश्वासों को आघात पहुंचा है। पश्चिमी समाज में धार्मिक सत्य और वैज्ञानिक सत्य में अन्तर किया जाने लगा है। विज्ञान ने बुद्धिवाद को जन्म देकर धर्मान्धता व रूढ़िवादिता को खुली चुनौती दी है। 'कार्लमार्क्स ने यह मत व्यक्त किया कि धर्म के कारण ही समाज में शोषण और अत्याचार बढ़ता है। शोषित वर्ग अपने शोषकों का विरोध तभी कर सकते हैं जबकि धर्म का प्रचार कम हो। जिस देश में धर्म की प्रधानता अधिक है वहां निर्धनता तथा सामाजिक कुरीतियों की आवश्यकता है।'[२] धर्म के आधार पर किया गया शोषण ही वर्ग चेतना का उदय करता हुआ वर्ग संघर्ष का कारण बनता है। वैज्ञानिक प्रामाणिकता के आधार पर जब धार्मिक व नैतिक मान्यताओं में अनास्था उत्पन्न होती है, तभी परिवर्तन आते हैं। उस अवस्था को पतन की अवस्था कहते हैं। यही अवस्था दो वर्गों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करती है।

'अमृत और विष' उपन्यास में कहा गया है— नैतिकता इस बात में नहीं

---

१ भारतीय सामाजिक संस्थाएं—डा० के० के० मिश्र पृ० ६
२ वही, पृ० १९

कि आदमी कितना सच्चा, त्यागी और तपस्वी व प्रामाणिक है। प्रश्न यह है कि व्यक्ति को अपनी इच्छाओ, आकाक्षाओ और आचार-व्यवहार को गति देने मे मुक्ति कितनी मिलती है। प्रामाणिकता का आधार झूठा और बेकार है।"[1] क्योकि बदलते समाज मे नैतिक तथा धार्मिक मान्यताओ की प्रामाणिकता का आधार भी बदल जाता है। आज "आस्था, प्रार्थना, धार्मिक भावना, फिर अनास्था, खीझ और विद्रोह मे बदल गई है।"[2] धार्मिक अन्धविश्वासो के आधार पर हिन्दू मुसलमान समाज ने एक दूसरे का शोषण किया है।

"सन् २३, २८ के दगे के दिनो म सनातनियो ने अनेक सैयदो के आलो पर हनुमान की मूर्तिया स्थापित करके एक मिथ्या भय से हटा दिया···"[3] "हमारे आसपास चारो ओर झूठे और निकम्मे धर्म के सडे पानी मे कीडो की तरह बिलबिलाने वाला हिन्दू-मुसलमान समाज अब भी मौजूद है। यह धर्म-भेद, रग-भेद आदि झूठी आस्थाए आखिर कब और कैसे टूटेंगी?···सच्ची आस्थाओ को जमाने से टूटेगी।'[4] अत सत्य और झूठ म विभेदीकरण प्रामाणिकता के आधार पर ही किया जा सकता है। बुद्धिजीवी वर्ग इस ओर सजग हैं। फलत समाज मे चहु ओर वर्गगत सघर्ष दिखाई देता है—"धार्मिक शोषण व नैतिक पतन की ओर सचेत होकर सर्वहारा-वर्ग का पात्र किशन 'अधूरा स्वर्ग' उपन्यास मे कहता है—"गन्दी नाली मे बिलबिलाते हुए जीवन बिता देना मनुष्य का धर्म नही है। कल को मेरी सन्तान तो कम से कम इस जिन्दगी म न सडे। इन्सान का जीवन बिता सके, यही वास्तव मे मेरी कामना है।'[5] इस प्रकार की चेतना ही वर्ग-शोषण से मुक्ति के लिए वर्ग सघर्ष की स्थितिया उत्पन्न करती है। "कल के समाज की मान्यताओ के सहारे तो आज का जीवन व्यतीत नही किया जा सकता।"[6] आज जिस राह की स्वीकृति समाज ने दी है वह कल अमान्य थी। मतभेद यही उपस्थित होता है। भारतवर्ष मे लोग अपने आचरण की चिन्ता न करते हुए ज्यादातर दूसरो के आचरण की चिन्ता करते है। यही चेतना सघर्ष व शोषण का कारण बनी हुई है। 'उडे पन्ने' का नायक इसी आधार पर प्रतिमा से कहता है कि मेरी नैतिकता-सम्बन्धी मान्यताए वे नही हैं जो साधारणत प्रचलित हैं। मैं दूसरो के वैयक्तिक जीवन मे, आचरण मे दखल देना और उस

---

१ अमृत और विष—अमृतलाल नागर, पृ० ५४६
२ वही, पृ० ३१५
३ वही, पृ० ४७०
४ वही, पृ० ४७१
५ अधूरा स्वर्ग—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० १७२
६. वही, पृ० १३६

पर राहजनी करना ठीक भी नही समझता।"[1] अत बदलती मान्यताओं से समझौता स्थापित करना सामाजिक चेतना को विकसित करता है। धर्म और नैतिकता के आवरण को विच्छिन्न करते हुए 'समझौता' उपन्यास की रानी कहती है—" 'तब मनुष्य विवेक का दम्भ क्यो करता है ? नैतिकता का प्रदर्शन क्यो ?' वह बोली—'यह तो छल है। दम्भ है। धार्मिक और तार्किक मनुष्य इस खाल के पीछे कोरा राक्षस और पशु है।' "[2] "जब स्त्री लोलुप और शराबी मनुष्य अपना विवेक खो बैठता है तब उसका पतन होता है।"[3] 'राई और पर्वत' का रामभरोसे भी धर्म की अराजकता की ओर संकेत करता हुआ कहता है—"तू नही जानती धर्म का वह रास्ता है, जिस पर चलकर आदमी की बरबादी के सिवा कुछ नही मिलता।"[4] टूटती धार्मिक आस्था ने समाज में 'वर्ग संघर्ष' को जन्म दिया है। 'झूठा सच' उपन्यास मे जीविका धर्म तथा परलोक-धर्म का उल्लेख किया है। बजरंग नौकरी को जीविका-धर्म समझता था तथा खान-पान, छुआछूत को परलोक-धर्म। इन दोनों में सामंजस्य नही था, फलत संघर्ष ने जन्म लिया। 'हिन्दुओं से अधिक अहंकारी, असहिष्णु लोग दुनिया में कोई नही। इन्हें जाने अपनी किस पवित्रता का घमण्ड है ? हजारों वर्ष सब लोगों से मार खाते रहे फिर भी अपने-आपको सबसे पवित्र जरूर समझेंगे।"[5] यह 'पवित्रता' तथा धार्मिकता का ढोंग उनमें अराजकता की स्थिति उत्पन्न किए हुए है तथा शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना व अधार्मिक कृत्य समझते है।

फलत हिन्दू समाज मे धर्म के नाम पर किए गए शोषणों की संख्या अनगिनत है। जरूरत है अन्धास्था के प्रति जागरूकता प्रदान करते हुए संघर्ष की ओर उन्मुख करने की। यह तभी सम्भव होगा जब शोषित वर्ग मे चेतना का उदय हो। 'गिरती दीवारें' उपन्यास मे कहा गया है—"धर्म पूंजीवाद अथवा शोषण का ही दूसरा रूप नही है क्या ? चेतन ने सोचा। फिर उसे खयाल आया कि आज से पहले उसे यह सब क्यो महसूस नही हुआ ? वह स्वयं मंदिर में जाकर श्रद्धा के फूल चढाता रहा, घंटे-घडियाल बजाता रहा और मंदिर की देहरी पर मस्तक नवाता रहा है, किन्तु मन्दिरों में निरीह जनता का जो शोषण हो रहा है और जिस प्रकार मंदिर पूंजीवाद के स्तम्भ बन हुए है, इस बात की ओर उसका ध्यान क्यो नही गया ?"[6] इस प्रकार चेतन मे शोषण के विरुद्ध वर्ग-

१ उड़े पत्ते—सरस्वती सरन कैफ, पृ० ५३
२ समझौता—श्रीराम शर्मा 'राम' पृ० ३२
३ वही पृ० ६६
४ राई और पर्वत—रांगेय राघव, पृ० ४२
५. झूठा सच (वतन और देश)—यशपाल, पृ० ३०८
६ गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ३२४

चेतना' का उदय होता है। चेतन व नीला के प्रेम मे बाधक तत्व है नैतिकता जो अनेक प्रकार के सघर्षो को जन्म देती है। चेतन का हृदय—"बाह्य सयम, समाज के प्रतिबधो और नैतिकता के आवरण के नीचे दबा हुआ हृदय घायल पक्षी की भाति छटपटा रहा था।"[१] "धर्म, नैतिकता, समाज, विवाह ये सब दीवारें जो यथार्थ मे उसकी चाहना के घेरे मे थी, कल्पना मे गिर गयी।"[२] धार्मिक एव नैतिक पुरातन मान्यताओ तथा नवीन दृष्टिकोण मे बहुत अन्तर है। हमारा समाज अभी भी पुरातन रूढिवादी मान्यताओ के घेरे मे बधा हुआ है। फलत नवीन मान्यताओ पर पूर्ण आस्था नही रखता। अत विपरीत दृष्टिकोण शोषित वर्ग मे 'वर्ग सघर्ष' की प्रेरणा देकर क्रान्ति की ओर कदम बढाने के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। भगवतीचरण वर्मा न अपने उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' मे पाप-पुण्य तथा धर्म की मीमासा की है—"धन-दौलत से मोहब्बत हरेक इन्सान को होती है, और होता ऐसा है कि यह धन दौलत का देवता हमारे असली देवता को खा जाता है। यह जो धन का देवता होता है, इसके पुजारियो का भी एक मजहब होता है। मजहब का कुदरती गुण है फैलना, दूसरो को अपने मे शामिल करना। इस रुपये-पैसे के मजहब का आदमी काफी खतरनाक हो सकता है।"[३] इस मीमासा द्वारा उपन्यासकार ने पूजीपतियो के मजहब की व्याख्या की है जो धर्म, अर्थ आदि बन्धनो मे जकडकर शोषण की प्रक्रिया मे निरन्तर लगे रहते हैं।

धार्मिक पाखण्डो से मुक्ति दिलाने के लिए 'आर्य समाज' ने बहुत-से क्रातिकारी कदम उठायें हैं— निशिकान्त' उपन्यास म पण्डित जी के उपदेश तथा प्रवचन मे 'ईश्वर और धर्म' का विवेचन किया गया है—"ईश्वर एक है, वह निराकार, सर्वव्यापक और अन्तर्यामी है। स्वर्ग और नरक नही हैं। देवी-देवता ढोंग हैं, मूर्ति-पूजा पाखण्ड है। पुजारी लोग अपना पेट भरने के लिए भोली जनता को बहकाया करते हैं। ईश्वर कर्मों का फल देता है।"[४] इसी भाति पण्डे-पुरोहितो ने धर्म के नाम पर निरन्तर भोली जनता को लूटा है, किन्तु बदलते विश्वासो तथा वैज्ञानिक प्रगति के आधार पर अब जनता मे शोषण के विरुद्ध चेतना का उदय हो चुका है—"अपने स्वार्थ के लिए दूसरो को कष्ट पहुचाना हमने सीखा है।"[५] यही हमारा धर्म और हमारी नैतिकता है—'आदर्श,

---

१. गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ५७२
२ वही, पृ० ५९२
३. भूले-बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४०
४. निशिकान्त—विष्णु प्रभाकर, पृ० ५१
५. वही, पृ० २५३

मर्यादा, धर्म, आचरण इन सबने मिलकर मनुष्य को नपुंसक बना दिया है।"[1] हिन्दू जाति में ऊंच नीच की भावना, पाप-पुण्य की भावना जड़ों में समाहित है। इसी भावना के द्वारा शोषण निरन्तर होता रहा है। जब तक हिन्दू जाति इन पापों की जड़ आप ही नहीं खोद डालेगी समाज में शोषण चलता ही रहेगा। वर्ग-संघर्ष द्वारा धार्मिक व नैतिक विधिविधान में परिवर्तन लाना आवश्यक है। पुरानी पीढ़ी के लोग नवीन पीढ़ी को अनास्थावादी कहते हैं क्योंकि वे तर्क एवं प्रामाणिकता के आधार पर धर्म के संबंध में जो तत्व मान्य है उसे ही मानते हैं। यही विचार पुरातन एवं नयी पीढ़ी के मध्य संघर्ष की स्थिति पैदा कर देता है। 'सामर्थ्य और सीमा' में रानी मानकुमारी जो पुरातन विचारधारा की हैं, उन्हें ससुर की बातें अच्छी नहीं लगती। वे कहती हैं—'तुम नहीं समझोगे ससुर! तुम्हारे पास संस्कार की कमी है। तुम आज के युग की उपज हो, जिसमें विश्वास नहीं, आस्था नहीं।'[2]

२०वीं शताब्दी में भारतीय समाज और संस्कृति एक तीव्र संक्रमणात्मक अवस्था से गुजर रहे हैं। पुरानी और नयी पीढ़ी के विचार संस्कार और मान्यताओं में इतना वैषम्य कभी नहीं रहा, जितना कि आज है। वैषम्य की स्थिति नयी पीढ़ी में संघर्ष व घुटन की स्थिति फैलाती है। सामाजिक, धार्मिक व नैतिक रूढ़ियों से मुक्त करने के लिए एवं दासता से छुटकारा दिलवाने के लिए वर्ग-संघर्ष अनिवार्य है। धर्म और समाज के इस गठबन्धन में परिवर्तन अपेक्षित हो जाता है, क्योंकि समाज स्वाभाविक रूप से प्रगतिशील होता है। अतः समयानुसार उसके संगठन और व्यवस्थाओं में परिवर्तन लाना भी आवश्यक हो जाता है— भारतीय जीवन दर्शन तथा सांस्कृतिक मूल्य भी धर्म से प्रभावित रहे हैं।'[3] धर्म से विलग होकर सांस्कृतिक मूल्यों की परिकल्पना भी भारतीय समाज में नहीं की गयी। धर्म संस्कृति का अंग है। अतः संस्कृति का बाह्य परिवेश, जिसे हम सभ्यता और व्यवस्था की संज्ञा देते हैं वह भी समाज को प्रगतिशील बनाने में कम महत्त्वपूर्ण नहीं। अतः सभी प्रगतिगामी तत्वों में परिवर्तन अपेक्षित है। यह परिवर्तन वर्ग संघर्ष के द्वारा ही संभव है, जिसमें एक व्यवस्था के विध्वंस के साथ साथ नवीन व्यवस्था में साम्य भाव लाने की सामर्थ्य होती है। 'बूंद और समुद्र' उपन्यास में जनजीवन अन्धविश्वास और भ्रान्तियों में जकड़ा हुआ है।......इस समय ऐसा लगता है कि इस देश में, पृथ्वी पर केवल व्यक्ति रहता है, समाज नहीं। आज मनुष्य अपने दिल में कहीं न कहीं यह अवश्य अनुभव करता है कि वह गलत जा रहा है। इसलिए व्यक्ति को अपने नजर ओट

१ निशिकान्त—विष्णु प्रभाकर, पृ० २६३
२ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १३४
३ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० २४०

कर दूसरे व्यक्ति का आत्मविश्वास जगाना चाहिए। जैसे बूद से बूद जुडी रहती है। लहरों से लहरें। लहरो से समुद्र बनता है, इस प्रकार बूंद मे समुद्र समाया रहता है। "व्यक्ति की सामाजिक चेतना जगकर ही रहेगी।"[1] 'घरौंदे' उपन्यास म शिक्षा के माध्यम से सामाजिक चेतना लाने का प्रयास किया है—"हमारी भावनाए हमारे सस्कारो पर निर्भर हैं। हमारे सस्कार हमारी सदियो की रूढियो मे पले हैं किन्तु यदि सस्कार की कलई चढाकर यह शिक्षा कवल जेब घडी की तरह जेब म रख ली जावे तो सर्वथा व्यर्थ है।'[2] निश्चय ही 'सास्कृतिक धार्मिक तथा नैतिक पतन' समाज की नवीन व्यवस्था के प्रति चेतना प्रदान करता है। दो वर्गों मे वैषम्य की स्थिति उत्पन्न कर वर्ग सघर्ष की भूमिका तैयार करता है। अत परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था मे वर्ग सघर्ष के द्वारा ही वर्गगत साम्य व वैचारिक साम्य सभव है।

प्रारम्भ मे मोक्ष की प्राप्ति के लक्ष्य ने भारतीय समाज म धर्म के कारण अभौतिक सस्कृति के प्रति रुचि बनाये रखने म सहयोग दिया। धार्मिक भावना की बहुलता के कारण अकर्मण्यता को भी प्रोत्साहन मिला, किन्तु आज भौतिक सस्कृति के विकास के कारण मनुष्य की मनोवृत्तिया भी वैसी ही परिवर्तित हो गयी हैं। आज मानव रूढिवादिता, कट्टरता, अधविश्वास, मिथ्या पौराणिक मान्यताओ से ठगा नही जा सकता। वह आज सामाजिक न्याय के लिए प्रयत्नशील है, जो वर्गगत विषमता, अन्याय व शोषण से मानव को मुक्त कर सके तथा सभी वर्गों को समानता का अधिकार प्राप्त करा सके। यही कारण है कि धर्म का सामाजिक महत्त्व अब कम होता जा रहा है। क्या नैतिक है और क्या अनैतिक? इसका सबध धर्म से न मानकर सामाजिक विचारधारा से सबधित किया जाना चाहिए। जब धर्म सामाजिक नियमो की अवहेलना करने लगते हैं तो उनकी स्थिति बडी विषम हो जाती है तथा सभी अवस्थाए एव मान्यताए पतनोन्मुख होने लगती है। फलत समाज मे वर्ग सघर्ष की स्थितिया उभर आती हैं। श्री भगवतीचरण पाणिग्रही ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से धर्माडम्बर का खण्डन करते हुए लिखा है—'अन्य को ठगने के लिए ईश्वर भक्ति सबसे उपयोगी है। ... "इतिहास से मालूम पडता है कि अनेक स्थानो म राष्ट्रशक्ति ने ही नूतन धर्म प्रचार का भार ग्रहण किया है। कारण, राष्ट्र शक्ति एक श्रेणी के समग्र समाज पर आधिपत्य विस्तार करने के सिवा और कुछ नही।'[3] पर सस्कृति-ग्रहण की समस्या भी वर्ग-सघर्ष को जन्म देती है—'जब दो सस्कृतिया एक-

---

१ बूद और समुद्र—अमृतलाल नागर, पृ० ६०४-६०६
२ घरौंदा—रांगेय राघव पृ० ६६
३ अर्थ और परमार्थ—लेख (१९३६ इस सितम्बर) —भगवतीचरण पाणिग्रही पृ० १४

दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करना शुरू कर देती हैं। कभी कभी यह देखने में मिलता है कि इस प्रक्रिया में एक संस्कृति दूसरी संस्कृति की अवधारणा को पूरी तरह से स्वीकार कर लेती है। इस विधि को पर-संस्कृति-ग्रहण (Acculturation) कहते हैं।'[१] मजूमदार के अनुसार "जब सांस्कृतिक तत्व प्रसारित होते हैं, तब किसी एक संस्कृति के प्रभाव में दूसरी संस्कृति का सम्पूर्ण जीवन परिवर्तन की प्रक्रिया में होता है, उसे हम पर-संस्कृति-ग्रहण की संज्ञा देते हैं।"[२]

भारतीय समाज को वैज्ञानिक दृष्टि से व्यवस्थित करने का श्रेय अंग्रेजी शासन को भी दिया जाता है। अंग्रेज अपने साथ नयी प्रौद्योगिकी, संस्थाएं, ज्ञान, विश्वास और मूल्य लेकर आये थे—'अतः भारतीय समाज में फैली कुरीतियां जैसे सती-प्रथा, बालिका हत्या, मानव बलि, दास-प्रथा का विरोध उल्लेखनीय है।'[३] अतः पश्चिमीकरण व आधुनिकीकरण ने मानवतावाद का विकास किया, मानवतावाद के दोनों तत्वों समानता तथा धर्म-निरपेक्षीकरण का विकास किया, अधिकारों के प्रति निम्न वर्ग में चेतना का उदय किया। वैसे तो भारत अभी भी अपनी प्रथाओं का अनुगामी है परन्तु अब उसमें इतनी कठोरता नहीं रही। प्रो० श्रीनिवास के अनुसार—'परिवर्तन की सबसे स्पष्ट विशेषता है कि नई प्रविधि—कुर्सियां, मेज, स्टेनलेस स्टील के बर्तन। इन्हें लोग इसलिए अपना रहे हैं, क्योंकि ये अधिक प्रतिष्ठासूचक तथा आधुनिकीकृत हैं।'[४] अतः पश्चिमीकरण का प्रभाव धार्मिक आर्थिक, नैतिक व सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों पर पड़ा है। जाति व्यवस्था की बुराइयों को जातिवाद व साम्प्रदायिकता का विकास तथा राष्ट्रीय चेतना का उदय, आत्मसम्मान तथा समता के सिद्धान्त आदि सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है। इस प्रेरणा से भारत प्रभावित हुआ है। किन्तु आज भी समाज में आधुनिकीकरण के प्रभाव की अपेक्षा भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में रूढ़िवादिता के संस्कार सर्वत्र फैले हुए हैं। अशिक्षा और अंधविश्वास में उलझा ग्रामीण वर्ग-चेतना-विलुप्त है। वह परिवर्तन में विश्वास नहीं करता। शहरी जीवन में भी कुछ रूढ़ संस्कार अपनी जड़ जमाये हुए हैं जिनको छोड़ने अथवा तोड़ने में भविष्य के अनिष्ट का भय रहता है। फलतः समाज में दो विरोधी भावनाओं के मध्य संघर्ष मचा रहता है। धार्मिक आस्था के आधार पर निम्न-

---

१ भारतीय सामाजिक संस्थाएं—के० के० मित्र, पृ० २७१

२ 'An Introduction to Social Anthropology'—Madan and Mazumdar, P 27

३ Social Change in Modern India—M N. Shrinivas, P 47

४. वही, पृ० ५३

वर्ग का शोषण संघर्ष की भूमिका तैयार करता है जो वर्ग संघर्ष का ही परिणाम है। "मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर व्यक्ति जाति, धर्म तथा वर्ग की प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोही व समाज में होने वाले सभी संघर्षों में विषमता को देखने का प्रयत्न करता है।"[१] प्रस्तुत संदर्भ में सुप्रसिद्ध कथाकार श्री भगवतीचरण वर्मा का मत है—"चरित्र और ईमानदारी ये सब आर्थिक परिस्थितियों के बदलते पहलू हैं। देश की आर्थिक व्यवस्था अगर सभल जाए तो लोग सम्पन्न हो जाए। और अगर लोग सम्पन्न हो जाए तो यह बेईमानी, लूट-खसोट गायब हो जाए। मानव-समाज में जब तक इस अभाव और असमानता से भरी हुई आर्थिक विषमता रहेगी, तब तक जिसे मध्य वर्गवाले धर्म कहते हैं और ईमान कहते हैं उसके अजीब-गरीब रूप हम लोगों को देखने को मिलेंगे।"[२]

साम्प्रदायिक संघर्ष

हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता की भावना का अनेक उपन्यासों में उल्लेख मिलता है। साम्प्रदायिक भावना ही आगे चलकर साम्प्रदायिक संघर्ष का कारण बनी—"भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिक स्थिति सदैव से सिर-दर्द रही है और अंग्रेजी सरकार ने इसे तूल देकर अपना अस्त्र बनाया था।" साम्प्रदायिक संघर्ष वर्गगत संघर्ष की प्रतिक्रिया ही है। वर्ग संघर्ष निम्न वर्ग को शोषण से मुक्ति की चेतना प्रदान करता है। जब दो वर्गों के हित टकराते हैं तथा आपसी समझौते की सभी गुंजाइशें समाप्त हो जाती हैं तब वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। कांग्रेस और लीग का समझौता सभव न होने पर ही साम्प्रदायिक आग भड़कती है तथा साम्प्रदायिक दंगे एवं अत्याचार प्रारम्भ हो जाते हैं। झूठा सच' उपन्यास में साम्प्रदायिक स्थिति के संबंध में कामरेड असद कहता है—'हिन्दू मुस्लिम मुहल्लों में जहर फैलाया जा रहा है। मुल्ला मस्जिदों में रो-रोकर पैगम्बर के नाम से जिहाद के फतवे दे रहे हैं। हथियार इकट्ठे करने की योजना बन रही है।'[३] इस संघर्ष की स्थिति का नियन्ता अंग्रेजों को माना गया है। 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास के अनुसार—'हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग की स्थापना करके खड़ा कर दिया है।'[४] इसी उपन्यास का पात्र करहतुल्ला दोनों समाजों की सांस्कृतिक भिन्नता एवं विचारों की टकराहट को ही वर्ग संघर्ष की प्रतिक्रिया मानता है। उसका कथन है—'हम दोनों का समाज अलग है, हम लोगों की कल्चर अलग-अलग है। हिन्दू समाज

१ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक, पृ० १६
२ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ८३-८४
३ झूठा सच (वतन और देश)—यशपाल पृ० ७७
४. भूले-बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४२०

एकमान्तायटेशन की नींव पर कायम है। मुसलमानों के समाज की नींव ग्रटरहुड पर कायम है।"[1] 'अमृत और विष' उपन्यास में साम्प्रदायिक संघर्ष एवं अत्याचार को हिन्दू समाज की दृढ़ता का प्रतीक माना है। संघर्ष ही एक ऐसी स्थिति है जब सब एक व दृढ़ होकर कार्य करते हैं— देवदत्त जी, मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दू धर्म दृढ़ हो गया है। उसकी आयु बढ़ गई है और इससे अलौकिक प्रबलता प्राप्त हो गई है।[2] 'न्यायाधिकरण' उपन्यास में बताया गया है कि हिन्दू और मुसलमान गुटों के परस्पर लड़ने से सरकार व राजा को नवीन शक्ति मिली—'१९१७ में कांग्रेस ने मुसलमानों का पृथक् प्रतिनिधित्व माना, मुसलमानों की साम्प्रदायिकता तथा शुद्ध मजहबी मांग, खिलाफत को कांग्रेस के कार्यक्रम में सम्मिलित किया।"[3] यही कारण था कि देश के बटवारे के साथ ही अंग्रेजों के शोषण से मुक्ति मिली। एकता को बनाये रखने के लिए तथा शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए यह अनिवार्य है कि दोनों वर्गों की स्थिति को कायम रखा जाय। दोनों वर्गों का विचार-वैषम्य भी वर्ग संघर्ष को जन्म देता है।

भारत में साम्प्रदायिकता का सूत्रपात १९वीं शताब्दी से हुआ। १८२० में भारत में सईद अहमद बरेलवी ने मक्का से लौटकर जिहाद आन्दोलन प्रारम्भ किया जिससे सिक्खों और मुसलमानों में वैषम्य तथा वैमनस्य की आग भड़की। १८५७ में सर सैयद अहमद खाँ के अलीगढ़-आन्दोलन ने इस वैमनस्यता को बढ़ावा दिया। अंग्रेजों की प्रेरणा से मुस्लिम एंग्लो ओरियण्टल डिफेन्स ऐसोसियेशन की स्थापना की गई। '१९०५ में बंगाल के बटवारे से हिन्दुओं में बड़ी उत्तेजना फैली। ३० दिसम्बर, १९०६ में मुहम्मद अली जिन्ना ने ढाका में मुस्लिम लीग की नींव रखी।[4] इसी दृष्टि से सन् १९२१ में देश में हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े हुए। झूठा सच प्रथम भाग में देश का भविष्य लीग और कांग्रेस की प्रतिद्वन्द्विता के कांटे पर तुला हुआ था। फलतः साम्प्रदायिक संघर्ष फैलता गया। लाहौर उसे भूलकर सीनेट हाल के मामले में मुसलमान प्रोफेसर और हिन्दू विद्यार्थियों के झगड़े में उलझ गया था। परीक्षा में नकल करने पर आपत्ति साम्प्रदायिक मामला बन गया।'[5] हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक-संघर्ष ने ही एकता के सूत्र में बंधने की प्रेरणा दी ताकि परतन्त्रता से मुक्ति मिल सके। गुलाम अथवा शोषित वर्ग को संगठित होकर संघर्ष करने की प्रेरणा वर्गगत

१ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ६६१-६२
२ अमृत और विष—अमृतलाल नागर पृ० ६०३
३ न्यायाधिकरण—गुरुदत्त, पृ० १२६
४ भारतीय सामाजिक संस्थाएं—द्वारकाप्रसाद गोयल, पृ० ५४
५ झूठा सच (वतन और देश)—यशपाल, पृ० ५१

सघर्ष से ही मिली। मार्क्स की वर्ग-सघर्ष की सकल्पना की प्रतिक्रिया ही साम्प्रदायिक सघर्ष के रूप मे भारत मे प्रकट हुई। 'झूठा सच' (भाग प्रथम) मे मुसलमानो के द्वारा की गयी सघर्ष की तैयारिया हिन्दुओ मे वर्गगत चेतना का उदय करती है—"मुसलमान मरे तो खूब तैयारी कर रहे हैं। पानी के नल कटवा-कटवाकर बन्दूकें बनवा रहे हैं। मुसलमानियो ने भी छुरे रख लिए हैं। हमी लोग सोये हुए हैं।"[1] गरीब, मुसलमान पहले बना, बाद मे मजहब के नाम पर लडा। मुसलमानो ने ही हिन्दुओ को लूटा हो ऐसी बात नही—"हिन्दू सैकडो वर्षों से इन लोगो को लूटते-निचोडते चले आ रहे हैं। नही तो एक ही जमीन में रहने वालो मे अमीरी-गरीबी का इतना फरक क्यो होता? पजाब की सब जायदाद हिन्दुओं के हाथ मे क्यो चली जाती।"[2] "हम मुसलमान अपनी हस्ती नही मिटने देंगे। हिन्दुस्तान मे वही पार्टी हुकूमत करेगी जो मुसलमानो के हक की हिफाजत करेगी, जो इज्जत के साथ रखेगी। हम मुसलमान एक हैं।"[3] "तुम्हे अपने को हिन्दू कहने मे शर्म नही आती है? तुम तो छोटे-छोटे फिरको मे बँटे हुए हो, बरहमन, बनिया, ठाकुर, अहीर, चमार, । और जब इनसे ऊपर उठे तो इण्टरनेशनल बन गए।"[4] मुसलमानो मे एकता थी तथा हिन्दुओ मे जातिगत, धर्मगत और विचारगत भिन्नता थी। फलत एकता के सूत्र मे आबद्ध न होने के कारण परतन्त्रता की बेडिया जकडे रहे। किन्तु हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष द्वारा दोनो वर्गों में वर्गगत चेतना का उदय हुआ। इसी वर्गगत चेतना ने विदेशी शासन से उन्हे मुक्ति प्राप्त करने के लिए सघर्षरत रखा। मुसलमानो मे वर्गगत चेतना के उदय होने के साथ-साथ वे अपने ऊपर किए जाते रहे शोषण के खिलाफ आवाज उठाने लगे थे—"हिन्दुओ की गुलामी करने के लिए तो हम हिन्दुस्तान मे नही रुके हैं। इस गुलामी से तो हम मर जाना ज्यादा पसन्द करेंगे। "आपने कभी यह भी सोचा है कि हिन्दुस्तान मे मुसलमान कितने गरीब है? उनके हाथ मे कोई रोजगार नही। हम लोगो पर विश्वास नही किया जाता, हमे गैर समझा जाता है।"[5] इसी उपन्यास मे मुसलमानो के द्वारा मस्जिद के निर्माण का विरोध हिन्दू-वर्ग करता है क्योकि "मस्जिद मुसलमानो के साम्प्रदायिक सगठन के लिए एक सुरक्षित स्थान है। वहा फतवे दिए जाते हैं। वहा हिन्दुओ के खिलाफ विष-वमन किया जाता है। वहा पाकिस्तान के एजेण्ट ठहरते हैं। वहा उत्तेजनापूर्ण भाषण दिए जाते है। कुछ *लोगो का कहना है कि*

---

१ झूठा सच—यशपाल, पृ० ६६
२. वही, पृ० ४८०
३ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १२६
४. वही, पृ० १३०
५. वही, पृ० १२७

वहा पर शस्त्रास्त्र भी वितरित करने की व्यवस्था है।"[1] कम्यूनिस्टों ने वर्ग-संघर्ष लाने के लिए मुस्लिम वर्ग को अपने में मिलाने का प्रयत्न किया। उनका विचार था कि आर्थिक दृष्टि से गरीब मुसलमान शीघ्र ही कम्युनिस्ट बन जायेंगे क्योंकि हिन्दू-वर्ग मे तो जन्म से ही पूंजीवाद की वैयक्तिक मनोवृत्ति होती है। अत मुसमलमानों की ओर इस प्रयत्न को आजमाया गया तथा प्रतिफल इस प्रकार प्राप्त हुआ—"मुसलमान मे भेदभाव की एक मजहबी प्रवृत्ति है जो भयानक रूप से हिंसात्मक है, सीमित और संकुचित है। कम्युनिज्म का आधार-मूल सिद्धान्त है विश्व बन्धुत्व। कम्युनिज्म जाति, धर्म, नस्ल के विभेदों को स्वीकार नहीं करता। और मुसलमानों का समस्त अस्तित्व उसका मजहब है।"[2] अंग्रेजो के भारत आगमन ने इस साम्प्रदायिक संघर्ष को अधिक पनपाया अन्यथा सौ वर्ष के अन्दर ही हिन्दू मुस्लिम-समस्या का अन्त हो गया होता। 'भूले बिसरे चित्र' मे उपन्यासकार कहता है कि—"इस समस्या को सुलझाने म हम गरीब तीन सौ साल से उलझे रहे है। जब यह समस्या सुलझने पर आ रही थी, उसी समय यहा अंग्रेज आ गए। हिन्दू कायर थे, पत्नी-मुग्ध थे, उस समय थोड़े-से मुसलमान हिन्दुस्तान में घुसे। धीरे-धीरे सारा हिन्दुस्तान मुसलमानों के आधीन हो गया।'[3] वर्ग-चेतना हिन्दू तथा मुसलमानों का भेद, गरीब-अमीर का भेद नहीं स्वीकारती। अत गरीब-अमीर का भेद मिटाकर साम्यवाद लाने व वर्ग-विभेद मिटाने के लिए लूटमार हो जाना एक स्वाभाविक घटना हो जाती है—'मुसलमान गरीब है, अभावग्रस्त है, जबकि हिन्दुओं के पास पैसा है। ऐसी हालत मे लूटमार हो जाना एक स्वाभाविक बात होगी।"[4] वर्गगत चेतना का एक उदाहरण और प्रस्तुत किया गया है "प्रेमशकर, हजार रुपये महीने की आमदनी तुम्हे काटती थी जो तुम फैजाबाद छोड़कर भाग आए ?" "हजार रुपये तो मुझे नहीं काटते थे, लेकिन बेईमानी और गुलामी ये दोनों मुझे बुरी तरह काट रहे थे।'[5] दोनों वर्गों मे संघर्ष की शक्ति थी ? एक सत्ता को लालायित था तो दूसरा कई अन्य कारणों से विवश। आखिर देश का बटवारा हो गया। 'न्याय-मूर्ति' उपन्यास म इस चेतना के परिणाम का वर्णन किया गया है—'बटवारे के समय जो नरसंहार हुआ वह इन्सान के लिए शर्म से मर मिटने की बात थी, फिर भी शान्ति नहीं हुई।"[6] मार्क्स भी एकता व संगठित चेतना द्वारा वर्ग-

---

१ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १०७
२ वही, पृ० १०७
३ भूले-बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ३२७
४. वही, पृ० ३७१
५. वही, पृ० ४६७
६. न्यायमूर्ति—श्रीगोपाल आचार्य पृ० १९८

सघर्ष की प्रेरणा देता है। उपन्यासकार का भी कुछ ऐसा ही विचार है— अशिक्षा, अनभिज्ञता, रूढियो की दासता, दगे हिंसा, बेकारी, असामाजिकता, विषमता, धर्मान्धता सभी उस एक मुक्त प्रवाह की अवरुद्धि के कारण हैं। इसलिए चाहता हू कि भारत मे जीवन की एकरसता का स्थापन हो। प्रत्येक व्यवहार मे साम्यता झलके और यह तभी सभव है जब विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तो को एक भाषा मे, एक रस मे सयोजित कर दिया जाय।[1] धर्म के नाम पर यह सघर्ष अधिक पनपा क्योकि हिन्दू लोग मुसलमान को म्लेच्छ समझते थे। उनके हाथ का पानी पीना भी अधर्म समझते थे। 'अधेरे बन्द कमरे' मे इसी प्रकार के सघर्ष का जिक्र किया गया है। "घर के हिन्दू किराएदार उससे यू भी खार खाये थे और मुसलमान का छुआ पानी पीने म उनका धर्म जाता था, इसलिए व उसे या उसकी लडकी को आगन के पम्प से पानी नही भरने देत थ। बुड्ढा इबादत अली तो इस पर सब्र कर जाता था, मगर उसकी लडकी को यह बरदाश्त नही था। वह कई बार जान बूझकर ऊपर के पम्प को छोडकर नीचे के पम्प से पानी भरने चली जाती थी जिससे सारे घर मे कोहराम मच जाता था।"[2] इबादत अली की लडकी वर्गगत चेतना का प्रतीक है। वह अपना शोषण बर्दाश्त नही कर पाती। 'तमस' उपन्यास मे भी साम्प्रदायिक सघर्ष का उल्लेख मिलता है। यह सघर्ष शोषक-वृत्ति के कारण समाज के चारो ओर फैला हुआ है— 'इन दोनो हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच तनाव पाया जाता है। दगा फसाद का डर है।"[3] हिन्दू वर्ग या मुसलमान वर्ग आपस मे एक-दूसरे के खिलाफ षड्यन्त्र रचते है। व एक-दूसरे को दुश्मन समझते हैं तथा हिंसात्मक वारदातें करते हैं। "हम नही चाहते कि हमारी ताकत का पता दुश्मन को चले कि सिखमगत गुरुद्वारे म इकट्ठी हो चुकी है। यह नीति की बात है।'[4] हिन्दू-मुस्लिम के सघर्ष ने वर्षों से सोई हुई शोषण के चक्र मे निरन्तर पिसती हुई जनता मे चेतना का उदय किया और वर्ग सघर्ष की प्रेरणा प्रदान की। हिन्दू-मुस्लिम भी सगठन द्वारा एकता बनाय रखने की चेतना इसी सघर्ष द्वारा प्राप्त करते हैं तथा परतत्रता की बेडियो से छुटकारा पाने का प्रयत्न करते हैं— 'हमे यह नही भूलना चाहिए कि हम लोगो को मुसलमानो के खिलाफ भडकाया जा रहा है, और मुसलमानो को हमारे खिलाफ भडकाया जा रहा है। हम झूठी अफवाह सुन सुनकर एक दूसरे के खिलाफ तैश मे आ रहे हैं। हम अपनी तरफ

---

१ न्यायमूर्ति—श्रीगोपाल आचार्य, पृ० १६१
२ अधेरे बन्द कमरे—मोहन राकेश पृ० ३४
३ तमस—भीष्म साहनी, पृ० ४१
४, वही, पृ० १६६

से पूरी कोशिश करनी चाहिए कि गाव म मुसलमानों के साथ मेलजोल बनाये रखें।[1] निशिकान्त म सघर्ष गत क्रियाओं व भावनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है— हर कहीं हिन्दू है मुसलमान है पर मनुष्य आज कहीं नहीं है।[2] हिन्दू मुस्लिम सघर्ष म कई हिंसक घटनाए भी घटी— सबसे पहले लाला प्रेमनाथ की दुकान म आग लगा दी। यह कपड़े के सबसे बड़े व्यापारी थे। लुटेरे सजग हो उठे और शहरों के अन्य भागों म दगा आरम्भ हो गया। मुसलमानों ने पुकार की — काफिर बढ़ आ रहे हैं उनको रोको नहीं तो हम बर्बाद हो जायेंगे।[3] आज हिन्दू मुसलमानों म अन्तश्चेतना जाग्रत हो चुकी है। धर्म प्रेम की प्रतिस्पर्धा म वे दोनों एक दूसरे से आगे बढ़ने म चिन्तातुर थे।

श्री रागेय राघव के शब्दों म हिन्दू और मुसलमान अपनी रूढ़ियों के पाप से दबे हैं और हम भी उनम हो हैं। हमारा गर्व व्यर्थ है। कुत्ते को सोफे पर बिठाने से साम्य नहीं होता। हमारी भलाई करने की आड म जिन्होंने हमसे मनुष्यता छीन ली म उनसे विद्रोह करती हू।[4] घरौंदे उपन्यास की पात्र विद्रोह को बढ़ावा देती है। निशिकान्त उपन्यास म रियाज कहता है कि मेरी समझ म हिन्दू मुस्लिम झगड़े का कारण धर्म नहीं है। वह आर्थिक सवाल ज्यादा है। हिन्दू हमेशा सरमायादार रहे हैं और गरीब मुसलमान को हमेशा हिन्दू सरमायादार से डर रहता है।[5] गरीब व अमीर के भेद को पाटने व वर्ग भेद को मिटाने आर्थिक विषमता को मिटाने म यह सघर्ष वर्ग सघर्ष की प्रेरणा बनता है। इस प्रकार यह समस्या अब अंश से पूर्णत जुड़ी है जबकि पहले धार्मिक आर्थिक व जातीय पहलुओं से जुड़ी थी। सघर्ष द्वारा वर्गभेद मिटाना अवश्यम्भावी हो जाता है— भेद मिटाने चाहिए यह मैं मानता हू परन्तु भेद से अधिक भेद के कारणों को मिटाना आवश्यक है।[6] यह भी वर्गभेद को समाप्त कर वर्गविहीन समाज की स्थापना की प्रेरणा देता है। एक चबूतरे के बटवारे के कारण इस उपन्यास म साम्प्रदायिक सघर्ष छिड़ जाता है— हिन्दू लोग चबूतरा को अपनी सम्पत्ति मानते थे। वे इन पर कथा कहते हैं। मुसलमान कहते थे—क्योंकि हम इस पर नमाज पढ़ते हैं अत यह हमारा है। इस बात को लेकर अनेक बार अनेक निर्दोष प्राणियों का रक्त बहाया

१ तमस—भीष्म साहनी पृ० १६७
२ निशिकान्त—विष्णु प्रभाकर पृ० ७
३ वही पृ० ११
४ घरौंदा—रागेय राघव पृ० २७७
५ निशिकान्त—विष्णु प्रभाकर पृ० ११०
६ वही पृ० ११५

गया ।"[1] अत बटवारे द्वारा धन सचय की मनोवृत्ति पूजीवादी मनोवृत्ति है। यह वृत्ति वर्ग सघर्ष को जन्म देती है। हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक सघर्ष धर्म-अर्थ के शोषण की आड मे खेला गया एक भीषण हत्याकाण्ड था। मार्क्स की प्रेरणा के आधार पर साम्प्रदायिक सघर्ष वर्ग सघर्ष के लिए भूमिका प्रदान करता है तथा मानव शोषण से मुक्ति के लिए प्रयास करता है। श्री सक्सेना के शब्दों में—'धर्म और सम्प्रदाय तो मगरमच्छों की दष्ट्रा है। वे देखने म ही सुन्दर और चमकीले लगते हैं। अन्तत वे भी उनके उदर भरने के औजार हैं।"[2]

नारी-शोषण

'नारी-शोषण' सदैव से भारतीय समाज मे होता रहा है। विभिन्न समस्याओ से आक्रान्त नारी-वर्ग सदा आश्रय की खोज करता रहा तथा विभिन्न अत्याचारो को विवशतापूर्ण झेलता रहा। शोषण की चरम सीमा के काल नारी-वर्ग मे विद्रोह-वृत्ति का उदय हुआ है तथा यही वृत्ति आगे चलकर वर्ग सघर्ष की उत्प्रेरक बनी। नारी-शोषण मे अनेक तत्त्वो ने योग दिया है।

नारी और पुरुष की वर्गगत चेतना

पुरुष की स्वार्थ दृष्टि मे नारी सदैव उपभोग की वस्तु रही हैं। 'समझौता' उपन्यास मे धनवान व्यक्तियों द्वारा नारी वर्ग के आर्थिक शोषण की पुष्टि की गई है—"इनमे एक बडे अधिकारी कुछ धनवान हैं। वे सभी नारी के भूखे हैं। उसने कहा जिसके पास पैसा है, वही अनर्थ करता है। सचमुच सभी पापो की जड पैसा है।"[3] इस शोषण मे नारी का अपना भी दोष है—'क्योकि वासना के हाथों नारी ने अपने को स्वत बेचना स्वीकार किया।"[4] "नारी ने अपने को सजाया। पुरुष की कोमल व दुर्बल इच्छाओं को जगाकर उसे वासना के अग्निकुण्ड मे झोका है। नारी का यह पाप युगयुग से चला आ रहा है।"[5] किन्तु इन सब बातो के बावजूद भी अर्थ नारी-शोषण का प्रमुख तत्त्व रहा है तथा वर्गसघर्ष का कारण भी है। पुरुष की स्वार्थपरता और आत्मदमन के प्रति व्यग करती हुई 'घरौंदे' उपन्यास की नादानी कहती है—"तुम स्त्री को दास बनाना चाहते हो! हमारी चोख मे तुम्हारा समाधान है, हमारी हसती सिसक

१. निशिकान्त—विष्णु प्रभाकर, पृ० २३
२. मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० ३२७
३. समझौता—श्रीराम शर्मा राम, पृ० ६१
४. वही, पृ० १०४
५ वही, पृ० १०५

में तुम्हारी विजय। हम अपराध सहती हैं स्वयं रो लेती हैं।"[1] इस प्रकार पुरुष के शोषण और दमन चक्र के प्रति आज नारी सजग है। बूंद और समुद्र में कन्या के विचार सज्जन के सामन्ती संस्कारों को कड़ी ठेस पहुंचाते हैं। कन्या अपने विचारों के द्वारा नारी वर्ग का विद्रोह प्रकट करती है — स्त्री कोरी भोग की वस्तु नहीं है।[2] नारी होना कन्या एक सामाजिक अभिशाप मानती है क्योंकि पुरुषों को नारी का स्वामी बनना ही पसन्द है। स्त्री पुरुष आम तौर पर एक दूसरे की इज्जत नहीं करते हैं। स्त्री आम तौर पर आर्थिक दृष्टि से पुरुष की आश्रिता है। उसका व्यक्तित्व स्वतंत्र नहीं।[3] इसी आधार पर पुरुष नारी का शोषण करता है। स्त्री वर्ग की चेतना का प्रतीक बनकर कन्या विद्रोह की आग उगलती है— पुरानी मदिरा घना ने उसे दासी और वेश्या बनाया अब वह मात्र वेश्या है। इस समानता का युग अभी दूर है।[4] कन्यापक्ष की सुधा तीन वर्ष की प्रभा आदि नारियाँ प्रगति की सूचक हैं। काल मार्क्स नारी की प्रगति को भी वर्ग संघर्ष के रूप में देखते हैं। नारी वर्ग का विभिन्न आन्दोलनों में भाग लेने पति की आर्थिक आश्रितता होने से मुक्ति प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने आदि में वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त का पोषण करने का प्रयास उपन्यासकारों ने किया है। स्वप्नमयी की अलका कहती है कि 'पुरुष का प्रेम अधिकार की वासना से हमेशा मदहोश रहता है। मैं नारी हूं व धन निर्माण करना और स्वयं उसमें फंस जाना मेरा स्वभाव है।[5] किन्तु आवश्यकता पड़ने पर समाज से टक्कर लेने की सामर्थ्य भी हमारे वर्ग में है। यही भावनाएं वर्ग संघर्ष की प्रेरणा देती हैं। प्रभा जैसी उच्चवर्गीय नारी की उपेक्षा से अभिशप्त रमेश (तीन वर्ष उपन्यास) समस्त नारी जाति के प्रति विद्रोही हो जाता है उच्च वर्ग की नारी के दृष्टिकोण को एक वेश्या का दृष्टिकोण मानता है— तुम लेने को तैयार हो देना तुम नहीं जानती। हमारे घर पर आश्रित होकर भी तुम हमारी गुलामी करने को तैयार नहीं हो बल्कि उल्टे समानाधिकारों की दुहाई देकर और विशेषाधिकारों की आड लेकर तुम पुरुष को गुलाम बनाना चाहती हो। तुम पुरुष को अपना शरीर देने के बदले में पुरुष का धन लेती हो।[6] इस प्रकार पुरुष नारी पर विभिन्न प्रकार से शोषण करता आया है।

---

१ घरौंदे—रांगेय राघव पृ० २६५
२ बूंद और समुद्र—अमृतलाल नागर पृ० १८१
३ वही पृ० ४३७
४ वही पृ० ४७६
५ स्वप्नमयी—विष्णु प्रभाकर पृ० ४६
६ वही पृ० ६०
७ तीन वर्ष—भगवतीचरण वर्मा २५५

आर्थिक शोषण

पूजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने समाज मे आर्थिक शोषण को चरम सीमा पर पहुचा दिया है। हम इतिहास के निर्माण मे जिस 'वर्ग-सघर्ष' तथा धार्मिक, दार्शनिक व सास्कृतिक सघटको का योग देखते हैं, उनके मूल मे भी अर्थ-व्यवस्था ही है। अर्थ व्यवस्था की विषमता ही वर्ग सघर्ष को जन्म देती है। वस्तु की उत्पादकता की दृष्टि से समस्त मानव-समाज दो भागो म विभक्त हो जाता है—एक उत्पादनकर्त्ता, दूसरा उपभोक्ता। उत्पादनकर्त्ता अपनी सारी शक्ति लगाकर वस्तुओ का उत्पादन करता है, किन्तु उपभोक्ता अपना एकाधिकार जमाकर उत्पादक-वर्ग के हृदय मे असतोष उत्पन्न कर देता है। यह असतोष अन्तत आर्थिक शोषण के कारण ही उत्पन्न होता है। फलत समाज मे वर्ग सघर्ष की अग्नि को प्रज्वलित रखना आवश्यक है। "जहा सघर्ष नही है—शोषित वर्ग शोषको से भयभीत हैं, वहा शोषित वर्ग को चेतना और प्रेरणा प्रदान कर सर्वहारा-वर्ग की क्रान्ति के लिए तैयार किया जाना आवश्यक है।"[1] जैनेन्द्र के 'कल्याणी' और 'सुखदा' उपन्यासो मे आर्थिक समस्याओ का पूर्ण विस्तार मिलता है। 'कल्याणी' का डा० असरानी धनलोलुप व्यक्ति है। वह पत्नी को पैसा कमाने की मशीन समझता है और उसका शोषण करता है—"मैं तो मशीन हू। खट-खट, खट खट रुपया बनाती हू। हर काम रुपया मागता है। है न? यह दुनिया का सच है तब मैं रुपया बनाऊगी, लाऊगी, मागूगी, बटोरूगी।"[2] पति आर्थिक लोलुपता के कारण उसके शरीर का सौदा करता है तो वह विक्षुब्ध हो जाती है—'मुझे तिल तिलकर बेचना चाहते हो—सो वह तो हो ही रहा है। आखिर मास तक मेरा बिक जायेगा तब भी मैं इनकार नही करूगी।'[3] आर्थिक शोषण के प्रति महिलाए उसे चेतना प्रदान करती हैं तथा परिवार मे 'सघर्ष' की उत्प्रेरणा देती हैं—"तुम तो सब तरह से योग्य हो, फिर पति की धौस क्यो सहती हो? उठो, चाहे अलग होकर खुदमुख्तारी के साथ डाक्टरी चलाओ।"[4] 'सुखदा' उपन्यास म—"आर्थिक विषमता के बीच पति का अकुशलित व्यवहार सुखदा को उच्छृखल बना देता है। इतना ही नही अपनी आर्थिक स्थिति मे परिचित रहते हुए भी वह अपव्ययी हो जाती है। अर्थाभाव के कारण अपनी स्थिति मे रहना उसे हीनता का द्योतक प्रतीत होता है।"[5]

---

१ प्रगतिवादी काव्य साहित्य—कृष्णलाल हस, पृ० १४
२ कल्याणी—जैनेन्द्रकुमार, पृ० १४३
३ वही, पृ० ५८
४ वही, पृ० १२
५ हिन्दी उपन्यासो मे मध्यवर्ग—डा० शकुन्तला सिह, पृ० १६२

'सुखदा' धनिक वर्ग की नारी है। अत वह अपने से नीचे वर्ग से घृणा करती है तथा आर्थिक शोषण का कारण बनती है। उसका पति कान्त इस शोषण के प्रति विद्रोह प्रकट करता हुआ कहता है—"तुम बेटी अमीर की हो पर गृहिणी अमीर की नही हो। सो घर के हिसाब से चलना चाहिए।"[1]

सामाजिक जीवन मे अर्थ अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। उच्च वर्ग के सामने तो अर्थाभाव का प्रश्न नही उठता, किन्तु मध्य वर्ग व निम्न-वर्ग इस समस्या से सदैव आक्रान्त रहते हैं। फलत वर्ग सघर्ष की स्थितिया उत्पन्न हो जाती है। अर्थ के आधार पर प्रेम भी खरीदा और बेचा जा सकता है। "आर्थिक सघर्ष के कारण उत्पन्न हुई चेतना को पुरानी पीढी के लोग आत्मसात् नही कर पाते फलत पुरानी व नयी पीढ़ी मे सघर्ष व्याप्त हो जाता है। भूले बिसरे चित्र' की 'विद्या' इस शोषण से मुक्ति पाने के लिए नौकरी करती है, तो ज्वालाप्रसाद कहते हैं—"दुनिया की मान्यताए तेजी से बदल रही हैं। ये दिन देखने को भी बदा था। घर की लडकी घर से निकलकर नौकरी को दूसरो की गुलाम बने।"[2] अधूरा स्वर्ग' उपन्यास म चतुरसिह से साठ गाठ कर कामिनी को अर्थ की बलि बनाकर ठाकुर बढा लेते हैं। व चतुरसिह स दस हजार का सौदा करते हैं। "हाय! मेरे जरा-से लालच ने सारे गाव का विनाश कर दिया। यहा अग्नि तो दो चार गाव की सुख-समृद्धि नष्ट कर देगी। मुझे मिला क्या? दस हजार मात्र! हाय, कामिनी का सुख और सम्पूर्ण गाव का विनाश। शराब के चन्द घूट के लिए।"[3] उसे आन्तरिक चेतना इस शोषण के विरुद्ध धिक्कारती है। 'उडे पन्ने' उपन्यास मे सेठ रिक्शावाले को पैसे कम देता है। यह व्यवहार उसके शोषक एव लोलुप वृत्ति का परिचय देता है। फलत रिक्शावाला अपने शोषण के कारण हो-हल्ला मचाता है—"गरीबो पर अमीरो की ज्यादतियो की घोषणा की, पूजीवादियों को गालिया दी।"[4] इस प्रकार अमीरो द्वारा गरीबो का अर्थ के आधार पर शोषण अवाछनीय है। यह शोषण समाज म वर्ग-सघर्ष को जन्म देता है। 'काली लडकी' उपन्यास म लीला अपने शोषण के प्रति विद्रोह प्रकट करते हुए कहती है—"दुनिया मे सबसे बडी चीज दौलत है। तकदीर उसी से बनती है और भगवान हाथ जोडे सामने खडा रहता है।"[5] इस दुनिया मे धन सबसे प्रबल है तथा चारो ओर धन के कारण ही सघर्ष उत्पन्न हुआ है। 'राई और पर्वत'

---

१ सुखदा—जैनेन्द्रकुमार, पृ० ८६
२. भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ७२२
३ अधूरा स्वर्ग—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० ५६
४ उडे पन्ने—सरस्वती सरन कैफ, पृ० ३०
५ काली लडकी—कमल शुक्ल पृ० ४६

उपन्यास की विद्या अपनी इज्जत बचाने के लिए मामा का खून कर देती है। रामभरोसे उसका प्रेमी है। जब वह जेल मे भेज दी जाती है तो उसे बचाने का वह पूर्ण प्रयत्न करता है। वह सरकारी वकील माधोलाल को अपनी जमा पूजी चार सौ रुपये देता है तथा धर्म के आधार पर विद्या को बचाने की चेष्टा करता है। रामसहाय चूकि निम्न-वर्ग का था, फलत उसका शोषण अर्थ के आधार पर किया जाता है—"मालिक !…उसने उनके चरणो पर दस-दस के नोटो की चार गड्डिया निकालकर रख दी और कहा—'अब हुजूर, आप हैं और भगवान हैं। मेरे पास बस यही चार सौ हैं।' "[1]

धर्म के नाम पर भी आर्थिक शोषण हुआ है। धर्म के नाम पर शोषण करने-वाले पूजीपतियो का यथार्थ चित्र खीचने मे 'मगरमच्छ' के उपन्यासकार सफल रहे हैं—"बडे बडे सेठ-साहूकार जब अच्छे बुरे सभी तरीको से शोषण मे प्रवृत्त होकर अपनी तिजोरिया भर लेते हैं और फिर एक धर्मशाला बनवाकर पापो का प्रक्षालन कर डालते हैं।"[2] इस प्रकार उच्च-वर्ग सदैव से पूज्य रहा है। उसके कुकृत्य भी समाज मे प्रशसनीय होते हैं। फलत निम्न-वर्ग की चेतना विद्रोह के लिए अग्रसर हो जाती है और समाज मे वर्ग-सघर्ष शुरू हो जाता है। 'सामर्थ्य और सीमा' मे देवशकर मकोला को प्रताडना देते हैं—"तुम पूजीपतियो की नीचता इस हद तक पहुच गई है कि तुम आदमी खरीदो।"[3] 'बूद और समुद्र' मे आर्थिक शोषण से तग आकर वनकन्या कहती है—"…पूजीवाद का नाश करने के लिए व्यक्तिगत धन सग्रह और उत्तराधिकार की भावना को नष्ट करना होगा। इसके साथ साथ एक पूरी सामाजिक चेतना बदलनी पडेगी, सबसे पहले तो स्त्री-पुरुष का आपसी नाता बदलना पडेगा।' "[4] चूकि आर्थिक शोषण की जड पूजीवादी व्यवस्था तथा पूजीवादी विचारधारा है, अतः इस व्यवस्था के भग होते ही समाज म शोषण समाप्त हो जायगा। इसके लिए वर्ग-सघर्ष की आवश्यकता है। पूजीपतियो न बेईमानी से धन एकत्र कर गरीब-वर्ग का शोषण किया है। टेढे मेढे रास्ते' का शिवकुमार जो बडा शोषक था, समाज म बहुत ही ईमानदार आदमी गिना जाता था—"शिवकुमार लखपति बना था अपने उचक्केपन से, जाल, फरेब, बेईमानी से—इन सब गुणो मे वह पारगत था। समाज म बडा शरीफ आदमी गिना जाता था।"[5]

---

१ राई और पर्वत—रागेय राघव, पृ० १११
२ मगरमच्छ—शम्भूदयाल सक्सेना, पृ० १३६-१४०
३ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २६२
४ बूद और समुद्र—अमृतलाल नागर पृ० ४८६-४६०
५ टेढे मेढ़े रास्ते—भगवतीचरण वर्मा पृ० ३१

पूजीवादी व्यवस्था मे शराफत, नैतिकता सब पैसो के मोल बिकती है और इसी के आधार पर शोषण होता है। 'मड़ी का दीवा' उपन्यास के रौनकी और जगसिया निम्न वर्ग के पात्र हैं। अर्थ के आधार पर इन लोगो का निरन्तर शोषण होता रहा है। रौनकी कहता है—"जगसिया, धन म बडी कला है। यह आदमी का जोनी बदल देता है बस तू समझ ले कि दूसरा जन्म ही हो जाता है आदमी का। 'कहत है न, 'जिसकी कोठरी म दान, उसके मूर्ख भी सयाने।' और अब तो जगसिया, दुनिया बनती ही पैसे की पूत' जा रही है। पैसे बिना" [1] पूजीपतियो की अर्थ के आधार पर शोषण नीति का वर्णन 'सामर्थ्य और सीमा' उपन्यास म किया गया है—"देश का उत्पादन इतना अधिक बढ गया है—इतना अधिक कि बाजार अटे पड़े हैं माल से और लोगो को हिम्मत नही पडती कि उस माल को खरीद सकें। चीजो के दाम बेतहाशा बढ गये हैं और बढते जा रहे हैं। लोगो के लिए जीवित रहना कठिन हो गया है।"[2] पूजीपतियो की इस नीति ने ही निम्न वग म शोषण क प्रति चेतना का उदय किया है। शापित वग सब प्रकार से शोषण के चक्र म पिसत हुए वर्ग-सघर्ष की ओर अग्रसर होता है और मुक्ति के लिए अथक प्रयास करता है। 'बदलते रग' म पूजीपति वर्ग की शोषण-नीति स परिचय कराती हुई लक्ष्मी आशा से कहती है—'यह पैसेवाल तुम्हारे दिल स खलेंगे। राघवन तुम्हार सौदर्य स घायल है। पर क्या वह तुम्ह जीवन की निधि सभाल पायगा?' [3] कटी' उपन्यास म लखक का कहना है कि—'अमीर-गरीब क मध्य का अन्तराल आर्थिक सहायता स भरता है, सहानुभूति क टाकरा म नहीं। यह तो स्थितियों का वैचित्र्य है। इसम हर पक्ष दूसर पक्ष पर सन्देह करता है।' [4] अत विचारा म शोषक की प्रवृत्ति का समूल नष्ट करन पर ही यह अन्तराल मिटगा। इसके लिए वग सघर्ष अनिवार्य है। गरीबी और अमीरी क अन्तराल की खाई को पाटन के लिए लखक परिवार नियोजन की सलाह देता है—'व पारिवारिक सम्पन्नता की दौड म पिछड जायेंग। उन्ह विपन्नता मिटानी है तो नियोजन को अपनाना चाहिए वर्ना"[5]। इसी उपन्यास म कटी फिल्मी जिन्दगी का वर्णन करते हुए कहती है कि सफलता की कुजी आज के युग म एकमात्र पैसा है—'यह फिल्मी जिन्दगी भी क्या जिन्दगी है। यहा पैसा ही सब कुछ है। सब पैसे के पीछे ही भागते हैं। पैसेवाल के तलुवे चाटते है। यहा पैसा है तो

१ मड़ी का दीवा—गुरुदयाल सिंह, पृ० १३१
२ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा पृ० १४६
३ बदलते रग—रजनी पनिकर पृ० ५०
४ कटी—डा० पुष्करदत्त शर्मा १३२
५ वही, पृ० १३३

कावलीयत है। बाकी सब व्यर्थ। और पैसेवाले बहुत होशियार होते हैं। बड़े ही धूर्त। जान भले ही निकल जाय, पैसा नहीं निकलना चाहिए। उन्हें फिक्र है तो एक पैसा बढ़े कैसे? मुनाफा अधिक से अधिक हो।"[1] 'समझौता' उपन्यास में पूजीपति वर्ग की निर्मम शोषक-वृत्ति का वर्णन करते हुए अलिन कहता है—"तुम्हारे पिता व्यावसायिक हैं, धनिक हैं। मैंने सुन लिया है कि वह कई कारखानों के मालिक है। वह मनुष्य का मूल्य पैसे से आकते हैं। उनके कारखानों में हजारों मजदूर काम करते हैं न, तो मन के उस व्यापार को सभी जगह लागू करते हैं।"[2] अलिन पूजीपति-वर्ग की मनोवृत्ति एवं शोषण की प्रक्रिया पर करारा व्यंग करता है—"पैसा आदमी को दानव-वृत्ति अधिक प्रदान करता है, देवत्व की भावना कम।"[3]

निश्चय ही पूजीपति-वर्ग श्रमिक-वर्ग के रक्त का शोषण करते हैं। वे काम अधिक करवाकर कम से कम मजदूरी देने का प्रयत्न करते हैं। अपने आधीन वर्ग पर वह भीषण अत्याचार करते हैं। रोटी-रोजी की समस्या में उलझा निम्न वर्ग उनके सभी अत्याचारों को मूक बनकर सहता है, किन्तु समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से अब यह वर्ग भी चैतन्य होकर वर्ग संघर्ष के लिए तैयार है। इसी उपन्यास में अलिन का विचार है कि बिना वर्ग-चेतना के इस शोषण से मुक्ति पाना असंभव है। पारिवारिक जीवन में भी पुरुष-नारी का सम्बन्ध तभी दृढ़ हो सकता है जबकि वह नारी के प्रति तथा नारी स्वयं के प्रति भी जागरूक हो तथा निर्भय हो, क्योंकि जिस संघर्ष में से युग का व्यक्ति गुजर रहा था, उसमें असंतोष तो था ही, विषमता का भार भी अधिक बढ़ गया था। भावनावादी मनुष्य भोगवादी और भौतिकवादी बन चुका था। फलस्वरूप अलिन चाहता था कि नारी भी पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चले। जीवन के पथ पर पीछे न रहे।"[4] समाज के "धनिकों ने अपने साथ तो पाप किया ही, समाज के साथ भी किया। व्यक्ति-समूह को कुरीतियों का दास बना दिया। मनुष्य की दासता चरम सीमा को पहुंच चुकी है।"[5] इस दासता के रूप में आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए किया गया अलिन का प्रयास सर्वहारा-वर्ग का प्रयास है। 'बदलते रंग' का विवेक भी पैसे का महत्त्व जानता है—"रुपये का अपना महत्त्व होता है। आज आपके भाई साहब इंजिनियर कालेज में नहीं पढ़

---

१ कटी—डॉ॰ पुष्करदत्त शर्मा, पृ॰ २२०
२. समझौता—श्रीराम शर्मा 'राम', पृ॰ ६
३ वही पृ॰ ७६
४ वही, पृ॰ १०२
५ वही, पृ॰ १०३

रहे होते ।"[1] 'राई और पर्वत' का रामभरोसे रुपये की शक्ति पर ही विश्वास करता है । वह विद्या से कहता है—"रुपये का जूता बडा मजबूत होता है ।"[2] पूजीवादी व्यवस्था मे रुपये के बल पर कानून, ईमानदारी तथा न्याय सब धरे रह जाते है । अतिम विजय रुपये की होती है । अत अर्थ के नाम पर शोषण की प्रक्रिया समाज मे सर्वत्र व्याप्त है । 'न्यायमूर्ति' उपन्यास मे डाक्टर साहब कहते है, "रुपया दुनिया में सबसे बडा नाम है । इसके समान संसार में न आज तक कोई पैदा हुआ है और न शायद होगा ही । इसके सब गुलाम है । जिसके पास यह है उसके भी सब गुलाम है । दुनिया ही पैसवालो की है ।"[3] इसी उपन्यास मे पारस सघर्ष की प्रेरणा देता है—"अपनी आवश्यकता को दासत्व देनेवाली जर्जीरो को तोड दो । दासत्व की आवश्यकता, उसके अभाव और भय से मुक्त हो जाओ । रोटी स्वतन्त्रता है तथा स्वतन्त्रता रोटी है ।" वह कहता है, "मुझे विशेष पूजीपति से घृणा नही है, परन्तु उस पद्धति, प्रणाली, तन्त्र से घृणा है जो उसे विशेषाधिकार और एकाधिकार देता है ।"[4] इस प्रकार वह पूजीवादी व्यवस्था की बुराइयो का उल्लेख कर शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है । उसके सघर्ष की प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही वर्ग-सघर्ष पनपता है । 'शोले' उपन्यास मे मार्क्स के अर्थशास्त्र से प्रभावित होकर भैरवप्रसाद गुप्त ने लिखा है —"इस प्रश्न की जड मे युगो से चली आ रही नारी की सस्कारगत गुलामी है और इस गुलामी का ठोस कारण आर्थिक है··· नारी को कोमलागी, शक्तिहीन, विलास की वस्तु बना उसे उत्पादन के क्षेत्र से अलग रखता आया है, नि शक्त बनाता आया है ताकि उसे गुलाम बनाने मे आसानी हो ।'[5] 'नारियो को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना और उस समाज व उसकी व्यवस्थाओं को तोडकर एक ऐसा समाज बनाना होगा, जिसमे पुरुष और नारी के समान अधिकार हो । जिसम विवाह, नैतिकता, कलक और व्यभिचार की मर्यादाए बदल जाए, जिसम नारी, पुरुष व बच्चे का सबध वही हो जो प्राकृत है, जो स्वाभाविक है, जिसम कन्धे से कन्धा मिलाकर नारी और पुरुष विकास की ओर अग्रसर हो, जिसमे न पुरुष नारी का शोषण कर सके तथा न नारी पुरुष का ।··· स्त्रियों को सामाजिक क्रान्ति द्वारा ही मुक्ति मिल सकती है । जब समाज के उत्पादनो के साधनो पर व्यक्तिगत सम्पत्ति, व्यक्तिगत अधिकारो और शोषको के शासन का ही अन्त नही हो जायेगा, बल्कि स्त्रियो

१ बदलते रग—रजनी पनिकर, पृ० ५०
२ राई और पर्वत—रागेय राघव, पृ० ६६
३. न्यायमूर्ति—श्रीगोपाल आचार्य, पृ० ८६
४. वही, पृ० १५२
५ शोले—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १२३

पर पुरुषो का शासन भी सदा के लिए समाप्त हो जाएगा।"[1] अस्तु, स्पष्ट है कि आर्थिक शोषण वर्ग-संघर्ष को जन्म देता है। अर्थ के नाम पर प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था मे शोषण होता रहा है। गुलाम, दास, अर्द्ध गुलाम, श्रमिक, मजदूर आदि शोषित वर्ग का शोषण अर्थ के आधार पर ही हुआ है।

दहेज-प्रथा

कन्या-जन्म का सीधा संबंध दहेज-प्रथा से जुड़ा हुआ है। भारतीय समाज की दहेज-प्रथा ने कन्या के जीवन को अत्यन्त दयनीय बना दिया है। माता-पिता आर्थिक अभावों से ग्रसित होने के कारण कन्या का विवाह उपयुक्त वर के साथ नही कर पाते। अच्छे लडको के माता-पिता द्वारा दहेज की अधिक माग होने के कारण कन्या किसी भी प्रौढ व्यक्ति के साथ ब्याह दी जाती है, जो आगे चलकर अनेक अव्यवस्थाओं तथा कुठाओ से ग्रसित हो सघर्षो का कारण बन जाती है। 'सूरज का सातवा घोड़ा' उपन्यास की जमुना का विवाह दहेज के अभाव मे एक प्रौढ़ व्यक्ति के साथ होता है, परिणामत. जमुना अपनी युवावस्था मे ही वैधव्य प्राप्त करती है।"[2] दहेज-प्रथा ने कन्या व उसके घर-वालों का जीना दूभर कर रखा है। 'काली लड़की' उपन्यास मे एक उद्धरण से स्पष्ट होता है—"मेरा अकेला लडका है। दहेज मे पूरे बीस हजार लूगा, हालाकि मेरी इतनी हैसियत नही कि मैं बीस हजार दे सकू, लेकिन फिर भी दूगा। हा तो मुहूर्त निकलवा लीजिये, मैं रुपये का प्रबन्ध करूगा।"[3] 'अमृत और विष' उपन्यास मे रमेश को उधार के प्रति घोर अनास्था है किन्तु समधी साहब ने अपने पत्र मे लिखा है—"रेडियो, घड़ी और फाउटेन पेन तो लड़के के लिए अनिवार्य हैं और आपकी लड़की के वास्ते मेरी राय मे निम्नलिखित सामान अवश्य होना चाहिए, एक सिलाई मशीन, एक सिंगारमेज, एक गोदरेज की अलमारी जिसमे कि हमारे यहा से पाई हुई अमूल्य साडियो को सहेजकर रख सके।"[4] 'उड़े पन्ने' उपन्यास में दहेज-प्रथा का सबध आर्थिक पहलू से जोडा गया है, जो यथार्थ है। "दहेज की समस्या नैतिक नही है, आर्थिक है और इसका हल भी आर्थिक हो हो सकता है। लडकियो मे हरएक की शादी जरूरी समझी जाती है। पुरुषो के लिए यह प्रतिबन्ध नही। वे सौदेबाजी की स्थिति मे रहते हैं और इसीलिए उनका भाव चढ़ जाता है और वे अपनी मनमानी

१. शोले—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १२३
२. सूरज का सातवा घोडा—धर्मवीर भारती, पृ० ३४
३. काली लडकी—कमल शुक्ल, पृ० ५
४ अमृत और विष—अमृतलाल नागर, पृ० ७४

कीमत वसूल करते हैं।"[1] 'झूठा सच' (प्रथम भाग) में लड़केवालों की अह-मियत दहेज-प्रथा के कारण ही है—"उस दो कौड़ी के आदमी की हम परवाह नहीं करते। हमें पचास पचास हजार देने वालों की कमी नहीं है। ये ही लोग सौ बार अपनी पगड़ी हमारे पाँव पर रखकर मनाई करने गये थे।"[2]

समाज में यह प्रथा आज भी बुरी तरह व्याप्त है, यद्यपि सब इसे बुरा समझते हैं। सरकार कानूनी रोक लगाती है, परन्तु प्रतिफल प्राप्त नहीं होता। "वस्तुतः दहेज-प्रथा को आज की बढ़ती हुई भौतिकवादी दृष्टि ने और भी आश्रय प्रदान किया है। कितनी ही युवतियों को परिणामस्वरूप अपना फूल-सा जीवन नष्ट करना पड़ता है। दहेज प्रथा एक सामाजिक बुराई तो है ही साथ ही अन्य बुराइयों की जड़ भी है। पारिवारिक कलह, अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि सब इसी के विकसित रूप हैं।"[3] "आज के जीवन में अर्थ ही सामाजिक विषमता का मूल कारक है और अर्थ पर ही आधारित आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नये वर्गों का प्रादुर्भाव भी हुआ है। फलतः वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष आधुनिक युग में ही विशेष रूप से प्रतिध्वनित हुआ है।"[4] दहेज लेना तथा देना दोनों ही संघर्ष को जन्म देते हैं। यह प्रथा पूँजीवादी व्यवस्था और सामन्ती युग में अधिक पनपी है। 'मनुस्मृति' में भी दहेज प्रथा के निमित्त जो शुल्क ग्रहण किया जाता है, उसे निषिद्ध माना गया है—"बन्धु-बान्धवों को अपनी पत्नी का धन ग्रहण नहीं करना चाहिए। विवाह के समय पत्नी को जो (स्त्री), दासी, यान (वाहन), वस्त्र, आभूषण, प्रदर्शनार्थ जो भी वस्तु मिले उस पर पति तथा पति के माता-पिता, बन्धु बान्धवों का कोई अधिकार नहीं है, जो ऐसा करते हैं, वे नरक के अधिकारी हैं।"[5] सन् १९२८ में महात्मा गांधी ने कहा था—"दहेज की बात की प्रथा के खिलाफ जबरदस्त लोकमत बनाया जाना चाहिए। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यह एक हृदय-हीन बुराई है। इस रिवाज का अन्त होना चाहिए। इसके लिए जाति की सीमाओं को तोड़ना होगा तथा साथ ही युवा समाज में क्रान्ति लानी होगी।"[6]

१. उड़े पत्ते—सरस्वती सरन कैफ, पृ० १३२
२. झूठा सच (वतन और देश)—यशपाल, पृ० ३०५
३. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना—डा० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० १३०-१३१
४. प्रेमचन्द और शरत्चन्द के उपन्यास मनुष्य के बिम्ब—डॉ० सुरेन्द्रनाथ तिवारी, पृ० २६
५. स्त्री धनानि तु ये मोहादुपजीवंति बान्धवा
नारी यानानि वस्त्र वा ते पापा यान्त्यधोगतिम्—मनुस्मृति, ३।५२
६ दहेज विरोधी आन्दोलन एक समस्या (लेख)—भंवरलाल सिंघी, धर्मयुग १ जून, १९७५, पृ० २५

"आज क्रान्ति का नारा उठा है दहेज प्रथा के विरुद्ध, किन्तु केवल नारे लगाने और भाषण देने से क्रान्ति नही आती। क्रान्ति लाने के लिए प्रत्येक आदमी को बदलना होगा। घर-घर को बदलना होगा। केवल बातो से नही वरन् कुछ करके दिखाना होगा। तभी समाज बदल सकेगा।'[1] अत जब तक लडकिया खुद दहेज देने और माताओ के रूप म दहेज लेने को मना नही करेंगी तब तक यह प्रथा यू ही चलती रहेगी। आजकल नवयुवक तथा युवतियो ने दहेज के विरुद्ध आवाज उठायी है। उन्ह माता पिता के सहारे की आवश्यकता है।'[2] सब जानते हैं कि इस कुप्रथा क कारण लाखो नही करोडो घर, कुटुम्ब और स्त्रिया बरबाद हो चुकी हैं परन्तु हमारे इस सामाजिक दोहरे चरित्र म कोई परिवर्तन नही आया है। नरश महता का कहना है कि 'अगर पुरुष स्वच्छा म स्त्री को उसका स्वत्व, पद मर्यादा नही देता तो उसको ऐसी भयानक सामाजिक क्रान्ति का सामना करना पड सकता है जिसकी उसे आज कल्पना भी नही हो सकती।[3] शिवानी का मत है कि 'यदि आज भारत का प्रत्येक युवक यह सकल्प कर ले कि वह दहेज के नाम पर केवल कन्या का ही ग्रहण करेगा और प्रत्येक कन्या भी अपनी इसी जिद पर अडी रहे कि वह उसे ही वरेगी जो केवल उसी की योग्यता से उसे ग्रहण करेगा तो अनायास ही इस दहेज-दानव की सर्वभक्षी क्षुधा शान्त हो जायगी।'[4] श्री कन्हैयालाल नन्दन का कहना है कि नयी पीढी ही दहेज प्रथा का अन्त कर सकेगी।'[5] इस प्रकार दहेज की कुरीति निश्चय ही भारतीय सामाजिक जीवन का एक अभिशाप है, जिसका नानाविध चित्रण हिन्दी उपन्यासो मे हुआ है।

वैवाहिक सम्बन्धो की प्रतिक्रिया

विवाह सम्बन्धो के कारण भारतीय समाज म अनेक कुरीतिया व्याप्त हुई हैं। विवाह को कही वासना पूर्ति का साधन समझा जाता है, तो कही जीविकोपार्जन का। इन्ही दो तत्वो के आधार पर समाज म अनेक समस्याए व्याप्त हो जाती हैं। 'न्यायाधिकरण' उपन्यास म कहा गया है—"विवाह तो वासना-तृप्ति के लिए नही प्रत्युत वासना को नियत्रण म रखने के लिए है।"[6] "बीसवी शताब्दी के मानव जीवन म दो प्रमुख ग्रन्थिया रही हैं—आर्थिक ग्रन्थि और

---

१ लेख धर्मयुग १ जून १९७५—रेखा सप्रू पृ० २४
२ वही पृ० २३
३ दहेज प्रथा का अन्त (लेख)—नरेश मेहता २८ माच १९७६, सा० हिन्दुस्तान, पृ० ३८
४ वही शिवानी पृ० ३८
५ वही कन्हैयालाल नन्दन पृ० ३८
६ 'न्यायाधिकरण'—गुरुदत्त पृ० २९८

काम मूलक ग्रन्थि। एक का सम्बन्ध मनुष्य के परिवेश से है, दूसरे का उसके अन्तर्मन से।"[1] 'झूठा सच' (प्रथम भाग) का पुरी विवाह की व्याख्या करता हुआ कहता है—'विवाह का अर्थ ही स्त्री के निर्वाह का बोझ गले समेट लेना ही तो है।"[2] वह स्त्री की आर्थिक पराधीनता की ओर संकेत करता है। इस आर्थिक पराधीनता की विवशता के कारण ही स्त्री पर तरह तरह के अत्याचार किए जाते हैं। स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता के पश्चात् विवाह प्रथा इतनी दूषित नहीं कहलाएगी और न ही अर्थ के नाम पर शोषण होगा। 'गिरती दीवारें' उपन्यास में विवाह को धर्म का अंग माना गया है— जिस प्रकार धर्म रूढ़िगत होकर अपने प्राण खो बैठा है, उसी प्रकार विवाह धर्म से नारी के प्राण निकल गये हैं।"[3] 'गुनाहों का देवता' उपन्यास में चन्दर को विवाह नाम से ही घृणा है। विवाह के साथ स्तर-भेद व दम्भ में अर्थ रूपी कीड़ा निरन्तर रेंगता रहता है। अतः वह जाति, विवाह व सभी परम्पराओं को बुरी मानता है— "सभी परम्पराएं बहुत ही बुरी हैं बुरी तरह सड़ गयी हैं। उन्हें तो काट फेंकना चाहिए।"[4] अस्तु वह विवाह सम्बन्धों में रूढ़िवादिता तथा दूषित परम्पराओं को तोड़ने के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है। समाज में शोषण से मुक्ति पाने के लिए सामाजिक क्रान्ति अनिवार्य है। सामाजिक क्रान्ति द्वारा ही सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन किया जा सकता है।

प्रेम विवाह

गांधर्व विवाह जो अपने अन्तर्निहित दोषों के कारण प्राचीन काल में बन्द हो गये थे, पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से आधुनिक भारत में प्रेम विवाह के रूप में प्रकट हुए हैं। प्रेम-विवाह का आधार काम वासना से जागृत प्रेम है। इस विवाह के प्रति आग्रह अन्धा प्रेम है— 'प्रेम विवाह अक्सर असफल होते हैं लेकिन संभव है वहां प्रेम न होता हो। मानसिक संतुलन और प्रेम जितना अपने मन पर आधारित होता है उतना ही बाहरी परिस्थितियों पर।'[5] अतः प्रेम विवाह की सफलता मानसिक संतुलन पर निर्भर बताई है। इन विवाहों के असफल होने का एक कारण और है शादी में सबसे बड़ी बात होती है सांस्कृतिक एकता व समानता। और जब अलग अलग जाति में अलग-अलग रीति रिवाजें हैं तो एक जाति की लड़की दूसरी जाति में जाकर कभी भी अपने

---

१ हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण—बिन्दु अग्रवाल, पृ० ४१
२ झूठा सच (भाग १)—यशपाल पृ० २६०
३ गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ५५५
४ गुनाहों का देवता—डा० धर्मवीर भारती पृ० २२६
५ वही पृ० ५३

को ठीक से सतुलित नही कर पाती । अत यह तो सामाजिक व्यवस्था को व्यर्थ के लिए असतुलित करना हुआ ।"[1] फलत दो पक्षो के विचारों व मान्यताओ मे सघर्ष छिड जाता है । 'अँधेरे बन्द कमरे' उपन्यास के प्रेम-विवाह मे इसी मानसिक स्थिति की प्रधानता है—"रमेश खन्ना कई साल तक एक लडकी के प्रेम मे तडपता रहा और जब उस लडकी से उसका ब्याह हो गया तो वह सोच-सोच कर तडपने लगा कि उससे छुटकारा किस तरह पाए ।"[2] अत प्रेम-विवाह के साथ तलाक (सबध-विच्छेद) की प्रथा भी जुडी हुई है । प्रेम-विवाह मे आर्थिक पहलू भी कम महत्त्व नही रखता । पति-पत्नी मे कोई सामाजिक बन्धन तो रहता नही, फलत. छोटी छोटी बातो को लेकर सघर्ष उत्पन्न हो जाता है—"पहले विवाह एक रुपये और एक नारियल की रस्म से होता था, धीरे-धीरे अर्थ का महत्त्व बढने लगा । अर्थ के महत्त्व बढने से, वैवाहिक आयोजनो मे भी अर्थ प्रमुख हो गया । आर्थिक सकट और व्यर्थ की रस्मों रिवाजो के विरुद्ध विभिन्न समाजो मे आदर्श विवाहो के आयोजन होने लगे । जहा एक विवाह होता है, उसे आदर्श विवाह तथा एक-साथ एक से अधिक विवाह होने पर उन्हे सामूहिक विवाह की सज्ञा दी गयी है । इन आयोजनो के माध्यम से अनेक रूढिया टूटी हैं तथा विभिन्न वर्गों को राहत मिली है ।"[3]

अन्तर्जातीय विवाह

प्रेम-भावना को अत्यधिक महत्त्व देने के कारण, अन्तर्जातीय विवाह की समस्या सामने आयी । प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासो मे यह विवाह विकसित अवस्था मे दिखाया गया है—'स्वप्नमयी' उपन्यास मे अलका का अन्तर्जातीय विवाह होता है । अलका देसवाल थी और उसका पति वर्णसकर जाति का था—"समझौता करने की प्रवृत्ति उसमे थी, वह समझौता करना नही चाहती थी । इसीलिए कभी-कभी बडा सकट पैदा हो जाता था ।"[4] यही सकट पारिवारिक सघर्ष का कारण बन जाता था । अन्तर्जातीय विवाह प्रेम पर ही आधारित होते हैं, अत मानसिक असतुलन उसके बीच दरार बन जाता है । 'अमृत और विष' उपन्यास मे सुशीला के अन्तर्जातीय विवाह की असफलता पर प्रकाश डाला गया है—'मुझे उसके अन्तर्जातीय विवाह पर सजातीय कलक सहना पडा और अब उसे तथा अपनी दो सतानो को छोडकर उसने एक कुलटा

---

१ गुनाहो का देवता—धर्मवीर भारती, पृ० ५४
२ अँधेरे बन्द कमरे—मोहन राकेश, पृ० ६३
३ सामूहिक विवाह · एक सर्वेक्षण (लेख)—राज केसरवानी (धर्मयुग ५ अक्टूबर ७५) पृ० २२
४ स्वप्नमयी—विष्णु प्रभाकर, पृ० ६

प्राध्यापिका को अपना तन-मन अर्पित कर रखा है।'[1] "यह अन्तर्जातीय विवाह आज के सक्रान्ति काल मे हमारे समाज मे एक विचित्र स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं।"[2] फलत न तो इन पर बन्धन ही लगाया जा रहा है, न ही इन्हे समाज स्वीकृति प्रदान कर रहा है। अत इन विवाहो के कारण भी समाज मे सघर्ष की स्थिति बनी हुई है। 'गुण्ठन' उपन्यास मे भगवत स्वरूप अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं— 'लडकी मद्रासी परिवार की है तथा उस परिवार मे पली लडकी पजाबी परिवार को स्वीकार कर लेगी अथवा नही।"[3] विवाह-सस्कार पर मार्क्स की दृष्टि स क्रान्तिकारी विचार 'न्यायमूर्ति' उपन्यास मे प्रस्तुत किये गये हैं—"विवाह सस्कार कोई जरूरी नही है। ऐसा सयोग सस्कार क्या काम का जो नारी और पुरुष दोनो की स्वतन्त्रता के लिए बाधक हो। जो दास रहना नही चाहता, वह दास बनाना भी नही चाहता।"[4] अन्तर्जातीय विवाह अगणित छोटे छोटे वर्गों को मिटाते है तथा उन्हे स्नेह बन्धनो म बाधते हुए राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बनत है। अमृत और विष' मे लेखक अन्तर्जातीय विवाह की व्याख्या इस प्रकार करता है—'मैं अन्तर्जातीय विवाह के दो दुखान्त प्रकरण देख चुका हू। यह अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह स पहले रूढियो के प्रति बगावत करके मनुष्य को सकीर्णता से व्यापकता के दायरे मे ले जाता है, लेकिन विवाह के बाद वही सकीर्ण और जातिगत चेतना पति-पत्नी के बीच कभी-कभी बेतुकी और चुभनभरी स्थितिया ला देती है।"[5]

विधवा-विवाह

ऋग्वद-काल म विधवाओ की स्थिति अच्छी थी। कुछ उल्लेख इस प्रकार के मिलते हैं, जिनस ऐसा प्रतीत होता हैं कि विधवाओ को पुनर्विवाह करने की अनुमति प्राप्त थी। 'चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बडे भाई की हत्या कर डाली थी और उसकी विधवा ध्रुवादेवी से विवाह कर लिया था। ईसा के ३०० वर्ष पूव स ईसा के २०० वप बाद विधवा-पुनर्विवाहा का प्रचलन करीब करीब समाप्त हो गया था, फिर भी उस समय बाल विधवाओ को पुनर्विवाह की अनुमति थी।'[6] 'अमृत और विष' म उपन्यासकार का कथन है कि— 'अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह के दो क्रान्तिकारी पहलू सामने आय, प्रेम ने दो

---

१ अमृत और विष—अमृतलाल नागर, पृ० २६
२ वही, पृ० २९५
३ गुण्ठन—गुरुदत्त पृ० १५
४ न्यायमूर्ति—श्रीगोपाल आचार्य, पृ० १७६
५ अमृत और विष—अमृतलाल नागर पृ० ६४
६ रिलीजन एड सोसायटी—डा० राधाकृष्णन पृ० १८७

अजानो को एक रिश्ते की पहचान करा दी ।"[1] विधवा विवाह न हान पर 'राई और पर्वत' म खुल व्यभिचार का उल्लख किया गया है। विद्या विधवा की मा कहती है—"तुझ खुल खेत की क्या जरूरत थी ? तू विधवा बिना खसम की, मैं विधवा इस कम्बख्त बूढे को ब्याही। मुझसे कहती, मैं क्या रामभरोस का इन्तजाम नही कर सकती थी ?"[2] विधवा विवाह वर्जित होने क कारण—"ब्राह्मणो के घर-घर म पाप है। कोई कहता है कुछ ? बूढे को जवान लुगाई ब्याहना पाप नही है ? तुझ जैसी बिटिया को विधवा बनाकर रखना पाप नही है ? गूजर, माली, जाट सबम फिर फिर घर बसता है।[3] 'झूठा सच' (प्रथम भाग) की उर्मिला बाल विधवा है और पुरी उससे विवाह करना चाहता है, लेकिन अपनी पत्नी कनक क कारण ऐसा नही कर पाता तथा उर्मिला का विवाह मोगिया स हो जाता है।[4] 'गिरती दीवारें' उपन्यास म—"एक विधवा ने अपने छोटे दवर से रिश्ता जोड लिया था और फलस्वरूप एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई और अन्त म उसे अपना पति भी बना लिया।"[5] विधवा पुर्नविवाह ने अमानुषिक अत्याचार अनैतिक आचार वश्यावृत्ति तथा अनाथो की सख्या म कमी की है। इस प्रकार विधवाआ के पुनर्विवाह द्वारा आर्थिक शोषण व सघर्ष की स्थिति को समाप्त किया गया है।

वेश्या प्रथा

प्रेमचन्दोत्तर काल मे वश्यावृत्ति की समस्या के सबध म उपन्यासकारा का दृष्टिकोण विकसित हो चुका था। इस काल की चेतना यथार्थवादी चेतना थी—"इस युग के जिन उपन्यासो मे वश्या का चित्रण मिलता है उनम उसके जीवन की विडम्बनाए उसकी परिस्थितिया की विवशताओ और मन की सच्ची शुभकामनाआ पर भी प्रकाश डाला है। यद्यपि किसी विवशता के कारण नारी विशेष को वश्यावृत्ति अपनानी पडती है पर वह उसको सहज रूप से स्वीकार नही करती और उसका मन उस जीवन स उबरने के लिए छटपटाता रहता है।[6] कुछ उपन्यासकारो ने वश्यावृत्ति को आर्थिक लोलुपता के कारण पनपता हुआ बताया है। 'घरौंदा' मे नादानी वश्या अपनी स्थिति का वर्णन कामेश्वर

१ अमृत और विष—अमृतलाल नागर, पृ० ६१
२ राई और पर्वत—रागेय राघव, पृ० ७१
३ वही पृ० ७२
४ झूठा सच प्रथम भाग (वतन और देश)—यशपाल, पृ० ४४
५ गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क पृ० ३८६ ३८७
६ हिन्दी उपन्यास मे नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० १९८

से करती है— "कामेश्वर ! मैं एक रिक्शेवाले की तरह हूँ । पैसे के लिए दौड़ लगाते लगाते थक गई हूँ । अब मेरे फेफड़ों में दर्द होने लगा है।"[1] वह कामेश्वर से प्रार्थना करती है—"कामेश्वर ! तुम पढ़े-लिखे आदमी हो । तुम···तुम भी मुझे नहीं उबार सकते ? बोलो ? जो तुम देओगे वही खाऊँगी, जो दोगे वही पहनूँगी। मगर यह नरक मुझे जीवितावस्था में ही मुर्दा किए हुए है।"[2] इस युग के उपन्यासों में वेश्यावृत्ति में सुधार-भावना का भी चित्रण हुआ है । आधुनिक युग की वेश्या अपनी पतितावस्था के प्रति सजग है। 'घरौंदे' की नादानी कहती है—"तुम नदी में नहाते हो लेकिन तुम तो गन्दे नहीं होते, उल्टे बहनेवाली नदी गन्दी हो जाती है । क्या न्याय है तुम्हारा ? और पाप को दूसरों पर मढ़ने के लिए शहर-भर के गन्दे नालों को नदी में लाकर छोड़ने का प्रयत्न करते हो ?"[3]

नारी की सजगता ही वेश्यापन से मुक्ति के प्रयास का कारक बनती है। वेश्या की चेतना समाज में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करती है । छोटी चम्पा बड़ी चम्पा' में वेश्याओं के सुधार के लिए प्रयत्न किया गया है। वेश्यावृत्ति के उन्मूलन तथा उन्हें विवाहित बनाकर रखने के प्रयत्न से पारिवारिक अशान्ति का उदय हुआ। आर्थिक विपन्नता के कारण ही कोई स्त्री वेश्यावृत्ति अपनाती है—"रूपजीवाओं का शरीर का व्यापार बन्द कर केवल नृत्य और गान-कला में रहना होगा। दिलरुबा, बाजार की ये परियाँ घर और समाज में अब सर्वथा दूसरे ढंग से रहेंगी। ये भोगांगनाएं, तवायफें अब से सम्मानित, मर्यादित स्त्री···नारी का रूप पाएंगी।"[4] चम्पा कहती है— ' 'वेश्या जीवन से मुक्ति ।' चम्पा ने उद्दीप्त स्वरों में कहा, 'जब तक इस संसार में पुरुष हैं, मैं अपनी इस जिन्दगी में तब तक वेश्या हूँ, वेश्या रहूँगी । मुझे कैसी मुक्ति ! कैसी राहत ! जब तक पुरुष पुरुष है, तब तक मैं वेश्या हूँ।' "[5] वस्तुतः नारी-शोषण तथा पुरुष के अत्याचारों ने वेश्यावृत्ति को जन्म दिया। पुरुष की शोषक वृत्ति के स्वभाव का सही चित्रण इस उपन्यास में किया गया है—' मर्द हरदम कुछ तलाशता रहता है । जो चीज वह पा जाता है, उससे कुछ ही दिन बाद बेरुखी इख्तियार कर उससे आदतन आगे बढ़ जाता है । वह समझता है यह चीज तो उसकी हो ही गई और उसकी तलाश कहीं और मुड़ जाती है ।"[6] पुरुष की यही बात वेश्या-

---

१ घरौंदे—रांगेय राघव पृ० २६२
२ वही, पृ० २६३
३ वही, पृ० २६४
४ छोटी चम्पा बड़ी चम्पा—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ५
५ वही, पृ० २३
६ कटी—डा० पुष्करदत्त शर्मा, पृ०७५

समस्या को जन्म देती है। यह पुरुष-वर्ग ही नारी-वर्ग में विभेदीकरण करता है, संघर्ष को जन्म देता है। 'भूले बिसरे चित्र' में गंगाप्रसाद कहते हैं—"खुले मुंह चलने वाली दो वर्ग की स्त्रियां होती हैं—या रानियां या वेश्याएं। वेश्या इक्के या तांगों पर चलती हैं, रानियां दो या चार घोड़ों की फिटन पर चलती हैं।"[1] इसी उपन्यास में अलीरजा, गंगाप्रसाद को वेश्या को परिणीता बनाने के लिए सलाह देता है किन्तु उसके पीछे भी अर्थशोषण की दृष्टि निहित रहती है—"आप बड़े खुशकिस्मत हैं बाबू गंगाप्रसाद, वरना रण्डी की मुहब्बत किसे मिलती है? सुना है, लम्बी रकम है इसके पास। तो मेहरबान, मेरी अर्ज यह है कि उसे घर में डाल लीजिए। आप नुक्सान में नहीं रहेंगे।"[2] लाभ-हानि की प्रतिक्रिया आज भी पुरुष-वर्ग में दृष्टिगत होती है। वह वेश्या को इसलिए नहीं अपनाता कि वह असहाय नारी है, वरन् उसके पीछे भी उसका अर्थलोलुप दृष्टिकोण रहता है। यह अर्थवादी दृष्टिकोण ही अन्ततः संघर्ष को जन्म देता है। 'यह पथ बन्धु था' उपन्यास में वेश्या नारी की चेतना का वर्णन किया है—'विशन रे, लगता है मैं जन्म-जन्मान्तर से वेश्या ही थी। क्या आगे भी वेश्या बनकर नारीदेह को अपमानित, लांछित करती रहूंगी?"[3] वेश्यावृत्ति का प्रश्न नारी की आर्थिक स्वाधीनता से इतने घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहता है जैसे नदी के साथ पानी। जब तक नारी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होगी, तब तक वेश्यावृत्ति की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। आर्थिक स्वाधीनता के लिए साम्यवादी व्यवस्था के अतिरिक्त कोई दूसरा चारा नहीं है। "रूस में साम्यवाद की स्थापना के बाद वेश्या प्रथा का उन्मूलन हो गया है।"[4] मैं समझती हूं, यदि साम्यवाद और कुछ नहीं करके केवल मानवता का कलंक धो देता है तो यह सारा संघर्ष सार्थक सिद्ध होगा।

राजनीतिक भ्रष्टाचार

आधुनिक राजनीतिक जीवन-परिवेश में स्वार्थ-लिप्सा, दलबदी, भाई-भतीजावाद, शोषण और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। 'समझौता' उपन्यास में अधिकारी कहता है—'शासन की व्यवस्था खराब है। देश गलत दिशा में जा रहा है। घूस का बाजार गर्म है।"[5] "भ्रष्टाचार ने हमारे वैयक्तिक और सामाजिक

---

१ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० २३२
२ वही, पृ० २६३
३ यह पथ-बन्धु था—नरेश मेहता, पृ० २५७
४ हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० १७८
५ समझौता—श्रीराम शर्मा राम, पृ० ८४

जीवन को इतना अधिक प्रभावित किया है कि आज हम ठीक से यह भी सोच नही पा रहे है कि इस बुराई को समाज से कैसे दूर किया जाए ? हमारे सोचने विचारने के तरीको मे भी भ्रष्टाचार आ गया है । हम भ्रष्ट व्यवहार से परे कुछ सोच नही पाते है । स्वार्थ पूर्ति की प्रक्रिया मे हम किसी भी कार्य को अवैधानिक या अनुचित नही समझते हैं।[1] भ्रष्ट आचरण व विचारणा के तौर तरीको ने समाज मे संघर्ष को जन्म दिया है। राजनीतिक भ्रष्टाचार मे ईमानदार व्यक्तियो को तंग करना अपने आधीन प्रशासन तन्त्र मे गलत कार्य का प्रोत्साहन करना स्वयं अपने स्वार्थ के लिए पद और शक्ति का दुरुपयोग करना आदि आते हैं।[2] पुलिस द्वारा नौकरशाही का शोषण व रिश्वतखोरी की व्याख्या इस प्रकार की गई है— पुलिस को साल का पाच सौ रुपया फी ट्रक और रुपया महीना की चौराहा रिश्वत न दी जाए तो ट्रक चल ही नही सकता ।[3] कानून बनानेवालो को नवसामन्त की सज्ञा दी गई है। यह सरकारी रहस्य है कि देश के हित का खयाल न मजदूर को है न नौकरशाही को और न मिनिस्टर को। मजदूर चाहता है कम से कम काम अधिक से अधिक मजदूरी । नौकरशाही का काम है अपनी तनख्वाह के लिए मिनिस्टरी का सतोषजनक रिपोर्ट देते रहना । मिनिस्टरो का दुबारा चुनाव लड़ना है । वे जनता को नाराज कैसे करें ?[4] अत सब ओर स्वार्थ ही स्वार्थ है शोषण ही शोषण है भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार है । इसी उपन्यास मे रिखीराम द्वारा प्रेस की कुर्की का हुक्म कराना भी भ्रष्ट आचरण का प्रतीक है। सामर्थ्य और सीमा उपन्यास मे भ्रष्टाचार व अन्य कारणो से ही चीजें इतनी महगी पडती है कि आप उन्हे दुनिया के बाजार भाव पर बेच नही सकते ।[5] भ्रष्टाचार ने समाज मे सभी स्थानो पर शोषण की भूमिका खडी करके संघर्ष को जन्म दिया है । मन्त्री पूजीपतियो को उपकृत करते हैं । सरकारी अफसर रिश्वत खाते है ठेकेदार चोरबाजारी करता है और मजदूर हरामखोरी करते है । किसी का कोई कसूर नही । बाध बधेंगे और टूटेंगे कारखाने लगाए जायेंगे और ठप्प रहेंगे और जनता के लोग पैसे पैसे पर जान देंगे और बेईमानी करेंगे। इस तरह हमारे देश का निर्माण होता रहेगा।[6] हर जगह लूट हर जगह रिश्वत और रिश्वत न मिलने पर भयानक

---

१ भारतीय सामाजिक सस्थाए—द्वारिकाप्रसाद गोयल पृ० ५०२ ५०३
२ वही पृ० ५४०
३ झूठा सच (देश का भविष्य)—यशपाल पृ० ६०१
४ झूठा सच (देश का भविष्य)—यशपाल पृ० ६०८
५ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा पृ० १४६
६ वही पृ० ३१

बाधाए। शासन का सूत्र तो इन अफसरो के हाथ म है। ऊचे-ऊचे अफसर से लेकर छोटे से छोटे चपरासी तक को रिश्वत देनी पडती है। तब जाकर कही काम हो पाता है।"[1] इन सभी के पीछे पूजीवादी मुनाफावृत्ति का दृष्टिकोण छिपा रहता है। इस मुनाफा प्रवृत्ति के कारण सर्वहारा वर्ग का शोषण होता है। समाज म क्रान्ति का उदय होता है तथा वर्गगत सघर्ष सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। 'भूले बिसरे चित्र' म प्रेमशकर शोषण के प्रति वर्गगत चेतना का प्रतीक है। वह लालाजी से कह देता है कि—"इस तरह से पैदा किये पैसे को मैं बेईमानी समझता हू और मुझे यह बेईमानी की कमाई नही चाहिए।"[2] रुपया ही समाज मे पथभ्रष्टता का कारण है तथा शोषण की प्रक्रिया को गतिशील रखता है। 'बदलते रग' उपन्यास मे विनोद ने कहा—"रुपये के कारण ही मिसेज चौधरी से दोस्ती की और अच्छी-भली स्त्री को पथभ्रष्ट किया।"[3] 'यह पथ-बन्धु था' उपन्यास का श्रीमोहन भी रिश्वतखोर है तथा रिश्वतखोरी मे उसने दूर-दूर तक नाम कमाया है। "तुम्हारा श्रीमोहन रिश्वतखोर है, उसने रिश्वत से दस हजार रुपये पैदा किए है।"[4] रिश्वतखोरी तथा चोरबाजारी ने समाज मे गहनतम भ्रष्टाचार को जन्म दिया। बिना पैसेवाला मुह बाधे भूखा पडा रहता है तथा पैसेवालो को हलुआ भी नही भाता, यह स्थिति आज के समाज की है। इसी स्थिति के कारण दो वर्गो मे सघर्ष मचा हुआ है। आज "राज्य मे कही कोई ऐसा मिनिस्टर, शासक, अफसर कर्मचारी रह गया है जिस पर निहित स्वार्थो की सुरक्षा का, भ्रष्टाचार, अनाचार और अत्याचार को अपनी कुर्सी को येन-केन प्रकारेण अपने लिए बनाये रखने का, कुनबापरस्ती का, देश की सम्पत्ति को सर्वत्र सर्व प्रकार से लूटने का, शासन के अग-अग को दूषित करने का और भ्रष्ट करने का आरोप न आता हो ?"[5]

क्रान्तिकारी तो यहा तक कहते हैं कि "हर मिनिस्टर भ्रष्टाचारी है, हर अफसर चोर है और बेईमान है, हर पैसेवाला शोषक है।"[6] इस शोषक-वर्ग के द्वारा जनसाधारण निरन्तर शोषणचक्र मे पिसता रहता है। 'सामर्थ्य और सीमा' मे मकोला पूजीपति वर्ग का है किन्तु उसकी नीति क्रान्तिकारी-वर्ग से साम्य रखती है। इस नीति द्वारा वह समाज मे व्याप्त भ्रष्टाचार का अन्त

---

१ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १२०
२ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४६७
३ बदलते रग—रजनी पनिकर, पृ० १६१
४ यह पथ बधु था—नरेश मेहता, पृ० ३३७
५ न्यायमूर्ति—श्रीगोपाल आचार्य, पृ० १६
६ वही, पृ० २३

करना चाहता है—"वर्तमान हमारे सामने है और इस वर्तमान मे सारी सामर्थ्य पूजी मे है । मैं पूजीपति हू इस बात स इनकार नही कर सकता, जबकि तुम केवल इस पूजी पर नियत्रण-भर कर सकते हो । अत कोई भयानक रक्तपात, भयानक क्रान्ति या विप्लव ही हमारे देश की आजवाली व्यवस्था को बदल सकता है ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भ्रष्टाचार म रिश्वत लेना-देना तथा भौतिक लाभ या वासनापूर्ति सभी शामिल हैं । किसी भी धर्म को पक्षपात के आधार पर लाभ पहुचाने की वृत्ति भ्रष्टाचार का ही एक अग है । अनुचित लाभ उठाना व पद या अधिकार का दुरुपयोग करना, सरकारी प्रपत्र म हेर-फेर करना, कर की चोरी करना कानून-विरोधी कार्य करना, यह सभी प्रक्रियाए भ्रष्टाचार के अन्तर्गत आती हैं । इस तरह भ्रष्टाचार सामाजिक विघटन का अति हानिकारक घटक है । भ्रष्टाचार म सामाजिक स्वार्थों और कर्तव्यो की उपेक्षा का भाव भी अन्तर्निहित रहता है । स्वार्थपूर्ण भावना ही शोषण की प्रक्रिया को जन्म देकर समाज म सघर्ष को जन्म देती है । आज प्रशासनिक व राजनीतिक भ्रष्टाचार को रोकने के लिए भ्रष्टाचार विरोधी विभागो की स्थापना हो चुकी है । आपातकालीन स्थिति के पश्चात् इस स्थिति पर अशत नियत्रण भी हुआ है ।

आन्दोलनकारी प्रवृत्तियां

आन्दोलनात्मक प्रवृत्तियो म हड़तालें, तालाबन्दी आदि का उल्लख किया जाता है जो मुक्ति के लिए शोषित वर्ग का सघर्षात्मक कार्यक्रम होता है ।" 'हड़ताल के वास्तविक कारण श्रमिको के घरो म नही, नेताओ के मानस मे होते हैं । उनम भी ऐकमत्य नही । कोई मार्क्स की दुहाई देगा, कोई लेनिन की । माओ-समर्थक भी मिल ही जायेंगे ।"[2] "कर्मचारी हड़ताल करके धमकी दे रहे है दस-सूत्री मागें मनवाने के लिए । मत्रियों म से कुछ मार्क्सवादी पार्टी के हैं । व खुले तौर पर मजदूरो का समर्थन कर रहे हैं । व पूजीवादियो के विरुद्ध उन्हे भडका भी रहे हैं कि शोषण के विरुद्ध सगठित हो जाओ ।"[3] 'उड़ते पन्ने' उपन्यास म — आज ज्वाला ग्लास वर्क्स की हड़ताल दस दिन बाद खत्म हो गयी । मालिक पहले तो हड़ताल की बदनामी से डरते थे, लेकिन जब समझौत के दरवाज बन्द हो गय और हड़ताल हो ही गयी तब वे सख्त पड़

१ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १२१
२ कटी—डा० पुष्करदत्त शर्मा पृ० १५५
३ वही, पृ० १५०-१५१

गये ।"[1] हडताल मे "समझौतीवादी ही मजदूर वर्ग के सबसे बडे दुश्मन हैं ।"[2] वास्तव मे "हडताल, प्राय देखने मे आया है, किन्ही अधिकारो की माग को लेकर की जाती है । यह प्रश्न पृथक् है कि व मागें उचित होती हैं या अनुचित और उनको आगे रखनवाले सही प्रकार के व्यक्ति होते हैं या स्वार्थी । बापू ने अहिंसात्मक हडताला और विरोध-प्रदर्शनो का अचूक हथियार भारत को दिया । अत हडताल प्रतिरक्षा और प्रतिहिंसा दोनो के लिए की जा सकती है । श्री जॉन ए० फिच का मत है कि हडताल मिल मालिको की स्वरक्षा और प्रतिहिंसा दोनो का काम करती है । हिंसात्मक हडताला म छोटी-छोटी बातें भी भयकर रूप धारण कर लेनी है ।"[3] हडताल नही टूटन पर विरोधी-वर्ग द्वारा बदली-वालो की तलाश रहती है तथा मिलो पर ताला लग जाता है । 'समझौता उपन्यास मे अतुल के वक्तव्य द्वारा ज्ञात होता है—"अभी मिल के मैनेजर ने फोन किया कि मजदूर अधिक पैसा चाहते हैं हडताल करने का नोटिस दे चुके हैं । उसने कहा—'अब अगर मजदूरो को अधिक पैसा दिया जाए, तो प्रतिमाह कई लाख रुपया अधिक देना पडेगा । वह कहा से आयेगा ? मुनाफे का मार्जिन घट जायेगा ।' "[4] अत मजदूरो की माग को अस्वीकृत करने म पूजीवादी स्वार्थ निहित रहता है । "पूजीपतियो के हौसले बढ गये है । अब तक उनके चदो पर पलनेवाला का राज है । बेचारे मजदूरा से उनका हडताल का हक भी छीन लिया । कट्रोल हटा दिए हैं कि पूजीपति मन भर कमाए और काग्रेस को चदा दें ।"[5]

किसान आन्दोलन

युग चेतना के अभाव म किसान वर्ग सर्वथा उपेक्षित रहा है । सामन्ती युग म यही वर्ग सर्वाधिक शोषित भी रहा । शोषण का कारण आर्थिक ही रहा । 'अनेक समस्याओ से ग्रस्त किसानो ने भी जमीदार के विरुद्ध अपना आदोलन सगठित किया । लेकिन किसाना का इतना चेतना-श्रेय उन्ही को है ।'[6] किसी भी आन्दोलन का क्या उद्देश्य होता है ? 'न्यायाधिकरण' म श्री गुरुदत्त लिखते हैं—'आन्दोलन का उद्देश्य है जागृति उत्पन्न करना । सत्याग्रह के आन्दोलना से जागृति उत्पन्न नही प्रत्युत उत्तेजना उत्पन्न होती रही है । उत्तेजना समझ को

---

१ उडे पन्ने—सरस्वती सरन कैफ, पृ० १०६
२ वही, पृ० १०८
३ भारतीय मजदूरा की समस्याए—सत्यप्रकाश मिलिन्द पृ० ७७
४ समझौता—श्रीराम शर्मा राम पृ० ५१
५ झूठा सच (देश का भविष्य)—यशपाल, पृ० ३७२
६ हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन—डा० चण्डीप्रसाद जोशी, पृ० ३८८

विलुप्त करती है ।'[१] मार्क्स भी क्षणिक आवेश को अथवा उत्तेजना को वर्ग-सघर्ष की प्रतिक्रिया नही मानता, वरन् वर्गगत चेतना व वर्ग सघर्ष द्वारा विचार-परिवर्तन मे विश्वास करता है। हालाकि गुरुदत्त प्रत्यक्ष मे मार्क्सवादी विचारो के विरोधी दिखाई पड़ते हैं किन्तु उनकी लेखनी उनके व्यक्तित्व पर मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव की पुष्टि करती है—"जागृति, ज्ञान और विचार ही प्रोत्साहक है।" इस पक्ति से ही क्या, अनेक पक्तियो द्वारा इसका समर्थन मिलता है। 'स्वप्नमयी' उपन्यास मे किसानो को वर्ग सघर्ष की ओर प्रेरित करने के लिए आशुतोष का समूह किसानो के इस आन्दोलन मे मदद के लिए तैयार है। 'वे लोग विचार कर रहे थे कि बिहार के किसानो के आन्दोलन मे इन लोगो का क्या योगदान हो सकता है ? माधवी ने कहा, "दादा, हम लोगो ने निश्चय कर लिया है कि हमारा सारा दल किसानो की ओर आन्दोलन मे भाग ले।"[२]

क्रान्तिया, जुलूस तथा सघर्ष

किसान-सभा ने अगस्त मे अपना नया कार्यक्रम 'किसान अधिकारो का एक चार्टर' बनाया। इस चार्टर ने किसानो के रोटी और जमीन के लिए किए जाने-वाले सघर्ष को राष्ट्रीय स्वाधीनता के सघर्ष मे जोड़ा और जागीरदारी प्रथा एव किसानो पर कर्ज के बोझ को समाप्त करने के लिए भूमिहीन किसानो के हेतु सरकारी जमीनें दिए जाने की माँग की। "१९३६ मे पहली बार भारत मे किसानो ने मई-दिवस-कार्यक्रम म भाग लेकर मजदूर-किसान एकता की परम्परा कायम की।"[३] 'भूले बिसरे चित्र' मे काग्रेस-स्वयसेवक के शव का जुलूस निकाला जानेवाला था किन्तु जनता मे एक प्रकार का क्रोध था, एक प्रकार की हिंसा का भाव था। "पुलिस अधिकारी उस जुलूस की मनोवृत्ति को देखकर चिंतित हो उठे और गगाप्रसाद ने यह आश्वासन दिया कि जुलूस हिंसात्मक नही होगा।"[४] "जुलूस मे शोर मच रहा था, भद्दी-भद्दी गालिया सरकार और सरकारी अधिकारियो को दी जा रही थी।"[५] इस प्रकार सरकार, पुलिस अफसर तथा जनता (सर्वहारा वर्ग) मे सघर्ष की स्थिति जुलूस के कारण बनी हुई थी। "सरकार पाप का धन खाती है। इसी से तो मनुष्य, प्रत्येक मनुष्य, हराम का माल खाता है। हमे ऐसी सरकार को मिटा देना

---

१ न्यायाधिकरण—गुरुदत्त पृ० ११४
२ स्वप्नमयी—विष्णु प्रभाकर, पृ० ४६-४७
३ हिन्दी की प्रगतिशील कविता—डा० रणजीत, पृ० १२६
४ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४०५
५ वही, पृ० ४०६

चाहिए।"[1] "रोटी के लिए सिर झुकाना कितना दुखदायी, कितनी अपमानभरी विषैली छाया है, यही मैंने अपने जीवन में सीखा है। मैं और कुछ नहीं कहूँगी।"[2] सरकार के भ्रष्टाचार के खिलाफ रांगेय राघव के क्रान्तिकारी विचार हैं। वे क्रान्ति में विश्वास रखकर सामाजिक व्यवस्था-परिवर्तन की आकांक्षा रखते हैं तथा वर्ग-संघर्ष का अनुमोदन करते हैं।

सभी श्रमिक वर्ग उस दिन का इन्तजार कर रहे हैं जब प्रत्येक मानव में खुशहाली होगी। "वह दिन कब आयेगा, जब कि भारत का प्रत्येक श्रमिक सुखी होगा, उसके चेहरे पर वेदना की तथा दीनता की छाप न होगी और वह श्रम में गर्व का अनुभव करके सर उठाकर चलेगा।"[3] मार्क्सवाद संघर्ष में विश्वास करता है, मूर्खतापूर्ण बचकाने जोश में नहीं। संघर्ष बड़ी गम्भीर बात होती है। सेनानी तभी सफल होता है जब वह अपने को उत्तेजित न होने दे। हमेशा उसे अपनी और शत्रु की शक्ति की तुलना करते रहना पड़ता है।"[4] 'न्यायमूर्ति' उपन्यास में क्रान्ति को संस्कृति में निहित बताया है—"हमेशा संस्कृति में क्रान्ति पूर्व से ही निहित है। कृष्ण क्रान्ति का प्रतीक हैं। अर्जुन और दुर्योधन जीवन की क्रमशः विषमताओं से ग्रसित व विषमताओं के निर्माता प्राणी हैं। क्रान्ति का उद्घोषक, विषमताओं से ग्रसित प्राणी को क्रान्ति के लिए, हिंसा के लिए प्रेरणा देता है।"[5] क्रान्ति की प्रेरणा जीवन की विषमताओं से मुक्ति दिलाने का प्रयास है—"बन्धुओ! क्रान्ति, युद्ध, हिंसा से भय करने की आवश्यकता नहीं है। हिंसा के नाम पर जो नेता और व्यक्ति आपको अकर्मण्य रहने के लिए कहते हैं, प्रेरित करते हैं वे हमारी सांस्कृतिक क्रान्ति की परिभाषा को नहीं जानते और वे जीवन में केवल कौरव पक्ष की पुष्टि करनेवाले हैं। जब-जब, जहाँ-जहाँ, जीवन की विषमताएँ बढ़ेंगी, जीवन के प्राकृतिक प्रवाह को वे अवरुद्ध करेंगी, वहाँ वहाँ निश्चय रूप से क्रान्ति का सृजन होगा। सृजनात्मक क्रान्ति की लपेट शनैः-शनैः फैलती है। जो बंगाल, बिहार, असम, केरल में आज हो रहा है, वह कल यहाँ भी हो सकता है। पहले जो छिपकर होगा, वही देखते-देखते खुले आम होने लगेगा।"[6]

संघर्ष की व्याख्या करते हुए रघुराजसिंह जी 'सामर्थ्य और सीमा' में संघर्ष को अनादि काल से व्याप्त बताते हैं—"मानव जीवन ही संघर्ष का है। इस

१ घरौंदे—रांगेय राघव, पृ० १६८
२ वही पृ० २२१
३ उड़े पत्ते—सरस्वती सरन कैफ, पृ० २६
४ वही, पृ० १०६
५ न्यायमूर्ति—श्रीगोपाल आचार्य पृ० २३८
६ वही, २३६

सघर्ष मे कभी एक पक्ष जीतता है तो कभी दूसरा पक्ष जीतता है । हमारे हाथ मे कुछ भी नही । हम काल और परिस्थितियो के चक्र मे घूम रहे हैं । यह सघर्ष अनादिकाल से चलता आ रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा । जब तक सृष्टि मे विपमता है, शारीरिक बल, बौद्धिक बल, मानसिक बल—जब तक यह बल किसी मे अधिक है और किसी मे कम है, तब तक यह सघर्ष चलता रहेगा । सबल निर्बल पर शासन करेगा और सबल ही निर्बल पर अत्याचार ।"[1] इस विपमता स छुटकारा तभी मिल सकता है जबकि समाज मे क्रान्ति द्वारा व्यवस्था-परिवर्तन हो । 'समझौता' की रानी कहती है कि हमे समाज मे शोषित-वर्ग को मुक्त करने के लिए क्रान्ति लानी है—"मैंने समाज मे अमानवीय तत्व देखे है । जनता का एक बडा अग अधेरे मे सिसकते देखा है ।"[2] जब हम अपना लक्ष्य सघर्ष अथवा युद्ध बना लेंगे तो निश्चय ही मुक्ति पा सकेंगे—"जिससे हम लड सकते हैं उससे हमे भय नही लगता । मैंने पिछले महायुद्ध मे मृत्यु को निकट से देखा है । पर उस भयानक रक्तपात मे जहा हृदय-वेधी चीत्कारें उठती हैं, जहा मृत्यु की भयानक यातनाओ से लोगो के मुख विकृत हो जाते थे, मैंने कभी भय का अनुभव नही किया । आखिर क्यो ? उत्तर स्पष्ट है । वहा तो सघर्ष और युद्ध था मेरे आगे ।"[3]

इस प्रकार आन्दोलनकारी प्रवृत्तिया सदैव से समाज के पीडित एव दलित वर्गो मे व्याप्त रही है । इनका प्रमुख कारण कमजोर वर्ग का शक्तिशाली वर्ग द्वारा शोषण ही रहा है । शोषित वर्ग जब बहुविध शोषित होता है तो उसका मानस विचलित होने लगता है । वह प्रतिशोध की आग मे येन-केन-प्रकारेण शोषण से मुक्ति पाने के लिए प्रयासशील होता है । अत कभी हडताल के माध्यम से तो कभी सघर्ष के माध्यम से सगठित प्रयास करता है । इस वर्ग के आन्दोलनकारी प्रयत्न उसकी वर्गगत चेतना के फलस्वरूप ही पनपते हैं ।

सयुक्त परिवार का विखण्डन

सयुक्त परिवार म कुछ व्यक्ति अत्यधिक परिश्रम करते हैं और कुछ बिल्कुल बेकार बैठे खाया करते हैं । इस श्रम की विपमता और उपभोग की समानता को देखकर परिश्रमी व्यक्ति अनुभव करने लगते है कि वे पृथक् रह-कर थोडे परिश्रम से भी अधिक सुखी जीवन व्यतीत कर सकते है । अत परिश्रम व आर्थिक दृष्टिकोण से सयुक्त परिवार का विखण्डन होता है । सयुक्त

---

१ सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा पृ० १५४

२. समझौता—श्रीराम शर्मा 'राम', पृ० ४५

३. सामर्थ्य और सीमा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ६७

परिवार के विघटन के और भी अनेक कारण हैं जैसे—सम्पत्ति का बटवारा, अर्थलिप्सा, यूरोपियन सभ्यता या व्यक्तिगत स्वार्थ, आर्थिक विषमताए आदि।

सम्पत्ति का बटवारा

सम्पत्ति पर अधिकार पाने के लिए परिवारो मे अनेक कुकर्म किए जाते हैं। अत्याचारो से दु खी हो, वर्गगत चेतना के कारण सघर्ष का उदय होता है तथा परिवारो का विखण्डन हो जाता है। उपन्यास 'अमृत और विष' मे—"छोटी बेगम से पैदा होने वाले लडके अब्बू को नवाब की जायदाद दिलवाने के लिए नवीब बख्श ने बडी बेगम के छोटे लडके को जहर दिलाकर मरवा दिया।"[1] 'न्यायाधिकरण' उपन्यास म—"तुम्हारी पढाई म बीस हजार रुपया लगा जो परिवार की सम्पत्ति म से व्यय हुआ। अब बारी मेरे बच्चो की है। जब तक उनकी पढाई समाप्त नही हो जाती, तब तक सम्पत्ति मे बटवारा ठीक नही होगा।"[2] 'झूठा सच' मे—'मेरे दादा के छोटे पुत्र की विवाहिता पत्नी से सदा लडकिया ही हुई। यदि दादा अपनी पैतृक सम्पत्ति अपने दोनो पुत्रों मे बाटें तो एक पुत्र का एकमात्र उत्तराधिकारी मैं ही हू। वही प्रापर्टी का सवाल। कानूनन् मेरे दादा के बडे पुत्र के पुत्र ही सम्पत्ति के अधिकारी हैं।"[3] अत सम्पत्ति के बटवारे म विविध धारणाए वर्ग सघर्ष को जन्म देती हैं। पारिवारिक आर्थिक सघर्ष तथा व्यक्तिगत अहम् की चेतना के फलस्वरूप भी सयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं, आर्थिक मजबूरियो के कारण भी आज सयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं। पहले जमाने मे सयुक्त परिवार होते थे तथा सम्मिलित हैसियत के मुताबिक खर्चा करने की एक परम्परा बन गई थी, किन्तु "आज सयुक्त परिवार तेजी से टूट रहे हैं। शिक्षित परिवारो मे घर-घर यही समस्या है कि आमदनी के अन्दर खर्च को समेटा नहीं जा सकता।"[4] 'यह पथ-बन्धु था' उपन्यास मे सयुक्त परिवार का विखण्डन बडे पुत्र की लोभवृत्ति के कारण हुआ। 'सरो' विचार करती है—' गुणवन्ती के विवाह का क्या होगा? लोग तो बडा घर समझकर मुह फाडेंगे कि इतना दो तो ब्याह करेंगे। कहा से आएगा उतना सब? बापू बेचारे कितना करेंगे? आखिर मदिर म मिलता ही कितना है! सारी जमीन जायदाद तो जेठ जी हडप ही बैठे है।"[5] "माता पिता और

---

१ अमृत और विष—अमृतलाल नागर, पृ० ५३६
२ न्यायाधिकरण—गुरुदत्त, पृ० २१-२२
३ झूठा सच (भाग १)—यशपाल, पृ० ७६
४ उड़ पन्ने—सरस्वती सरन कैफ पृ० ५५
५ वही पृ० ५५

छोटे भाई की बहू सरो के हृदय में इस शोषण के विरुद्ध अनेक विचार मन में उदय होते हैं तथा आर्थिक विषमता के कारण टूटते चलते हैं।"[1]

'घरौंदे' उपन्यास में तो भारतीय परिवारों को गुलामी का पक्का करने का आधार मानते हैं। परिवार के सदस्यों में कर्तव्य-भावना के बीज बोकर माता-पिता अपनी स्वार्थवृत्ति की परिपूर्ति करते हैं किन्तु यूरोपीय संस्कृति की परिपालना में ऐसे परिवारों को भी झकझोर दिया गया है—'हिन्दुस्तान की गुलामी को पक्का करनेवाले मा-बाप इतने दकियानूसी होते हैं कि वे अपने बच्चों को उड़ने नहीं देना चाहते। असल में यह पूंजी है। स्त्री पति पर निर्भर होती है क्योंकि वह उसे रोटी देता है। बच्चा बाप को इसलिए चाहता है कि बाप उसे पालता है।"[2] किन्तु वर्गगत चेतना तथा पाश्चात्य प्रभाव ने परिवारों की ऐसी स्थिति में भी संघर्ष की भूमिका तैयार कर दी है। पाश्चात्य सभ्यता व शिक्षा ने भी संयुक्त परिवार-प्रणाली को बहुत प्रभावित किया है तथा परिवारों में व्यक्तिवादी भावना लाकर संयुक्त परिवार के विघटन में सहयोग दिया है— 'यूरोपियन सभ्यता में पले भौतिकवादी संयुक्त परिवार को एक पुरानी, गली सड़ी तथा घुनी हुई प्रथा मानते हैं।"[3] परिवार कोई धर्म-संस्था नहीं वरन् एक आर्थिक इकाई है। केवल आर्थिक प्रपंच के कारण अनेक संयुक्त परिवार टूट जाते हैं। प्रेमचन्दोत्तर काल तक आते आते सम्मिलित परिवार छिन्न-भिन्न होते दिखाई देते हैं। इसका मूल कारण आर्थिक जीवन में विषमता का समावेश है, पुरानी पीढ़ी एवं नवीन पीढ़ी का संघर्ष है— 'पुरानी पीढ़ी आज भी प्रायः सम्मिलित परिवार को अन्ततः मुग्ध भाव से देखती है। वह न तो अपनी संस्कारगत भावनाओं से मुक्त हो पाती है और न उन आधुनिक समस्याओं को समझ पाती है जिसके कारण सम्मिलित परिवार में विषमताएं अवश्यम्भावी हैं।"[4]

पारिवारिक कलह

संयुक्त परिवार में मुख्य रूप से औरतों में बहुत झगड़ा होता है। "औरतों की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति के कारण व नयी पीढ़ी की औरतों में शिक्षा एवं वर्गगत चेतना के कारण छोटी-छोटी बातों व मान्यताओं पर झगड़े हो जाते हैं। अशान्तिमय जीवन से बचने तथा स्वतन्त्र व्यक्तित्व की चाह से पृथक् परिवार बन जाते हैं। 'गिरती दीवारें' उपन्यास में संयुक्त परिवार में तनाव वर्गगत चेतना का ही परिणाम है। चेतन नयी पीढ़ी का है तथा पत्नी को सुशिक्षित

१ यह पथ-बंधु था—नरेश मेहता पृ० ३७८
२ घरौंदे—डा० रांगेय राघव पृ० १५२
३ गुण्ठन—गहदत्त पृ० ५
४ हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण—बिन्दु अग्रवाल, पृ० ३३३

बनाना चाहता है, किन्तु संयुक्त परिवार-प्रथा इसके मार्ग में बाधक सिद्ध होती है। "चेतन की भाभी उसकी पत्नी के लिए कहती है—"वह यदि पढ़ती है, तो क्या मैं नहीं पढ़ती ? वह तो पढ़ने के बहाने खाट पर टाँगें फैलाये लेटी रहे और मैं बांदी बनी घर का काम करूं।"[1] इस प्रकार की पारिवारिक शोषणवृत्ति संघर्ष को जन्म देती है। 'भूले बिसरे चित्र' की विद्या वर्गगत चेतना का प्रतीक है—' ममता ? कैसी ममता और किसके प्रति ममता ? घोर घृणा में रहना पड़ा है मुझे घुट घुटकर। उन अर्थ-पिशाचों के प्रति भला मुझे ममता हो सकती है, जिन्होंने मेरे माता-पिता के परिवार का खून चूस लिया ?'"[2] आधुनिक एकांतता जो संयुक्त परिवार में समाप्ति से आ रही है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग स्थान है, एक दिलचस्प दृश्य है।"[3] 'भूले बिसरे चित्र' में मुंशी शिवलाल का परिवार संयुक्त परिवार है। परिवार में उनके छोटे भाई राधेलाल की पत्नी का शासन चलता है। स्वयं शिवलाल भी राधेलाल की पत्नी से डरता है। शिवलाल की रक्षिता छिनकी आर्थिक दृष्टि से शोषण से समाज को बनाये रखने का प्रयास करती है। संयुक्त परिवार में यदि एक भी व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से ऊपर उठ जाता है तो सम्पूर्ण परिवार उसी पर आश्रित होकर अपना जीवन-यापन करते हैं। अतः पराश्रयी वृत्ति ही कलह का कारण बनती है—"यमुना के मन में अपने पति की कमाई लुटने का क्षोभ होता है और छिनकी की बात उसे सत्य प्रतीत होती है।"[4] "अपने भाग का नाहीं खाय रहे हैं, गंगा के भाग का खाय रहे हैं ई सब लोग।"[5] इस प्रकार पारिवारिक कलह से संयुक्त परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है।

'घरौंदे' उपन्यास में संयुक्त परिवार को आदिम चिह्न तथा पूंजीवादी प्रेम का घर बताया है—"हम परिवार बनाकर रहते हैं। परिवार एक आदिम चिह्न है, बर्बरता की निशानी है, हर कदम पर बाधे है। परिवार मन की जड़ों तक धंसा हुआ पूंजीवादी घृणा का झूठा प्रेम है।"[6] धन की लाश पर ही यह पारिवारिक किला खड़ा रहता है। सामन्ती शक्ति की बलि हो, जिसकी नींव एकमात्र धन है—धन, जिसकी रक्षा के लिए मनुष्य ही नहीं एक पिशाच की आवश्यकता है।"[7] 'गुंठन' उपन्यास में एक ओर तो संयुक्त परिवार के परिप्रेक्ष्य

---

१ गिरती दीवारें—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ३५६
२ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ५४०
३ हिन्दी उपन्यास में शिल्प और प्रयोग—डा० त्रिभुवनसिंह, पृ० ४०
४ हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग—डा० मंजुलता सिंह, पृ० २८०
५ भूले बिसरे चित्र—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १४५ (१९५९)
६ घरौंदे—रांगेय राघव, पृ० १५५
७ वही, पृ० १७५

मे घटनाओ और पात्रो को घुमाया गया है, दूसरी ओर इससे विच्छिन्न हुए पात्र और घटनाए टूटे परिवार मे उत्पन्न व्यापक विस्फोट के प्रमाण हैं—"जिन पात्रो मे सुबह के भूले साय को घर आकर सयुक्त परिवार मे आस्था प्रकट करने की चाह है वे सुखी हैं, जैसे नलिनी और कान्ता, परन्तु वे पात्र जो विच्छृखल परिवार के पोषक बने रहना चाहते हैं, अन्त मे विनोद की भाति दोबारा पागल होते हैं।"[1] भूषण कहता है—"जैसे किसी समाज मे रहने के लिए उस समाज का आचार-विचार अपनाना पडता है, वैसे ही किसी परिवार म रहने के लिए उस परिवार के जीवन-प्रकार को स्वीकार करना पडता है।···मन कलुषित होने पर परिवार की भावना टूट जाती है। एक परिवार म रहने के लिए परस्पर स्नेह, सहानुभूति और सहयोग चाहिए।"[2] 'गिरती दीवारें' म निम्न-वर्ग अनेक सघर्षो को झेलते हुए भी सयुक्त परिवार की मर्यादा को बनाए रखता है। शादीराम कठोर, निर्मम तथा सकीर्ण है, फिर भी वह निठल्ले पुत्र रामानन्द के विशाल परिवार का बोझ सभाले हुए है। रामानन्द की पत्नी मायके से ही झगडालू स्वभाव लेकर आयी, क्योकि वह सयुक्त परिवार की लडकी थी। सयुक्त परिवार म द्वेष, कलह तथा सघर्ष का वातावरण व्याप्त हो गया है।"[3]

सयुक्त परिवारो के विखण्डन म भी अर्थ का तत्व ही प्रबल है। अर्थ के द्वारा ही परिवार मे शोषण की प्रक्रिया सदैव क्रियाशील रहती है। परिवार मे जो सदस्य धन-सम्पन्न होता है उसी का शासन चलता है। फलत परिवारो मे सघर्ष की स्थिति अवश्यम्भावी रूप मे बनी रहती है। लेन-देन मे कमी-वेशी ईर्ष्या का कारण बन जाती है। स्त्रियो की पारस्परिक कलह से सम्पत्ति के बटवारे होते हैं, बदलती सामाजिक एव नैतिक मान्यताओ के कारण सयुक्त परिवारो का विखण्डन होता है। व्यक्तिगत भावना के विकास के साथ-साथ सामाजिक चेतना का भी उदय हुआ है। इस चेतना के कारण ही परिवारो मे व्याप्त शोषण की प्रक्रिया को समाप्त करने के लिए सयुक्त परिवारो का विखण्डन हुआ।

निष्कर्ष

हिन्दी के सामाजिक-यथार्थवादी उपन्यासो के माध्यम से वर्ग सघर्ष का चित्रण दो प्रकार से हुआ है—मार्क्सवादी चिन्तन की अवधारणा के अनुरूप और दूसरे समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य मे। सामाजिक-यथार्थवादी रचनाकारो मे सर्वश्री

---

१ हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य—डा० प्रेम भटनागर, पृ० १७७

२ गुण्ठन—गुरुदत्त, पृ० १६०-१६१

३ हिन्दी उपन्यास का सास्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० ६५

भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती, रागेय राघव, श्रीराम शर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, मोहन राकेश राजेन्द्र यादव, श्रीगोपाल आचार्य, नरेश मेहता, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण प्रभृति उपन्यासकारो की सामाजिक यथार्थ का चित्रण करनेवाली औपन्यासिक कृतियों मे वर्ग-सघर्ष की प्रेरक परिस्थितियों एव विडम्बनापूर्ण प्रतिक्रियाओ का मार्मिक चित्रण हुआ है। आलोच्य उपन्यासो म पूजीपति और सर्वहारा-वर्गों की चेतना का प्रतिनिधित्व करनेवाले शोपक और शोषित वर्गों की सघर्ष-मूलक स्थितियो को रूपायित करने म उपन्यासकार पूर्ण सफल हुए हैं। वर्ग-गत वैमनस्य किस प्रकार साम्प्रदायिक सघर्ष, सास्कृतिक पतन, नारी-शोषण, पारिवारिक विघटन, सामाजिक कुरीतियो के विस्तार और प्रगतिशील चेतना को कुण्ठित करनेवाला सिद्ध हुआ है, इसे रूपायित करने मे भी उपन्यासकारो को प्रभूत सफलता मिली है। सामाजिक जीवन के यथार्थ को अनुभूत सत्य के रूप मे कलात्मक अभिव्यक्ति करनेवाला उपन्यासकार ही सफल माना जाता है। इस दृष्टि से उद्धृत औपन्यासिक कृतियों के रचनाकार निश्चय ही अभिनन्दनोय हैं कि उन्होंने बेलाग होकर सामाजिक जीवन की विसगतियो, विद्रूपताओं और विडम्बनाओ को चित्रित किया है। प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी औपन्यासिक सरचना की रचना-प्रक्रिया का यह नया मोड है कि उसने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से सामाजिक-यथार्थवाद की दिशा ग्रहण की है। वस्तुत इसी परिप्रेक्ष्य मे आलोच्य उपन्यासो का मूल्याकन किया गया है।

अध्याय ५

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे वर्ग-संघर्ष

ऐतिहासिक उपन्यासों की सृजनात्मक प्रेरणा

ऐतिहासिक हिन्दी साहित्य के निर्माण की मूल प्रेरणाओ का विश्लेषण करते हुए एक आलोचक ने लिखा है कि कथाकार इन सात भावनाओ से प्रेरित होकर ही इतिहास की ओर प्रवृत्त हुए—'वर्तमान से पराजित अथवा असन्तुष्ट होने के फलस्वरूप पलायन की भावना, अतीत को वर्तमान से अधिक श्रेष्ठ एव महत्त्वपूर्ण समझते हुए उसके पुनस्सस्थापन की भावना वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से उपजीव्य खोजने की भावना, कतिपय ऐतिहासिक घटनाओ या पात्रो के प्रति न्याय की भावना, इतिहास रस म लिप्त रहने की सहज भावना, जातीय गौरव, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापना तथा वीर पूजा-भावना, जीवन की किसी नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करने की भावना।'[1] इन भावनाओ से किसी एक अथवा एकाधिक से सयुक्त होकर उपन्यासकारो ने अपनी कृतियो का सृजन किया है। आलोचको ने ऐतिहासिक रचनाओ के समष्टिपरक अनुशीलन के आधार पर सात मूल सृजन प्रेरणाओ का उल्लेख किया है—"वृन्दावनलाल वर्मा की उपन्यास-कला आत्माभिमान, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापन तथा वीर पूजा की भावना से प्रेरित है, आचार्य चतुरसेन की ऐतिहासिक रचनाए इतिहास रस म लिप्त रहने के कारण नैसर्गिक भावना और वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से उपजीव्य खोजने की भावना से प्रभावित हैं, राहुल साकृत्यायन तथा यशपाल के उपन्यास जीवन की किसी नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करने के कतिपय ऐतिहासिक पात्रो अथवा घटनाओ के प्रति न्याय की भावना स अनुप्राणित हैं।'[2] 'ऐतिहासिक उपन्यासो की सीधी परम्परा रोमान्सो से जुडी रहती है। वह विकसित रूप जिसे हम आज के ऐतिहासिक उपन्यासो म पाते है मुख्यत अठारहवी तथा उन्नीसवी सदी की देन है।'[3]

---

१ आलोचना (उपन्यास अक)—१३ पृ० १७८

२ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन पृ० ३३२

३ हिन्दी उपन्यास कला—डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ० ६७

ऐतिहासिक उपन्यासो मे वर्ग-भावना का स्वरूप

हिन्दी के कथाकारो म राहुल साकृत्यायन ने भारत के प्राचीन इतिहास और मार्क्सवादी दर्शन का गम्भीर अध्ययन किया तथा अपने उपन्यासो मे दोना का समन्वय किया। उनके उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि म समाजवादी आलोक का प्रसार करते हैं। 'सिंह सेनापति' मे वैशाली के गणराज्य तथा मगध-साम्राज्य के सघर्ष की कहानी है। "यशपाल मार्क्सवादी लेखक हैं और द्वितीय महायुद्ध के सम्बन्ध म जो मार्क्सवादी धारणाए थी उनका किसी न किसी रूप म प्रस्फुटन इनके ऐतिहासिक उपन्यासो म हुआ है।'[१] 'मुर्दों का टीला' उपन्यास म—'लेखक ने उस युग की सभ्यता के, धनिको के ह्रास विलास व, अत्याचार-ग्रस्त दास वर्ग के जीवन का निरूपण करते हुए अन्त म सम्पूर्ण सभ्यता के जल-मग्न हो जाने की कथा कही है।'[२] दिव्या' उपन्यास म सामन्ती शोषण की प्रतिक्रियाए अभिव्यक्त की है। 'शोषित नारी का शोषण करने वाले व्यक्तियो समुदायो और सस्थाओ का भी कुरूप चेहरा उभरता है। गरीब ब्राह्मण जो स्वय गरीब है, शोषित है अपनी सेविका का शोषण करने म नही चूकता। दास-प्रथा, सामन्त प्रथा म शोषण तमाम छोटी बडी सीढिया है जो क्रमश एक-दूसरे पर सवार हैं।'[३] दास प्रथा तथा सामन्ती प्रथा के साथ साथ राजाओ और नवाबो की विलासी भावना न नारी जीवन का निरन्तर शोषण किया है। व स्वय भी अंग्रेजो स निरन्तर शोषित होते रहे हैं। 'सोना और खून म नसीरुद्दीन हैदर ने दो करोड रुपये खर्च करके जो अंग्रेजो से हिज मैजेस्टी की उपाधि खरीदी थी उसका भली भाति उपयोग करने के लिए वे सिर से पैर तक अंग्रेजी लिबास मे रहते थे।'[४] हिज मैजेस्टी नसीरुद्दीन हैदर के महल म बहुत सी बेगमात और ग्यारह सौ आसामिया, जलसेवालिया और डोमवालिया थी। 'नसीरुद्दीन औरतो का खास शौकीन था। उसके महल मे अनेक नीच जाति की स्त्रिया भी थी जिन्हे उसन उप पत्नी या रखैल बनाकर रखा हुआ था।[५]

'जय यौधेय म सर्वहारा वर्ग की भावनाओ का निरूपण हुआ है। वहा नारी का शोषण वर्जित माना गया है। रोमक राजाओं के अन्त पुर तो होता है किन्तु— वहा राजा की एक ही रानी होती है। राजा एक से अधिक विवाह नही कर सकता। राजान्त पुर की परिचायक परिचारिकाए क्रीतदास नही

---

१ हिन्दी उपन्यास मे नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ४०४
२ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी पृ० १६०
३ हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—डा० रामदरश मिश्र, पृ० १७२
४ सोना और खून—आचार्य चतुरसेन पृ० १७२
५ वही पृ० १७३

अत वह कहती है—"हम प्रजा की सेवा के लिए अपना सर्वस्व दे देना होगा।"[1] 'दिव्या' तथा 'वैशाली की नगरवधू' म नारी की विवश तथा असहाय स्थिति व यन्त्रणा से मुक्ति पाने का मार्ग बौद्ध धर्म की शरण लेना मात्र ही बताया है। वर्गों की स्थिति का उल्लेख आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक दृष्टियों से किया गया है। 'जय यौधेय' म— 'वर्णाश्रम धर्म और बौद्ध धर्म की टकराहट चित्रित की गई है।"[2] वर्गों की स्थिति इसी टकराहट म उलझी रहती है तथा सघर्षरत बनी रहती है। अत ऐतिहासिक उपन्यासो म विभिन्न युगो का चित्रण किया गया है। 'प्रत्येक युग की अपनी विशेषता होती है और विशेषताओं के सदर्भ मे व्यक्ति विशेष जीवन जीता है। शासक वर्ग स सम्बन्धित लोगो के जीवन म अनेक आडम्बर, औपचारिकता कृत्रिमता, घृणा, ईर्ष्या द्वेष आदि अनक बातें हो सकती हैं। सामान्य लोगो का जीवन स्वतत्र हो सकता है और परतन्त्र भी।"[3]

ऐतिहासिक उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष की दिशाए

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यासो म 'वैशाली की नगरवधू' म गणो तथा राज्यो का सघर्ष दिखाया गया है। "इस सघर्ष का मूल कारण यह था कि ब्राह्मण लोग राजाओ को अश्वमेध यज्ञ करने के लिए उकसाकर राज्य की सीमाओ का विस्तार चाहते थे कि उनके धर्म का प्रचार हो, क्योंकि जितने गणराज्य थे वे आर्येतर थे। आर्यों के अतिरिक्त सारे देश म अनार्य थे। आर्य अत्यन्त विलासी मनोवृत्ति के थे और इस विलास लिप्सा की तृप्ति के लिए अनार्य बालाओ का उपयोग करते थे।"[4] फलत धर्म के आधार पर शोषण आर्य तथा अनार्यों के सघर्ष का मूल कारण था। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' म—'प्रेम त्रिकोण की सृष्टि के फलस्वरूप मूल भाव के रूप मे सघर्ष की परिव्याप्ति है। यह सघर्ष कुलवधू और नगरवधू का है, सुहाग के नूपुरो तथा नर्तकी के घुघरुओ का है। माधवी और कन्नगी के दो छोरो के बीच चेट्टीपुत्र कोवलन का द्विधाग्रस्त मन भटकता है।"[5] 'दिव्या' उपन्यास म वर्णाश्रम और श्रमण धर्मों का सघर्ष, अभिजात्य और व्यवसायी-वर्ग की टकराहट का वर्णन किया गया है। राहुल साकृत्यायन के 'सिंह सेनापति' मे वैशाली गणराज्य तथा मगध साम्राज्य का सघर्ष भी धन सम्पन्नता एव धनाभाव के

१ प्रभावती—निराला पृ० ६४
२ हिन्दी उपन्यास मे नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ४१३
३ उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियां—डा० सुरेश सिन्हा, पृ० १६७
४ हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा—डा० मक्खनलाल शर्मा, पृ० ३३५
५ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी पृ० १५५

कारण होता है— वैशाली गणराज्य होने के कारण सामाजिक अवस्था में आस पास के अन्य राजतन्त्रीय राज्यों से अधिक उन्नत और समृद्ध है। इसीलिए वह मगध जैसे साम्राज्य से टक्कर लेने में नहीं हिचकता।[1] दिव्या में वर्ग संघर्ष द्वारा समानाधिकार की चर्चा की गई है— सामन्तगण संकटकालीन परिस्थिति से लाभ उठाकर अपनी शक्ति और धन को बढ़ाने की चाल चलते हैं और संकट तभी टलता है जब पुरानी परिपाटियों को त्यागकर सारे गण के जनों को समानाधिकार दे दिए जाते हैं।[2]

गढ़ कुण्डार में जातिगत अभिमान स्त्री-सौन्दर्य तथा पारस्परिक मानापमान के कारण युद्ध होते हैं। मृगनयनी में भी सामन्तीय व्यवस्था के नियमों पर करारा प्रहार करते हुए शोषण के विविध बिन्दुओं को उभारा गया है। सामन्त वर्ग तथा जनसाधारण में यही संघर्ष का कारण बनकर उभरा है— वर्मा जी श्रम के पुजारी हैं। मृगनयनी मुसाहिब जू आदि में श्रम की महत्ता प्रतिपादित की गयी है।[3] जातिगत भेदभाव की समस्या को प्रस्तुत करते हुए संघर्ष की स्थितियाँ रही हैं। वयं रक्षामः उपन्यास में 'रक्ष संस्कृति' के चित्रण के माध्यम से शोषण का एक विस्तृत चित्र खींचा गया है। यही शोषण वर्ग संघर्ष का कारण बनता है— अपनी रक्ष संस्कृति को स्थापित करने के लिए उसने धर्म को त्याग दिया नियमों का उल्लंघन किया। अधिक से अधिक पाप करने तक को वह प्रस्तुत हो गया था। उसने (रावण) अपनी संस्कृति के प्रसार के लिए अधिक से अधिक अत्याचार और पाप करने प्रारम्भ किए। नर भक्षण उसका और उसके अनुयायियों का एक व्यापार हो गया था।[4] रक्त की प्यास में शैव राजा और जैन मन्त्री के संघर्ष का वर्णन है। यह संघर्ष कन्या के कारण हुआ। झाँसी की रानी में स्वराज्य प्राप्ति हेतु संघर्ष की स्थितियाँ व्यक्त की गई हैं। यह संघर्ष अंग्रेजों से हुआ है। सुहाग के नूपुर में यह संघर्ष कुलवधू और नगरवधू का है। सुहाग के नूपुर और नर्तकी के घुंघरुओं का संघर्ष है— ज्यों ज्यों सुहाग के नूपुर पाने की अतृप्त लालसा प्रखरतर होती जाती है त्यों त्यों प्रतिक्रिया स्वरूप उसके वेश्या और सती रूपों का संघर्ष भी तीव्रतर होता जाता है।[5] मधुर स्वप्न में बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय के सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है।[6]

---

१ हिंदी उपन्यासों में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ४०२
२ वही पृ० ४०४
३ वृन्दावनलाल वर्मा—आचार्य बटुक पृ० ६१
४ वयं रक्षामः—आचार्य चतुरसेन पृ० १६८
५ हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ—महेन्द्र चतुर्वेदी पृ० १५५
६ हिन्दी उपन्यास—सुषमा धवन पृ० ३७३

ऐतिहासिक उपन्यासों में विवेचित वर्ग

ऐतिहासिक उपन्यासों में शासक और शासित, शोषक और शोषित-वर्ग के पात्रों का निरूपण हुआ है। इन उपन्यासों में अधिकांश पात्र सामन्त वर्ग से हैं। दोनों वर्गों में भले-बुरे, सज्जन और दुर्जन दोनों ही प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं। वर्मा जी के उपन्यासों में जो पात्र जिस वर्ग से सबंधित है, वह उसका सच्चा प्रतिनिधि है— इनके उपन्यासों में राजा वर्ग मंत्री वर्ग, सेवक वर्ग कलाकार-वर्ग, प्रेमी वर्ग, लुटेरा वर्ग साधु वर्ग नारियों में रानियाँ, सच्ची प्रेमिकाएँ पत्नियाँ, दासियाँ, मनचली नारियाँ आदि सभी आई है। एक एक वर्ग के पात्रों में बहुरूपता है। हुरमतसिंह, नायरसिंह, गंगाधर राव जैसे विलासी एवं क्रूर राजा के साथ ही साथ मानसिंह जैसा उदार कला प्रेमी और प्रजावत्सल राजा भी आया है।'[1] आचार्य चतुरसेन शास्त्री के अधिकांश पात्र प्रशासक एवं सामन्त वर्ग के हैं। शासक और शासित दोनों ही प्रकार के पात्रों की तीन श्रेणियाँ हैं—पहली श्रेणी में आदर्श शासक है जो जनता के रक्षक है। दूसरे वे जो किसी सदुद्देश्य के लिए ही अपनी शक्ति का व्यय करते है, जैसे घोघाबाबा, धर्म गजदेव, दद्दा चालुक्य, भीमदेव, दामो महता सामन्तसिंह सज्जनसिंह दुर्लभराय आदि (सोमनाथ), सोमप्रभ (नगरवधू), राम लक्ष्मण, मेघनाद (वयं रक्षाम), शिवाजी (सह्याद्रि की चट्टानें), खंगार जी (लाल पानी) आदि, दूसरी श्रेणी में हम उन वीर किन्तु विलासी राजाओं को लेते हैं, नवाबों बादशाहों, सामन्तों आदि को रख सकते है। वे सुन्दरी और भूमि को वीरभोग्या बनाने के अभ्यासी हैं। महमूद (सोमनाथ), बिम्बसार, दधिवाहन विदूडभ (नगरवधू), रावण (वयं रक्षाम), औरंगजेब (आलमगीर) आदि।[2] तीसरी श्रेणी में वे पात्र आते हैं जिनका प्रधान लक्ष्य केवल भोग करना रहता है। तलवार तो उनका आभूषण मात्र है। वे कायर, डरपोक लोलुप, कामुक, विलासी एवं स्वच्छाचारी है। अजयपाल, चामुण्डराय (सोमनाथ), दारा, शुजा (आलमगीर) महाराजाधिराज (गोली), जहाँगीर वजीरअली (धर्मपुत्र) आदि पात्रों को हम इस श्रेणी में रख सकते है। इसी प्रकार शासित नारी वर्ग व शापित वर्ग के अन्य पात्रों की भी तीन श्रेणियाँ मानी गयी है। राजा एवं सामन्तवर्ग के नारी पात्रों की भी तीन श्रेणियाँ हैं—प्रथम वे जिनमें राजपूती गौरव कूट कूटकर भरा है। अपनी मान-मर्यादा की रक्षा-हेतु वे प्राण उत्सर्ग तक कर देती हैं। वे परमार्थ के लिए त्याग करती है। चन्द्रप्रभा, रोहिणी (नगरवधू) सीता, मन्दोदरी, सुलोचना (वयं रक्षाम),

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा—डा० रामदरश मिश्र पृ० ७१

२ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर पृ० २४७

कुवरी (गोली), हुस्न बानो (धर्मपुत्र), चोला, शोभना, रमा (सोमनाथ), वेगम शाइस्ता खा (आलमगीर), लक्ष्मीबाई (सोना और खून) आदि। दूसरी श्रेणी मे वे परिगणित की जा सकती हैं जिनके उद्देश्य दूषित है। अम्बपाली (नगरवधू), सूर्पनखा, मायावती (वय रक्षाम॰), इच्छनी कुमारी (रक्त की प्यास) आदि स्वार्थी प्रवृत्ति की नारिया है। तृतीय वर्ग की नारियो का उद्देश्य केवल भोग ही है, उनमे मान-मर्यादा का कोई स्थान नही। वे पुरुष की भोग-सामग्री बनकर अपना जीवन-यापन करती हैं, जैसे चन्द्रमहल (गोली), हीराबाई (आलमगीर) आदि।

नारी के अतिरिक्त शोषित वर्ग के अन्य पात्रो की भी तीन श्रेणिया है—प्रथम श्रेणी के शोषितो का जीवन केवल स्वामी के लिए ही निर्मित होता है। वे अपने प्राणो का उत्सर्ग भी अपने अन्नदाता की सेवा मे समर्पित करना पसन्द करते हैं। वे साहसी, त्यागी, आज्ञाकारी एव स्वामीभक्त होते हैं। दूसरी श्रेणी मे शोषित-वर्ग के ऐसे पात्र हैं जो अधदास नही होते। वे स्वामी के अभिभावक बन मनमानी करते हैं, जैसे गगाराम गोला (गोली)। तीसरी श्रेणी के पात्र सामन्त-शाही शोषण के प्रतीक हैं—"जो अपने शासको के अत्याचार सहन करके भी मूक है। वे अत्याचारो के विरुद्ध जिह्वा खोलना चाहते हैं, किन्तु उसके पूर्व ही वे जिह्वा-विहीन कर दिए जाते हैं। उनके शासक उनकी शक्ति को, उनकी बुद्धि को, उनकी मर्यादा को धन और शक्ति पर त्रय कर लेते है। धर्म और समाज के कृत्रिम बन्धनों के द्वारा भी ऐसे निरीह प्राणियो को जकड दिया जाता है, जैसे किशनु (गोली) आदि।"[1] शासित नारियो की भी तीन श्रेणिया हैं—प्रथम श्रेणी मे वे नारिया आती हैं जिनका उद्देश्य मात्र स्वामिनी की सेवा करना है। शोभना (सोमनाथ) का उद्देश्य स्वामिनी के हेतु ही प्राण उत्सर्ग करना रहता है। दूसरी श्रेणी की नारिया उत्सर्ग की भावना से आविर्भूत होते हुए भी विवेक से काम लेती हैं। तीसरी श्रेणी की नारिया अपने रूप के कारण ही सामन्तशाही अत्याचारो को सहन करती हैं। कुछ तो अन्त-समय तक अपने सतीत्व की रक्षा करती रहती हैं और कुछ मूल्य लेकर सतीत्व को बेच देती हैं तथा कुछ को विवश होकर ऐसा करना पडता है जैसे चम्पा, केसर (गोली) आदि।

ऐतिहासिक उपन्यासो में विवेचित शोषक-वर्ग

राजा-वर्ग

राजा-वर्ग के पात्रो मे शोषक की दृष्टि से जो अवगुण भरे रहते हैं, उनके उत्तराधिकारी को अवगुण हस्तान्तरित होकर उनके हृदय मे प्रविष्ट हो जाते

---

1. आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर, पृ० २४६

है। विलासिता के कारण उनका आत्मबल जर्जर हो उठता है। मानवोचित मानवता एवं ममता कुंठित हो जाती है। इनकी प्रजा में अत्याचारों के कारण असंतोष की आंधी रह-रहकर उठती है। वृन्दावनलाल वर्मा जी के उपन्यासों में—'हुरमतसिंह शराबी है, नायकसिंह यौन प्यास से पागल रहता है गंगाधर-राम भी शृंगार का पुजारी है।'[1] सिंह सेनापति में राजाओं की वृत्ति का जिक्र करते हुए बताया है—'राजाओं को नारी व नहीं चाहिए, उन्हें खेलने के लिए खिलौना चाहिए, एक से अधिक।'[2] मृगनयनी में राजा सर्वहारा वर्ग का चिंतक है। वह एक मजदूर के घर भेष बदलकर उसकी स्थिति का अवलोकन करता है तथा कहता है—'धिक्कार है मुझको जो मैं तो भरपेट सो जाऊं और तुम लोग भूखे मरो। मैं महलों में रहूं और तुम इस झोंपडी में भूखे ठण्डे मरो।'[3] आपसी युद्ध में छोटे राजा के भाई ने महाराजा पर बहुविध अत्याचार किये—'छोटे भाई ने महाराजा के सिर से पगडी उतार ली और वेश्या के स्तन की एक घुंडी काट ले गए। उसी पर उन्होंने अपना झण्डा फहराया।'[4] 'जनानी ड्योढी' में राजा के व्यक्तित्व का बखान इस प्रकार किया गया है—'हमारा महाराजा एक ऐयाश प्रेत है। गर्म गोश्त का सौदागर है।'[5]

'पुनर्नवा' में हलद्वीप के राजा यज्ञसेन को नागवंश का बताया गया है। उनका पुत्र रुद्रसेन—वह लम्पट और दुर्वृत्त राजा सिद्ध हुआ। उसके औद्धत्य से हलद्वीप की प्रजा त्रस्त हो उठी। बहू बेटियों का शील राजा की जुगुप्सित लालसा की बलिवेदी पर घसीटा जाने लगा।[6] फलतः वर्ग संघर्ष प्रजा में व्याप्त हो गया। आर्यक के अतिरिक्त और किसी में साहस नहीं था जो अत्याचारों का विरोध करता। राजा निरंकुश हो गया। आये दिन प्रजा को लूटा जाता है बहू बेटियों का शील नष्ट किया जाता है।[7] रजनीगंधा उपन्यास में महाराज शान्तनु प्रतापी राजा थे। उनकी रानी गंगा अपने इकलौते पुत्र देवव्रत को छोडकर स्वर्ग सिधार गई थी तथा शान्तनु विधुर जीवन व्यतीत कर रहे थे। महाराज ने निषादराज से भेंट में उनकी पुत्री को मांगा था। उसकी ओर वे आकृष्ट थे—'निषादराज! मुझे भेंट देने के लिए तुम्हें विधाता ने वह अमूल्य रत्न पैदा किया है जो मेरे राज्य में अन्य किसी को प्राप्त नहीं है।

१ वृन्दावनलाल वर्मा—डा० रामदरश मिश्र, पृ० ६१
२ सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन पृ० ६६
३ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० ३७५
४ शतरंज के मोहरे—अमृतलाल नागर पृ० २०४
५ जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० १८
६ पुनर्नवा—हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ३७
७ वही पृ० ८०

क्या तुम यह पुष्प मुझे भेंट नही कर सकते ?"[1] शान्तनु की सौन्दर्य के पीछे दीवानगी ने उनकी भावी पीढी को अस्तव्यस्त कर दिया। परिणाम महाभारत के संघर्ष के रूप में सामने आया—"राजाओं के भोग विलास, उनके जघन्य कामुक जीवन को कौन नही जानता ! दुराचार-अत्याचार की मूर्ति इन राजाओं के न होने से प्रजा का क्या बिगडता ?"[2] 'जय यौधेय' में यौधेयगण इस विचार से आक्रान्त तथा चेतनायुक्त हैं। वे कहते हैं कि हम लोग राजाओं की प्रजा से अत्यन्त सुखी हैं। 'पतन' उपन्यास में भोग विलास ही नवाब वाजिद अली शाह का एक काम रह गया था। राज्य कार्य से अरुचि हो गयी थी—"नवाब वाजिद-अली शाह को प्रसन्न करने के लिए सुन्दरी युवतियां को पकड पकडकर नवाब के हरम में डाल दिया जाता था। नवाब साहब को शायद यह विदित नही था कि उनके महल में अनेकों युवतियां अपनी और अपने सम्बन्धियों की इच्छा के प्रतिकूल पकडकर लाई गई हैं।'[3] फलत सभी राजाओं व नवाबों के शोषण ने वर्ग-संघर्ष की प्रेरणा प्रदान की है।

पूजीपति-वर्ग

पूजीपति वर्ग की प्रवृत्ति अधिकतम मुनाफा कमाने की रहती है। 'धन' ही उसकी दुनिया होती है। 'जनानी ड्योढी' में कामदार लक्ष्मी का वाहन है—"यह धन से इस तरह चिपका रहता है जैसे जोक। इसने ड्योढी की एक एक औरत का शोषण किया है। यह रुपये में लेकर हजार रुपयों तक की घूस खाता है। आयी हुई लक्ष्मी को कभी भी नही ठुकराता। तुम एक पैसा दो, यह हसकर ले लेगा। कहेगा—आयो जितरो ई चोखो।"[4] 'दिव्या' में मातुल भी पूजीपति वर्ग का प्रतीक है, वह कहता है—'हा हा कुलीन ! धन ही सबसे बडा कुल है। महाश्रेष्ठी प्रेस्थ का कुल। नारी का कुल क्या ? उसे भोगने वाले पुरुष के कुल से नारी का कुल होता है। वृक ने दार्व की भय से कापती महा-कुलीन सुन्दरियों का भोग उनके रजत पर्यंको पर किया है। कुलीन सुन्दरी ! बोलो, तुम्हारे सहवास का क्या मूल्य है ?"[5] 'ठकुराणी' उपन्यास में पूजीपति-वर्ग की विवेचना की गई है। शिव कहता है—"शुष्क और पीडित। कठोर श्रम और इन जालिमों की गुलामी। ये सत्ता के पोषक और अधिकारों के धनी, आदमी को आदमी नही समझते हैं। ये लोलुप और खूनी भेडिए हैं जो

---

१ रजनीगंधा—यज्ञदत्त शर्मा पृ० ६

२ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन पृ० २६५

३ पतन—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १६३

४ जनाना ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ४०

५ दिव्या—यशपाल, पृ० १०२

इन्सानियत को खुद खुदकर खा जाते हैं। यहा आदमी कभी भी मुक्त सास नही ले सकता है।[1] पूजीपति वर्ग के लिए धन ही सबसे बड़ा कुल होता है। इस वर्ग का लेन देन का धन्धा बातो ही बातो म हो जाता है तथा एक दूसरे का घर चादी के टुकडो से भरपूर रहता है किन्तु गरीब वर्ग इनकी मुनाफाखोर प्रवृत्ति से सदैव आक्रान्त रहता है जीविका जुटाने के साधन भी उसके पास नही रहते हैं। वह पूजीपति वर्ग की शोषक वृत्ति द्वारा उत्पन्न परिस्थितियो से सदैव सघर्षरत रहता है— पूजीवादी समाज व्यवस्था म शोषक व शोषित का परस्पर सबध नकदनारायण पर अवलम्बित तथा उससे प्रभावित रहता है।[2] यही नकदनारायण शोषण का कारण बनता है।

व्यापारी वर्ग

दिव्या उपन्यास म— प्रतूल जो दास दासियो का थोक व्यापारी है दिव्या को व्यापारी (भूधर) के हाथ इसलिए बेच देना चाहता है कि गर्भिणी स्त्री दासी का सौन्दर्य दिन दिन घटता जायगा जिससे भविष्य म लाभ की सम्भावना भी जाती रहेगी।[3] भूधर को फसाने की चेष्टा करते हुए वह दासी की प्रशसा करता है— क्या कहते हो मित्र ? क्या तुम उसके अवयवो का लास्य उसका चम्पाकली सा वर्ण नही देखते ? गर्भिणी होने के कारण मलिन है तो क्या ? माणिक पर धूल रहने से क्या वह माणिक नही रहता ? चार मास पश्चात् तुम उसके पाच सौ स्वर्ण मुद्रा पाओगे।[4] मानवता का इससे बड़ा शोषण और पतन क्या हो सकता है जहा पशुओ की भाति मनुष्य का क्रय विक्रय ठोक बजाकर होता था। सुहाग के नूपुर म व्यापारी वर्ग के व्यक्तित्व की व्याख्या की गई है— व्यापारी वस्तुओ स खेलता है उनका दास नही बनता। जिस धन को वह मोहान्ध होकर चाहता है उस भी प्राणो का सकट आने पर तृणवत छोड देता है। व्यापारी सदा मूल सभालता है। ब्याज का फैलाव घटता बढता और लुटता भी रहता है।[5] मासा सेठ केवल रत्नो और उपरत्नो का ही व्यापार करता था। मासा को केन्द्र बनाकर जो व्यापारी वर्ग अब तक लाभान्वित हो रहा था अपने नये प्रतिद्वन्द्वी सगठन से चौक पड़ा।[6] फलत दो महा सेठो मे सघर्ष उपस्थित हो गया। व्यापारी वर्ग अपनी पालिता

---

१ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० १४३
२ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन पृ० ३२६
३ हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा—डा० मक्खनलाल शर्मा पृ० ३५३
४ दिव्या—यशपाल पृ० १२४
५ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर पृ० १०८
६ वही, पृ० १०६ १०७

वेश्याओं द्वारा सम्बन्ध बढ़ाता तो था, परन्तु परस्पर टकराव के कारण सेठों का सतुलन बिगड़ जाता था। 'ठकुराणी' में इस वर्ग की विवेचना करते हुए कहा गया है—"इनके जीवन का सत्य है पैसा और इनकी आत्मा का संतोष और सुख है पैसा। इनका विश्वास अगर इनके अपने बेटे कर लें तो यह उनसे भी दो पैसे ठगने का प्रयास करेंगे।"[१] 'दिव्या' में श्रेष्ठी प्रतूल भी व्यापारिक दृष्टि व आशा रखता है—"श्रेष्ठी प्रतूल को आशा थी कि दिव्या को मगध के समृद्ध, रसिक ग्राहकों के हाथ बेचकर ऊंचा मूल्य पायेगा। ऐसी रूपवती, लावण्यमती दासी के लिए चार सौ स्वर्ण-मुद्रा भी अधिक न थी।"[२] व्यापारियों की मुनाफा कमानेवाली नीति ने शोषण की प्रक्रिया अति भीषण कर दी तथा शोषित विद्रोहियों द्वारा समाज में वर्ग-संघर्ष फैल गया—"वर्ग-संघर्ष अभी भी जारी है, केवल उसका रूप बदल गया है। सर्वहारा-वर्ग का यह संघर्ष पुराने शोषकों को वापस आने से रोकने के लिए है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने हितों को इस संघर्ष के आधीन कर दें।"[३]

जमीदार-वर्ग

अंग्रेजी राज्य से पूर्व जमीदार तथा सामन्त-वर्ग का बहुत बोलबाला था, किन्तु अंग्रेजी राज्य में भी यह वर्ग मिट नहीं पाया क्योंकि—"ये सामन्त अक्षरतः सरकारी नीति का ही पालन करते थे। इन राजाओं की शिक्षा-दीक्षा विदेशी ढंग की तथा विदेशियों द्वारा ही सम्पन्न की जाती थी जो उन्हें प्रजा-पालक न बनाकर विलासप्रिय तथा अंग्रेज-भक्त बनाने में अधिक सफल होती थी।"[४] "अकबर के राज में महाराज टोडरमल ने सम्राट् और प्रजा के बीच एक बिचौलिया अफसर नियुक्त किया। उस अफसर को जमीदार कहा जाता था। रैयत से लगान वसूल करने और जमीन का उचित बन्दोबस्त करने के लिए जमीदार और आमिल को नौन-कर के रूप में जमीन मिलती थी। साथ ही एक मातहत अफसर कानूनगो भी मिलता था।"[५] "जमीदार कुवरसिंह मझोले कद और छरहरे बदन के जवान थे। गाना, नाचना, शराब, औरतबाजी, आस-पास के गांव की जमीनें लूटना, कत्ल करना, अपने दलवालों को बख्शीशें देना आदि काम लाल कुवरसिंह द्वारा होते थे।"[६] जमीदार-घराने में कन्या-जन्म के

१. ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० २६
२. दिव्या—यशपाल, पृ० १२३
३ संस्कृति और सांस्कृतिक क्रान्ति—लेनिन ब्लादीमीर, पृ० ११४
४. हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० २१४
५. शतरंज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० १२७
६. वही, पृ० १२६

समय अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुच गया था—"लाल कुवरसिंह की नवजात कन्या की पहली कुआ-कुआ करते ही दाई ने उसके मुख मे मदार के पत्ते का दूध टपकाना आरम्भ कर दिया था । दाई ने बच्ची को मदार का दूध पिलाकर उसके मुख मे गर्भ का मल भर दिया । जच्चा की खाट के पास गड्ढा खोदकर जैसे-तैसे शिशु का शव तोप दिया और भागने की तैयारी म लगी ।"[1] इस जमीदार-वर्ग के मनुष्यो का स्वभाव ऐश्वर्यमय बन गया था—'यह जमीदार अपने ऐश्वर्य से सतुष्ट नही था । तृष्णा के प्रभाव से उसने अमानुषिक कार्य करने आरम्भ कर दिए थे । शराबी और व्यभिचारी होना कम दुर्गुण नही है, पर इसने गरीबो को लूटना और भूखो मारना प्रारम्भ कर दिया था । इसका जीवन हजारो मृत्यु के बराबर था ।"[2] जमीदार के इस शोषण मे सहायक समस्त सामन्त-वर्ग था ।

सामन्त-वर्ग

राजा नायकसिंह (विराटा की पद्मिनी) तथा जनार्दन शर्मा सामन्त-वर्ग के प्रतिनिधि हैं । "राजा नायकसिंह विलासी, सनकी और उदार है । सामन्त-वर्ग की समस्त दुर्बलताए-सबलताए उसमे हैं । देवीसिंह मे सामन्तीय कुचक्र तो है परन्तु बीरता तथा उदारता भी है । उसका सम्पूर्ण चरित्र आदर का पात्र नही । जनार्दन शर्मा धूर्त और चालबाज है । सामन्तीय दाव-पेचो से, धूर्तता और चालबाजी से उसका चरित्र पूर्ण है ।"[3] अपने इसी व्यवहार द्वारा गरीब जनता के शोषण की निरन्तरता ने समाज मे वर्ग-सघर्ष की परिस्थितिया उत्पन्न कर दी । सामन्त-वर्ग के अत्याचार का वर्णन 'चीवर' मे मिलता है, मित्तवाली कहती है—"मुझे सामन्त देवक ने विवाह के बाद पकडवाकर मेरी सुहागरात को ही बुलवा लिया था । मेरा पति छाते बनाता था । उससे न देखा गया तो वह विरक्त हो भिक्षु हो गया ।"[4] 'ठकुराणी' उपन्यास म अनूपसिंह सामन्त-वर्ग का है—"उस अनूपसिंह की बात ही मत पूछो । वह बेसर के नाम से चिढता है । दिनभर शराब के नशे म चूर वह हमारी बहू-बेटियो की इज्जत से खेलता है ।"[5] छोटी-छोटी बालिकाओ पर अपनी वासनात्मक हवस मिटाने के लिए निरन्तर अत्याचार करता है । आज भी यदा-कदा ऐसे छुटपुट अत्याचार होते है, किन्तु लोगो की सामन्ती मनोवृत्ति अभी तक नहीं बदली है । फलत समाज म सर्वत्र वर्ग-सघर्ष

---

१ शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० १२६

२ पतन—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ६

३ वृन्दावनलाल वर्मा—आचार्य बटुक, पृ० ७४

४. चीवर—रागेय राघव, पृ० ५१

५. ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० १६१

व्याप्त है। 'सोमनाथ' उपन्यास मे कृष्णस्वामी महासेनापति की आज्ञापालना मे अपनी पत्नी उन्हे समर्पित करना चाहता है—' शोभना की मा ! महाराज सेनापति की आज्ञा है । वह तो माननी ही पडेगी । रमा ने खीझकर कहा—क्यो माननी पडेगी ? मैंने सेनापति से व्याह नही किया, न उनकी दबैल हू । महासेनापति मेरे सामने तो आयें । कौन से शास्त्र-वचन से वे पत्नी को पति-चरणो से दूर रखते हैं, घरनी को घर से निकालते है, सुनू तो ! बडे आये तीसमार खा ।"[1] शोषण की निरन्तरता न उसमे विद्रोह का बीजारोपण कर दिया है। अत वर्गगतसघर्ष की ओर उन्मुख है । 'शाह और शिल्पी' म सामन्त-वर्ग विमलशाह से अत्यधिक द्वेष रखते थे । अत उसके विरुद्ध निरन्तर षड्यन्त्र रचते रहते थे । विमलशाह गुजरात के पराक्रमी दण्डनायक थे । षड्यन्त्रकारियो न एक बलिष्ठ मल्ल को पाटन म बुलाकर विमलशाह को उसके साथ मल्ल-युद्ध मे भिडा दिया । "ईर्ष्यालु षड्यन्त्रकारी सामन्त मन ही मन खुश हो रहे थे कि विमलशाह नही बचेंगे । उन्होने विदेशी यमदूत को भली प्रकार समझा दिया था कि जैसे भी हो, उचित तथा अनुचित रीति से दण्डनायक की गर्दन तोड देनी है । थोडे धन के लालच मे उन षड्यन्त्रकारियों के हाथो मे बिका हुआ वह गुलाम सोच रहा था कि बडे-बडे मल्ल उसके सामने टिक नही पाते तो ये वणिक विमलशाह क्या टिक सकेंगे ?'[2] परन्तु हुआ इसके विपरीत ही । इस प्रकार ये सामन्त-वर्ग के लोग कुचक्र की प्रक्रिया म दिनरात उलझे रहत थे । 'पर-पीडन' द्वारा स्व सन्तोष की अनुभूति ही उनका परम ध्येय था, परन्तु उनका यह षड्यन्त्र अधिक दिन नही चल सकता था । जैसे ही शोषित-वर्ग मे चेतना उजागर हुई, वैसे ही समाज मे वर्ग-सघर्ष प्रारम्भ हो गया ।

ठाकुर-वर्ग

ठाकुर-वर्ग, राजा वर्ग के पश्चात् दूसरी श्रेणी के शोषक-वर्गों मे ताल्लुकेदार आता है । 'ठकुराणी' उपन्यास म ठाकुर खीवसिह के क्रूर व्यक्तित्व का वर्णन मिलता है—"ठाकुर खीवसिह अत्यन्त अन्यायी और ऐय्याश था । अपने अधीन गावो से वह गरीबो की सुन्दर बेटियो को कुट्टनियो द्वारा फुसला फुसलाकर, धमकाकर या उनकी गरीबी का अनुचित लाभ उठाकर अपनी जनानी ड्योढी म मगवा लेता था और चन्द दिनो तक उनकी जवानी का उपभोग करके नारकीय यत्रणाए भोगने के लिए बडे-बडे बुर्जो से घिरी जनानी ड्योढी मे बन्द कर देता था ।"[1] ठाकुर-वर्ग किसानो का निरन्तर शोषण किया करता था—"अनाज

१. सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन, पृ० २८६-२८७
२ शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ८२
३. ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १०

के अलावा मल्वा खर्च, जाजम खर्च, कुवरजी कलेवा, बाई जी का हाथ, कारज-खर्च, पडवा मेख, नाई, ब्राह्मण, चमार, चौकीदार, पटवारी, कामदार, सबका खर्च ठाकुर लोग इन भूखे-नगे शोषित अन्नदाताओं पर डाल देते थे। यदि किसान ये नही दे पाते तो उनके गाय-बैल खुलवा लिए जाते थे।"[1] 'पतन' मे राजा श्यामसिंह ताल्लुकेदार-वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। यह क्षत्रिय है तथा नवाब वाजिदअली शाह का शुभचिन्तक है। जब वाजिदअली शाह ने श्यामसिंह से कहा—'राजा साहब! क्या करू, कुछ समझ मे नही आता। बड़े बुरे शगुन हो रहे है।' तब श्यामसिंह ने उत्तर दिया, "हुजूर, मैंने आपसे अर्ज किया न कि राज्य का काम आप अपने हाथ म ले लें। आपके मुसाहिब ही आपकी जड़ें काट रहे हैं।"[2] इस प्रकार वह राज्य म चल रहे षड्यन्त्र की ओर इगित करता है। श्यामसिंह सामन्त-वर्ग का श्रेष्ठ पात्र है। नवाब के नाम पर चल रहे प्रजा पर शोषण की सूचना देते हुए कहता है — 'कामदार लक्ष्मी का वाहन है। वह धन से इस तरह चिपका रहता है जैसे जाक। उसने ड्योढी की एक-एक औरत का शोषण किया है। वह रुपये से लेकर हजार रुपय तक की घूस खाता है। आयी हुई लक्ष्मी को कभी नही ठुकराता। तुम एक पैसा दो हलवा ले लेगा।"[3]

'ठकुराणी' मे वर्णित ठाकुर वर्ग अपनी पुत्री के विवाह-उत्सव पर उचित-अनुचित तरीके से गाववालो स रुपया वसूली करता था। ठाकुर अनूपसिंह अपाहिज एव नपुसक थे। केसर का विवाह उनके पिता ने धन के मोह में आकर कर दिया था। ठकुराणी केसर ने जब ठाकुर अनूपसिंह को चन्दा वेश्या पर आसक्त पाया तो उन्हे सहन नही हुआ—"सूरजकुवर ने आवेश मे आकर ठाकुर के प्रति अपमानसूचक शब्द निकालते हुए चन्दा के बारे मे कहा— उस सालो रडी ने आप दोनो को मूर्ख बना रखा है।' ठाकुर तैश म आ गया। उसने सूरजकुवर के गाल पर चाटा मार दिया और कडककर कहा—मैं ठाकुर हू और तुम मेरे पाव की जूती। जूती को बदलते पल चन्द लगते हैं।"[4] 'सोमनाथ' मे यही वर्ग सर्वेसर्वा बताया गया है किन्तु दरबार की आवश्यकता पर उनकी हाजरी बजाना तथा कर देना इनके लिए आवश्यक था—"कच्छ मे बहुत से भायात ठाकुर गिरिराजसिंह जागीरदार के अधीन थे। ये सब छोटे-छोटे राजा थे और अपनी-अपनी रियासत का प्रबन्ध स्वय करते थे, केवल गुर्जरेश्वर को कर देते

---

१ जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० १२
२ पतन—भगवतीचरण वर्मा पृ० ३७
३ जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ४२
४ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १३१

थे और दरबार में आवश्यकता पड़ने पर हाजरी बजाते थे ।"[1] ठाकुर-वर्ग का अत्याचारी शोषण-चक्र अनेक उपन्यासों में दृष्टिगत होता है ।

उद्योगपति-वर्ग

'सुहाग के नूपुर' में कोवलन ने सम्मिलित व्यापारिक नीति का श्रीगणेश किया किन्तु उसकी दृष्टि शोषक की ही बनी रही—"विदेश से लौटने के बाद कोवलन अपना अधिकांश समय श्वसुर के साथ ही बिताता था। जल और स्थल-मार्ग की एक बहुत बड़ी कड़ी जुड़ जाने से कोवलन का भविष्य अपने समकक्ष उद्योगपतियों की बड़ी से बड़ी महत्त्वाकांक्षाओं की सीमाएं लांघकर उनकी स्पर्धा के क्षेत्र से बहुत ऊंचा उठ चुका था। इस समय नगर में कोवलन को वही मान प्राप्त था, जो प्रायः चक्रवर्ती सम्राटों को अपने अधीनस्थ राजों महाराजों से प्राप्त होता था।"[2] पान्सा के रोमन व्यवसायियों के जाते ही कावेरीपट्टणम् की कोठियों का दिवाला पिट जाता है—"व्यावसायिक सौदे इधर वर्षों से महाजनी कोठियों में नहीं, वरन् वेश्याओं के कोठों पर हुआ करते थे।"[3] "जब भूख और गरीबी के विरुद्ध कोई 'लाल थैली में कलदार' की टकार करता है तो मनुष्य का धर्म डगमगा जाता है। मां बाप का ज्ञान अंधा हो जाता है। फिर जब अकाल पड़ता है तो छोटी-छोटी बालिकाएं काफी सस्ती बिकने लगती हैं।"[4] व्यावसायिक एवं उद्योगपति-वर्ग मौके की ताक में लगे पैसे के वशीभूत होकर शोषण करते हैं।

ब्राह्मण-वर्ग

ब्राह्मण वर्ग भी मध्यकाल में शोषक-वर्ग बना रहा है। धर्म की आड़ में निरन्तर धन तथा स्त्री का शोषण करता रहा है। 'ब्राह्मणों ने यज्ञों को प्रधानता दे रखी थी। उसकी आड़ में नाना प्रकार के अनाचारों की वृद्धि हो रही थी। बछड़े, बैल, भेड़ आदि पशुओं से गवालम्भन-अनुष्ठान किया जाता था। कामिनी और कादम्ब का व्यापक प्रयोग दिखलाई पड़ता था। प्रायः सभी मांस खाते थे और जिसमें भैंसे अधिक प्रयोग करते थे।'[5] 'जय यौधेय' में 'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास के ब्राह्मण-वर्ग की इसी भावना का उल्लेख किया गया है—"यही ब्राह्मणों का जादू है। यह राजा के साथ मिलकर बहुजन की कमाई लूटने

---

१ सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन, पृ० ५१४

२ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर, पृ० १३१

३. वही, पृ० १७७

४ जनानी ड्योढ़ी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० २४

५ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—डा० त्रिभुवनसिंह, पृ० १६३

के सिवा और कुछ नहीं है।"[1] इस प्रकार ब्राह्मण-वर्ग के शोषण के कारण भी समाज में सर्वत्र संघर्ष फैला हुआ दिखाई देता था, जिसकी परिधि कुछ कम अवश्य हुई है परन्तु पूर्णतः समाप्त नहीं हुई। ब्राह्मणों में स्वयं अपना ही परिव्राजक जब ब्राह्मणों के समूह में जाकर भिक्षा की याचना करता है तो ब्राह्मण उसे भिक्षा न देकर उसकी प्रताड़ना करते हैं—"अरे मूर्ख, यहां ब्राह्मणों के लिए अन्न तैयार होता है, चाण्डालों के लिए नहीं भाग यहां से! अरे दुष्ट चाण्डाल, तू अपने को मुनि कहता है? नहीं जानता, पृथ्वी पर केवल हम ब्राह्मण ही दान पाने के प्रवृत्त अधिकारी हैं? ब्राह्मण ही को दिया दान पुण्य-फल देता है।"[2] 'एकदा नैमिषारण्ये' में ब्राह्मणों की स्थिति का गम्भीरतापूर्ण विवेचन किया गया है—"जो ब्राह्मण सम्पन्न हैं वे यज्ञादि का त्याग कर इन्द्र से सबंधित कतिपय वेदों का उच्चारण कर भूत-प्रेत-यक्ष आदि से पीड़ित जनों को ठगते हैं।"[3]

'मुर्दों का टीला' उपन्यास में नीलूफर से वणी कहती है कि—'मैं द्रविड़ हूं। उन्हीं में से एक हूं। आज याद दिलाने आयी हो जब मेरे बिना काम नहीं चल सकता? उस दिन सब भूल गये थे जब द्रविड़ों का अधिपति मुझसे बलात्कार करना चाहता था और द्रविड़ों के पुजारी उस बलात्कार को धर्म से न्याय के लिए तत्पर बैठे थे। माता, पिता भाई, भगिनी कोट्ट नगरवासी, किसी में भी इतना साहस न था कि व एक अत्याचारी का गला घोट सकें।'"[4] ब्राह्मणों की अत्याचारी नीति के द्वारा अनेक तर्क-वितर्क उत्पन्न हुए। शोषित लोगों के मध्य संघर्ष की स्थिति बनी। "ब्राह्मण धर्म की निरंकुशता एवं स्वच्छन्दता के कारण इतर वर्ण उनसे द्वेष रखने लगे थे।"[5] इसके अतिरिक्त ब्राह्मण स्वयं भी स्वार्थी और लोलुप हो चुके थे। वे पाखण्ड करके दान-दक्षिणा में सुन्दर दासियों को ले जाते थे उनके आभूषण उतार उन्हें पाच-पाच निष्क म बूढ़ों को बेच दिया करते थे। आर्थिक शोषण करने में यह वर्ग बहुत ही चतुर रहा है। 'ब्राह्मण उस काल के सामन्तों और राजाओं को परमेश्वर घोषित करते, उन्हें ईश्वरावतार प्रमाणित करते और उनके सब ऐश्वर्यों को पूर्व-जन्म के सुकृत का फल बतलाते थे। इसके बदले में वे उनसे बड़ी बड़ी दक्षिणाएं फटकारते और स्वर्णभूषिता दासियां दान में पाते थे।"[6] राजा तथा नवाब शासन की बागडोर चाटुकार ब्राह्मणों तथा मौलवियों के हाथों में सौंप देते थे। फलतः अत्याचार

---

१ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३४
२ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० ४२६
३ एकदा नैमिषारण्ये—अमृतलाल नागर, पृ० १७६
४. मुर्दों का टीला—रांगेय राघव, पृ० ५०५
५. वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० ५३
६ वही, पृ० २६१

की सीमा अपनी पराकाष्ठा पर पहुच चुकी थी। 'एक ही रास्ता' उपन्यास मे इसी प्रसंग मे मौलवियों के अत्याचारो का उल्लेख हुआ है—"वह तो शासन की बागडोर को चन्द चाटुकार मौलवियों के हाथो छोड विलासिता के झूले मे झूल रहा है।"[1] इसमें सरफराज के समय मौलवियो द्वारा किये गए अत्याचारो का पर्याप्त वर्णन हुआ है।

सेठ-साहूकार-वर्ग

सेठ साहूकार-वर्ग के पात्र सदैव अपने अधीन वर्ग पर अत्याचार करते रहे है। यह अत्याचार सदैव पैसे के बल पर ही रहा है। 'अमृतपुत्र' उपन्यास का सिद्दीक सेठ इसी प्रकार का अत्याचारी पात्र है—" 'क्या नाम है तुम्हारा ?' 'रंदीव है हुजूर ! गरीब आदमी हू !' 'खम्भात मे क्या करते थे ?' सिद्दीक सेठ की गुलामी करता हू। जानवरो की तरह काम लेता है वह और खाने को चद टुकड़े भी नही देता।' "[2] 'जय जगलघर बादशाह' उपन्यास मे सेठ-साहूकारो का धन्धा लेन-देन का होता है, इस पर खुलकर विस्तृत विचार किया है। इस धन्धे से लाभान्वित अमीर-वर्ग ही होता है, निम्न तथा गरीब-वर्ग तो शोषित ही रहता है—"यहा साहूकारो का यह मुख्य धन्धा है। रोज लाखो रुपयो का लेन-देन बातो ही बातों मे होता है। चादी की ईंटें एक घर से दूसरे घर रोज जाती हैं।"[3] 'मुसाहिबजू' मे इस बात को अति प्रभावपूर्ण ढग से कहा गया है—"पूजीवादी समाज-व्यवस्था मे शोषक व शोषित-वर्ग का परस्पर सबध नकदनारायण पर अवलम्बित तथा उससे प्रभावित रहता है।"[4] 'जनानी ड्योढी' उपन्यास मे गरीब-वर्ग की अवस्था का चित्रण करते हुए कहा है कि भूख और गरीबी के विरुद्ध कोई लाल थैली मे कलदार की टकार करता है तो मनुष्य का धर्म डगमगा जाता है। मां-बाप का ज्ञान अन्धा हो जाता है।"[5] इस अवस्था मे सेठ-साहूकार लोग भरपूर फायदा उठाते हैं। गरीबो का शोषण करते हुए अपनी काम-तृष्णा की तृप्ति भी करते है। अत मुनाफावृत्ति के कारण शोषण की प्रक्रिया के विरुद्ध, अब जन-सामान्य सचेत होकर आवाज उठाने लगा है। अपनी सघर्षवृत्ति द्वारा अपनी मुक्ति की ओर अब सशक्त कदम उठाने मे निम्न-वर्ग तत्पर है।

---

१. एक ही रास्ता—सुदेश रश्मि, पृ० ६
२. अमृतपुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० १६२
३. जय जगलघर बादशाह—धर्मेश शर्मा, पृ० ६२
४. हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३३६
५. जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० २४

ऐतिहासिक उपन्यासों में शोषित-वर्ग

शोषित-वर्ग अपने शोषण का प्रतिकार किससे ले ? उस मनुष्य से ले जिसके कारण उसका सदैव अपमान हुआ है या उन लोगों से ले जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए जन्म के असत्य अधिकार की व्यवस्था निर्धारित की है ? 'दिव्या' उपन्यास में दास-वर्ग तथा शोषित-वर्ग की व्यवस्था की गयी है—'हीन कहे जानेवाले कुल में मेरा जन्म अपराध है ? अथवा यह द्विज-कुल में जन्मे अपदार्थ लोगों का अहंकार मात्र है।''[1] सर्वहारा-वर्ग शोषित-वर्ग ही है। उसका समर्थन करते हुए, उसकी शक्ति के बारे में यशपाल संघर्ष की स्थिति का चित्रण करते हैं। 'अमिता' में महारानी नन्दा से महास्थविर कहते हैं—'इस दिव्य शक्ति के चमत्कार से अशोक और मगध की असंख्य हाथी, घोड़ा और रथों की सेना साधकों के श्वास की वायु से ऐसे उड़ जायेगी जैसे वर्षा ऋतु की पहली आंधी में ग्रीष्म से सूखे झाड़-झंखाड़ उड़ जाते हैं।''[2]

मजदूर-वर्ग

शोषित-वर्ग में मजदूर-वर्ग का बहुविध शोषण हुआ है। कम पैसे देकर अधिक कार्य कराने की नीयत इस वर्ग-विशेष के प्रति, शोषक-वर्ग की रही है। 'झांसी की रानी' उपन्यास में भी मजदूर-वर्ग तथा एलिस के मध्य संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। अंग्रेजों के राज्य में इस वर्ग का मुखिया भी अपने वर्ग के प्रति सद्भावना नहीं रखता है—"मैदान की सफाई करने वाले मजदूर जरा ढीले पड़ रहे थे। एलिस को क्षोभ हुआ। उसने मजदूरों के मुखिया को डांटा। मुखिया ने कहा, ये मुफ्तखोर हैं हुजूर! डर के मारे मैंने अभी तक इनकी मारपीट नहीं की। अब हड्डी-पसली तोड़ता हूं।''[3] मजदूर-वर्ग अज्ञानी होते हुए भी अपनी मेहनत पर ही विश्वास करता है। 'मृगनयनी' उपन्यास में राजा जब एक मजदूर के घर जाकर उसे कहता है कि इस तरह क्यों भूखे मरते हो ? राजा के सदावर्त से आटा-दाल ले आया करो। राजा मजदूर का वेश बनाये हुए था। तब मजदूर जवाब देता है—"वाह! हम क्या भिखमंगे हैं ? सदावर्त पर तो कोढ़ी, अपाहिज, साधु बैरागी जाते है। हम तो मजदूर हैं।''[4] मजदूरों का सदाचार तथा अपने आश्रयदाता के प्रति आदर के विचारों ने ही मजदूरों को भयंकर शोषण सहने के प्रति आग्रह किया, परन्तु आज यह शोषित-वर्ग भी सचेत हो

---

१. दिव्या—यशपाल पृ० १८
२. अमिता—यशपाल, पृ० ६५
३. झांसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १७१
४. मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३७३

चुका है तथा सघर्ष के लिए तत्पर है। 'जय यौधेय' उपन्यास मे एक कथन से स्पष्ट होता है कि—"सैकडो प्रयत्न करने वालो मे यदि एक सफल होता है, तो उस सफलता की जड मे निन्यानवें असफल कहलाने वालो का परिश्रम भी शामिल है।"[1] अत सफलता-प्राप्ति पर मुनाफे का हिस्सेदार यह परिश्रमी-वर्ग भी होता है जो वास्तव मे श्रमजीवी कहलाता है। इस चेतना के पश्चात् सबसे अधिक परिवर्तन तो हमारे दासो और मजदूरो ने देखा है। मजदूर अपनी इस स्थिति के प्रति सघर्षरत थे क्योकि 'मजदूरो से ज्यादा से ज्यादा काम और कम से कम दाम, और साथ-साथ जितना हो सके उतना अपमान सनातन से चला आया था। उनके लिए निकृष्ट भोजन कुत्ते की तरह डाल दिया जाता था।"[2] किन्तु अब मजदूर अपना लाभ-हानि समझने लगा था।

किसान-वर्ग

किसान-वर्ग भी शोषित-वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करता है। 'ठकुराणी' उपन्यास मे हरखू किसान सभी की क्षुधा-शान्ति के लिए अन्न उपजाता है, परन्तु उसका स्वय या बेटा भूखे तडप-तडपकर मर जाता है। उसकी पत्नी प्रयत्न कर-करके जब थक गयी और उसे कही से भी आर्थिक सहायता नही मिली, तब वह अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट करती है—"कौन सुनता है गरीबो का रोना। इस ससार मे अमीर की एक आह बहुत असर करती है। किन्तु गरीब का क्रन्दन भी बेअसर होता है।"[3] अपने पुत्र को खोकर वह विक्षिप्त हो उठती है। जब चारो ओर जन मानस दाने-दाने के लिए पीडित था, तब भजनानन्द जी अपने चेलों की श्रीवृद्धि मे सलग्न थे—"आजकल गाव-गाव घूमकर वे पीडित और भूखे किसानो के नन्हे-मुन्ने फूल-से कोमल बच्चो को खरीद रहे थे।"[4] इस प्रकार कम दामो मे बच्चो, गायो, बैलो को खरीदकर वे मुनाफा कमाते हुए इन्हे अन्यत्र बेच देते थे। यह था इस वर्ग के शोषण का स्वरूप। इसी शोषण ने किसानो को सगठित होकर सघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान की। 'चीवर' उपन्यास मे भी हर्षवर्धन के समय किसानो की शोषण-प्रक्रिया का वर्णन किया गया है—"हर्षवर्धन के पास ५००० हाथी, बीस सहस्र अश्वारोही और अर्द्ध लक्ष पदातिक थे। इन पर प्रतिदिन असख्य धन व्यय होता था जो कृषको के पास से आता था।"[5] इस प्रकार किसान-वर्ग उत्पादककर्त्ता होते हुए भी अपना जीवन

---

१ जय यौधेय—राहुल साकृत्यायन, पृ० १५
२. वही, पृ० २८०
३. ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १३
४. वही, पृ० ११
५ चीवर—डा० रागेय राघव, पृ० १२१-१२२

कडकी मे व्यतीत करता था। यही विषम स्थिति उसके संघर्ष का कारण बनी और वह वर्गगत संघर्ष की ओर उन्मुख हुआ। 'मृगनयनी' उपन्यास की लाखी इस वर्ग की चेतना से युक्त है, वह कहती है—"अच्छी मजदूरी मिल जाय और जात पात वाले तग न करें तो हमारे लिए यही सब कुछ है।"[१] क्योकि यह वर्ग मेहनती वर्ग था, अतः जब औद्योगीकरण एव मशीनीकरण की समस्या सामने आयी तो यह वर्ग भी मजदूरी करने के लिए विवश हो गया। अकाल, साझे की जमीन आदि कई तत्वो एव सघटको ने इस वर्ग को मजदूर बनने को विवश कर दिया—"गावो मे किसानो ने लगान देने से इन्कार कर दिया है। अकाल के कारण से उत्पन्न हुई दुर्दशा और ठाकुर व जागीरदारो के अत्याचारो से वे पीडित थे।"[२] निरन्तर पीडा से यह वर्ग जब सचेत हुआ तो चेतना के प्रादुर्भाव के साथ साथ सर्वहारा वर्ग मे सम्मिलित होकर सघर्षरत हो गया। यह सर्वहारा-वर्ग अपनी सगठित शक्ति मे आस्था रखता था।

दास-दासी-वर्ग

मध्यकाल के प्रारम्भ से लेकर सामन्तवादी युग तक दास दासियो का निरन्तर शोषण होता रहा है। 'सिंह सेनापति' मे कृष्ण बाबा दास हैं। वे रोहिणी को बताते हैं कि कैसे दादा ने उन्हे बनिये से खरीदा और बनिये ने कितना मुनाफा कमाया। लिच्छवी गणो के दासो की तुलना मे अन्य दासो को रखकर वह अन्तर बताता है—'उन्होने बनिये से पूछा—'इस दास को बेचोगे ?' बनिये ने कहा—'हा ले जाओ।' दादा मालिक ने पूछा—'इसका कितना दाम लोगे ?' बनिये ने कहा—'तीन बीस मे मैंने इसे खरीदा था।' 'मालकिन, वह झूठ बोल रहा था, उसने मुझे दो बीस मे खरीदा था। मै बोलता लेकिन डर रहा था वह फिर लाल लोहे से दाग देगा। हा, लिच्छवी गण की बात दूसरी है मालकिन ! यहा लोहे से दागना कभी सुना ही नही।"[३] दास वर्ग के शोषण के प्रति लाभ-दृष्टि ने ही वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया। 'मार्क्स ने भी पूजीपति वर्ग और श्रमिक-वर्ग मे चलनेवाले सतत सघर्ष का मूल कारण अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धात को ही माना है।"[४] इसी प्रकार शोषण का उल्लेख करते हुए कृष्ण बाबा कहता है—"हा, दास के काम की मजदूरी मालिक को मिलती है मालकिन !"[५] 'सुहाग के नूपुर' मे माधवी के कुलाचार भग करने पर नगर के मान, प्रतिष्ठा और

---

१ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २३३
२ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १८८
३ सिंह सेनापति—राहुल साकृत्यायन, पृ० १४७
४ आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास—पी० डी० शर्मा
५ सिंह सेनापति—राहुल साकृत्यायन, पृ० १६२

व्यवसाय को भारी हानि पहुचती है। सभी विचार करते हैं कि महाराज के राजधानी मे पधारने पर माधवी की दुर्दशा होगी। महाराज उसका सिर मुडवाकर, आधा मुह काला आधा लाल रगवाकर गधे की सवारी पर देश-निकाला देंगे। कोई कहता रूप के हाट के चौराहे पर गड्ढा खुदवाकर माधवी गाडी जायेगी और हिंसक कुत्तो के आगे उसकी बोटी-बोटी नुचवाकर प्राणान्त किया जायेगा।"[1] अत्याचार की इस भीषणता ने ही सघर्ष को जन्म दिया। छाया दिव्या से अपने प्रति अत्याचार का ब्यौरा इस प्रकार देती है— 'भद्रे! जानती हैं स्वामिनी अमिता ने किस अपराध म मुझे कक्ष से बहिष्कार किया? आर्य ने कौतुक से हाथ मेरे अग पर दबा दिए। मेरे लजाकर सकुचाने से आर्या कुपित हो गयी। बोली तू छली और कुलटा है। दासी होकर कुल ललनाओ की भाति लाज का नाट्य करती है।'[2] इसी उपन्यास मे दासी दारा (दिव्या) पुत्र-सहित एक ब्राह्मण को बेच दी जाती है। द्विज पत्नी द्वारा उसका शोषण होता है जो लोमहर्षक है—"स्वामी की सन्तान के मुख म अपना स्तन दिए अपने पुत्र को क्षुधार्त्त देखते रहना उसके लिए असह्य था। चतुर द्विज पत्नी ऐसी परि-स्थिति का उपाय जानती थी। वह दारा के पुत्र शाकुल को उसके सम्मुख लाने की आज्ञा देती। अपने पुत्र की ममता की अनुभूति से दारा के स्तनो म दूध और नयनो म जल बह चलता।'[3] दास दासियो के अपमान ने ही उसके मन मे क्षोभ उत्पन्न किया और विद्रोह की आग धधक उठी। इसी विद्रोह एव विरोध की भावना ने वर्ग सघर्ष को जन्म दिया। पतन' उपन्यास म 'बदेहसन मुहम्मद-याकूब का आश्रित था। वह लडका था और शायद कुरूप था। आश्रितो का सदा अपमान हुआ करता था। बदेहसन का भी अपमान होता था।"[4] 'वय रक्षाम' म दानव और असुर राज्यो म एक नियम यह भी बताया गया है कि कोई भी कुरूप एव दुर्बल पुरुप राजसेवा नही कर सकता था। उसे दास कर्म करने पडते थे—"कुरूप और दुर्बल व्यक्ति तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते थे। वे चाहे जैसे भी उच्चकुल म उत्पन्न हुए हो, उन्हे अपने परिवार मे दास कर्म करने पडते थे तथा निकृष्ट भोजन और वस्त्र मिलते थे।[5] इस प्रकार अन्य उपन्यासो म भी दास दासियो का बहुविधि से हुआ शोषण चित्रित किया गया है। कभी-कभी दास-दासियो का जीवन खतरे से परे नही था। अस्वीकृत दास-दासियो को

---

१ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर, पृ० २०७
२ दिव्या—यशपाल, पृ० ३५
३ वही पृ० १२६
४ पतन—भगवतीचरण वर्मा पृ० १०६
५ वय रक्षाम —आचार्य चतुरसेन, पृ० १७८

तो महारानी, ठकुराणी की जूठन पर जिन्दा रहना पड़ता था। भाग्य की विडम्बना सदा उनके साथ जुड़ी रहती थी और यही अवस्था संघर्ष का कारण बनी।

नारी-वर्ग

नारियां सदैव से उपेक्षित और शोषित रही हैं। उनको चहारदीवारी में बन्द रखकर पुरुष ने केवल भोग की वस्तु ही माना। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए एक कुट्टनी-वर्ग भी तैयार किया गया लेकिन वह भी उपेक्षित ही रहा। महारानी से लेकर दास-दासी तक शोषित-वर्ग की श्रेणी में ही आते हैं। यहां तक कि स्वयं नारी ने भी नारी का शोषण किया है—'ऐतिहासिक उपन्यासों में नारी को कर्त्तव्य-पालन तथा सदाचार की शिक्षा देने के लिए नारी पात्रों में उन गुणों का समावेश किया गया है जिनको उस काल के लेखक आवश्यक तथा वाछनीय समझते थे।'[1] इन उपन्यासों में नारी का उल्लेख चार रूपों में हुआ है—(१) वीरांगना नारी, (२) लज्जा और प्रेम की मूर्ति नारी, (३) आदर्शमय जीवन व्यतीत करने वाली नारी, (४) कुलटा, कुट्टनी तथा निम्न-वर्ग की नारी। वृन्दावनलाल वर्मा ने रनिवास और ऊंचे-ऊंचे महलों से लेकर गांव की भोली नारियों तथा दास वर्ग की कर्मठ नारियों को अपने उपन्यासों के कलेवर में सजाया है।

'मृगनयनी' में लाखी का चरित्रांकन आदर्श एवं वीरांगना नारी की दृष्टि से किया गया है—"महाराज, इसका नाम लाखारानी है। कहते हैं इसको लाखी। यह अहीर है। कुमारी है। बड़ी बहादुर है। इन्हीं दोनों लड़कियों ने उन दो बैरियों को मार गिराया था और दो को भगा दिया था। यह भी बड़ा अच्छा निशाना लगाती है।"[2] 'सोमनाथ' उपन्यास का महमूद शोभना के चरित्र का निरूपण इस प्रकार करता है—"मैं खुदा का बन्दा महमूद वही कहूंगा जो मुझे कहना चाहिए। यह औरत जो मेरे सामने खड़ी है, उसने मुझे एक नई बात बताई है, जिसे मैं नहीं जानता था। इसके हाथ में तलवार नहीं है, तलवार का डर भी इसे नहीं है। इन्सान के प्यार ने इसे मजबूत बनाया है...।"[3] इस वीरता, लज्जा एवं आदर्श-युक्त होने पर भी नारी-वर्ग सदा उपेक्षित व शोषित-वर्ग रहा है। सदैव संघर्षरत रहा है। दासी-वर्ग के स्त्रीत्व की एक झलक 'चीवर' उपन्यास में उल्लेखित हुई है—"प्रत्येक दासी अपने अविवाहित स्वामी

१ हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ३६१
२. मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १७६
३. सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन, पृ० ३८६-३८७

के सम्मुख ऐसे खडी होती थी जैसे मुझे क्यो नही चुन लेते? मैं भी तो स्त्री हू।"[1]

"किसी मुसलमान अमीर-गरीब की सुन्दरी कन्या पर बादशाह की नजर पडते ही वह उसे अपनी रखैलिन बना लेने को तैयार हो जाता था।"[2] धन के आधार पर शोषित नारी के स्वरूप का दिग्दर्शन 'पुनर्नवा' उपन्यास में हुआ है, "यहा मिट्टी के गाहक आते हैं। अपना सर्वस्व उलीचकर, पाप खरीदकर लौट जाते हैं। पुरुषत्व के ये कलक हैं, स्त्रीत्व के अपमानकारी। यहा कामुकता को पुरुषार्थ, भोंडेपन को सरसता, मूर्खता को विदग्धता, स्त्रैण भाव को पौरुष माना जाता है।"[3] कहने का तात्पर्य यह है कि समाज मे धन ही प्रबल तत्व है। धनाश्रित होने के कारण ही नारी पुरुष के आश्रित रही है। शोषित एव कुठित नारी जब स्वतन्त्रता की चाह करती है, तभी संघर्ष की स्थितिया उत्पन्न हो जाती हैं। आज नारी-वर्ग आर्थिक रूप म स्वतन्त्र होने के लिए पूर्णत संघर्षरत है। राजाओ और ठाकुरो की ड्योढिया मे नारी के सविका के रूप में अनेक पदो का उल्लेख मिलता है। राजा एव ठाकुर दोनो ही अपनी सेवा म उपस्थित दासियो का भरपूर शोषण करते थे। अत कभी-कभी पुरस्कार पाने की लालसा अथवा अर्थ-प्रलोभन नारी को वासना-कीचड म घसीट लेता था। 'जनानी ड्योढी' मे—"पातुरें, नर्तकिया तथा गायिकाए कभी-कभी अपने रूप, यौवन और कला के कारण किले मे तूफान मचा देती थीं। घाघरावालिया सिर्फ नौकरा, निया थीं। डावडिया दहज मे आयी हुई स्त्रिया होती थी। इनकी कोई प्रतिष्ठा-कोई आदर-भाव नही था। सच तो यह था कि उस वक्त राजस्थान की अनेक रियासतों के किला की जनानी ड्योढियो म स्त्रिया जानवरो की तरह नारकीय जीवन जी रही थीं।"[4] आज परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था मे इस वर्ग-शोषण स मुक्ति पान के लिए सर्वाधिक नारी सघर्षरत है। आज की नारा आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त कर पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर अपन पैरा पर खडी हुई वर्ग-संघर्ष को उस श्रेणी तक ले जान के लिए कृतसकल्प है जहा ऊच-नीच का कोई भेद-भाव न रह।

देवदासी-वर्ग

'चारुचन्द्रलख' उपन्यास मे देवदासी-वर्ग की व्याख्या की गई है। "जगन्नाथ-पुरी के मन्दिर मे बहुत-सी देवदासिया थी। प्राय किसी मनौती के अनुसार

---

१ चीवर—रागेय राघव पृ० १३५

२ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १७४

३ पुनर्नवा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ५५

४ जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १५

गृहस्थ भक्त अपनी बालिका या युवती कन्याओं को सजा-बनाकर देवता को समर्पित कर जाते थे, य ही देवदासियां कहलाती थीं। इनका काम गान गान के द्वारा देवता की सेवा करना था। पर धर्म हर समय देवता को लक्ष्य करके ही नहीं चल पाता। देवता के भक्त भी कभी-कभी लक्ष्य बन जाते हैं।"[1] इन देवदासियों का शोषण देव-भक्तों के द्वारा किया जाता था। 'सुहाग के नूपुर' में देवदासी-वर्ग भी अपने शोषण के प्रति सजग दिखाया गया है। अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए व शोषण का विरोध करती हैं—'उनका कहना है कि नई देवदासी स्वेच्छा से देव सेवा में अर्पित होने नहीं आई, इसलिए यह दत्ता वर्ग की देवदासियों म नहीं मानी जा सकती, वह उड़ाई गई है। अत उसकी गणना हृता-वर्ग में की जायेगी। महाजन की लड़की का महादण्डनायक ने लूटा या मंदिर की एक भृत्या देवदासी ने, मन्दिर के पुजारी प्रधान देवदासी आदि के प्रति बड़ी निन्दाभरी बातें कावेरीपट्टणम् क वातावरण के चारों ओर फैली हुई थीं।'"[2] वस्तुत यह वर्ग भी अर्थाभाव के कारण धर्म की आड़ म सदैव लूटा गया।

सर्वहारा-वर्ग

'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' जनता की शक्ति में विश्वास रखती थी तथा पिछड़े वर्ग का समर्थन करती है—'जनता असली शक्ति है। मुझको विश्वास है कि वह अक्षय है। छत्रपति न जनता के भरोसे ही इतने बड़े दिल्ली-सम्राट् को ललकारा था, राजाओं के भरोसे नहीं। मालव कृष भी किसान थे और अब भी हैं। उनके हलों की मूठ म स्वराज्य और स्वतन्त्रता की लालसा बंधी है।'"[3] 'जय यौधेय' म भी इस वर्ग का समर्थन किया गया है—"प्लातो न देखा कि यह धन की विषमता, धन के कारण प्रभुता प्रभु होने के कारण और अधिक धन लूटने का अवसर और उनके रास्ते म बाधा डालनेवाले के सिर पर वज्र। इन सबकी दवा है कि सम्पत्ति म मेरा मेरा न रहे।"[4] सर्वहारा-वर्ग मे किसी वर्ग-विशेष का आधिपत्य नहीं रहता। शोषित वर्गों का यह सगठित वर्ग होता है। इसमें मजदूर, किसान, वेश्या, गोली, दास दासी, परिचारिका, श्रमिक आदि सभी वर्ग अर्थ के समान वितरण तथा आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने का प्रयास करते हैं। वर्ग-संघर्ष आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने एव पूंजीवादी व्यवस्था को भंग करने का एक सशक्त साधन है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है

---

१ चारुचन्द्रलेख—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २७६
२ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर, पृ० ३३-३४
३ झांसी की रानी लक्ष्मीबाई—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १५०
४ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ११६

है कि आज इस वर्ग के विचारों का यदि सम्मान न किया गया तो यह संघर्ष वास्तविक जगत का संघर्ष बनकर विद्रोह की आग भड़का देगा—"आज आप इसे केवल भावलोक का विद्रोह कहकर टाल सकते हैं, पर लोक-मानस में शुष्क धर्माचार व रूढ़ मान्यताओं के प्रति यह भावलोक का विद्रोह किसी दिन वास्तविक जगत के विद्रोह का रूप ले सकता है।"[1]

ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्ग संघर्ष के कारण

ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्ग संघर्ष की उद्भावना के कारण दृष्टिगत होते हैं। राज्य-लिप्सा, अर्थ-संग्रह, अवैध यौन सम्बन्ध, जातिवाद, ऊँच-नीच की भावना तथा श्रम-शोषण आदि का मुख्यतः उल्लेख किया जा सकता है। वर्ग-संघर्ष के कारण उदय हुई वर्गगत चेतना के प्रमाण भी ऐतिहासिक उपन्यासों में मिलते हैं।

जातिवाद का अभिशाप

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्ट की काव्य-रचनाएं मानव मात्र को एक सूत्र में बांधने की प्रेरणा देती है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्री चन्द्रदीधिति (भट्टिनी) भट्ट की वाणी को अबलाओं में आत्मशक्ति का संचार करने की प्रेरणा तथा जातिवाद को वर्ग संघर्ष की उद्भावना का कारण मानती है— 'एक जाति दूसरी जाति को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है, इससे बढ़कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है।'[2] "यही 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की मुख्य ध्वनि है जिसकी सार्थकता समकालीन विषमता से सम्बद्ध की गई है।"[3] 'गोली' उपन्यास में चम्पा (गोली) जातिवाद से आक्रान्त हीन-भावना का प्रतीकात्मक पात्र है—"मैं जन्मजात अभागिन हूं। स्त्री जाति का कलंक हूं। स्त्रियों में अधम हूं परन्तु निर्दोष हूं, निष्पाप हूं। मेरा दुर्भाग्य अपना नहीं है, मेरी जाति का है, जाति-परम्परा का है। हम पैदा ही इसलिए होती हैं कि कलंकित जीवन व्यतीत करें।"[4] 'गढ़कुण्डार' में हेमवती नागिन की भांति फुफकारकर कहती है—"यदि आप यहां से नहीं जाते हैं तो मैं यहां से जाती हूं। बुन्देल कन्या न ऐसी भाषा सुन सकती है और न सह सकती है और खंगार राजा होने पर भी बुन्देल कन्या का अपमान करने की शक्ति नहीं

---

१ पुनर्नवा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १७२
२ बाणभट्ट की आत्मकथा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २७९-२८०
३. हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३६१
४. गोली—आचार्य चतुरसेन, पृ० ६

रखता।"[1] 'शतरंज के मोहरे' में महाराजा को छोटे भाई खूब खरी-खोटी सुनाता है—"तूने जोम में आकर गातघात किया है, अब तू अपने जोम की मिट्टी पलीद होते देख ले।"[2] कारण यह था कि महाराजा ने भाई से हारकर अपनी जान बचाने के लिए वेश्या की शरण ली थी। 'ऊजली' उपन्यास में जातिवाद को वर्ग-संघर्ष का कारण माना है। प्राचीन गौरव और परम्पराओं की ही दुहाई हम सदैव देते रहे तो नव-निर्माण कैसे होगा? यह एक प्रश्न उभरकर सामने आता है—"ऊजली चारणी है। इसलिए वह प्राणदायी अपना सतीत्व देकर भी अपने पति को प्राप्त नहीं कर सकती, यह कितना बड़ा अन्याय और ज्यादती है। मेरा मत है राजमाता और सदस्यगण ऊजली को पटरानी की आज्ञा दें।"[3] इस प्रकार ऊजली को जातिवाद के विरुद्ध वर्ग चेतना का प्रतीक-स्वरूप इस उपन्यास में प्रदान किया गया है। जातिवाद के आधार पर शोषण एवं वर्ग संघर्ष की प्रेरणा 'एकदा नैमिषारण्ये' में प्रस्तुत की गई है—'जातिच्युत राक्षस हो जाने के कारण बेचारा धर्मनिष्ठ कल्याणवाद स्वयं अपनी पत्नी से अपनी सन्तान उत्पन्न करने का अधिकारी नहीं रह गया था। पुरोहित वशिष्ठ उनकी रानी से सन्तान उत्पन्न करते हैं।'[4] 'वन्दिता' उपन्यास में हिन्दू-मुसलमानों का संघर्ष जाति एवं धर्म के आधार पर ही होता है। हिन्दुओं की जातियों में भी छुआछूत तथा भेदभाव का संघर्ष रहता है जो अन्ततः वर्ग संघर्ष का कारण बनता है। 'हिन्दू सिपाहियों में बड़ी पृथकता थी। ब्राह्मणों का चौका अलग-अलग होता था और राजपूतों का भी उनकी ही भांति पृथक् रहता था। शायद उसी समय आठ ब्राह्मण और नौ चूल्हे की कहावत बनी है।'[5] 'गढ़कुण्डार' में जातिवाद ही विवाह में संघर्ष का कारण बना। अग्निदत्त की बहन तारा कायस्थ दिवाकर से प्रेम करती है। तारा स्वयं ब्राह्मण है। "यद्यपि जातिगत रूढ़ियों के कारण वे विवाह बन्धन में नहीं बंध पाते पर उनका प्रेम अदम्य है।"[6] 'बाण भट्ट की आत्मकथा' में, भट्टिनी वर्ग संघर्ष का कारण जातिवाद को ही मानती है—'एक जाति दूसरी को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है। इससे बढ़कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है, भट्ट!' यह कहकर जातिवाद का विरोध करती है। भट्टिनी शोषण के विरुद्ध अपनी चेतना को इन शब्दों में अभिव्यक्त करती है—'तुम किसी यवन कन्या से विवाह

---

१ गढ़कुण्डार—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० ३४०
२ शतरंज के मोहरे—अमृतलाल नागर पृ० २०२-२०३
३ ऊजली—ललितकुमार मजाज पृ० १०१-१०२
४ एकदा नैमिषारण्ये—अमृतलाल नागर, पृ० ८७
५ वन्दिता—प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पृ० ३५
६ हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ३६६

कर लो तो इस देश म एक भयकर सामाजिक विरोध माना जायेगा। परन्तु क्या यह सत्य नही कि यवन कन्या भी मनुष्य तथा ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है ? [१]

सामन्तवादी व्यवस्था

एतिहासिक उपन्यासो म हम एस समाज और व्यक्तिया का चित्रण मिलता है जो आज विलुप्त हो चुके हैं किन्तु उनके चिह्न दिखाई अवश्य दते हैं। सन १८५७ की क्रान्ति सामन्तवादी नेतृत्व म हिन्दू मुसलमान जनता का अग्रजो को देश से बाहर निकालन का असफल विद्रोह था। क्रान्ति का व्यावहारिक पक्ष निश्चय ही गौरव की बात थी क्योकि देश विदेशी सत्ता स स्वतन्त्र होता लेकिन सैद्धान्तिक दृष्टि स क्रान्तिमूलक उद्देश्य यह था कि देश को पुन विभिन्न सामन्तवादी राज्यो म विभाजित कर दिया जाय। [२] इस क्रान्ति क समानान्तर सामन्तवादी व्यवस्था म हुए शोषण का उल्लेख झासी की रानी उपन्यास म किया गया है। सामन्तवादी व्यवस्था ही आगे चलकर वग सघष का कारण बनी। वशाली की नगरवधू म बताया गया है कि साठ प्रतिशत जनसाधारण के तरुण इन सामन्तो और राजाओ के निरथक युद्धो म प्राण देन को विवश किये जात थ। [३]

वर्मा जी ने सामन्ती समाज की नब्ज पहचानी है। उन्होने अपने ऐतिहासिक उपन्यासो म सामन्तवादी व्यवस्था स उत्पन्न दासता के शोषण का विविध रूपो म चित्रण किया है। साहित्य कलाएं गाने बजाने सौन्दय सभी सामन्तो के उपभोग की वस्तुए हैं। धम के ठकेदार महन्त मठाधीश आदि भी सामन्तो के जोड के धनी और विलासी होते हैं। सामन्तीय व्यवस्था की सडाध म से त्रस्त जागरूक जनता के विद्रोह का स्वर फूट फूट पडता है जो रह रहकर सामन्ती व्यवस्था को हिला दिया करता है। सामन्ती परिवारो के कुछ लायक राजाओ को देखकर कहीं-कहीं सामान्य जनता को सामन्ती व्यवस्था के प्रति एक आस्था होने लगती है। [४] सामन्ती व्यवस्था म दासो तथा अद्ध-दासो के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जाता था। सामन्तवादी व्यवस्था का स्पष्ट उल्लेख सोना और खून म भी मिलता है—बादशाह को बारह वष बाद पुन प्राप्त हुआ अत बादशाह ने हुक्म दिया कि अभी एक करोड रुपये का चबूतरा रूबरू चुना जाए। देखते देखते एक करोड का चबूतरा चुना गया। बादशाह बेगम ने पास

---

१ बाणभट्ट की आत्मकथा—हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० २७८
२ हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन—डा० चण्डीप्रसाद जोशी पृ० १३
३ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर पृ० ३६६
४ वृन्दावनलाल वर्मा—रामचन्द्र मिश्र पृ० ६६

जाकर देखा और कहा 'बस एक करोड़ इतना ही होता है?' उसने एक नाजुक ठोकर चबूतरे पर लगाई और हुक्म दिया लूट लो।"[1] 'वैशाली की नगरवधू' के समान 'सोमनाथ' में शास्त्री जी भी सामन्ती की गृह कलह, विलास-क्रीड़ा और जनता की गरीबी का चित्रण करते हैं।[2] 'कचनार' में भी सामन्ती युग की विशेषताओं की विवेचना की गई है—'यह युग सामन्ती था। लड़ाइयों की भरमार थी।"[3] सामन्ती व्यवस्था में अपराधियों को कठिन दण्ड दिए जाते थे जिन का अर्थ था अपराधियों का मान मर्दन करना तथा दूसरों के सामने विभीषिका का उदाहरण उपस्थित करना। यन्त्रणागृह कभी-कभी आजीवन चलता था—"उन दिनों यूरोप के प्राय सभी देशों में यन्त्रणागार बने हुए थे, जहां अभियुक्त को असह्य रोमांचकारी यातनाएं दी जाती थीं। बहुधा यातनाएं अपराध स्वीकृति के लिए दी जाती थीं और क्रूरता इनकी विशेषता थी। इनमें प्रचलित लकड़ी का कटघरा था, जिसके छिद्र में अपराधी के मस्तक तथा हाथ जकड़ दिए जाते थे और दूसरी लकड़ी की एक धरन होती थी जिसमें अपराधी के हाथ-पैर बांध दिए जाते थे। परन्तु एक या दो अंगों को तप्त लोहे से दागने अथवा अंग-भंग कर देने से अभिप्राय पूरा हो जाता था।"[4]

अशिक्षा

सामन्ती व्यवस्था में शोषण का भीषण प्रहार चलता रहा और उसका प्रमुख कारण शोषित वर्ग का अशिक्षित होना था। अशिक्षित होने के साथ-साथ उनमें अपने स्वामी के प्रति अन्ध आस्था थी। उनकी प्रकृति एक ही डाल पर ढलती हुई आदत में परिणित हो चुकी थी। इसी प्रकार राजन्य वर्ग भी बिना सोचे समझे ही मनमाना दण्ड दिया करते थे। कचनार दलीपसिंह को सचेत करते हुए कहती है— 'महाराज! आप राजा हैं, धर्म-अधर्म, न्याय अन्याय सब समझते हैं। हम स्त्रियां उनकी बारीकी को नहीं जानतीं परन्तु जिसने पाप किया है, उसी को दण्ड दिया जायगा या सबको?'"[5] राष्ट्रों में परस्पर युद्धों का कारण भी अशिक्षा से जुड़ा हुआ है। यूरोप में विभिन्न संस्कृतियां प्रचलित थीं। इसी कारण यूरोप ग्रीक रोमन संस्कृति का माध्यम पाकर भी कभी एक न हो सका— विभिन्न राष्ट्रों में बंटा रहा और वे परस्पर लड़ते रहे। अनेक

---

१ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १८२
२ आज का हिन्दी साहित्य—प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० ६२
३ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० २३
४ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १३
५ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ५०

संघर्षों का सामना करते हुए ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों की सन्तुलन-शक्ति नीति यूरोप का नेतृत्व करने लगी।"[1] अतः स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष तथा वर्ग-गत संघर्ष को जन्म देने में अशिक्षा का प्रमुख हाथ रहा है। स्त्रियों की अशिक्षा के कारण भी समाज में संघर्ष की स्थितियां बनी रही हैं। अपनी स्वार्थपूर्ति की दृष्टि से विभिन्न जातियों में पुरुष वर्ग ने स्त्री-वर्ग के लिए अनेक मान्यताओं को स्वीकृत किया। उदाहरणार्थ— 'आर्यों में स्त्री केवल भोग्या और दासी है। वह अपने प्रियतम के हृदय की एकछत्र रानी अन्तःपुर की एकमात्र स्वामिनी बनेगी।"[2] अन्ततः वह मात्र भोग्या बनकर रह जाती है। उसकी धारणा केवल-मात्र यही बनकर रह जाती है कि—"धीर, रुद्रधीर, कोमल, पृथुसेन, अभद्र मारिश और मातुल वृक नारी के लिए सब समान है। जो भोग्या बनने के लिए उत्पन्न हुई है, उसके लिए अन्यत्र शरण कहां? उसे सब भोगेंगे ही।"[3] किन्तु 'चित्रलेखा' उपन्यास में इस स्थिति से ऊपर उठकर उपन्यासकार ने परि-स्थितियों को समझने का प्रयास किया है—' सुख तृप्ति है और शान्ति अकर्मण्यता। पर जीवन अविकल कर्म है, न बुझने वाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है और हलचल में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं।"[4] यहां भाग्यहीन अशिक्षितों पर कुठाराघात कर चेतना का उदय करना ही उपन्यास-कार का लक्ष्य है।

साम्राज्य-लिप्सा

साम्राज्य लिप्सा भी वर्ग संघर्ष का कारण बनी रही है। 'राणा सांगा' उपन्यास में संग्रामसिंह व पृथ्वीराज में युद्ध राज्य लिप्सा के कारण ही होता है—' पृथ्वीराज ने तलवार निकाल ली। संग्रामसिंह भी पैंतरा बदलकर तैयार हो गया। वाह री साम्राज्य लिप्सा! भाई भाई के प्राण लेने के लिए एक-दूसरे पर पूरी शक्ति से घातक वार करने लगे।'[5] 'ऊजली' उपन्यास में ऊजली जब जेठवा राजा के पास जाती है तो उनकी माता (जेठवा की) उसे हीरो-मोतियों से तोलना चाहती है। वह कौटुम्बिक मर्यादाओं तथा परम्पराओं में किंचिन्मात्र भी परिवर्तन करना नहीं चाहती। वह ऊजली की स्वीकृति रखैल रूप में देती है तथा राजा जेठवा से, उसे जेठवा की ओर पत्र लिखवाकर मिलन नहीं देती। ऊजली कहती है—"विश्वास की भी एक परिधि होती है।

---

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० ६
२ दिव्या—यशपाल, पृ० १४४
३ वही,
४. नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि—प्रकाशचन्द्र गुप्त पृ० १७५
५ राणा सांगा—सत्य शकुन, पृ० ३४

राजा ने सबका साड़ दिया। धम और मर्यादा का वास्तविक अथ उन्हें आता ही नहीं है। मैं जानती हू—उन्हें राज्य लिप्सा और अतुल विलास विवश किए हुए है वरना सवस्व त्याग करके भी व अपनी प्राणदात्री के पास आते। [1] अत साम्राज्य लिप्सा के कारण ही जठवा व ऊजली का प्राणान्त हुआ। वचन का मूल्य उपन्यास म दौलत की व्याख्या की है जो लालच का कारण बनती है तथा जिसके कारण वर्ग संघर्ष होता है— दौलत का लालच सभी की नीयत को डिगा देता है। लालच म फसकर तो बड़ बड़ औलिया फकीर भी अपन इरादों और उसूलों से डगमगा जाते है। [2] विराटा की पद्मिनी म भी संघर्ष एव युद्ध का कारण साम्राज्य लिप्सा ही बनी रही है। छोटी रानी कहती है— असल म हम लोग राज्य के अधिकारी हैं। बिराना को अपनी सम्पत्ति भोगते देखकर छाती सुलग उठती है। यही मरा दाग है यही मरा पाप है। [3] जनार्दन के भाग्य म हमारा अपमान करना ही लिखा है यह अभी कैसे कहा जा सकता है।

मशीनीकरण

औद्योगीकरण एव मशीनीकरण के कारण असंख्य मजदूर बेकार हो गये। वैज्ञानिक खोजों न एक के बाद एक नये आविष्कार किये जिसके सहारे पूजीपति अपने व्यवसायों को उन्नत करते चले गए। अत परस्पर स्वार्थ टकराने के कारण नया संघर्ष उत्पन्न हुआ। पूजीवादी देशों म लोग पूजीपति और श्रमिक दो दलों म विभक्त हो गये— जब मशीनों और विज्ञान के आविष्कार ने यूरोप म जनक्रान्ति उपस्थित कर दी यूरोप वालों की उत्पादनशक्ति बढ़ गई तो चीजें सस्ते दामों में भारत म आकर बिकने लगी। अब तक यूरोपियन लोग सोना देकर भारत का माल यूरोप म ले जाते थे। अब व भारत म अपना माल बेचकर मालामाल होने लगे। [4] मशीनीकरण के कारण शिल्पोद्योग म क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। अत कारीगरों की दर गिर गया। व बेकार होने लगे। [5] मशीन के द्वारा बना माल शीघ्र तैयार होता था तथा सुन्दर भी। हथकरघा द्वारा बना माल बाजार की दृष्टि से उपेक्षित समझा जाने लगा। हाथ के श्रम पर आधारित छोटे पमाने के उत्पादन के स्थान पर उसने मशीनों पर आधारित

---

१ ऊजली—ललितकुमार आजाद पृ० ६४
२ वचन का मूल्य—शत्रुघ्नलाल शुक्ल पृ० ४४
३ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० १२७
४ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन पृ० २४४
५ वही पृ० २३८

बडे पैमाने के उद्योग धन्धों की सृष्टि कर दी। पूजीवाद इन्ही मशीनो की वजह से सारी दुनिया मे फैल सका है। मशीनें काम के दिन के उस भाग को घटा देती हैं जिसमे मजदूर स्वय अपने लिए कार्य करता है और काम के दिन के उस भाग को बढा देती हैं जिसमे वह पूजीपतियो के लिए अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है।"[1] मशीनो की सहायता से पूजीपति मजदूरो का शोषण करते हैं और बढते हुए अपने शोषण के खिलाफ प्रतिरोध तोडने की कोशिश करते हैं—"श्रम की उत्पादकता बढ़ाकर मशीनें समाज की धन-सम्पदा मे तो वृद्धि करती हैं किन्तु पूजीवादी समाज मे श्रम की उच्चतर उत्पादकता के समस्त फलो को पूजीपति हडप लेते है।"[2] अत मजदूर-वर्ग गरीब का गरीब बना रहता है। उसकी जिन्दगी छोटी हो जाती है। अत अधिक श्रम तथा कम लाभ को देखकर यह वर्ग पूजीपतियो के विरुद्ध सघर्ष छेड देता है।

अभिशप्त व्यवस्था

'वैशाली की नगरवधू' मे अभिशप्त वर्ण व्यवस्था का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वर्ण व्यवस्था सदैव वर्गगत सघर्ष का कारण बनी रही है। इस उपन्यास मे वर्णव्यवस्था मे क्षत्रियो का स्थान ब्राह्मणो से ऊपर हो गया था, इसी तथ्य की विवेचना की गई है—'क्षत्रिय राजा तथा ब्राह्मण महा-मात्य होते थे। किन्तु दोनो के विचारो मे वैभिन्य था। दोनो म कालो द्वेष और स्पर्धा फैली हुई थी। ब्राह्मणो के तिरस्कार का कोई भी अवसर मिलने पर छत्रिय उसे छोडते नही थे। उधर ब्राह्मणो को नीचा दिखलाने के लिए बौद्ध, जैन एव श्रमण आदि भी निरन्तर प्रयत्नशील थे। ब्राह्मण अन्दर-ही-अन्दर षड्यत्र किया करते थे तथा अछूतों का अपमान करते थे।"[3] "......अरे काणे चाण्डाल, तू हम ब्राह्मणो के सम्मुख वेदपाठी ब्राह्मणो की निन्दा करता है? याद रख हमारा बचा हुआ अन्न भले ही सड जाय और फेंकना पड़े, पर तुझ निगठ चाण्डाल को एक कण भी नही मिल सकता।"[4] 'दिव्या' उपन्यास मे वर्ण-व्यवस्था का प्रबल रूप दिखाया गया है—"वर्णीय भेदभाव इतना उग्र रूप धारण करता जा रहा था कि न्याय से ही सारी समस्या का हल सम्भव न था।"[5] दिव्या ने पृथुसेन के युद्ध म जाते समय बिना विवाह के स्वाभाविक आकर्षण क कारण गर्भ

---

१ मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त—एल० लियोन्तीव, पृ० ८८
२ वही, पृ० ६०
३ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर, पृ० २६८
४ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० ५५४
५ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—डा० त्रिभुवनसिंह, पृ० १७३

धारण कर लिया था। पृथुसेन की उपेक्षा के कारण वह कंकरीली राहों में भटकी फिरी। जब मल्लिका ने उसे अपनी उत्तराधिकारिणी बनाना चाहा तो अभिजात वर्ग ने उसे स्वीकृत नहीं किया। 'जय वासुदेव' उपन्यास में भी वर्णाश्रम धर्म और बौद्धधर्म की टकराहट चित्रित की गई है। नारी की स्थिति उस समय अत्यन्त शोचनीय हो गई थी।"[1] दिव्या द्विजकन्या है अतः उसे प्रवज्या लेने का हक भी नहीं मिलता है न ही वेश्या बनने का — यह न द्विजकन्या वेश्या के आसन पर बैठकर जन के लिए भोग्य बनकर वर्णाश्रम को अपमानित नहीं कर सकती।"[2]

'मृगनयनी' उपन्यास में वर्णाश्रम-व्यवस्था में सनातन प्रदर्शित की गई है। महाराज आर्यावर्त कहते हैं— शास्त्री सोचो इस प्रकार का कट्टर वर्णाश्रम हिन्दुओं की कितनी रक्षा कर सका है। रक्षा के लिए ढाल और तलवार दोनों अनिवार्य हैं। जाति पांति ढाल का काम तो कर सकी है किन्तु तलवार का काम कभी न कर पायेगी।"[3] 'वैशाली की नगरवधू' में शोषण वर्णन करते हैं कि उस समय आर्यों के तीन वर्ण थे— एक ब्राह्मण-पुरोहित, दूसरा क्षत्रिय तथा तीसरा जनपद अर्थात् विश। सेवा का कार्य क्रीतदासों के सुपुर्द रहता था। परन्तु जैसे-जैसे ही जनसंख्या के साथ-साथ आर्थिक-लालसा बढ़ी, वैसे ही वैसे ऊंच-नीच की भावना तथा आर्थिक-संकट बढ़ा। इसी स्थिति में ही शोषण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और वर्ण-व्यवस्था का स्थान अनेक जाति-व्यवस्थाओं ने ले लिया। इस व्यवस्था ने विद्रोह को वर्गगत-संघर्ष का रूप दे दिया। 'माधवजी सिंधिया' उपन्यास में वर्ण-व्यवस्था के अभिशप्त होने का कारण मराठों की जागीर प्राप्त करने की धुन राजपूतों का अहंकार एवं ब्राह्मणों की कूटनीति को माना गया है। गढ़कुण्डार में "अग्निदत्त ब्राह्मण है तथा नागदेव क्षत्रिय। दोनों में भाईचारा है। मानवती भी अग्निदत्त के प्रति आकर्षित है किन्तु वर्णाश्रम का बन्धन आगे आ जाता है।"[4] प्रारम्भ में वर्ण का अर्थ ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि से ही लगाया जाता था। सम्पत्ति के अधिकार के भाव ने वर्णों की विलगता को दर्शाना प्रारम्भ किया—"मैं यह मर्यादा स्थापित करता हूं कि अपने ही वर्ण की स्त्री की सन्तान पिता के वर्ण को प्राप्त हो, वही सम्पत्ति में भागी हो।"[5] अन्ततः साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त करने की लालसा

---

१ हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० १४३
२. दिव्या—यशपाल, पृ० २२१
३ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३७६
४. हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ३६५
५. वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ० २६३

एव मान्यताओ न वर्ण व्यवस्था को भग किया तथा सघर्ष की भूमिका खडी कर दी।

आर्थिक विषमता

आर्थिक विषमता प्रत्यक काल म वर्णों के मध्य सघर्ष का कारण बनकर उभरी है। 'वैशाली की नगरवधू' म यह विषमता अति तीव्रतर रूप म दिखाई गई है। उपन्यासकार के शब्दा म— साधारण जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। भूखी-नगी जनता अत्याचार सहन करती हुई जीवन यापन कर रही थी। राजाओ और विशेषकर धन कुबेरो के यहा धन सिमिटकर एकत्र हो गया था।[1] बलभद्र (सोमप्रभा) द्वारा अम्बपाली के प्रासाद को लूटनेवाली घटना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस काल की साधारण जनता को अन्न प्राप्त न था और साम तो के यहा आवश्यकता से अधिक भरा हुआ था।[2] 'सिंह सेनापति' म कृष्ण रोहिणी का आर्थिक विषमता के कारण सहे गये अत्याचारो का वर्णन करते हुए कहते है—"घर म कोई न था और वह न जाने किसके लिए धन जमा कर रहा था। एक दिन मैं पानी भरन गया घडा का मेखला फन्दे मे रह गया और निचला भाग कुए म डूब गया। बस यही कसूर था। मैं छटपटाता रहा और उस पिशाच ने मुझे बाघ दिया। दाग देने पर भी उसे सतोष नही हुआ।'[3] 'सयाना होते ही मगध के इस बनिय न मुझे खरीद लिया। मार तो सभी जगह खानी पडती थी किन्तु यह बनिया बिल्कुल राक्षस था।"[4] विस्मृत यात्री उपन्यास के मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्ता का स्पष्टीकरण करते हुए दुख का मूल कारण आर्थिक विषमता को बताया गया है— वह निरन्तर अपने विचारो को मार्क्सवाद की शब्दावली म व्यक्त करते हैं। अभाव के कारण दुख की जड को मैं अकेला नही काट सकता और समाज मे आर्थिक विषमता ही दुख का मूल कारण है।'[5] 'आर्थिक आधार पर उद्भूत भेदो को मिटाकर मानव जाति को दुख सागर स उबारा जा सकता है। वह अनुभव करने लगता है कि शोषक अल्पसख्यक है और शोषित बहुसख्यक।[6] आर्थिक विषमता वास्तव म वर्गगत सघर्ष का एक उत्प्रेरक घटक है। राजतत्रात्मक

---

१ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० २६८
२ वही पृ० २६९ तथा ६१२-६१३
३ सिंह सेनापति—राहुल साकृत्यायन, पृ० १५७
४ वही पृ० १५६
५ विस्मृत यात्री—राहुल साकृत्यायन, प० ३७२
६ वही पृ० ३७३ ३७४

समाज-विधान ही आर्थिक विषमता का पोषक था जिसका गणतन्त्रात्मक व्यवस्था में विरोध हुआ ।

परतन्त्रता

भारत की परतन्त्रता का एक प्रधान कारण हिन्दू राजाओं की पारस्परिक कलह तथा जातीय अभिमान की भावना थी । वर्मा जी के 'गढ़कुण्डार' में इन राजाओं के मिथ्याभिमान को चित्रित किया गया है । नाग अपने-आपको तथा अपनी जाति को बहुत ऊंचा समझता है । 'झांसी की रानी' में अंग्रेजी राज्य से स्वराज्य-स्थापन करने की प्रेरणा परतन्त्रता से मुक्ति पाने की ही प्रेरणा है । परतन्त्रता सदैव से शोषण का कारण बनी रही है । मनुबाई का लक्ष्य स्वतन्त्रता-प्राप्ति था । उन्होंने अपनी सखियों से कहा था—' यदि हिन्दुस्तान में कोई भी इस पवित्र काम को अपने हाथ में न ले, तो भी मैंने अपने कृष्ण के सामने, अपनी आत्मा के भीतर उसका बीड़ा उठाया है । '[1] शास्त्रीजी ने अपने उपन्यास 'सोमनाथ' का कलेवर परतन्त्रता के परिणामस्वरूप होनेवाले नरसंहार, लूटमार आदि से बुना है । उसमें भारतवासियों को पददलित करनेवाली रूढ़ियों, मान्यताओं के विरुद्ध मुक्ति की आवाज उठाई गई है । इसी आवाज ने वर्गगत संघर्ष की प्रेरणा भी दी है । लेखक का ध्यान हिन्दुओं की रूढ़िवादिता की ओर भी है क्योंकि रूढ़िवादिता तथा अन्धविश्वासों के कारण ही हिन्दू जाति सदैव परतन्त्र रही है । 'दिव्या' उपन्यास में दारा अपने शाकुल के लिए शरण ढूंढने की आशा से पुरोहित के घर से भाग निकलती है क्योंकि अब वह और उसका शाकुल दोनों ही अशरण थे, किन्तु— परतन्त्र होने के कारण उसके लिए रही शरण और स्थान नहीं, दासी होकर वह परतन्त्र हो गई ।'[2] नारी-वर्ग तो सदैव परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा रहा है—"दारा का मस्तिष्क भी झुलसा उठा—वह स्वतन्त्र थी कब ? अपनी सन्तान को पा सकने के लिए उसने दासत्व स्वीकार किया ।'[3] किन्तु उस अनेक व्यक्तियों की परतन्त्रता स्वीकारनी पड़ी । परतन्त्रता के कारण ही एक शासक ने अन्य शासक की आधीनता स्वीकार की—नारी ने पुरुष की तथा व्यक्ति ने समाज की । परन्तु आर्थिक समानता के विचार ने वर्ग संघर्ष की प्रेरणा प्रदान की और शोषण से मुक्ति प्राप्त कराने का एक श्रेष्ठतम साधन बना ।

---

१ झांसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३६३
२ दिव्या—यशपाल, पृ० १३३
३. वही, पृ० १३४

मार्क्सवादी चेतना का उदय

ऐतिहासिक उपन्यासो मे राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और रांगेय राघव प्रभृति उपन्यासकारो ने अपनी दृष्टि से मार्क्सवादी चेतना का चित्रण कर शोषण के अनेक पहलुओं को उजागर किया है। आलोच्य उपन्यासकारो ने चित्रित पात्रो द्वारा इस विचारधारा के प्रसार-प्रचार तथा वर्गगत चेतना के उदय का स्पाकन किया गया है। मार्क्सवादी चेतना के उदय के कारण ही शोषित-वर्ग मे विद्रोह बढ़ता है। श्री रांगेय राघव ने 'मुर्दों का टीला' उपन्यास मे मिश्र और एलाम सुमेरू और मोहन-जो-दडो के दार्शनिक तत्व की झलक देकर गणराज्य की गतिविधि का विश्लेषण मार्क्सवादी दृष्टि से किया है।"[1] *'दिव्या' उपन्यास मे यशपाल ने पतनोन्मुख जीवन को दृष्टि के मध्य रखकर* मार्क्सवादी व्याख्या की है। रांगेय राघव अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—"न स्त्री बुरी होती है न पुरुष। धन बुरी वस्तु है। धन और अधिकार को ठीक कर दो, फिर ससार में कुछ बुरा नही है।"[2] मणिबन्ध के ये विचार मार्क्सवाद के समर्थक हैं—"मैं इस अपार धन से घृणा करने लगा हू। *यह सोना मेरी आखो मे आग की भाति लपटो मे जलाता है।* इसकी भयानक प्यास को मैं कभी नही बुझा सका। पहले यह मेरी सम्पत्ति था, आज मैं इसकी सम्पत्ति हो गया हूं। यह मुझे खा जाना चाहता है।"[3] 'मधुर स्वप्न' मे तेरा-मेरा के भाव हटाकर धन-सम्पत्ति को सारे समुदाय की वस्तु बताया गया है—"हम स्त्री को सम्पत्ति नही मानते।"[4] मज्दक के इस विचार से लोग समझते हैं कि वह विवाह-प्रथा हटाकर पुरुषो के लिए उसे मुक्त करना चाहते हैं किन्तु मित्र वर्मा के शब्दो द्वारा स्पष्ट हो गया—"सभी के लिए नही, किन्तु स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध मे आज जो धारणा है हम उसमे अवश्य परिवर्तन करना चाहते हैं।"[5]

इस प्रकार शोषित-वर्ग की मुक्ति का प्रयास ही उस वर्ग मे *नवचेतना का* उदय करता है। शोषित-वर्ग चैतन्य होकर वर्गगत संघर्ष के लिए तैयार होता है। 'सिंह सेनापति' मे परिश्रम पर बल देकर साम्यवादी विचारो का प्रसार किया गया है—" 'तक्षशिला' मे भिखारियो का अभाव है, प्रत्येक समर्थ व्यक्ति

---

१. हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३८५
२ मुर्दों का टीला—डा० रांगेय राघव, पृ० ३५१
३. वही, पृ० ३०७
४ मधुर स्वप्न—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ५०
५. वही, पृ० ५१

जीविका के लिए परिश्रम करता है दास प्रथा निषिद्ध है।[1] उत्तर कुरू के गण तन्त्र में लोगों का सब-कुछ सम्मिलित दिखाया गया है— उनका प्रधान धन पशु है जिसमें सभी का सम्मिलित श्रम और भोगने का समान अधिकार है।[2] इसी भांति राहुल जी ने भी यही बताने का प्रयत्न किया कि मानव दुःख का मूल कारण आर्थिक भेद भाव ही है। उसी के आधार पर शोषण के मूल में वर्गवाद कायम रहता है। दिव्या में मारिश का विश्वास है कि— तू स्वामी के भोग के अधिकार को स्वीकार करता है यह तेरी दासता है।[3] ठकुराणी उपन्यास में कहा गया है कि—'कन्न ठाकुर के कारिन्दा ने एक किसान मुरली को पकड़ कर इस बेरहमी से पीटा कि उसकी मौत हो गयी। शिव और दूसरे किसानों ने इस जोर जुल्म के विरुद्ध नारे लगाए और ठाकुर को न्याय कराने की चुनौती दी।[4] इसी प्रकार शोषण के विरुद्ध वर्गगत चेतनायुक्त संघर्ष अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में भी मिलता है किन्तु डा० रांगेय राघव यशपाल राहुल सांकृत्यायन निम्न वर्ग के शोषण को चित्रित करते हुए वर्ग संघर्ष की सम्पूर्ण व्याख्या करते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियाएं

शोषण की प्रत्येक प्रक्रिया के पीछे कोई न कोई भावना निहित रहती है। आज जनमानस इस भावना की समाप्ति के लिए आक्रामक प्रहार के लिए तत्पर है तो नव चेतना से युक्त उपन्यासों में भी इस मनोवृत्ति को किसी न किसी रूप में उजागर किया गया है। वह चित्रण वर्ग संघर्ष की प्रतिक्रियाओं के रूप में उभरा है। ब्लादीमीर के शब्दों में— हम विश्व पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध संघर्ष के ऐसे ऐतिहासिक काल में रह रहे हैं जबकि वह हमसे बहुत शक्तिशाली है। संघर्ष के इस दौर में हम क्रांति के विकास की रक्षा करना है और पूंजीपति वर्ग का मुकाबला करना है।[5] प्रत्येक युग में दो परस्पर विरोधी वर्ग रहे हैं और उनके पारस्परिक संघर्ष से ही उस युग के इतिहास का निर्माण हुआ है। सबसे अन्त में पूंजीपति और निम्न मजदूर वर्ग में संघर्ष उपस्थित हो जाता है।[6] पूंजीवादी समाज कैसे संगठित हुआ मार्क्स इसकी खोज करता हुआ कहता है— शोषण के विरुद्ध चेतना जाग्रत होने पर श्रमिक द्वारा शोषक पूंजीपतियों के

---

१ सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन पृ० ३४
२ वही पृ० ६५ ६६
३ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक पृ० ११६
४ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ० १५
५ संस्कृति और सांस्कृतिक क्रान्ति—लेनिन ब्लादीमीर पृ० १२८
६ हिन्दी साहित्य बीसवां शताब्दी—नन्ददुलारे वाजपेयी पृ० ४६८

विरुद्ध विद्रोह होते हैं और उनके विनाश के निरन्तर प्रयत्न किये जाते हैं।"[1] इस विलयन से सर्वहारा-वर्ग मे एका कायम करने और क्रांतिकारी शक्तियो को बढाने मे सहायता मिली।"[2] "समाजवादी समाज मे लोग न केवल आर्थिक नियमो की जानकारी रखते हैं बल्कि उन्हे अपने काम का भी आधार बताते हैं।"[3]

ऐतिहासिक उपन्यासो का कथ्य स्वरूप इसी आर्थिक आधार पर टिका हुआ है। अर्थ के आधार पर ही विभिन्न विकृतिया उभरकर सामने आती हैं। अत. "समाज के भीतर वर्ग और वर्ग का सघर्ष, फिर वर्ग के भीतर कुल और कुल का, कुल मे परिवार और परिवार का और अन्ततोगत्वा परिवार के भीतर व्यक्ति और व्यक्ति का सघर्ष क्रमश इन सब पर टिककर उपन्यासकार की दृष्टि विकसित होती रही।"[4] मार्क्सवादी चेतना द्वारा व्याप्त सर्वहारा-वर्ग के चैतन्य स्वरूप ने समाज की, परिवार की, व्यक्ति की अनेक समस्याओ के कलुषित स्वरूप को उभारकर सामने रखा। उनसे मुक्ति दिलाने की चेष्टा की। ऐतिहासिक उपन्यासो मे निरूपित वर्ग-सघर्ष की प्रतिक्रियाओं का विवेचन निम्नाकित शीर्षको के अन्तर्गत किया जा सकता है—

नारी-शोषण

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो मे राजकुल की नारियो में सामन्तीय दोष पर्याप्त मात्रा मे दृष्टिगत होते हैं। नारियो की सामन्तीय वृत्ति उनके शोषण का कारण बनी रही है। 'दिव्या' उपन्यास मे नारी के शोषण की व्याख्या करते हुए यशपाल ने लिखा है—"नारी प्रकृति के विधान से नही, समाज के विधान मे भोग्य है। प्रकृति म और समाज म भी पुरुष और स्त्री अन्योन्याश्रित हैं। पुरुष का प्राश्रय पाने से ही नारी परवश है, परन्तु नारी के जीवन की सार्थकता के लिए पुरुष का आश्रय आवश्यक है, और पुरुष नारी का आश्रय भी है।"[5] इस प्रश्रय की धारणा ने ही नारी के शोषण की विवशताए उजागर कर दी। अन्तत नारी अपनी इस विवशता के प्रति सचेत भी हुई। 'दिव्या' उपन्यास मे सीरो अपने पति से कहती है—"मैं तुम्हारी क्रीतादास नही हू। तुम मेरे आश्रित हो, मैं तुम्हारी आश्रिता नही हू। मैं तुम्हारे पिजरे मे बद्ध सारिका नही हू।"[6]

---

१ A History of Political Thought—Dr P. D. Sharma, P. 425 (From Benthan to the Present day)
२ सोवियत सघ की कम्यूनिस्ट पार्टी का इतिहास—पृ० ७७
३ समाज की आर्थिक व्यवस्था—एल० नियोन्तीव, पृ० १४६
४ कल्पना, जून १९५४—सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन का लेख, पृ० ४२३
५ दिव्या—यशपाल, पृ० १३९
६ वही, पृ० १७६

नारी की हीन अवस्था से दुखी होकर 'वैशाली की नगरवधू' की राजमहिषी कहती है—"यहां कोशल मगध और अंग, वंग, कलिंग में तो कहीं भी ऐसा नहीं पाओगी। यहां स्त्री न नागरिक है और न मनुष्य। वह पुरुष की भोग सम्पत्ति और उसके विलास की सामग्री है। पुरुष का उसके शरीर और आत्मा पर असाध्य अधिकार है।[1] 'जय यौधेय' में नारी की विपन्न अवस्था का चित्रण किया गया है—'नारी के प्रति राजन्य वर्ग का व्यवहार अत्यन्त कामुक और अनैतिक था।'[2] नारी को प्रतिवाद तक का अधिकार न था। नारी की शोषित अवस्था को देखकर जय कहता है—'आज की नारी जो कुछ है उसको बनाने में पुरुष का हाथ है। नारी के लिए कोई और नहीं यही पुरुष विधाता है।'[3] 'गोली' उपन्यास में महाराजाधिराज का विवाह कुंवरी ठाकुर की बेटी से होता है। चम्पा कुंवरी के विवाह में प्रदान की गई एक गोली है। महाराजाधिराज विवाह की प्रथम रात्रि में ही अपनी नवविवाहिता पत्नी को छोड़कर विवाह में मिली गोली चम्पा के कक्ष में चले जाते हैं। चम्पा का महाराजाधिराज से इक्कीस वर्षों तक सम्बन्ध रहा। 'जब प्रथम बार उसे महाराजाधिराज से गर्भ रहा तो उसका विवाह किसनु नामक गोले से कर दिया गया था। वह नाममात्र का पति था। वस्तुतः महाराजा के औरस से उत्पन्न बच्चा का पिता कहलाने के लिए ही चम्पा का विवाह किसनु से किया गया था।'[4]

'ऊजली' उपन्यास की ऊजली जब राजा जेठवा से प्रताड़ित होती है तो कहती है— ओ पापी! तुमने एक अबोध कुंवारी के सतीत्व से अपने मरणासन्न प्राण में जीवन संचरण किया, उसकी देह की उष्मा ली, उसकी आत्मा का प्रकाश लिया, उस पवित्र नारी से कपट करके तुम भी सुख न पा सकोगे। मैं कहती हूं तेरे सम्पन्न राज्य का और तेरा विनाश हो जायेगा।'[5] इस प्रकार ऊजली नारी वर्ग के विद्रोह का प्रतीक है। 'कचनार' नारी वर्ग की चेतना का उपन्यास है। कचनार दलीपसिंह से कहती है— मेरे साथ भांवर डालिए। मुझको अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा दीजिए। मुझे अपनी जीवन-सहचरी बनाइये। वचन दीजिए। मैं आपके चरणों में मस्तक रख दूंगी। परन्तु मैं ऐसा अंगरखा नहीं बन सकती जो जब चाहा उतार फेंका।' ब्राह्मण भी धर्म की आड़ में

---

१ वैशाली की नगरवधू—चतुरसेन शास्त्री पृ० २६६
२ हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल पृ० ४०४
३ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन पृ० २२८
४ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर पृ० २००
५ ऊजली—ललितकुमार आजाद पृ० ११८
६ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन पृ० १४३

नारी का शोषण करते थे और उसे अर्थ उपलब्धि का माधन बनाते थे—' ब्राह्मण स्वय भी स्वार्थी एव पदलालुप हो चुके थ । ये पाखण्ड करके दान और दक्षिणा म सुन्दर दासिया को ले जाते थे और उनके रत्नाभरण उतारकर पाच-पाच निष्क म बूढा को बेच देते थे ।'[1] कचनार उपन्यास म नायिका दासियों के शोषण का विवेचन महाराज के सामने रखती है—' महाराज हम दासिया क मा बाप या हमार नातदार जब राजकुमारियों के साथ हम लोगा को लगा देते हैं तब भाड म तो हम या ही फेंक दी जाती हैं । जब राजा लोग दासियों की देह का सर्वनाश कर चुकते हैं, तब मानो उनकी राख घूरे पर फेंक दी जाती है ।'[2] इस तरह शोषित नारी नाना वर्गों से शोषित होकर भी मुक्त नही हो पाती तथा विवश होकर उन्ही परिस्थितिया से समझौता कर लेती है । 'दिव्या' उपन्यास म दिव्या परिस्थितिया म समा जाने का प्रयत्न करती है किन्तु शाकुल के प्रति अन्याय न सह सकन के कारण वह ब्राह्मण के घर से भाग निकली और बौद्ध विहार म शरण पाने की चेष्टा करती है, किन्तु स्थविर वहा भी उसे शरण नही देते— 'यदि पति और पिता नही है तो क्या तुम्हारे पुत्र की अनुमति तेरी धर्म ग्रहण करने की है ? 'देवी, धर्म के नियमानुसार स्त्री के अभिभावक की अनुमति के बिना सघ स्त्री को शरण नही दे सकता ।' परन्तु देव भगवान तथागत न तो वेश्या अम्बपाली को भी सघ मे शरण दी थी ?' वेश्या स्वतन्त्र नारी है देवी !' उत्तर दे स्थविर उठ गए ।'[3] शोषण के कुचक्र से आक्रान्त दिव्या वेश्या बनन का विचार करती है । नारी की दीन-हीन अवस्था पर दु खित होकर श्रावस्ती की राजमहर्षी गान्धार देश की स्वतत्र कन्या कलिंगसेना का बूढे प्रसेनजीत से विवाह होता देखकर प्रथम तो मूक हो जाती है किन्तु कलिंगसेना यह अत्याचार मौन होकर नही सह पाती । वह विद्रोह करती है—' परन्तु मैं देवी नन्दिनी यह कदापि न होने दूगी । मैंने आत्मबलि अवश्य दी है, पर स्त्रियो के अधिकार नहीं त्यागे है । मैं नही भूल सकती कि मैं भी एक जीवित प्राणी हू, मनुष्य हू समाज का अग हू ।'[4] इस प्रकार कलिंगसेना का वक्तव्य नारी चेतना का प्रतीक है । नारी जीवन की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी 'बाणभट्ट की आत्मकथा म लिखते हैं— स्त्री प्रकृति है, उसकी सफलता पुरुष को बाधने म है किन्तु सार्थकता पुरुष

---

१ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० १०८
२ दिव्या—यशपाल पृ० १२४
३ वही पृ० १२५
४ वैशाली का नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० २६४

की मुक्ति म है।"[1] अत पुरुष के बन्धन मे आश्रित होकर नारी-वर्ग की विवशताए और बढ जाती है। शोषण का स्तर और तीव्रतर हो उठता है। फलत पुरुष के विरोध मे नारी को अपना विद्रोही झण्डा फहराना पडता है। सघर्ष ही ऐसी सीढी है जिससे शोषित-वर्ग के शोषण का अन्त हो सकता है।

यौन विकृतियां

वर्ग-सघर्ष की प्रतिक्रियाओ मे यौन विकृतिया भी कारण हैं। पैसे की कमी के कारण निम्न वर्ग, उच्च वर्ग की यौन विकृति का शिकार बनता है। धन की अधिकता राजन्य-वर्ग, ठाकुर-वर्ग, जमीदार-वर्ग तथा ब्राह्मण-वर्ग म सुरा और सुन्दरी के प्रति लिप्सा पैदा कर देती है। सुरापान के पश्चात् उन्मादावस्था मे उच्च वर्ग के लोग यौन विकृतियो के शिकार होते हैं। उन्हे नारी के नारीत्व से लगाव नही वरन् उन्हे नित-नयी नव-यौवना से आलिगनबद्ध हो अपनी यौन-तृप्ति का ध्यान रहता है। साथ ही उनका हृदय इतना कठोर हो जाता है कि अपने आनन्द मे तनिक भी विघ्न पडने पर वे समर्पिता को क्रूर दण्ड देने से नहीं चूकते। यौन विकृतियों की अनेक अवस्थाए होती हैं यथा—स्वपीडन, परपीडन, प्रदर्शन-प्रवृत्ति, समलिंगी कामुकता, वस्तु प्रेम आदि। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इन यौन विकृतियो का विशद चित्रण हुआ है।

यशपाल ने 'दिव्या' मे अभिजात्य कुल के लोगो द्वारा इतर जाति की स्त्रियों से सभोग को एक परम्परा के रूप मे चित्रित किया है। यौन स्वच्छदता का प्रमाण इतिहास म भले ही मिल जाय—"किन्तु पति के सामने पत्नी और भाई के सामने बहन का हाथ पकडनेवाले की गर्दन पर रक्तरजित खड्ग होता था।"[2] भारतीय परम्परा मे कभी ऐसी छूट रही होगी यह एक सदिग्ध प्रश्न है। यौन विकृतियो पर आधारित ऐय्याशी का जीवन सडकों और शाही दरबारों मे ही नही वरन् शाही नौकरो के घर मे भी आबाद होने लगा—"शाही नौकर दिन छुपे पान कर लेते है और तवायफो को बुलाकर रातभर रासलीला करते हैं। वहा सभी वह होता है जो पूर्व होता था। वहा अबलाओं, कमसिन लडकियो का सतीत्व भी भग किया जा रहा है।"[3] पुरुष द्वारा असामान्य रूप से कामवासना की तृप्ति करना यौन विकृति का एक रूप है। 'जनानी ड्योढी' मे राजाजी की यौन विकृति का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—"जब मैं राजाजी के महल में पहुची, वे सुरा की मादकता मे मदहोश थ। व भावनाहीन अस्फुट

१ बाणभट्ट की आत्मकथा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ११९
२ हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा—डा० मक्खनलाल शर्मा, पृ० १५२
३ राणासागा—सत्य शकुन, पृ० ६२

स्वर में बोले—"इसे तैयार कर दो। खूब इत्र लगाना। जल्दी से चली जाओ। वे दोनों निर्ममतापूर्वक मेरे कपड़े खोलने लगीं। अब मेरे जिस्म पर कांचली नहीं। राजाजी ने कहा शर्म आती है तो इस दारू के दो-चार घूंटके लेले।... फिर गोली बन जायेगी।"[1] समलिंग यौन विकृति व अत्याचार का एक उदाहरण और प्रस्तुत है जो ठकुराणी के लिए असह्य व्यवहार था—"एक दिन गोरी ने एक नाटक रचा। ठकुराणी को अपने महल में बुलाया और उसे अपने पलंग के नीचे सोने को कहा। मना करने पर उसे पलंग के नीचे घसीटकर ढकेल दिया। उसने महल के किवाड़ बन्द किये और बगल बच्चे को लेकर पलंग पर सो गयी, केलिक्रीडा में लीन हो गयी।"[2] 'विराटा की पद्मिनी' में राजा नायकसिंह बहुत कामुक थे। बुढ़ापे में कामुकता और बढ़ गयी और दिमाग में खलल आ गया। सनक बढ़ गई।[3] उनकी अति कामुकता के कारण ही जनजीवन में शोषण बढ़ता गया। आचार्यपुत्र सिंह 'सिंह सेनापति' में रोहिणी को वस्त्राभूषण से सुसज्जित देख उसे चुम्बन के लिए आग्रह करता है—"चुम्बन चाहे जितने चाहो उतने, किन्तु आलिंगन अभी नहीं, मां के हाथ की सजावट बिगड़ जायेगी। मुझे महोत्सव में चलना है।"[4] असमय सुन्दर नारी को देखकर उत्तेजित होना यौन विकृति का ही परिचायक है। इस यौन विकृति के कारण ही राजा-महाराजा एवं ठाकुर अपने दास-दासियों पर असह्य अत्याचार करते थे। 'सुहाग के नूपुर' में यौन विकृति के परिणामों का उल्लेख हुआ है—"विलास की लहर ने अनेक अतृप्त एवं कुंठित कुल-कामिनियों में गुप्त व्यभिचार की लहर दौड़ा दी थी।"[5] गुप्त व्यभिचार के द्वारा अनेक गुप्त रोगों से पीड़ित नारी-वर्ग का जीवन दुर्वह हो गया था। 'दिव्या' में पृथुसेन से वंचित दिव्या का गर्भ यौन विकृति का परिचायक बन जाता है। परिणामस्वरूप दिव्या को अनेक संघर्षों से गुजरना पड़ता है। 'मुर्दों का टीला' उपन्यास में आमेनरा के जीवन में—"यौवन की मादकता कितने अंशों में उसके पथ का प्रलोभन कर चुकी है, यह उसके लिए स्मरण रखने की बात नहीं।"[6]

अर्थाभाव के कारण भूखी मरती नारी जब अपने बच्चों को भूखा देखती है तो वह अस्मत फरोशी के लिए तैयार हो जाती है। अर्थाभाव ही उसकी यौन विकृति का कारण बनता है। 'ठकुराणी' में नैना ने देखा उसका बेटा भी दो

---

१ जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १८-१९
२ वही, पृ० ८४-८५
३ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० ८
४ सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ७६
५ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर पृ० १७८
६ मुर्दों का टीला—रांगेय राघव, पृ० ८३

जून से भूखा है, वह काप उठी—"वह ठाकुर से हार गई। ठाकुर ने उसे कमरे मे बुलाया और उसके सतीत्व के बदले उसे झोली-भर धान दिया।"[1] 'पुनर्नवा' उपन्यास मे मृणालमजरी और आर्यक का आलिंगन करना तथा समाधिस्थ होना भी यौन विकृति का परिचायक है—'सैकडो बार लडाई-झगडे से लेकर पुनर्-मैत्री तक का अभिनय कर चुके थे। परन्तु आज दोनो को नई अनुभूति हुई। ऐसा जान पडा जैसे अन्त स्तल का सारा सत्व उमडकर आ गया है। आर्यक को रोमांच हो आया और मृणालमजरी पसीने से तर हो गई।"[2] इसी उपन्यास मे चन्द्रा को लोग काम-विलुप्ता कहते है किन्तु वह केवल आर्यक के सग रहकर उन्हे देखकर ही अपनी यौन-वृत्ति से सन्तोष पाना चाहती है। इस बात के लिए वह मैना से प्रार्थना भी करती है। किन्तु दोनो के मन मे सघर्ष छिड जाता है—"वह तेरा है और तेरा ही बना रहेगा। पर मैं अपने जन्म-जन्म के सगी को चाहू भी तो कैसे छोड सकती हू। बोल बहन, इतनी-सी मेरी साध तो पूजने देगी ना ?"[3] 'एकदा नैमिषारण्ये' मे उपन्यासकार ने सभोग-क्रिया का विश्लेषण किया है—"प्रजनन की सभोग-क्रिया कुरूप भी है और कठोर भी, किन्तु भोगने वालो के द्वारा अतीव सुन्दर और आनन्दकारी मानी जाती है।"[4] यही अनुभव एक तृष्णा को जन्म देता है। यही तृष्णा जगत् के समस्त विद्रोह तथा विरोधो की जननी है। इसी के कारण राजा राजा से लडता है। ब्राह्मण से ब्राह्मण, क्षत्रिय से क्षत्रिय, माता से पुत्र, और पुत्र से माता लडती है। चोर इसीलिए चोरी, कामुक परस्त्री-गमन और धनी गरीबो को चूसते है। यह तृष्णा ही दुख का कारण है।"[5] काम-भावना से आक्रान्त व्यक्तियो का उल्लेख करते हुए कहा है कि "इस प्रकार अनेक लोभो से कामवासना को दबाकर वे जितना ही बाहर से सध रहे थे, उतना ही भीतर से बिखर भी रहे थे। अयोध्या और लखनऊ मे बीते हुए ये सघर्ष-भरे दिन उगलियो की पोरो से आगे बढ गये।"[6] उपन्यासकार कहना चाहता है कि दमित कामवासना ने ही इस विकृति को जन्म दिया तथा इस विकृति के प्रदर्शन द्वारा ही समाज मे शोषण-प्रक्रिया निरन्तर गतिशील रहती है। सन्यासियो तथा भक्तो द्वारा भक्ति की आड मे इस विकृति को फलते-फूलते हुए उपन्यासकारो ने देखा है। 'महाकाल' उपन्यास मे एक याचिका का कथन इस बात का स्पष्टीकरण कर देता है—"एक युवा सन्यासी नगर मे आया

---

१ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० ६१
२ पुनर्नवा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ५०
३ वही, पृ० १७७
४ एकदा नैमिषारण्ये—अमृतलाल नागर, पृ० २८८
५ वही, पृ० २८६
६. वही, पृ० ४०१

था और अपने भक्तों के पर्दे के पीछे कई स्त्रियों से सहवास कर चुका था। एक स्त्री ने आरोप लगाया था कि वह उसके पास साधन सीखने के लोभ से गई थी और भक्त बनकर यह याचिका कर रही है।''[१] 'चीवर' में लोकायत तथा राज्यश्री का वार्तालाप संभोग का विवेचन करता है। पुरुष जहां भोग को आनन्द मानता है, वहां स्त्रियां इस भोगवृत्ति के कारण दुःखाक्रान्त हो जाती हैं। राज्यश्री ने कहा—" 'वे क्या भोगी नहीं हैं?' 'भोग तो आनन्द है देवी!' मित्रकाली ने कहा, 'किन्तु भोग योग के रूप में ही आनन्द है अन्यथा उसे देखने का प्रयत्न कितना जघन्य है!' मित्रकाली हंस दी। राज्यश्री ने सिर उठाकर कहा, 'यह भी झूठ है, भोग ही मनुष्य के दुःख का प्रारम्भ है।' "[२] "वासना का दमन वासना की पूर्ति है।"[३] इसी उपन्यास में "सामन्त अर्जुन ने उस स्त्री को अंधकार में घसीटा। और जब उसे प्रकाश में देखा, वह उसका रूप देखकर पागल हो गया और उसने उससे नितान्त बर्बर वासनामय अपराध किया और फिर जब उसे अपने किए का ध्यान आया तो उसने उसकी हत्या कर दी।"[४] 'ठकुराणी' उपन्यास में महारानी सूरज पर आरोप लगाती है कि महाराजा का धर्म-कर्म इसने भ्रष्ट कर डाला है— "वे हर रोज नयी-नयी छोकरियों को जनानी ड्योढ़ी में लाते हैं।...मैं बहुत दुःखी हूं क्योंकि इनके दुष्कर्मों का प्रभाव मेरे बेटे पर भी पड़ रहा है।" "तुम यह सब सहन कर सकती हो। मैं नहीं सह सकती। मैं इस हरामजादी का नाश करके ही छोड़ूंगी।"[५] अतः यह दोष औरत का नहीं वरन् महाराजा की यौन विकृति का है जो औरत-औरत के मध्य संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर शोषण को बढ़ावा देता है।

'पुनर्नवा', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'चीवर', 'अमृत पुत्र', 'पतन', 'महाकाल' आदि उपन्यासों में यौन विकृतियों के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें से कतिपय उपन्यासों में यौन विकृति विलास का साधन बनती है तो किन्हीं उपन्यासों में अर्थाभाव-पूर्ति का माध्यम। अग्निदत्त 'गढ़कुण्डार' में मानवती से प्यार करता है। अपनी प्रिया से एकान्त में मिलकर प्रसन्नता का अनुभव करता है। उसे देखकर ही वह यौन तृप्ति करता है—"अग्निदत्त के मुख पर उस दिन उल्लास का अनन्त विलास दिखाई दे रहा था। तृप्ति के अमिट चिह्न लक्ष्य होते थे।"[६] किन्तु राजधर से मानवती की सगाई की बात सुनकर वह मानसिक

---

१. महाकाल—गुरुदत्त, पृ० ६७
२. चीवर—रांगेय राघव, पृ० ५३
३. वही, पृ० १२५
४. वही, पृ० २४१
५. ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १८१
६. गढ़कुण्डार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १८४

संघर्ष से जूझने लगता है—"मेरे जीते जी राजधर मानवती का पति न हो सकेगा।"[1] इसी उपन्यास में हेमवती तथा नाग का प्रणय-प्रदर्शन भी यौन चेतना की अभिव्यक्ति करता है—"आगन में पहुचकर नाग धरती पर ही लेट गया और तलवार की मूठ का सिराना बना लिया। हेमवती को देखने की इच्छा से आँखें उसकी ओर कीं। हेमवती ने उसे अच्छी तरह देख लिया और शर्म से आँखें नीची कर लीं। उसने कटोरा लेने के लिए हाथ बढ़ाया। नाग की कलाई से उसकी कोमल उंगलियां छू गईं।"[2] 'सिंह सेनापति' में राजतंत्र में यौन-विकृति का विधान दृष्टिगत होता है—"राज तंत्र नर-नारियों के लिए बंदीगृह है। वहां राजा के सामने किसी मनुष्य का कोई मूल्य नहीं। वहां नारी-तन क्रीड़ा और कामुकता के लिए खिलौना है। वहां स्वतन्त्र मानव के लिए कोई स्थान नहीं।"[3] राजतंत्र की कामुक प्रवृत्ति ने नारियों का भरपूर शोषण किया है। 'दिव्या' में शिलाखण्ड पर नारी का एक उन्मुख स्तन अंकित करता हुआ मारिश यौन विकृति की अभिव्यक्ति करता है—"यही अंग नारी के नारीत्व की सार्थकता के लिए पुरुष का आह्वान करता है और फिर उस फलीभूत सार्थकता का शोषण करता है।"[4] 'ठकुराणी' में ठाकुर द्वारा किये गये यौन अत्याचार का ब्योरा जमना अन्य दासी को इस प्रकार सुनाती है कि मेरे पिता ने मुझे गरीबी में ठाकुर को बेचा था तथा ठाकुर ने मुझे अपनी रानी बनाकर रखने का आश्वासन दिया था—"किन्तु ठाकुर मेरे साथ खेल का व्यवहार करता था। वह शराब और अफीम का नशा करके इस तरह मेरे शरीर को नोचता था कि कभी-कभी तो मैं दुख से तड़प उठती थी और मेरी इच्छा होती थी कि मैं हवेली के सबसे ऊंचे बुर्ज से कूदकर अपनी जान दे दूं।"[5] ठाकुर द्वारा किये गये यौन-अत्याचार में परपीड़न की यौन विकृति मौजूद है जो अन्ततः संघर्ष का कारण बनती है। 'राणा सांगा' में मनसुख सूरज से कहता है—"कभी-कभी अपने किए पर सोचता हूं तो लज्जा से गर्दन झुक जाती है। तुम न आते तो अभी तक न जाने कितने पाप मैं और कर डालता। फिर कई बार पुरानी वासना जब उभरकर सामने आती है तो पागल हो जाता हूं···पागल।"[6] यह कथन मानसिक संघर्ष एवं यौन विकृति का परिचायक है। 'अमृत पुत्र' में अश्वराज को आचार्य का श्रेष्ठिपुत्री को वासनाभरी दृष्टि से देखना एक यौन विकृति का आधार हो

१ गढ़कुण्डार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २७५
२ वही, पृ० ६२
३ सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन, पृ० १०४
४ दिव्या—यशपाल पृ० १६२
५ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ० २०
६ राणा सांगा—सत्यदेव शकुन पृ० ८१

लगता है—"आप सयम का, साधुत्व का उपदेश हम लोगों को तो देते हैं किन्तु स्वय आप श्रेष्ठिपुत्री···कुमार देवी की ओर इस प्रकार वासनाभरी दृष्टि गडा-गडाकर क्या देख रहे थे ?"[1]

सेक्स-सबधी अनैतिक और कुत्सित सम्बन्धों का विश्लेषण यूरोपीय उपन्यासो की एक विशेषता रही है। उनमे उपन्यासकार खुलकर यौन-चर्चा करता है। वैसे भी "स्त्री पुरुष के सामान्य, स्वाभाविक गति के आकर्षण के अतिरिक्त कामवासना के कई विकृत रूप भी होते है। समलैंगिक आकर्षण, अनुचित और समाज-विरोधी रूप मे प्रकट होनेवाले लैंगिक व्यवहार आदि इनमे मुख्य हैं।"[2] 'पतन' उपन्यास मे सरस्वती का व्यक्तित्व यौन विकृतियो से ग्रस्त है—"सरस्वती अर्द्ध नग्नावस्था मे पलग पर बैठ गयी। उसने रणवीर का हाथ पकड लिया। इसके पश्चात् उसने आलमारी से शराब की बोतल निकाली।"[3] व्यक्ति यौन विकृतावस्था मे व्यभिचार की ओर उन्मुख होता है—"व्यभिचार के दो कारण होते हैं—समाज और प्रकृति। समाज का प्रभाव मनुष्य के जीवन मे बहुत महत्त्व का है। प्रकृति दूसरा कारण है, और यह कारण बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ लोग प्रकृति से ही विलासप्रिय होते हैं। उनकी प्रकृति, जैसे ही मनुष्य दूषित समाज के ससर्ग मे आया, उग्र रूप धारण कर लेती है और वह मनुष्य को बहुत नीचा गिरा देती है।"[4] 'ठकुराणी' मे ठाकुर अनूपसिंह अपाहिज और नपुसक है। वह अपनी यौन तृप्ति अन्य लोगो के यौनाचार के माध्यम से करता है—"नैना आकर उसके वीभत्स जीवन की घिनौनी घटनाए सुनाती—वह आजकल अपने हवा महल मे पातुरों का नृत्य कराता है। उसके खास नौकर व अन्य मित्र उन युवतियो के साथ व्यभिचार करते हैं और वह देख देखकर विचित्र तरह से प्रसन्न होता है। उसकी मुद्रा इतने विकृत उल्लास से दीप्त होती है, जिसे देखकर हृदय काप उठता है।"[5] अनूपसिंह का यह यौन-विकृत आचार शोषक समाज की विकृतियो को उजागर करता है। सम्पूर्ण शोषण की तह मे एक ही कारण निहित रहता है, वह है धन। 'मुर्दों का टीला' मे मनुष्य की तृष्णा को ही पाप की जड माना गया है—'किन्तु छिका! देवता क्या इस प्रकार के वासनामय अनाचार सह सकेंगे ?"[6] नीलूफर कहती है—"उच्च वर्ग के ज्ञानी जब थक जाते हैं तो मदिरा पीते और सो जाते, इस आशा मे कि जो रहस्य जाग्रत मे नही खुलते वे स्वप्न

---

१ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ५३
२ हिंदी उपन्यास का अध्ययन—डा० गणेशन पृ० ३२८
३ पतन—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १४६
४ वही पृ० १४६
५ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १३०
६ मुर्दों का टीला—रागेय राघव पृ० ६३

मे आकर स्पष्ट हो जाते हैं। पर स्वप्न मे बात और भी जटिल हो जाती है।"[१] नीलूफर इस विकृति की विवेचना करके बताना चाहती है कि इस मूल विकृति के कारण आज समाज मे सघर्ष दिखाई देता है। यदि कामवासना को दबाकर रखा जाय तो मानसिक विकार पैदा करती है और यदि उभारकर रखा जाय तो समाज मे सघर्ष की परिस्थितिया उत्पन्न करती है, अत मार्क्स ने भी सैक्स को वर्ग-सघर्ष का एक कारण माना है।

'जय जगलघर बादशाह' मे शाही नोकरो की धनाधिक्य के कारण उत्पन्न यौन विकृतियो का चित्रण किया गया है। ऐयाशी शाही दरबार तक ही परिसीमित नही रहती वरन् शाही नौकरो के बन्द घरो मे भी दृष्टिगत होती है—अर्थ के आधार पर नारी के सतीत्व भग करने की प्रक्रिया ने भी समाज मे सघर्ष को जन्म दिया है। 'जनानी ड्योढी' मे समलिगी यौन विकृत अवस्था का वर्णन किया गया है—"मैं पलग पर सोयी किस्सा नागजी साभलदे पढ रही थी कि जोखो मेरे पास आयी। वह काफी गभीर लग रही थी। आते ही मुझ पर पड गयी। उसने मुझे बाहो मे भर लिया। वह बहुत देर तक मेरे प्रेम मे डूबी रही।"[२] नारी के प्रति नारी का यौनाकर्षण यौन विकृति के अन्तर्गत परिगणित होता है। इसम यौन अतृप्ति का सघर्ष छिपा रहता है—"जोखो दारू मे धुत थी। उसके पास कोई किशोरी सोई हुई थी। वह उसके डील पर धीरे-धीरे हाथ फेर रही थी। शराब का गिलास भरा था। वह किशोरी अर्धनग्न-सी ऐसी पडी थी मानो वह लाश हो। मैं समझ गयी कि यह बेचारी जोखो की दहशत स घिरी हुई है। उसकी आखो म रोमाच की जगह भय लहरा रहा था। उसकी कावली अपने स्थान से ऊपर थी।"[३] इसी उपन्यास मे महाराजा के यौन विकृतिपूर्ण कृत्यो का वर्णन भी हुआ है। महाराजा नशे मे धुत और बेहद उत्तेजित रहते थे। वे अपनी यौन विकृति का प्रदर्शन दासी एव दावडी के समक्ष करते थे—"जिस रूप को हम देखकर मुग्ध हो जाते थे, वह रूप, वह असर उसके यौवन मे था। महाराजा ने मेरे सामने ही उसे इस तरह दबोचा जैसे दैत्य किसी राजकुमारी को दबोचता है। दावडी भय और आतक के कारण एकदम निर्जीव पत्थर सी हो गयी। महाराजा कुछ क्षणो तक उसके शरीर से खेलते रहे, फिर उन्होने कहा उसे लात मारकर—एकदम मुर्दार! कहा यह, कहा हमारी नैनरस।"[४] राजा महाराजाओ का सतोष केवलमात्र इसी मे नही हो जाता

---

१ मुर्दों का टीला—रांगेय राघव, पृ० २६५
२ जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ५५
३ वही, पृ० ६०-६१
४ वही, पृ० १००

था। वे अपनी यौन हवस की पूर्ति के पश्चात् दास-दासी एव दावडी को कठोर दण्ड भी देते थे। उनकी यौन विकृतिया कठोर अत्याचार का कारण भी बनती थी, जिसके कारण समाज मे सघर्प की भावना को प्रश्रय मिलता रहा। 'जय यौधेय' मे राहुल साकृत्यायन ने भी इस सबध म उल्लेख किया है—"सात-आठ वर्ष से चौबीस पच्चीस वर्ष के बीच से ऊपर लडके-लडकियो का सम्मिलित शयनगृह था। उनके एक-दूसरे से मिलन मे कोई बाधा नही थी। कुटिया के भीतर तो लडके ही नही लडकिया भी अक्सर पूर्णतया नग्न रहती थी। इस अवस्था की मैं कभी कभी पाटलिपुत्र के नर-नारियो के अन्त पुर से तुलना करता था, कितना भारी अन्तर था! वहा पाटलिपुत्र के नर-नारियो का सारा समय कामुकता (और उससे भी वीभत्स रूप म) की बातें सोचने-कहने-करने के सिवा उनके पास कोई काम न था और यहा किसी का उधर ध्यान भी नही जाता था।"[1] यहा उपन्यासकार ने यौन विकृति मूलक सघर्ष को समाप्त करने की प्रेरणा दी है। '*ठकुराणी*' मे अनूपसिंह के नपुसक होने के कारण यौन विकृतिया अधिक बढ जाती हैं—'अनूपसिंह नशे मे धुत था और उसके दोनो खास नौकर बन्दरो की तरह उछल-कूद मचा रहे थे। एक लडकी अर्धनग्न पडी थी। वह भीतर ही-भीतर सिसक रही थी।"[2] अनूपसिंह सामने स्त्री-पुरुषो के यौनाचार देखकर बहुत तृप्त होता था। उसके स्वभाव मे परपीडन की यौन विकृति छिपी हुई थी। सामने स्त्री को पीडित और सिसकता देखकर बहुत खुश होता था। वह अपने खास नौकरो को अपने सम्मुख इस प्रकार के यौनाचार करने का आदेश देता था। 'वैशाली की नगरवधू' म महाराज दधिवाहन कुण्डनी के उन्मादक रूप पर मोहित हो जाते हैं—"कुण्डनी के यौवन, मत्त नयन और उद्वेगजनक श्रेष्ठ देहयष्टि—इन सबने महाराज दधिवाहन को कामान्ध कर दिया।"[3] कुण्डनी महराजा की यौन विकृति का शिकार नही होना चाहती। वह काल-नृत्य का अभिनय करती हुई मृत्यु का आलिंगन करती है। नारी की विवशताओ और सघर्ष का अन्त मृत्यु के पश्चात् ही होता है। 'उस एकान्त रात को अनावृत्त सुन्दरी कुण्डनी की देह नृत्य की अनुपम शोभा का विस्तार कर रही थी और काम-वेग से महाराज दधिवाहन की रक्तगति असयत हो गई। कुण्डनी ने चोली से एक थैली-सी निकाली। उसमे महानाग ने अपना फन निकाल-कर उसके मुह के साथ नृत्य करना प्रारम्भ किया। नागराज कुण्डनी का अधर चुम्बन करके शान्त भाव से उसी बहुमूल्य थैली मे बैठ गए। विष की

---

१ जय यौधेय—राहुल साकृत्यायन, पृ० १८४
२ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १६२
३ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० १८४

ज्वाला से कुण्डनी लहराने लगी। महाराजा दधिवाहन ने मृदग फेंककर कुण्डनी को आलिंगनपाश मे कस लिया। ज्योही कुण्डनी के अधरोष्ठ चुम्बन किया, त्यो ही वह तत्काल मृत होकर पृथ्वी पर गिर पडी।"[1] इस अति लिप्सा का कारण 'एकदा नैमिपारण्ये' मे विवेचित किया है—" 'तव यह अति लिप्सा क्यो?' "सम्भवत. कुछ वर्षों तक नपुसक रहने की यह प्रतिक्रिया है।' "[2] 'चित्रलेखा' उपन्यास मे बीजगुप्त तथा चित्रलेखा का व्यवहार यौन-वृत्ति को प्रदर्शित करता है—"बीजगुप्त ने चित्रलेखा को आलिंगनपाश मे लेकर कहा—" 'तुम मेरी मादकता हो।' चित्रलेखा ने उत्तर दिया—'तुम मेरे उन्माद हो।"[3] बीजगुप्त ने हसकर कहा—'मादकता और उन्माद—इन दोनो का सदा साथ रहा है और रहेगा। चित्रलेखा, हम दोनो कितने सुखी हैं!' "[4] परन्तु विलास और विस्मरण पर टिका हुआ यह सुख न सच्चा है तथा न स्थायी है।

वस्तुत. प्रेम और वासना मे भेद है। वासना पागलपन है तथा प्रेम गम्भीर है। प्रेम का अस्तित्व अमिट है जबकि वासना का अस्तित्व क्षणिक है। इसी कारण यौन विकृत अवस्था मे अनेक अनाचार होते हैं। अनाचार, शोषण, घुटन सभी सघर्ष के उत्प्रेरक तत्त्व हैं। इसी आधार पर 'पतन' उपन्यास की सुभद्रा नावरग, धन-धान्य मे भी नही रमती। उसका हृदय अपने प्रेमी के लिए आतुर रहता है—"मुझे धन नही चाहिए, ऐश्वर्य नही चाहिए। मुझे सुख चाहिए, यहा सुख नही। सुख तुम्हारे साथ मे है। मैं तुम्हारे पैरो पडती हू, मुझे यहा से ले चलो। चलो, देश छोड दें। मेहनत-मजदूरी करके हम दोनों रहेंगे, पर एक-दूसरे के पास रहेगे।"[5] अत राहुल साकृत्यायन, यशपाल प्रभृति उपन्यासकारो ने "अनेक स्थलो पर भोग की समता, श्रम की समता, उत्पादन की समता, विषमता के विरोध, अहभाव के उन्मूलन आदि का प्रतिपादन एव समर्थन कर बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।"[6] इस प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यासकारो ने यौन विकृतियो का चित्रण करते हुए उनका सघर्ष के अनुप्रेरक तत्त्वो के रूप मे उल्लेख किया है।

धार्मिक तथा नैतिक पतन

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति ही धार्मिक कर्म से विमुख होकर दूसरो के श्रम का शोषण करते हैं। धर्म की आड मे अर्थहीन व्यक्तियों का भरपूर शोषण

१ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० १८६
२ एकदा नैमिपारण्ये—अमृतलाल नागर, पृ० ४१३
३ चित्रलेखा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १०
४ वही, पृ० ११
५. पतन—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १६३
६ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३३२

होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार का शोषण निरन्तर होता रहा है। आज सर्वहारा-वर्ग धार्मिक पतन का अवलोकन करते हुए, इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठा रहा है। क्रान्ति तथा वर्ग-संघर्ष के द्वारा यह वर्गों मे समता लाने एव वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए कृतसकल्प है। अत धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण बहुविधि से हुआ है। 'एकदा नैमिषारण्ये' मे धर्म का अर्थ इस प्रकार अभिव्यक्त किया है, "धर्म का अर्थ ही यह है कि जिसके कारण धन की प्राप्ति हो। धनपूर्वक 'ऋ' धातु मे मक प्रत्यय के योग से धर्म बनता है।"[1] धर्म की इस व्याख्या को 'महाकाल' के सुधाकर पण्डित स्वीकार नही करते। वे ऐसे मत-मतान्तर तथा धर्म को निकृष्ट मानते है जो कि आर्थिक दृष्टि से मानव का शोषण करता हो—"मैं ईश्वर-परमात्मा को मानता नही और सब मत मतान्तर परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर कल्पित किए हैं। अव्यक्त, सर्वव्यापक वस्तु से लेकर पत्थर के लिगाकार टुकडे तक को परमात्मा माना जाता है।"[2] वस्तुत इस कल्पना के आधार पर जन-मानस का शोषण किया जाता रहा है। 'सोमनाथ' मे महमूद एक धर्मान्ध लुटेरा था। उस समय की जनता अन्धविश्वासो की शिकार थी—"भूत पिशाच, वैताल आदि पर जनता का अगाध विश्वास था। त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर मे धर्म के नाम पर कितने अमानुषिक कृत्य होते थे।"[3] अत अमानुषिक कृत्यो द्वारा सघर्ष की स्थितिया उत्पन्न हुई तथा वर्गगत सघर्ष का प्रादुर्भाव हुआ।

'चारु चन्द्रलेख' उपन्यास मे घुडक साधुओ द्वारा पशुपतिनाथ की आड मे अनेक अत्याचार किये गये। उनकी मान्यता थी कि—"मनुष्य पशु ही है। पशु को पशु की तरह से रहना चाहिए। वे कहते है कि पशु किसी का खेत चर सकता है, उसे दोष नही लगता। इसका फल यह हुआ कि घुडक साधु कुछ भी करने मे हानि नही मानते। मतलब सधे तो गो-हत्या करवा सकते हैं, मन्दिर तुडवा सकते हैं, स्त्रियो पर बलात्कार कर सकते हैं।"[4] 'सोना और खून' मे पादरी के द्वारा जीवित व्यक्तियो को धर्म के नाम पर जलाया गया था। दर्शको की हर्ष-ध्वनि इस कृत्य की स्वीकृति की घोषणा करती है। धर्म के नाम पर किए गये भयकर अत्याचारो का चित्रण इस प्रकार हुआ है, "अन्त मे सूप के चारो ओर एकत्रित ईंधन मे आग लगाई गई। परन्तु वधयूप के साथ जजीरो मे बधे हुए पीडित जन आग की लपटो से बहुत ऊंचे थे। आग की लपटें केवल उनके आधे अगों तक ही

---

१. एकदा नैमिषारण्ये—अमृतलाल नागर पृ० २२३
२. महाकाल—गुरुदत्त, पृ० ५८
३. सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन, पृ० २९३-२९४
४ चारु चन्द्रलेख—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २८७

पहुंच पाती थी और इस प्रकार वे जलाये नहीं जा रहे थे, धीमे-धीमे भूने जा रहे थे।"[1] 'शाह और शिल्पी' उपन्यास में धर्म की सच्ची मान्यता की अभिव्यक्ति हुई है, "सच्चा धर्म मनुष्य के जीवन को बहुत ऊंचा उठा देता है।"[2] विमल का चरित्र इसी आस्था पर महान् बना था। सही धर्म क्या है? इसका स्पष्टीकरण करते हुए 'ऊजली' में उपन्यासकार ने लिखा है—"हम जिसे धर्म मानकर पूछ पकड़कर बैठे हैं वह धर्म नहीं बल्कि मिथ्या आडम्बर-मात्र है। धर्म वह है जो जीवन को सुव्यवस्थित बनाता है।"[3] धर्म के नाम पर किए गए शोषण द्वारा, वर्गगत चेतना उत्पन्न हुई। अपने अधिकारों को पाने की चेष्टा तथा जिजीविषा की ललक ने सर्वहारा-वर्ग को वर्ग-संघर्ष की प्रेरणा दी। धर्मगत विभिन्न शोषणों के कारण ही समाज में संघर्ष की पृष्ठभूमि बनी और संघर्ष फैलता गया। जन-सामान्य में यह भावना व्याप्त हो गई कि हम मत-मतान्तरों और अन्धविश्वासों के घृणित दायरे से ऊपर उठकर देखें तो हमें स्वतः ही धर्म के सच्चे स्वरूप का बोध होगा, और वह है मानव-धर्म, अर्थात् जीव-मात्र के कल्याण की कामना का धर्म। जब धर्म जन-मानस की कल्याणकारी भावना से विमुख हो जाता है तो उसका पतन प्रारम्भ होता है। धार्मिक पतन के साथ-साथ विवेक भी नष्ट हो जाता है। 'वचन का मूल्य' उपन्यास में इस्माइल ने ही धर्म की आड़ में सरदारों का विवेक नष्ट किया था—"वे इस्माइल द्वारा फैलाए धर्मान्धता के जाल में, चांदी की चमक में उलझ गए। उनके पैर लड़खड़ाने लगे।"[4] चांदी की चमक ने उन्हें निम्न-वर्ग का शोषण करने के लिए विवश किया फलतः वे अपनी नैतिकता में भी गिर गये। धर्म का सीधा सम्बन्ध आचरण से होता है—"धर्म की दृष्टि में अनुचित कार्य करने वाला दण्डनीय है, चाहे वह राजा हो या सामान्य जन।"[5] 'वैशाली की नगरवधू' में धर्म विलासिता के पंक में डूबा हुआ बताया गया है। अतः विलासिता की आड़ में शोषण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती थी—"यज्ञ को माध्यम बनाकर ब्राह्मण अपनी वासनाओं को शान्त करते थे। मांस एवं मदिरा का प्रचलन था। यज्ञों के अवसर पर राजा द्वारा दास और दासियां वितरित की जाती थीं।"[6]

इस प्रकार धर्म की आड़ में अनेक पापाचार होते थे—"अपहरण और बलात्कार के साथ-साथ भ्रूण-हत्याएं भी खूब हो रही थीं, बालिकाओं का वध

---

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन पृ० ३६
२ शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ७५
३. ऊजली—ललितकुमार आजाद, पृ० २६
४. वचन का मूल्य—शत्रुघ्नलाल शुक्ल, पृ० ११३
५ पुनर्नवा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १६८
६ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० २८७

होता था, सती पर निर्मम अत्याचार किया जाता था, छुआछूत का बोलबाला था, विधवा-विवाह नही हो सकता था। शूद्र और स्त्रियो को मानवीय अधिकार प्राप्त न थे। लोग छिपकर नीच स्त्रियो से व्यभिचार करते थे। स्त्रियों का व्यापार होता था। दास खरीदे जाते थे। नर-बलि भी होती थी।"[1] बढते पापाचार द्वारा नैतिकता मिट जाती है तथा धर्म के प्रति अनास्था का जन्म होता है यथा—"भगवान धनवानो का होता है। अगर भगवान होता तो इस सडाध मे सड रही मानवी का हाहाकार और आर्तनाद सुनकर 'द्रौपदी की कथा' की पुनरावृत्ति नही कर देता?"[2] निश्चय ही अनास्था के कारण धार्मिक पतन होता है। 'सोमनाथ' का महमूद भी अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मो को हीन दृष्टि से देखता था—"अन्य धर्मावलम्बियो के लिए वह मृत्यु-दूत था। हिन्दुओं की पवित्र एव पूज्य मूर्तियो को ध्वस्त करने मे वह अपना गौरव समझता था। उसका विश्वास था कि मैं खुदा का बन्दा महमूद, खुदा के हुक्म से कुफ्र तोडता हू।"[3] 'बाण भट्ट की आत्मकथा मे हजारीप्रसाद द्विवेदी ने धर्म की व्याख्या को न्याय से जोडा है—"तुम नही समझते कि न्याय पाना मनुष्य का धर्मसिद्ध अधिकार है और उसे न पाना अधर्म है।"[4] चारु चन्द्रलेख' मे उपन्यासकार का मत है—'धर्म कोई सस्था नही है, वह मानवात्मा की पुकार है।'[5]

मानव का शोषण करना किसी भी धर्म का लक्ष्य नहीं है वरन् उसे शोषण से मुक्ति दिलाना ही धर्म की प्रथम पहुच है, यदि धर्म यह कार्य करने में असमर्थ है तो हमे ऐसे धर्म से विमुख हो जाना चाहिए। मार्क्स भी धर्म पर विश्वास नही करता था, न ही वह ईश्वर को मानता था। धर्म और ईश्वर की ओट मे मानव मानव का रक्त चूसता है, यह उसे सहनीय न था। वर्ग-सघर्ष वर्गहीन समाज की स्थापना का श्रेष्ठतम कदम है जिसमे कोई भी धार्मिक शोषण सम्भव नहीं होगा। 'विराटा की पद्मिनी' मे कुजर धर्म को न्यायसगत युद्ध मानता है। अत्याचारियों से लडाई करना तथा न्याय की प्राप्ति करना ही सच्चा धर्म है। "नवाब से लडना धर्म है। धर्म की रक्षा करना कर्तव्य है। कर्तव्य का पालन करना धर्म है।"[6] 'ऊजली' उपन्यास मे ऊजली के पिता पाहुणें को मौत से बचाने के लिए अपनी बेटी को धर्म-पालन की शिक्षा तथा आज्ञा देते हैं, जो वास्तव मे मानव-धर्म है। किन्तु समाज द्वारा उस कृत्य की अवहेलना तथा

---

१ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० ५१४
२ ठकुरानी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ४७
३. सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन, पृ० ३८५
४ बाण भट्ट की आत्मकथा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २५७
५ चारु चन्द्रलेख—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३०७
६ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २१३

तिरस्कार धर्म के प्रति अनास्था उत्पन्न कर देता है --"पगली, मेरी बात मान और एक पाहुने को मौत के मुह स बचाकर धर्म का पालन कर। पर-पुरुष के साथ शयन की बात दिमाग स निकाल दे और सोच कि तू शैय्या-भोग की नारी के रूप में नही बल्कि जीवनदायिनी के रूप म दवा बनकर कुछ कर रही है।"[1] 'दिव्या' उपन्यास म धर्म तथा ब्राह्मण-वर्ग का उपहास उड़ाते हुए उन्हे कुक्कर की उपाधि से विभूषित किया है--'मित्र, यही तो अनोखी चाल है। कुत्ता कुत्ते को काटता है और मालिक के अन्न की रक्षा करता है। वैस ही हम राजपुरुषो की प्रसन्नता के लिए एक-दूसरे का हनन करते हैं। मित्र तुम्हारी कटि म भी राजपुरुष की मुद्रा का पट्टा बध जाय तो जानत हो क्या होगा ? तुम ड्योढी पर बधे कुक्कर की भाति पथ पर चलने वाले कुक्करो पर गुर्राओगे।' देखो, खाने मे स्वय उतना पुण्य नही, जितना ब्राह्मणो को खिलाने मे है, जानते हो क्यो ? ब्राह्मण देवता के कुक्कर हैं।'[2] 'सिंह सेनापति' उपन्यास म राजाओ का धर्म तो पर-धन तथा पर-नारी का अपहरण-मात्र ही बताया है। अत धर्म को नारी व धन के शोषण का मार्ग बताया है जो कि त्याज्य है-- 'राजा जुल्म करते हैं, परधन, परदारा का अपहरण उनका धर्म-सा है।'[3] धर्म के नाम पर स्त्रिया अपहृत हो जाती थी-- 'ब्राह्मणो की विधवाए जिन्हें पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था, यहा अत्यन्त धार्मिक बनकर आती थी और साधुओ स दिव्य गर्भ धारण करके या तो उन्हीं के साथ चली जाती थी या फिर बालक को जन्म देकर गगास्नान करके पवित्र होकर वज्रयानियो म जाकर फिर साधना करती थी।"[4]

धार्मिक पतन के साथ-साथ नैतिक पतन का चित्रण भी आलोच्य उपन्यासो मे किया गया है। 'पुनर्नवा' उपन्यास म धर्म को महाकाल का रूप माना है। 'चन्द्रमौलि' धर्म तथा धर्म के विधि विधान पर विश्वास नही करते। वे कहते हैं कि धर्म के दो छोर हैं--"एक तरफ देखो, स्पर्धित क्रूरता और उन्मत्तता का निर्लज्ज हुंकार सब कुछ को उजाडकर, रौंदकर ध्वस्त करने पर तुला है, दूसरी ओर भीरुता और निष्क्रियता का दुविधाभरा भीरु पद सचार जो चुपचाप आत्म-समर्पण कर रहा है। इस ओर लज्जा नही तो उस ओर दृप्त जिजीविषा का कोई चिह्न नही।"[5] धर्म को केवल धर्म ही माना जाय, इसके आधार पर शोषण

---

१ कजली --ललितकुमार आजाद, पृ० २
२ दिव्या--यशपाल पृ० ५५
३. वही पृ० ५५
४ सिंह सेनापति--राहुल साकृत्यायन, पृ० १०१
५ चीवर--डॉ० रागेय राघव, पृ० १४८
६ पुनर्नवा--हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० २६६

दुराचार तथा कुरीतियो का प्रसार-प्रचार न किया जाय। 'अमृत पुत्र' उपन्यास मे कुमारदेव कहते है—"धर्म तो मनुष्य के मन की उच्चतम, पवित्रतम भावना का ही दूसरा नाम है। उसमे क्या शैवमत और क्या जैन धर्म ? किसी भी नाम से पुकारो, किन्ही भी क्रियाओ द्वारा मन की इस स्थिति तक पहुचने का प्रयत्न करो, धर्म का वास्तविक रूप तो एक ही है। जिस प्रकार पृथ्वीतल पर प्रवाहित होने वाली सरिताए एक ही समुद्र म विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ससार के सारे धर्म एक ही परमात्म-बिन्दु तक पहुचकर लय हो जाते है।"[1] धर्म यदि मानववादी दृष्टिकोण का सदेश देता है तो समाज म धर्म के नाम पर न तो कभी शोषण होगा तथा न ही वर्ग-सघर्ष की परिस्थितिया उत्पन्न होगी। धर्म जब धनप्राप्ति का साधन और शोषण का आधार बन जाता है, तभी सघर्ष का प्रारम्भ हो जाता है। मार्क्स ऐतिहासिक दृष्टि से समाज की प्रत्येक अवस्था मे सघर्ष की परिस्थितिया अनिवार्य मानता है। हमारे यहा पण्डे-पुजारियो का दृष्टिकोण भी पूजीवादी ही बना रहता है—"हिन्दुओ के धार्मिक भेद-भावो ने लोगो के मनो को छिन्न-भिन्न और एक-दूसरे का विरोधी बना दिया था, जिससे भीतर-ही-भीतर हिन्दू शक्ति बिखर चुकी थी।"[2] फलत सघर्ष एव धार्मिक पतन प्रारम्भ होता है।

प्रत्येक धर्म नैतिकता तथा कर्तव्य-पालन की शिक्षा देता है। मत-मतान्तर ईश्वर के द्वारा नही, मानव द्वारा रचे गये हैं। जहा निम्न-वर्ग अपनी मूलभूत आवश्यकताओ यथा—रोटी, कपडा, मकान की पूर्ति करने मे असमर्थ रहता है, वहा धार्मिक उपदेशक का सदेश है—"सासारिक इच्छाए अनन्त हैं। एक के बाद एक इच्छा जागृत होती जाती है। इसलिए ज्ञानी-जन कहते हैं कि इच्छाओ पर विजय प्राप्त करो। जीतिच्छा बन जाओ।"[3] ये उपदेशक स्वय अपनी इच्छाओ का दमन करने मे जब असमर्थ रहते है तो अन्य साधनो का उपयोग करते है—"यह वासना को दबाने मे असफल हो तो मद्य का सेवन इतना अधिक करते हैं कि दीन-दुनिया को भूल जाते है। यह खाते भी इतना है कि जितना एक साधारण मनुष्य नही खा सकता है। अत इन्हे अघोरी कहा जाता है।"[4] अपने-अपने रास्ते बनाकर उदर-पूर्ति करते हुए ये धार्मिक उपदेशक गरीबो का शोषण करते हैं। मार्क्स सभी प्रकार के शोषण से निम्न-वर्गों को मुक्त कराना चाहता है। फलत जिस-जिस आधार पर समाज मे इनका शोषण होता है, वह

---

१ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ८६-६०
२ सोना और खून (भाग १) आचार्य चतुरसेन, पृ० १६०
३. शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ० १०४
४. जय जगल घर बादशाह—धर्मेश शर्मा, पृ० ७७

नहीं चाहते थे वरन् दूसरों की अधिकृत भूमि छीनना चाहते थे।"[1] युद्ध भी हिंसक प्रवृत्ति है। अधिकार की लालसा एवं लटमार के लिए ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर युद्ध निरन्तर होते रहे हैं। ये युद्ध प्रतिशोध की भावना फैलाते हैं तथा मानव को मानवता के शोषण-हेतु नृशंस बना देते हैं—' महाराज, यह प्रतिशोध की भावना का ही फल है। एक-एक घर जलाया गया, रौंदा गया, स्त्रियों की लज्जा लूटी गई। हमारे सैकड़ों कुमार तलवार के घाट उतार दिये गये। हमारी स्त्रियां शाकम्भरी नरेश के अन्तःपुर में नीच कार्य करने को बाध्य की गईं। हम तो लुट गये महाराज।'[2] इतने शोषण के उपरान्त भी शत्रु की सेनाओं को मैदान से खदेड़ दिया गया। 'वन्दिता' उपन्यास में साम्राज्यवादी भावना को प्रश्रय देते हुए भी जनमानस उसके प्रति विद्रोही भावनाएं रखता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में लेखक ने अपना दृष्टिकोण इस प्रकार प्रस्तुत किया है— 'मैं इस नीति पर विश्वास नहीं करता। मेरा मत है कि साम्राज्य की रक्षा के लिए विजितों को साधनहीन और पंगु बनाये रखना चाहिए। उनका इतना शोषण करना चाहिए कि वे निःस्व बन जायें। साम्राज्य का निर्माण विजितों के शवों पर होता है।'[3]

'सोना और खून' उपन्यास में सोना और खून का अर्थ है पूंजी और युद्ध। युद्ध को पूंजीपतियों एवं श्रमिकों की टकराहट का परिणाम बताया गया है— "अब उनके आर्थिक स्वार्थ परस्पर टकराने लगे, जिसने एक नये संघर्ष का रूप धारण कर लिया और पूंजीवादी देशों में लोग, श्रमिक और पूंजीपति इन दो दलों में विभक्त हो गये। इस संघर्ष को दूर करने में इन शक्तिशाली राष्ट्रों ने सुदूर पूर्व के पिछड़े हुए राष्ट्रों पर अधिकार कर, उन्हें कच्चे माल का उत्पादक और पक्के माल का ग्राहक बना लिया। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष उठ खड़े हुए।"[4] "इस युद्ध में दो विरोधी राष्ट्रों के गुट परस्पर टकराए। एक वह गुट था जिसके पास साम्राज्य और धन था। दूसरा वह, जो इनसे कुछ छीनना चाहता था। युद्ध का अन्त साम्राज्यों के पक्ष में हुआ परन्तु साम्राज्य-सत्ता डगमगा गई। रूस में सर्वथा नवीन लाल क्रान्ति हुई।"[5] "संसार के देश आर्थिक राष्ट्रवाद की राह पर दौड़कर युद्धस्थली पर एक होने जा रहे थे। घटनाएं अटल भाग्य की भांति संसार को उधर ही धकेले जा रही थीं, जहां सोने के ढेरों के महाकुण्ड बनाए गए थे जिनमें मनुष्य का ताजा खून भरा जाने वाला था। और अन्त में वे

---

१. वय रक्षाम —आचार्य चतुरसेन, पृ० ३४६-३५०
२. चारु चन्द्रलेख—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३२०
३. वन्दिता—प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पृ० १२२
४. सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० ८
५. वही, पृ० १०

सोने के घेरे के बने हुए महाकुण्ड बारह करोड मनुष्यो के रक्त से भरे गये जिनमे हिटलर और मुसोलिनी डूब मरे।' 'अग्रेजो द्वारा किए गये भयकर अत्याचारो के खिलाफ एक रोषाग्नि सर्वसाधारण के मन मे सुलग रही थी। फलत जनता मे अनेक शत्रु उनके खिलाफ खडे हो रहे थे—' पूना मे इन दिनो वडी भारी सरगर्मी थी। मराठो की हथियारबन्द टुकडिया जत्थाबन्द बाजारो और गली-कूचो मे चक्कर काट रही थी। वे अग्रेजो के विरुद्ध जोर-जोर के नारे लगा रही थी।"[2]

'ठकुराणी' उपन्यास मे अमीरो द्वारा किए गए अत्याचारो के फलस्वरूप निम्न वर्ग मे उत्पन्न सघर्ष की स्थितियो का अकन किया गया है—"भवरसिंह की एक छोटी रानी थी। वह अत्यन्त निर्दयी प्रकृति की थी। बात-बात मे अपने नौकर-चाकरो को पिटवा देती थी। सारे गढ मे उसका घोर अ तक था। एक दिन की बात है—मेरी बहू उस झरोखे के नीचे झाड़ू निकाल रही थी''' तभी उसकी नजर मेरी पत्नी पर पडी। बस फिर क्या था, उसने बन्दूक तानकर उसी समय उसे निशाना बना दिया।"[3] 'वैशाली की नगरवधू मे युद्ध का विवेचन हुआ है। वस्तुत विरोधी शक्तियो के पारस्परिक वैमनस्य के कारण ही युद्ध होते हैं—' ये सब मजे हुए योद्धा हैं। उनमे कुछ राजमार्ग पर आते-आते राजस्व, अन्न को और दूसरी युद्धोपयोगी वस्तुओं को लूट लेते हैं।"[4] 'गढ-कुण्डार' उपन्यास मे "बुन्देलो और खगारो के पारस्परिक मानापमान के कारण युद्ध का और खगारो की विनाश-लीला का वर्णन है।"[5] मुसाहिबजू' एक छोटा-सा उपन्यास है जिसका सम्बन्ध दतिया राज्य से है, जब भारत मे अग्रेजी सरकार के पैर जमने लगे थे। मुगल साम्राज्य का पतन हो रहा था। मराठो की शक्ति अवश्य बढी हुई थी, परन्तु वैमनस्य की भावना उनम भी थी।"[6] 'झासी की रानी' उपन्यास मे शोषण एव दासता स मुक्ति का प्रयास ही युद्ध का एकमात्र कारण है—' युद्ध वास्तव मे है किस निमित्त ? रानी मुस्कराकर बोली, अपने जीवन और धर्म की रक्षा के लिए अपनी सस्कृति और अपनी कला बचाने के लिए। नही तो युद्ध व्यर्थ का रक्तपात ही है। यह खेल जल्दी हो जाए और फिर उस खेल को ऐसा खेलो कि अग्रेजो के छक्के छूट जायें और यह देश उनकी

---

१ सोना और खून (भाग १)—पृ० १३
२ वही, पृ० १३७
३ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ४२
४. वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन पृ० ५१५
५ वृन्दावनलाल वर्मा—आचार्य बटुक, पृ० ७०
६. वही, पृ० ७६

फांस से मुक्त हो जाय।"[1] इसी उपन्यास में सामाजिक स्थिति का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने कहा है—"समाज का संतुलन यथेष्ट नहीं था—असमानता, विषमता स्पष्ट थी। परन्तु आर्थिक शृंखलाओं की कड़ियां मजबूती के साथ जुड़ी हुई थी। धन एक जगह इकट्ठा होकर बंट-बंट जाता था। एक-एक आश्रय पर शत-शत आश्रित टंगे हुए, लिप्त और संलग्न थे। आश्रय और आश्रयदाता सब क्रियाशील।"[2] शोषण की भीषणता ने वर्गगत चेतना को उजागर किया है। यह चेतना ही वर्ग-संघर्ष या क्रान्ति के रूप में उभरकर सामने आयी है—"हिन्दुस्तान में होने वाली क्रान्ति खूनी क्रान्ति जरूर थी, परन्तु उस खूनी क्रान्ति के गर्भ में मजुलता और पावनता गड़ी हुई थी। इसलिए सन् १८५७ की क्रान्ति का यह प्रतिबिम्ब चुना गया। क्रान्ति करेंगे—मानवीयता की रक्षा के लिए, क्रान्ति होगी—मानवीयता को लिए हुए।"[3] और हिन्दुस्तान की सेना ने कार्य-वाही आरम्भ कर दी—"सेना ने कानपुर में क्रान्ति का आरम्भ कर दिया। सवेरे खजाना और शस्त्रागार क्रान्तिकारियों के हाथ में आ गये और नाना को राजा घोषित कर दिया गया।"[4] 'मृगनयनी' उपन्यास भी इसी प्रकार के शोषण की भूमिका को प्रस्तुत करता है। राजा-महाराजा अपने रनिवास में नाच-तमाशे तथा ऐशो-आराम में मग्न रहते, अफीम की पीनक में डूबे रहते। मध्यस्थ लोग राजा से प्रजा को मिलने नहीं देते तथा मनमाना शोषण करते थे—"खेती-बाड़ी करने वाले कृषकों पर अमलदार मनमाने अत्याचार करते और लूटते थे। सेना की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। सिपाहियों को छ-छ मास का वेतन नहीं मिलता था।"[5] 'प्रभावती' उपन्यास की यमुना अपने देश और जाति की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझती है। वह प्रभावती से मिलकर सैन्य-संग्रह कर लालगढ़ की रक्षा करने में सफल होती है—"वह मध्ययुगीन रूढ़ि-वादिता, उत्पीडन और दासता के दुष्परिणामों से भी परिचित है। वह यह भी जानती है कि राजकुलों की आपसी स्पर्द्धा और बौद्ध एवं वर्णाश्रम धर्मों की कलह देश को छिन्न-भिन्न कर देगी।"[6] अतः देश के प्रति सच्ची भावनाएं अर्पित करने की लालसा रखते हुए कहती है—"जिससे समस्त जाति को प्रीति हो, शक्ति पाये, वह दाक्षाणी। हमें प्रजा की सेवा के लिए अपना सर्वस्व दे देना होगा।"[7] ऐसा

---

१ झांसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० ३३८
२ वही, पृ० ५
३. वही, पृ० २५१
४. वही, पृ० २५३
५ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० १३१
६. हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण—डॉ० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ४०१
७ प्रभावती—निराला, पृ० ६४

प्रतीत होता है कि जिस प्रकार प्रसाद सांस्कृतिक गौरव के प्रतिष्ठापक दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार निराला रूढ़ियों के विद्रोह में संघर्ष का चित्र खींचते हैं। निराला सच्चे अर्थों में वर्ग-संघर्ष की सजीव भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

यशपाल जी ने द्वितीय महायुद्ध की प्रतिक्रियाओं का मार्क्सवादी विश्लेषण करते हुए 'दिव्या' उपन्यास की संरचना की है। दिव्या का प्राचीर—"दास-दासियों से सेवित सम्पन्न प्रासाद विद्या और संस्कृति का केन्द्र था।"[1] दिव्या का सम्पूर्ण जीवन संघर्षयुक्त दिखाकर उपन्यासकार वर्गगत चेतना प्रदान करता है। 'इरावती' के समान 'जय वासुदेव' उपन्यास में भी वर्णाश्रम धर्म और बौद्ध धर्म की टकराहट का चित्रण किया गया है। नारी की दशा अत्यन्त दीन-हीन बताई जाती है। व पुरुष की भोग-वासना का लक्ष्य बनकर जीवनभर सुख से वंचित रहती हैं। या तो वे वेश्या बन जाती हैं अथवा चुप रह शोषण को सहन करती हैं। इस उपन्यास की नारियों में वर्ग-चेतना होते हुए भी वे संघर्ष नहीं करती हैं। 'मधुर स्वप्न' उपन्यास के मज्दक की विचारधारा साम्यवादी है—'कवात् ने मज्दक के शक्तिशाली व्यक्तित्व से प्रभावित होकर समाज में भेद भाव को दूर करने के लिए अनेक नियमों को संचालित किया, जिनमें एक सम्मिलित पत्नी का नियम था, जिसके आधार पर जनता का विद्रोह इतना उग्र हो उठा कि कवात् को राजसिंहासन से वंचित होना पड़ा।"[2] "'मधुर स्वप्न' मानवता का मधुर स्वप्न है जिसमें सामन्ती शासन का वैभव-विलास, धर्माचार्यों की अनीति तथा दुराचार और दीन-दुखियों के चीत्कार चित्रित किए गए हैं।'[3]

वृन्दावनलाल वर्मा ने इतिहास की वर्तमान स्थिति को साधन बनाकर संघर्ष का विवेचन किया है—"उनकी दृष्टि राष्ट्र के पुनर्निर्माण पर रही है। भारत के पतन के मूल कारण, समाज को उन्होंने क्या ऐतिहासिक और क्या सामाजिक सभी उपन्यासों में अपनी प्रयोगशाला बनाया है।"[4] 'विराटा की पद्मिनी' में युद्धों से पूर्व—युद्धों की तैयारी, युद्ध की प्रक्रिया तथा उनके दाव-पेचों का यथार्थ चित्रण करते हुए साम्प्रदायिक वैमनस्य को उभारा गया है। यह विद्रोही पुकार अन्त में वर्गगत संघर्ष का रूप ग्रहण करती है। आचार्य चतुरसेन ने 'लाल पानी' उपन्यास में काठियावाड़ के कच्छ प्रान्त के दो स्वतन्त्र राजाओं के पारस्परिक संघर्ष का विवेचन किया है—"यह उपन्यास सामन्ती युग के रक्त-

---

१. दिव्या—यशपाल, पृ० २०
२ मधुर स्वप्न—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३१३ ३१५
३ हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन, पृ० ३७२
४ साहित्य संदेश (ऐतिहासिक उपन्यास विशेषांक)—पृ० २६५

भरे दिनों की एक रोमांचकारी सत्य ऐतिहासिक घटना पर आधारित है।''[1] संघर्ष की स्थितियों का अंकन करते हुए उन्होंने 'सह्याद्रि की चट्टानें' उपन्यास में जनसाधारण की विषम आर्थिक स्थिति की विवेचना की है—'औरंगजेब के खजाने का एक बहुत बड़ा भाग युद्धों में व्यय हो रहा था। उसकी धार्मिक कट्टरता के फलस्वरूप हिन्दुओं की दशा और भी दयनीय हो गई थी। हिन्दुओं पर जजिया कर लगा दिया। जजिया का बोझ पड़ने से हिन्दू व्यापारी शहरों को छोड़कर भागने लगे। व्यापारियों के भाग जाने से फौजों को अन्न मिलना भी कठिन हो गया था।''[2]

हिन्दू-मुसलमानों में धार्मिक विद्वेष की स्थितियां भी संघर्ष को जन्म देती हैं—"देश की आर्थिक स्थिति भी उत्तम नहीं थी। प्रजा पिस रही थी, किन्तु कुछ लोग जनता को लूटकर अपना घर भर रहे थे। बड़े-बड़े धनी प्रजा पर मनमाना अत्याचार करके रुपया बटोरते और अंग्रेजों की छत्रछाया में कलकत्ते में आ बसते थे। छोटे नगर टूटने व बड़े नगर बसने लगे। विदेशी वस्तुओं के प्रचार के कारण देश की निर्धनता बढ़ती जा रही थी।''[3] अंग्रेज सब प्रकार से भारतीयों की मानवीयता को खरीद रहे थे— 'देश में विद्रोह की भावनाएं व्याप्त हो चुकी थीं। ६ अगस्त सन् १६४२ से आंदोलन आरम्भ हुआ। इसी दिन गांधी जी सहित सब चोटी के नेता जेलों में डाल दिए गये, किन्तु तो भी यह आन्दोलन नहीं रुका। लगभग ८ करोड़ व्यक्तियों ने खुले रूप से इस विद्रोह में भाग लिया। यह विद्रोह गोलियों की बौछारों के साये में खड़ा हुआ। एक हजार से ऊपर जगहों में गोली चली। विद्यार्थियों ने लाखों की संख्या में इस आन्दोलन में सहयोग दिया।'[4] 'सोना और खून' उपन्यास में यह बताया गया है कि सन् १८६० में अकाल की स्थिति की घोषणा के कारण भी संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई—"धनी-निर्धन सब की एक ही दशा थी। धनियों के घर में रुपये और मोहरें थीं, परन्तु अन्न नहीं। कलकत्ता में अंग्रेजों ने बहुत-सा चावल एकत्र कर रखा है, यह सुनकर अन्न की आशा में पुनिया, दीनाजपुर, बांकुड़ा, वर्द्धमान आदि नगरों के ठठ-के-ठठ लोग कलकत्ता की ओर चले आ रहे थे। कुलीन गृहस्थों की कुलबालाएं आंचल में अशर्फियां और स्वर्णाभरण बांधे बच्चों को सम्भालती गिरती-पड़ती कलकत्ता की ओर जा रही थीं—एक मुट्ठी अन्न मोल लेने की प्रतारणा में। दरिद्रों का तो पार न था। इनमें बहुत राह में भूखी-

---

१ आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य—डॉ० शुभकार कपूर, पृ० २०८
२ सह्याद्रि की चट्टानें—आचार्य चतुरसेन, पृ० १४४
३ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डॉ० शुभकार कपूर, पृ० ३६५
४. धर्मपुत्र—आचार्य चतुरसेन, पृ० ११६-११८

प्यासी दम तोड देती थी।'[1] अंग्रेजो की शोषण नीति ने बहुत तहलका मचा रखा था। भारत मे कम्पनी सरकार के शोषण के कारण महाराष्ट्र मैसूर आदि राज्यो के नित नये संघर्ष हो रहे थे—'अब उसने और धन बटोरने को पूना और मैसूर सरकारो से लडाई छेड दी थी। उसे अधिक से अधिक रुपयो की जरूरत थी। उसने बनारस के राजा चेतसिंह पर हाथ डाला। वह साढे बाईस लाख रुपया हर साल कम्पनी को देता रहा था। अब उससे और पाँच लाख की रकम माँगी जा रही थी। वह हर साल माँगी जाने लगी। उसने दो लाख की रिश्वत भी दी, पर उसका छुटकारा न हुआ।'[2] तत्पश्चात् अमीर ने बहुत अत्याचार किए "अमीरो के मकान जला डाले, उनकी सम्पत्ति लूट ली गई। जागीरप्रथा का खात्मा करने की घोषणा की गई।"[3] इस प्रकार आचार्य चतुरसेन ने शोषण, संघर्ष, युद्ध और शान्ति की परिस्थितियो की विवेचना करते हुए आन्दोलनकारी प्रवृत्तियो का चित्रण किया है।

वस्तुत आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ वर्गगत चेतना का प्रतीक हैं। ये प्रवृत्तियाँ शोषण से मुक्ति पाने का क्रियात्मक पहलू हैं। युद्ध या संघर्ष सभी विरोधात्मक परिस्थितियो मे दो विरोधी शक्तियो के परस्पर टकराव से क्रियान्वित होते हैं। यह विरोध वैचारिक स्तर पर भी जन्म लेता है और सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर भी। मूल्यगत विघटन तथा मूल्य परिष्करण की स्थिति भी संघर्ष को उभारती है। जब एक वर्ग अपने को श्रेष्ठ समझकर दूसरे वर्ग पर दबाव डालने का प्रयास करता है तो समाज म ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनम शोषण एव अत्याचारों की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। शोषित वर्ग उस प्रक्रिया मे आक्रान्त हो कभी बच निकलने का मार्ग ढूँढता है और कभी वर्ग-संगठन के माध्यम से संघर्ष प्रारम्भ कर देता है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारो ने बडे कौशल से इन समस्त स्थितियो को अपनी कृतियो मे उजागर किया है।

साम्प्रदायिक वैमनस्य

साम्प्रदायिक वैमनस्य ने शोषण को अत्यधिक बढावा दिया। साम्प्रदायिक वैमनस्य धार्मिक रूढिवाद के कारण फैला। 'सोना और खून' मे औरंगजेब ने इसी आधार पर अनेक अत्याचार किये 'सन् १६६६ मे उसने काशी के प्रसिद्ध विश्वनाथ के मन्दिर को गिरवाकर उस पर मस्जिद बनवा दी और उद्धव नाम के एक रमते वैरागी को हवालात म बन्द कर दिया। मथुरा का सबसे

---

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० ११०
२ वही, पृ० २१३
३. वही, पृ० २१६

बड़ा केशवराय का मन्दिर जिसे बुन्देले राजा नाहरसिंह देवजू ने तैंतीस लाख रुपयों की लागत से बनवाया था, जनवरी सन् १६७० में जमींदोज कर दिया और उस जगह भी एक मस्जिद बनवा दी।"[1] 'शाह और शिल्पी' उपन्यास में ऋषिवर से विमल प्रश्न करता है—क्या हिंसा से धर्म की रक्षा हो सकेगी? "केवल पाप के अतिरिक्त जिनके जीवन में कोई और भाव ही नहीं, ऐसे ये मलेच्छ यवन हमारी धर्म-भूमि भारत को अपने पैशाचिक पावों तले रौंदते चले जा रहे हैं। पवित्र देव-मन्दिरों के स्थान को धूल में मिलाकर ये एक विशाल श्मशान की रचना कर रहे हैं। बच्चों और बूढ़ों को निर्दयता से मौत के घाट उतार रहे हैं, भारतीय नारी के गौरव को भ्रष्ट कर रहे हैं, हमारे धर्म और संस्कृति को मिट्टी में मिला रहे हैं।'[2] साम्प्रदायिक वैमनस्य की खाई को पाटने के दृष्टिकोण से अमृतलाल नागर अपने उपन्यास 'एकदा नैमिषारण्ये' में कहा है—"ये यवन जिन्हें तुम मलेच्छ कहते हो, मूलतः आर्य ही हैं।"[3]

साम्प्रदायिकता वैसे तो बहुत पुरानी बीमारी है, किन्तु भारतीय वातावरण में साम्प्रदायिक दंगे ब्रिटिश शासन-काल में तथा स्वाधीनता के पश्चात् देखे गये—"साम्प्रदायिकता का यह उग्र रूप प्रमुखतः ब्रिटिश शासन की नीतियों का ही परिणाम था। ब्रिटिश शासन की सामान्य नीति फूट डालो और राज करो की नीति थी। विशेषतः कभी हिन्दुओं और कभी मुसलमानों को कम या ज्यादा महत्त्व देकर हमेशा एक-दूसरे के खिलाफ बनाये रखा। उनमें साम्प्रदायिक चुनाव-क्षेत्रों और सम्प्रदाय के आधार पर प्रतिनिधित्व की माँग को उकसाया और उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। मार्ले-मिन्टो सुधारों के अन्तर्गत मताधिकारी होने के लिए एक गैर मुस्लिम की कम से कम तीन लाख रुपया वार्षिक आय होनी चाहिए, जबकि एक मुस्लिम के लिए तीन हजार वार्षिक आय मताधिकारी होने के लिए काफी थी।'[4] 'ब्रिटिश सरकार की यह भी पूरी कोशिश रही कि वर्ग-संघर्ष को साम्प्रदायिक संघर्ष में बदलकर उसे दिशाहीन कर दिया जाय। कई बार ऐसा हुआ कि हिन्दू मजदूरों की हड़ताल तोड़ने के लिए मुसलमान मजदूर लाये गए ताकि मजदूर पूँजीपति संघर्ष को हिन्दू मुस्लिम संघर्ष में बदला जा सके।'[5] सन् १९४७ आते आते अंग्रेजों ने भारत छोड़ना स्वीकार कर लिया किन्तु भारत के दो टुकड़े कर गये। समस्त देश लूटमार की भयंकर लपटों से आक्रान्त हो रहा था। 'धर्मपुत्र' में इस भयंकर ज्वाला की एक

---

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० ११२
२ शाह और शिल्पी—शान्त भारिल्ल, पृ० ११
३ एकदा नैमिषारण्ये—अमृतलाल नागर पृ० १०७
४ भारत वर्तमान और भावी—रजनी पामदत्त, पृ० २४५
५ हिंदी की प्रगतिशील कविता—डा० रणजीत, पृ० १८३

झलक देखने को प्राप्त होती है। 'झाँसी की रानी' उपन्यास म साम्प्रदायिक दगे का बिन्दु दुर्गाबाई थी—' दुर्गाबाई सुन्नी मुसलमान थी। वह भी ताजियादारी करती थी और नाचना उसका पेशा था। मन्दिरो मे उसके नृत्य की माँग थी। वह मन्दिरों मे जाने लगी। कुछ मुसलमानो को असगत लगा। चर्चा शुरू हो गई। इस चर्चा मे पीरअली ने प्रधान भाग लिया।[1]

'शतरज के मोहरे' उपन्यास म भी साम्प्रदायिक दगो का उल्लेख किया गया है। हिन्दू-मुसलमानो की पारस्परिक धार्मिक घृणा इस उपन्यास मे स्पष्ट उभरकर सामने आती है— हिन्दू को मुसलमान बनाया जा सकता था पर मुसलमान को हिन्दू बनाना घोरत्तर अपराध था।"[2] इन प्रचलित परम्पराओं ने वर्गगत चेतना का उदय किया तथा साम्प्रदायिक सघर्ष को वर्गगत सघर्ष मे परिणित किया। हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष को बढावा देन वाल जमीदार वर्ग के लोग थे—"आसपास के अनेक जमीदार लुटेरे बन गये थे और व्यक्तिगत कारणों से किसी को सताने मे उन्हे इतना रस आने लगा था कि अपनी मनोवृत्तियो को लेकर ये हिन्दू-मुसलमान जमीदार प्राय निर्मम और अति क्रूर हो गये थे। एक मुसलमान जमीदार ने अपने पडोस के सैयदो के कस्बे पर चढाई की, तीन सैयद मालिकों को मार डाला, खूब लूटपाट मचायी, मनमानी की। कोई उसका कुछ न बिगाड सका।"[3] आलिंगन' उपन्यास मे उमादेवी ने शिक्षा, धर्म, विवाह, राज्यारोहण, युद्ध आदि स सम्बद्ध तत्कालीन वातावरण का चित्रण करते हुए साम्प्रदायिक सघर्ष को जाति तथा धर्म पर आधारित माना है। प्रारम्भ मे यह सघर्ष जातिवाद एव धार्मिक मान्यताओ पर आधारित था किन्तु बाद मे यह भी वर्गगत सघर्ष म बदल गया। 'सोना और खून' म नवाब जबर्दस्तखाँ एक फितरती जालिम बताया गया है। वह हिन्दुओं का कट्टर विरोधी तथा मुसलमानो का पक्षधर था। उसके अधिकारी मालगुजारी वसूल करते समय प्रजा पर अनेक जुल्म ढाते थे—"यदि कभी कोई शिकायत रियाया पर जुल्म की पहुँची भी तो जमीदार चट स जवाब दत थे कि हुजूर बडे शोरे पुश्त आसामी हैं। लगान न निचोडा जायगा तो हम मालगुजारी कहाँ से अदा करेंगे।" इस बात का जवाब न थानेदार पर था, न तहसीलदार पर, न मजिस्ट्रेट कलक्टर साहब बहादुर पर। बस, नवाब जबर्दस्तखाँ जैस जालिम रईस दिन दहाडे रियाया पर जुल्म करते और कभी-कभी तो कत्ल भी कर डालते थे।"[4] इस प्रकार साम्प्रदायिक वैमनस्य की

---

१ झाँसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० २११

२ शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० ३२६

३ शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० २०१ २०२

४ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० २५१

भावना ने वर्गगत सघर्ष की भूमिका ही प्रस्तुत नही की अपितु अत्यन्त हिंसक रूप में उभारा है।

आर्थिक शोषण

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे बताया गया है कि राजाओ, सामन्तो तथा ठाकुरो की एय्याशी वृत्ति के कारण ही गरीबो का आर्थिक शोषण हुआ है। 'सोना और खून' उपन्यास मे शोषक-वर्ग के घोर विलासी जीवन का चित्रण किया गया है—"इसी लूई ने न जाने कितनी सुन्दर कोमलागियो के साथ विलास किया था। प्रजा भूखो मर रही थी और वह अपनी कामलिप्सा मे उनकी कमाई के करोडो रुपये पानी की भाँति बहा रहा था।"[1] 'जय यौधेय' उपन्यास मे बताया गया है कि श्याम वर्णों का शोषण गौर वर्णों के द्वारा हुआ—"गौर वर्ण दूसरे का धन छीनते हैं, दूसरे का जगल छीनते हैं दूसरे के स्त्री-बच्चो को पशु बनाने के लिए पकड ले जाते है। वह झूठ बोलते हैं, देवताओ का भय नही खाते।"[2] जमीदार की बेटी के विवाह के अवसर पर यह परम्परा प्रचलित थी कि आधा धन उनकी प्रजा से एकत्रित किया जाय। यह शोषण धर्म के नाम पर होता था—"मेरे पास आजकल रुपये नही हैं। मैं चाहता हूँ आप मुझसे तीस रुपया ले लें। वैसे आपकी बेटी मेरी बहिन के समान है, पर मजबूरी मेरे सामने है।"[3] "ठाकुर ने अपनी बेटी के विवाह के लिए अत्यन्त अनुचित तरीके से गाँव वालो से रुपये वसूल किये। इस वसूली मे बेचारे किसान कर्जदार हो गये और दो-चार को अपने खेत गिरवी रखने पडे। एक बार कई किसान ठाकुर के पास फरियाद लेकर गये भी, पर उससे कोई लाभ नही हुआ। उल्टा ठाकुर ने उन्हें नमकहराम और गद्दार कहा।"[4] जमींदारो तथा ठाकुरो द्वारा आर्थिक शोषण भय, पीडा तथा प्रताडना के बल पर किया जाता था। इस शोषण की पराकाष्ठा ने वर्गगत सघर्ष को जन्म दिया।

जमींदार अकाल घोषित हो जाने पर भी किसानो का लगान माफ नही करते—"हम किसानो का लगान नही छोड सकते। ऐसा करेंगे तो हम खायेंगे क्या ?" अन्त मे किसानो की दशा इतनी खराब हो गई कि वे अपनी सौ-सौ रुपयो की गायें-भैंसें एक-एक रुपये मे बेचने लगे।[5] 'अमृत पुत्र' उपन्यास मे वस्तुपाल सेठ इस लूट का विरोध करते हैं—"सो मैं जानता हूँ। गाँव-गाँव मे इस

---

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० २१८
२ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन, पृ० १६५
३ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ० ५२-५३
४ वही, पृ० १२१
५ वही, पृ० ८६

वहाने को लेकर जो लूट आप लोगो ने मचाई है वह मुझे मालूम है। गरीब प्रजा से जोर-जबरदस्ती आप द्रव्य ले रहे हैं। लेकिन यदि कोई न देना चाहे तो ?"[1] सिद्दीक सेठ आर्थिक शोषण को बढावा देने मे विश्वास करते हैं—"व्यापारी को अपने व्यापार से मतलब, सेठ ! व्यापार हो गया तो सब ठीक।'[2] 'सोना और खून' उपन्यास मे आर्थिक शोषण का आधार कर-पद्धति को बनाया गया है—"सन् १६७६ मे उसने हिन्दुओ पर जजिया लगाया। जो गरीब हिन्दू इस कर को उठा लेने के लिए औरगजेब से प्रार्थना करने उनकी राह रोके खडे थे, उन्हे हाथियो से कुचलवा दिया गया।'[3] "किसानो और मजदूरो की दशा बदतर थी। किसान भूखे और नगे थे। फिर भी इनके ऊपर टैक्सो का बोझा था।"[4] किसानो को अपनी उपज का आधा टैक्स देना पडता था परन्तु बडे-बडे जमींदार टैक्स से मुक्त थे।"[5] यही स्थिति वर्गगत सघर्ष को जन्म देती है। पूंजीवादी मनोवृत्ति के कारण पूँजी का सग्रह मुट्ठीभर ठाकुरो-जमीदारो के पास हो जाता है तथा वे अर्थ के बल पर निम्न वर्गो का भरपूर शोषण करते हुए मनमाना अत्याचार करते हैं। डा० सुषमा धवन के शब्दो मे—"इस वर्गमूलक समाज में इतरजनो के जीवन का मूल्य अभिजात जनो के सुख तथा वैभव का उपकरण मात्र बनने मे था। इस तरह शोषक तथा शोषित वर्गो की समस्याओ के उद्घाटन द्वारा यशपाल ने इतिहास को मार्क्स की आँखो से देखने तथा समाजवादी चित्रकार की तूली से अंकित करने का उपक्रम किया है।"[6] आर्थिक शोषण के कारण अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं— 'प्रजा पर घोर अत्याचार करके आगामीर और रामदयाल को राज-कर वसूल करना पडा था, पर साल खत्म होने से पहले ही वह रुपया भी खत्म हो गया था। अत्याचार से तग आकर बहुत-सी प्रजा अपने गाँव-खेत छोडकर नेपाल की तराई मे जा बसी थी।"[7] 'वन्दिता' उपन्यास मे श्रीवास्तव कहते हैं कि इन फिरगियो ने भी भारत का भरपूर आर्थिक शोषण किया है—"फिरगियो ने कभी अपने गाँठ के पैसो से भारत मे युद्ध नही किए। वे सदैव मियाँ की जूती मियाँ का सिर' वाली कहावत अक्षरश चरितार्थ करते थे। सबसे मोटी और सबसे तायदाद मे ज्यादा

---

१ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ११०
२ वही, पृ० २०७
३ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १३३
४ वही पृ० १२८
५ वही, पृ० १२७
६ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३८२
७ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० २०५

अडा देने वाली मुर्गी थी अवध की नवाबी।"[1] धन का प्रलोभन देकर उच्च वर्ग के लोग अपने गुलामो से अकृत्य भी करवाते थे। 'शाह और शिल्पी' उपन्यास म विमलदेव का मरवाने के लिए षड्यत्र रचा जाता है—'थोड़े से धन के लालच म उन षड्यत्रकारियो के हाथो मे बिका हुआ गुलाम मल्ल सोच रहा था कि बडे-बडे मल्ल उसके सामने टिक नही पाते तो यह वणिक विमलशाह क्या टिक सकेंगे ?'[2] 'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास मे नारी का आर्थिक आधार पर शोषण नानाविध किया गया है—'नारी को अपने सम्बन्ध म निर्णय लेने का अधिकार न था। वह पूर्णत अपने पति की सम्पत्ति मानी जाती थी। पति उसको धन के लोभ मे पर पुरुष के पास भेज सकता था।'[3] 'अमृत पुत्र' मे सग्रामसिंह के अर्थ-शोषण का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने कहा है—"मैंने गरीब किसानो और श्रमिको की बात सुनी है। व बतलाते हैं कि किस प्रकार गाँव-गाँव मे राज्य के कारिन्दे भेजकर यह सग्रामसिंह उनम एक न एक बहाने से नित्य ही धन वसूल करता है। किसी के पास खाने के लिए भी हो या नही, पहनने के लिए वस्त्र भी हो या नही किन्तु कुँवर पछेडा तो देना ही होगा—क्या यह न्याय है ? कौन इस नीति की बात कहेगा ? यह सरासर अनीति और अन्याय है और इस मैं जीवित रहने देने वाला नही हूँ।"[4] उपन्यास मे धन को सबसे बडा कुल बताया गया है। कुलीन सुन्दरी का सहवास धन उपलब्ध करा देता है—"वेश्या अपना अस्तित्व देती है और पाती है केवल द्रव्य परन्तु पराश्रिता कुलवधू अपने समर्पण के मूल्य मे दूसरे पुरुषो को पाती है।'[5] इस विलासी कृत्रिम जीवन में नारी को न तो आत्म-सतोष मिलता है न वह अपना स्वाभाविक धर्म ही पूरा कर सकती है— मैं इस जीवन से ऊब गई हूँ। अगुरु और मोती मानिक से भरी हुई देव प्रतिमा मैं बनना नही चाहती। चाहती हूँ जीवन का उष्ण स्पर्श जागृति का काँपता हुआ स्वर, एक तरह उन्माद, एक सर्वग्राही तितीक्षा। धन और ऐश्वर्य स उत्पन्न अवसाद मुझे नही चाहिए।'[6] मणिमाला के चरित्र के माध्यम से आर्थिक शोषण की विकृतिया को उभारा गया है। इस प्रकार आर्थिक शोषण वर्गगत सघर्ष का प्रमुख कारण बनता है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार

राजनीतिक भ्रष्टाचार के अन्तर्गत अनेक सामाजिक अपराध सम्मिलित हैं

---

१ वंदिता—प्रतापनारायण श्रीवास्तव पृ० १४
२ शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ८२
३ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० ६५३ ६५४
४ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल पृ० ११३
५ दिव्या—यशपाल, पृ० १४३
६ जय वासुदेव—रामरतन भटनागर, पृ० ११४

यथा—चोरबाजारी, मुनाफाखोरी, रिश्वतखोरी आदि। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में कुमार भट्ट से कहते हैं—"राजनीति भुजग से भी अधिक कुटिल है, असिधारा से भी अधिक दुर्गम है विद्युत्शिखा से भी अधिक चचल है। तुम्हारा और भट्टिनी का यहाँ तब तक रहना उचित नहीं है, जब तक कि अनुकूल अवसर न आ जाए।"[1] 'वैशाली की नगरवधू' में सेट्ठिधनियों ने "चम्पा के बहुत से सार्थवाहों की हुडियाँ मेरे आदेश से खरीद ली हैं। वैसाखी के दिन प्रभात में ही वे भुगतान माँगेंगे। मैं जानता हूँ मेरे पास राजकोष में स्वर्ण नहीं है। महाराज दधिवाहन मेरे रत्नों के मूल्य में जो स्वर्ण देंगे वह चम्पा के स्वर्ण-वणिकों से लेकर। बस वे खाली हो जायेंगे और नगरसेठ की हुडियाँ नहीं भुगता सकेंगे।"[2] फलत इस राजनीतिक कुतत्र का परिणाम उल्टा ही हुआ। राजनीतिक कुचक्रों ने वर्गगत संघर्ष की परिस्थितियों को उत्पन्न किया। 'महाकाल' उपन्यास में राज्यकोष के घोटाले का विवेचन किया गया है, जो राजनीतिक भ्रष्टाचार का ही एक अग है—"मातृगुप्त ने महासचिव से पूछा, 'राज्य भोग कोष' किस मत्री के अधीन है?" अब इस कोष को विघटित कर दिया गया। महाराज मेघवाहन और प्रवरसेन के काल में कोष चलता था। महाराज हिरण्य के काल में यह कोष समाप्त कर दिया गया था और तब से राज्य-सहायता अपने-अपने विभाग के मत्री देते हैं और उनका वितरण उनके विभाग का खर्चा समझा जाता है।'[3] 'शाह और शिल्पी' उपन्यास में राजनीतिक कुचक्रों का वर्णन हुआ है जब विमलशाह की माँ कहती है—"सोलंकी भोला है तो मेरे बेटे के प्राण लेने के लिए नहीं है। मान लिया कि आज राजा का सदेह दूर हो गया किन्तु क्या ये साँप के बच्चे उन्हें शान्त बैठने देंगे? मैं इन लोगों को तेरे पिता के समय से जानती हूँ बेटा! ये सदा ही योग्य आदमी से जलते हैं और उसके विरुद्ध षड्यत्र करते रहते है। हमें ऐसे षड्यत्रकारियों व हत्यारों के बीच नहीं रहना और नहीं करनी है ऐसे राजा की सेवा जो सच-झूठ को भी नहीं पहिचान सके।"[4] विमलशाह पर खजाने के रुपये हड़पने का आरोपण लगाया गया—"सत्य तो यह था कि विमलशाह की ओर राज्य की एक पाई भी नहीं थी। यह सारा षड्यत्र उन ईर्ष्यालु लोगों द्वारा रचा गया था जो उसको अपने मार्ग से हटा देना चाहते थे।"[5]

'जनानी ड्योढी' उपन्यास में रानी ने रमणलाल से कहा कि—"दीवान

---

१ बाण भट्ट की आत्मकथा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १२८

२· वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० १७२

३ महाकाल—गुरुदत्त, पृ० ६७

४ शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ७७

५. वही, पृ० ८८

रमणलाल ! आपने मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करके अत्यन्त ही जघन्य कार्य किया है। आपकी कृतघ्नता असह्य है। फिर मैं आपको चेतावनी देती हूँ कि मेरा यह पतन अकेले ही पतन नहीं होगा, मुझसे पहले आपका पतन होगा।"[1] 'यह कामदार लक्ष्मी का वाहन है। यह धन से इस तरह चिपका रहता है जैसे जोंक। इसने ड्योढ़ी की एक-एक औरत का शोषण किया है। यह एक रुपये से लेकर हजार रुपये तक की घूस खाता है। आयी हुई लक्ष्मी को कभी नहीं ठुकराता। तुम एक पैसा दो वह हँसकर ले लेगा। कहेगा—आयो जितरो ही चोखो।' ... फिर माथे पर बल डालकर पूछेगा—आप राजी खुशी सू देवो हो ना? तब इसके चेहरे पर बेहयाई की एक परत उभर आती है।"[2] ये बिचारी दावड़ियाँ, गोलियाँ और घाघरेवालियाँ तो सिर्फ रानियों की जूठनों पर जीवित हैं। वे खुद ऐय्याशी की जूँठन है और जूँठन ऐय्याशी को ललचाती है। ड्योढ़ियों में हुए अत्याचार तथा भ्रष्टाचार का दृश्य और कहाँ मिलेगा—'शाम हो गई, मदिरा के पात्र और सुगन्धित मसालों में बना मांस बड़ी बड़ी रानियों, वरदायततों तथा पासवानों के महलों में पहुँचाया जाने लगा। उपेक्षित दावड़ियाँ, गोलियाँ और घाघरेवालियाँ अपने अपने हिस्से की बाजरी की सूखी रोटियाँ और दाल ले रही थीं।"[3]

'जुलेटो' की यन्त्रणा को तो समस्त इतिहास जानता है—"शिकंजे की सजा का तात्पर्य अपराधी के शरीर को पीड़ा दे देकर खींचना, फैलाना और तोड़ना होता था।"[4] "वे दिन ऐसे थे जबकि स्थल पर निरन्तर खून-खराबियाँ होती रहती थीं और जल में डकैतियाँ। ऐसे काम राजनीति के अंग ही माने जाते थे।"[5] 'वयं रक्षामः' उपन्यास में भी राजनीतिक अत्याचारों का विवेचन हुआ है। अपनी रक्ष संस्कृति के प्रचार के लिए रावण ने धर्म को त्याग दिया। 'कृष्ण-यजुर्वेद' नामक ग्रन्थ में धार्मिक अनुष्ठान के अन्तर्गत शिश्नपूजन, गोवध, नर-वध, कुमारीवध को सम्मिलित कर लिया गया था—"इसके अतिरिक्त मांस भक्षण और प्राणिवध के साथ साथ मद्यपान एवं स्त्रीगमन भी विहीत कर दिया। वह जहाँ कहीं भी जाता था एक स्वर्णलिंग साथ ले जाता था, उसे बालू की वेदी पर स्थापित कर पूजन करता था। इतना ही नहीं उसने बलपूर्वक वैदिक अनुष्ठानों को आसुरी ढंग पर करने के अनेक उपाय किए—उसने सहस्रों राक्षसों को यह आदेश दिया कि जहाँ कहीं आर्यऋषि रावण-विरोधी विधि से यज्ञ कर

१ जनानी ड्योढ़ी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १५१
२ वही, पृ० ४२ ४३
३ जनानी ड्योढ़ी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ४३
४ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १५
५ वही, पृ० ६७

रहे हो वहाँ बलपूर्वक वलि, माम और मद्य की आहुति दो।"[1] उसने अपनी सस्कृति के प्रचार के लिए अनेक अत्याचार किए—' उसने राक्षसो द्वारा यज्ञ-कर्ता ऋषियो को ही मार कर बलि देना आरम्भ कर दिया। नर-भक्षण उसका और उसके अनुयायियो का व्यापार हो गया था।"[2]

रोमन साम्राज्य मे कत्लेआम का धन्धा खूब चला। सोलहवी शताब्दी मे रोमन साम्राज्य कैथोलिक और प्रोटेस्टो मे बँटा हुआ था। फिलिप द्वितीय जब नीदरलैण्ड का राजा हुआ तो उसने अनेक अत्याचार किये। नीदरलैण्ड का गवर्नर तो एक घोर निर्दयी पुरुष था। उसने "एक खूनी मजलिस स्थापित करके हजारो को जीता जला दिया या फाँसी के घाट उतार दिया। उसने नीदरलैण्ड के सारे निवासियो को ला-मजहब कहकर कत्ल करवा डाला था। इस प्रकार तीस लाख स्त्री-पुरुष कत्ल कर दिए गये थे।"[3] 'शतरज के मोहरे' उपन्यास मे अग्रेजो की लूट का चित्रण किया गया है—"गाजीउद्दीन को बादशाह बनाने के लिए कम्पनी सरकार और कुछ भी नही चाहती थी, फकत दो करोड रुपया उधार माँगती थी। लेकिन गाजीउद्दीन बच न सके। पहले उन्होने एक करोड रुपया देना मजूर किया, फिर पचास लाख और स्वीकार किया किन्तु अग्रेज दो करोड से कम लिए बिना नही माने।'[4] 'अग्रेजो को तो हडपने की हविस थी ही—इन सब बडे लुटेरो से आये दिन दबायी जाकर अवध की प्रजा हर तरह स त्रस्त हो उठी थी। रुपया लूटने के हर छोटे से छोटे मौके पर अग्रेजो की नजर रहे इस लिए एक अग्रेज रेजिडेंट भी लखनऊ मे नियुक्त कर दिया गया जो छोटे से छोटे मामलो म हस्तक्षेप करता था।'[5] वेश्यागमन उन दिनो एक फैशन-सा बन गया था।" खानगी रण्डियो की दल्लालो का बडा मान था। बाजार कीमती सामानों स पटे पडे थे, अमीरो की कोठियो और शाही महलो मे ही उनकी खपत थी इसलिए रिश्वत का बोलबाला था। रिश्वत म रुपये, जवाहरात और खूबसूरत स्त्रियों की चारो तरफ माँग थी। कुटनियाँ भले घरो की लडकियो औरतो को उडाती थीं और बेचती थी। इसलिए ठगी और लूटपाट का बोल बाला था।"[6] 'वचन का मूल्य' उपन्यास का गुलाम कादिर सचमुच म ही घोर षड्यत्रकारी था—' जल्लादों की सारी मनोवृत्तियाँ उसे उत्तराधिकार मे मिली

---

१ वर्ष रक्षाम—आचार्य चतुरसेन पृ० १६६
२ वही पृ० १६३ १६४
३ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १०३
४ शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० ८८
५ वही, पृ० ८६
६ शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० ११६

थी। वह भी ठीक अपने पिता की ही भांति बल्कि कई बातों में उससे भी अधिक राज्यलोलुप निर्दयी विश्वासघाती और षड्यन्त्री था।[1]

इस प्रकार राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं शोषण की समस्त प्रक्रियाओं का उल्लेख करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासों मे यह बताया गया है कि इस प्रकार के अत्याचार राज्यलिप्सा यौन विकृतियों तथा ऐय्याशी प्रवृत्तियों के कारण ही होते थे। पर-पीड़ा में सुख का अनुभव करना राजा महाराजा ठाकुर वर्ग का एक स्वभाव बन गया था। सुरा और सुन्दरी दो ही उनके प्रमुख विषय थे। फलतः शोषित एवं आक्रान्त वर्ग अपनी मुक्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता था। इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप संघर्ष की स्थितियां उत्पन्न हुई और वर्गगत संघर्ष हुए।

मूल्यगत संक्रमण

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही शिक्षा के प्रचार के कारण मानवीय आचार विचार रीति रिवाज और मूल्यों मान्यताओं में नए पुराने का द्वन्द्व शुरू हो गया। पुराने विश्वासों और रूढ़ियों के वातावरण में नए विचारों ने कहीं न कहीं और किसी न किसी प्रकार अपने को प्रतिष्ठित करना शुरू किया।[2] सामाजिक मूल्य हमारे जीवन के लिए इस कारण महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि यही मूल्य निश्चित करते हैं कि समाज के लिए क्या महत्त्वपूर्ण है किस वस्तु को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए तथा किनसे बचना चाहिए। दूसरे शब्दों में समाज के मूल्य ही उसके अधिमान (*Preferences*) और अस्वीकृत आचार (Rejections) होते हैं। हर समाज में बहुत से मूल्य समान रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं होते।[3] मानव का इतिहास परस्पर विरोधी तथ्यों के संघर्षों का इतिहास है। सारहीन तथा कुत्सित परम्पराओं तथा रूढ़ियों के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करते हुए उन्हें त्याग देना उचित ही है— सामाजिक परिणति की दृष्टि से मार्क्स ने निश्चय ही मानव के किन्हीं शाश्वत मूल्यों को स्वीकार नहीं किया। पर साहित्य और संस्कृति को केवल बाह्य उपलब्धियों के रूप में स्वीकार भी मार्क्स एंजिल्स और एक सीमा तक लेनिन भी साहित्य के स्थायी तत्त्व को अस्वीकार नहीं कर सके।[4] कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ मूल्य विघटित हो जाते हैं तथा कतिपय मूल्य संक्रमणावस्था के पश्चात ही नवीन रूप धारण कर लेते हैं। प्राचीन एवं नवीन मूल्यों की स्वीकारोक्ति तथा अस्वीकृति में संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जो वर्गगत संघर्ष को जन्म देती हैं।

---

१ वचन का मूल्य—प्रतापनारायण श्रीवास्तव पृ० ७६
२ हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष—गोपीनाथ श्रीवास्तव पृ० ३६
३ सामाजिक समस्याएँ और सामाजिक परिवर्तन—डा० राम आहूजा पृ० ३६
४ साहित्य नया परिप्रेक्ष्य—डा० रघुवंश पृ० १६

वैशाली गणतन्त्र के धिक्कृत कानून के कारण राज्य की सबसे सुन्दर कन्या को नगरवधू बनना पडता था। उस समय यह एक स्वीकृत सामाजिक मूल्य था, किन्तु वैशाली की नगरवधू घोषित होने पर वह कन्या कुलवधू के अधिकारो से वचित हो जाती थी। इस परम्परा का विरोध करना उस समय सभव नही था। अम्बपाली कहती है—'आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश करते हैं, वह एक बार नही—लाख बार धिक्कृत होने योग्य है।'[1] विभिन्न प्रचलित मूल्यो के कारण भी निरन्तर शोषण होता रहता है। इसी मूल्यवत्ता के प्रतिशोध मे वह—"महाराजा बिम्बसार से अपने सौन्दर्य का सौदा कर बैठी।"[2] 'महाराजा बिम्बसार इसी कारण वैशाली पर आक्रमण करते हैं।'[3] अत मूल्यो की विवेचना, शोषण के विरुद्ध एक आवश्यक प्रक्रिया बन जाती है। वर्गगत चेतना के आधार पर मूल्यो मे परिवर्तन हो सकता है। यह सघर्ष द्वारा ही हो सकता है।

'पुनर्नवा' मे डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परम्परागत प्रचलित मूल्यो मे से नारी के शील गुण का विवेचन किया है। मृणाल के हृदय मे प्रचलित मान्यताओ एव व्यावहारिक क्षेत्र मे उनके क्रियान्वन का द्वन्द्व चलता रहता है। वह वर्गगत चेतना से परिपूरित हो पिता से कहती है—"दिन-दहाडे प्रजा की सम्पत्ति लूटी जा रही है, बहू-बेटियो का शील नष्ट किया जा रहा है। आपकी यह अभागिन कन्या क्या इस समय कुछ नही कर सकती ?"[4] उसके पिता भरसक प्रयत्न करते है कि उसकी बेटी पर अनाचार की छाया न पडे। वे हतबुद्धि होकर विचार करने लगे—'ऐसी लडकियाँ इन बातो मे क्या सहायता कर सकती है ? बेटियो की शील-रक्षा का भार पुरुषो पर है। तुझे मैं कौन-सा काम दे सकता हूँ ? तू तो जो सम्भव है सब कर ही रही है। दीन-दुखियो की सेवा करना, उनके भीतर आत्मबल सचारित करना।'[5] स्पष्टत- यहाँ नारी को स्वावलबी बनाने की बात कही गयी है।

मूल्यगत परिवर्तन के कारण ही 'विराटा की पद्मिनी' का कुजर विचार करता है—"मेरा इतिहास व्यथापूर्ण है, मेरे साथ बडा अन्याय हुआ है।"[6] इसी उपन्यास की कुमुद व गोमती कहती हैं—"हम दोनों अत्याचार-पीडित स्त्रियाँ एक स्थान पर शान्ति के साथ रहना चाहती हैं, वह भी तुम्हे सहन नहीं। हमारा

१ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन पृ० २०
२. वही, पृ० २५६-२५८
३ वही, पृ० ७३१-७३४
४ पुनर्नवा—हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३८
५ वही, पृ० ३९
६ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २७६

राज्यपाट ले लिया और दोनों को एक-दूसरे से अलग करके क्या किसी एकान्त गढ़ी में हमारा सिर कटवाओगे ?"[1] इसी कारण—"अन्तिम मुगल सम्राटों के थपेड़ों ने जो भयंकर लहर भारतवर्ष में उत्पन्न कर दी थी उसने क्रान्ति उपस्थित कर दी।"[2] अनेक आक्रमणकारी जातियों के भारत में घुस आने से उनकी विचारधारा का यहाँ के निवासियों पर जो प्रभाव पड़ा, उससे अनेक नये मतों का प्रादुर्भाव हो गया था। महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने दृढ़ स्वर में कहा था कि यदि अत्याचार, शोषण अपनी पराकाष्ठा पर नहीं पहुँचते तो संभवतः पुण्य-मूर्तियों की इतनी दूर आने की आवश्यकता ही नहीं होती।"[3] स्पष्ट है कि मूल्यगत परिवर्तन समाज में नवीन क्रान्ति को जन्म देता है। क्रान्ति के द्वारा ही व्यवस्था-परिवर्तन का कार्य सम्पन्न होता है।

प्राचीन लिच्छवी-गण के राज्य में दासों का क्रय-विक्रय होता था तथा स्वामी का उन पर पूर्ण आधिपत्य होता था। ये सामन्त स्त्रियों पर मनमाना अत्याचार करते थे—"भित्तकालों ने अनेक स्त्रियों के साथ सामन्तों को इसी प्रकार बलात्कार करते देखा था किन्तु राज्यश्री के अनुपम सौन्दर्य और गाम्भीर्य ने उनके हृदय में एक टीस-सी जगा दी थी।"[4] इतनी सुन्दर का दरिद्र होना तो और भी भयानक है। पुरुष बड़ा लोलुप और स्वार्थी होता है।"[5] सामन्तों की मनोवृत्ति के आधार पर प्रचलित परम्पराओं का मूल्यांकन किया जा सकता है—"अपने राज्य की किसी भी स्त्री को बलात् या गुप्त रूप से उठा लाना सामन्तों के बायें हाथ का खेल हो चला था। किसी-किसी कामुक सामन्तों का तो यह नियम-सा बन गया था कि कोई नववधू अपने पति से पहले सामन्तदासी बनती थी और दासी के अपने ऊपर कोई अधिकार नहीं थे।"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि निरन्तर शोषण के कारण भारत की गुलामी के इतिहास में सशस्त्र क्रान्ति के प्रयत्न होते रहे— पंजाब में गदर पार्टी, बंगाल में अनुशीलन और युगान्तर संगठनों महाराष्ट्र में चापेकर बन्धुओं और मद्रास में रामराव दलों द्वारा सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा किसी न किसी रूप में सदा ही जीवित रही है। देश के नवयुवकों के हृदय में विदेशी दासता से मुक्ति की इच्छा का सूत्र कभी भी निर्मूल नहीं हुआ, परन्तु इन प्रयत्नों के प्रकट विद्रोह निरन्तर शृंखला के रूप में न होकर देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार जहाँ-तहाँ

---

१ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १३८
२ वही, पृ० ४३
३ चीवर—डा० रांगेय राघव, पृ० १०४
४ वही, पृ० ४६
५ वही, पृ० ७७
६ वही, पृ० ९६

सीमित रूप में बने रहे हैं।"[1] अस्तु, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूल्यगत परिवर्तन के कारण विभिन्न परिस्थितियाँ, विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएँ प्रचलित परम्पराएँ और राजनीतिक शोषण की प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर रही हैं। नारी के हित-चिन्तन तथा शोषण से मुक्ति दिलाने में मूल्य-परिवर्तन की प्रक्रिया का पूर्ण हाथ रहता है। वस्तुत मूल्यगत सक्रमण वर्गगत सघर्ष का ही परिणाम है। वर्गगत चेतना का निरन्तर विकास वर्ग-सगठन को प्रेरणा देता है। आज के समाज मे वर्गविहीन सामाजिक व्यवस्था का प्रादुर्भाव इन्ही मूल्यो के परिष्करण के फलस्वरूप हुआ है।

सास्कृतिक पतन

सास्कृतिक पतन की ओर दृष्टिपात करते समय हम—"अपने सास्कृतिक विचारो और सामाजिक आचारो पर दृष्टिपात करना होगा और यह देखना होगा कि कहाँ वे अपना पुराना भाव या अपना सच्चा अर्थ खो चुके हैं। उसमे से बहुतेरे तो आज एक मिथ्यावस्तु बन गए हैं।"[2] मिथ्या मान्यताओ को तिलाजलि देना ही सास्कृतिक दृष्टि से एक गहन समस्या है। मार्क्स का अनुमान है कि जब तक कोई वर्ग या समूह प्रगति के मार्ग पर गतिशील रहता है तभी तक उसकी सस्कृति भी प्रगतिशील रहती है। प्रगति मे जब शिथिलता आने लगती है तब सस्कृति भी शिथिल एव मूल्यहीन हो जाती है। "वह यह मानता है कि कम उन्नत युग के उत्पत्ति-साधन अधिक उन्नत युग के उत्पत्ति-साधनो द्वारा स्थानच्युत कर दिए जाते हैं।"[3] सास्कृतिक विकासक्रम मे जो मूल्य शिथिल एव अप्रगतिगामी हो जाते हैं, नवीन सस्कृति उन्हे स्थानच्युत कर देती है। इस अवस्था को हम सास्कृतिक पतन की स्थिति कहते हैं। "सस्कृति सामाजिक आवश्यकताओ द्वारा जनित मानव-आविष्कार है। मनुष्य सस्कृति मे जन्म लेता है, सस्कृति सहित जन्म नही लेता।"[4] जब कोई भी सास्कृतिक परम्परा शोषण का रूप धारण कर लेती है तो पतनोन्मुख हो जाती है।

वीर्यदान की परम्परा आज विलुप्त हो चुकी है, किन्तु किसी समय इस परम्परा का सास्कृतिक महत्त्व था। "आज का युग प्रत्येक वस्तु म प्रामाणिकता की माँग करता है। उसकी दृष्टि से वही सत्य स्वीकार्य है, जिसकी परीक्षा की जा सके। आज तर्क की प्रधानता है जो निश्चय ही मनुष्य की बौद्धिकता की उपज है।"[5] सास्कृतिक चेतना की प्रौढता तथा प्राचीन सस्कृति की जानकारी

१ सिंहावलोकन—यशपाल, पृ० १७
२ भारतीय संस्कृति के आधार—श्री अरविन्द, पृ० ४७
३ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० १०
४ मानव और संस्कृति—श्यामाचरण दुबे, पृ० १७-१८
५ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० १८ १६

प्राप्त करने का एकमात्र साधन ऐतिहासिक विवेचन ही है। संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य के संस्कारों से अनिवार्यतः होता है। इन संस्कारों का परिष्करण ही मानव-विकास का इतिहास निर्माण करता है। संस्कृति का सम्बन्ध धार्मिक आदर्शों से जोड़कर अनेक कुपरम्पराओं का प्रचलन हुआ है। दासी-प्रथा पर व्यंग्य करते हुए कचनार कहती है—"हम दासियों के माँ-बाप या नातेदार जब राजकुमारियों के साथ हमें लगा देते हैं तब भाड़ में तो हम यों ही फेंक दी जाती हैं। जब राजा लोग दासियों की देह का सर्वनाश कर चुकते हैं, तब मानो उनकी राख घूरे पर फेंक दी जाती है।"[1] यह नारी की वर्गगत चेतना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। नारी-चेतना ने ही शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर वर्गगत संघर्ष को जन्म दिया। देवदासी-प्रथा को भी सांस्कृतिक परम्परा का रूप दिया जा चुका था। अनेक वर्गों की नारियाँ इन देवदासियों में सम्मिलित थीं—"एक लड़की को एक म्द्रगोपिका-वर्ग की देवदासी अपने घर ले गई थी और दूसरी को मन्दिर की एक 'भृत्या' देवदासी।"[2] इन देवदासियों में 'दत्ता' और 'हृत्ता' वर्ग भी प्रचलित थे। मन्दिर की देवदासी को जब दत्ता के रूप में स्वीकृत किया तो सबने आपत्ति उठाई क्योंकि—"उनका कहना है कि नई देवदासी स्वेच्छा से देव-सेवा में अर्पित करने नहीं आई, इसलिए वह दत्ता-वर्ग की देवदासी नहीं मानी जा सकती, वह उड़ाई गई है, इसलिए उसकी गणना हृत्ता-वर्ग में की जायेगी।"[3] अतः इस परम्परा में भी वर्ग-संघर्ष विद्यमान था। ऊँच-नीच का भेदभाव इनमें भी निरन्तर बना रहा। यह परम्परा यदा-कदा प्रतिलक्षित होती है। एक अन्य परम्परा के अनुसार सुहाग के नूपुर विवाह के समय दिए जाते थे। 'ऊजली' उपन्यास में धार्मिक परम्पराओं एवं आदर्शों के आधार पर ऊजली जेठवा की प्राणरक्षक बनती है। वह उसे आत्म-समर्पण करती है और कहती है कि—"संकट-काल में मर्यादाएं स्वयं टूट जाती हैं। मनुष्य परिस्थितियों का दास है।"[4] इस प्रकार ऊजली आदर्श और कर्त्तव्य के झूले में झूल जाती है। गर्भवती होने पर उसे राजा जेठवा से पत्नी के अधिकार भी प्राप्त नहीं होते। पुरुष की उन्मुक्त प्रकृति को प्रत्येक संस्कृति में स्वीकारा गया है। इसका उल्लेख 'मुर्दों का टीला' नाम उपन्यास में इस प्रकार हुआ है—"कहाँ की रीति है कि पुरुष एक ही स्त्री से बँधा रहे? कहाँ है संसार में ऐसा नियम? यदि यह पाप था तो धार्मिक पुजारियों ने उसकी प्रशंसा क्यों की थी? यह

---

१ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १०८

२ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर, पृ० ३२

३ वही, पृ० ३३

४. ऊजली—ललितकुमार आजाद, पृ० ५३

सरासर झूठ है। मणिबध स्त्री का दास बनकर नही रह सकता। यह उन्मुक्त है।"[1]

वस्तुत सास्कृतिक पतन परम्परा और प्रयोग के मध्य का सघर्ष है। जो मान्यताएँ अस्वीकृत हो जाती हैं वे समाज के द्वारा अमान्य हो जाती हैं और त्याग दी जाती हैं। प्रत्येक नयी सास्कृतिक मान्यता पुरातनवादी दृष्टिकोण को नष्ट करके ही अपना विस्तार करती है। ऐतिहासिक उपन्यासो मे इन तथ्यो को भलीभाँति उजागर किया गया है।

ऐतिहासिक उपन्यासो में साम्यवादी चिन्तन का स्वरूप

श्री राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासो म साम्यवादी चिन्तन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। राहुल जी के तीन उपन्यासो मे मार्क्स तथा बुद्ध की चिन्तनधाराओ मे समन्वय स्थापित करने का उपक्रम किया गया है। अपने उपन्यास 'जय यौधेय' मे उन्होने सगठित शक्ति की प्रेरणा दी है—"हमने जब खेती और अपने हाथ से काम करना शुरू किया था, तब इतना नही समझ सके थे कि वह हमारे जीवन म कितना परिवर्तन कर देगा, सब से बडा परिवर्तन तो हमारे दासो और मजदूरो ने देखा।"[2] साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप सदेश देते हुए वे कहते हैं—"हमारे गणतन्त्रो मे राजा, रनिवास और उनके सामन्तो के सामने सिर रगडना, अपमानित होना और उनके आनन्द के लिए लाखो दीनार प्रजा के मुख से छीनकर लेने की आवश्यकता नही पडती, उसी तरह यदि हम अपनी खेती बाडी-बगीचे, शिल्प व्यापार को साझे मे करते तो धनी-गरीब का भेद नही होने पाता। दूसरे की कमाई लूटकर दूसरो को गरीब बना कोई धनी नही बनता।'[3] 'पतन' उपन्यास मे भी साम्यवादी विचारो का प्रसार किया गया है।

यशपाल जी मार्क्सवादी विचारधारा के सपोषक लेखक हैं। वे साम्यवादी विचारधारा का निरूपण इस प्रकार देते है—'सामन्तगण सकटकालीन परिस्थिति मे लाभ उठाकर अपनी शक्ति और अपना धन बढाने की चाल चलते हैं और सकट तभी टलता है, जब पुरानी परिपाटियो को त्यागकर सारे गण के जनों को समान अधिकार दे दिये जाते हैं।"[4] यह धारणा कि विरोधी वृत्तियो का सघर्ष परिवर्तनो की प्रेरणा शक्ति है, बहुत प्राचीन है। अत वर्ग-सघर्ष मार्क्सवादियो का लक्ष्य नही है साधन मात्र है। मार्क्सवाद पूँजीपति-वर्ग के आधिपत्य की जगह सर्वहारा-वर्ग के आधिपत्य के लिए नही लडता, एक वर्ग-विभाजित

---

१ मुर्दो का टीला—डा० रांगेय राघव, पृ० २४३
२ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन, पृ० २७६
३ वही, पृ० १५६-१६०
४ हिन्दी उपन्यास मे नारी-चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ४०४

समाज की जगह एक वर्गहीन समाज लाने के लिए, एक वर्ग के शासन की जगह एक शासनहीन, राज्यहीन समाज लाने के लिए संघर्ष करता है। सर्वहारा-क्रान्ति का उद्देश्य सर्वहारा-वर्ग का राज्य नहीं एक ऐसे समाज की नींव डालना है जिसमें स्वयं सर्वहारा-वर्ग भी एक वर्ग के रूप में समाप्त हो जाय।'[१] 'झाँसी की रानी' में हिन्दू-मुस्लिम एकता का सन्देश इसी विचारधारा के अनुरूप है। तात्या कहते हैं—"महाराष्ट्र की जनता अब भी स्वराज्य-मत है। दरिद्र और धनाढ्य, किसान और मजदूर तथा जागीरदार लगभग सब एक संकेत पर खड़े हो सकते हैं।"[२] 'कचनार' उपन्यास में युद्ध के समय वर्ग-चेतना से अनुप्रेरित होकर सभी स्त्रियाँ हवेली में एकत्रित होती हैं तथा शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए संगठित हो जाती हैं—"बड़े घरों की स्त्रियाँ हवेली के अन्तःपुर में इकट्ठी हो गईं। सागर की सेना हिन्दू राजा की थी, इसलिए उनको अपनी पवित्रता के नष्ट होने का कोई भय नहीं था। एक कोठे में काफी बारूद भरी रखी थी। उस संकल्प वाली स्त्रियाँ इसका उपयोग कर सकती थीं।"[३]

'अमृत पुत्र' उपन्यास में वस्तुपाल संगठन की शक्ति द्वारा वर्ग-शोषण से मुक्त होने की प्रेरणा देता है तथा हिंसक क्रान्ति को प्रोत्साहित करता है—"यदि कोई अत्याचारी अन्धा होकर कर्म-कुकर्म करने लगे तो उसे जड़मूल से विनष्ट कर देना ही हमारा धर्म बन जाता है और उसमें हमारी अहिंसा आड़े नहीं आती।"[४] साम्यवादी विचार-दर्शन की धारणाओं का प्रचार-प्रसार करते हुए राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं कि शोषण से मुक्ति का मार्ग समता पर आधृत व्यवस्था में है—"इसी तरह इस दुनिया में दुःखों के दूर करने के लिए मनुष्य-मात्र में समता—भोगों की समता, कामों की समता स्थापित करना ही एक मार्ग है।... मनुष्य जब भी व्यापक सुख की चिन्ता करेगा, वह इसी निश्चय पर पहुँचेगा कि सबके सुखी होने पर ही हम सुखी रह सकते हैं। मैं और मेरा खयाल छोड़ विश्व को एक कुटुम्ब बना उसमें समता की स्थापना ही सारे रोगों की दवा है।"[५] 'विस्मृत यात्री' में प्रगतिवादी चिन्तनधारा के अनुरूप कहा गया है—"गुरु का कहना था कि केवल सम्पत्ति में ही मेरा-तेरा का भाव बुरा नहीं बल्कि विवाह भी मेरे-तेरे के भावों को पैदा करके अपनी सन्तान के प्रति पक्षपात का कारण होता है। सारा देश तब तक एक कुटुम्ब नहीं बन सकता, जब तक

---

१ लिटरेचर एण्ड रिवोल्यूशन—लिओन त्रात्स्की, पृ० १६७
२ झाँसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० १८३
३ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ६४
४, अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ११३
५ मधुर स्वप्न—राहुल सांकृत्यायन पृ० २८२

विवाह-प्रथा मौजूद है।"[1] 'बाण भट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में लेखक अनजाने ही साम्यवादी विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं —' क्या संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु इसी प्रकार अपमानित होती रहेगी ? मेरा मन कहता है कि जब तक राज्य रहेंगे, सैन्य संगठन रहेंगे, पौरुषदर्प का प्राचुर्य रहेगा, तब तब यह होता ही रहेगा। परन्तु क्या यह सम्भव होगा कि मानव-समाज में राज्य न हो, सैन्य संगठन न हो, सम्पत्ति का मोह न हो ?"[2]

इसी प्रकार 'ठकुराणी' उपन्यास में शिव के विचारों में साम्यवादी चिन्तन की अभिव्यक्ति हुई है—' पता नहीं शान्ति का कौन सा कदम इनके महलों और हवेलियों को धूल में मिला दे। भाइयो ! कोई आदमी जन्म से न छोटा होता है और न बड़ा। जीने का हक सबको बराबर है। किन्तु ये जो हमारे अन्नदाता हैं, ये हमसे जीने का हक छीनते हैं और हमें कुत्ते की तरह मरने के लिए मजबूर करते हैं। हमसे जानवरों की तरह काम कराते हैं, पर हमें जानवरों की तरह पेटभर भोजन नहीं देते। ये महान् हैं, हमारे प्रभु हैं, लेकिन ऐसे प्रभुओं का जीवन शाश्वत नहीं है। ऐसे पुरुषों को अंधे होकर पूजना हितकर नहीं है। इनसे मुक्त होना ही पड़ेगा। इनसे एक दिन लड़ना ही पड़ेगा।"[3] "यहाँ धर्म के नाम पर पाखण्ड चल रहा है तथा युद्ध के नाम पर टुकड़े छीनने का पोथपन खेला जा रहा है।"[4] मानव द्वारा मानवता का घृणित शोषण समाज का क्रान्तिकारी-वर्ग कदापि सहन नहीं कर सकता। वह समाज में वर्ग-संघर्ष या क्रान्ति के द्वारा नवीन व्यवस्था का सूत्रपात चाहता है। ऐसी व्यवस्था जिसमें न शोषक होगा तथा न ही शोषित। 'ठकुराणी' उपन्यास में ठकुराणी कहती है—"मैं क्या करूँ ? मैं तुम्हारी तरह कुछ भी सहने को तैयार नहीं हूँ। मैं तुम्हारी तरह अपने-आपका शोषण नहीं करा सकती।"[5] यह भावना क्रान्तिकारी वर्गगत चेतना से ओतप्रोत है। 'मृगनयनी' उपन्यास में वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए सक्रिय कदम उठाते हुए महाराजा साहब ने प्रण लिया—"जब भवन और मन्दिर बनवाऊँगा तब मजदूरों के साथ नित्य एक घण्टे मैं भी पत्थरों पर श्रम करूँगा।"[6] इसी उपन्यास में मृगनयनी स्त्री-जाति की शोषण से मुक्ति के लिए सक्रिय कदम उठाती है—"जैसे युद्धों के बीच-बीच में दरिद्रों के लिए निवासगृह बनवाए जा रहे हैं, औषधालय खोले जा रहे हैं, वैसे ही एक काम

१ विस्मृत यात्री—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३७१
२ बाण भट्ट की आत्मकथा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १४७
३ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १५४-१५५
४ चारु चन्द्रलेख—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३०४
५ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० २३४
६ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १०६

यह सही। स्त्री तब तक अपने को दरिद्र समझती है, जब तक उसके सम्बन्ध में समाज मान्यता दे।'[1] 'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास में भी शोषक एवं शोषित वर्गों के विवेचन में वर्गगत चेतना परिलक्षित होती है जो मूलतः साम्यवादी विचारधारा का सन्देश प्रमाणित करती है—"एक ओर ये सेट्ठियों की और महाराजाओं की गगनचुम्बी अट्टालिकायें हैं जो स्वर्ण-रत्न और सुखद साजों से भरी-पूरी हैं, दूसरी ओर वे निरीह और कर्मकर, शिल्पी और कृषक हैं जो अतिदीन-हीन हैं। क्या इन असख्य प्रतिभाशाली, परिश्रमी जनों की भयानक दरिद्रता का कारण ये इन्द्रभवन-तुल्य प्रासाद नहीं हैं ?"[2]

'अमृत पुत्र' उपन्यास में भी क्रान्ति के द्वारा अत्याचारों के विरोध का प्रयास किया गया है—'जब कोई अत्याचारी अपना हाथ कर्म-कुकर्म करने लगे तो उसे जड़मूल से विनष्ट कर देना ही हमारा धर्म बन जाता है और उसमें हमारी अहिंसा आड़े नहीं आती।'[3] "एक भूखे आदमी पर पाशविक अत्याचार करने से पहले आपको कहीं जाकर डूब मरना चाहिए था। वह यवन है तो क्या मनुष्य नहीं है ? वह गरीब है तो क्या पशुओं से भी हीन हो गया ? धिक्कार है आपको और आपके उस धर्मभाव को जो आपको मानवता की नहीं स्वार्थ और नीचता की शिक्षा देता है।"[4] यशपाल जी ने 'दिव्या' उपन्यास में प्रगतिशील दृष्टिकोण के अनुरूप कहा है—"वे सामाजिक कुरूपताओं, प्राचीन जर्जर मरणोन्मुख समाज-व्यवस्थाओं पर व्यंग करते हैं, उनका पर्दाफाश करते हुए नयी सामाजिक चेतनाओं को, जनशक्तियों को विश्वास देकर उद्घाटित करते हैं।"[5] इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकारों में सर्वश्री यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, हजारीप्रसाद द्विवेदी, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' प्रभृति की औपन्यासिक कृतियों से इस तथ्य की सम्पुष्टि होती है कि वास्तव में वर्ग-संघर्ष मार्क्सवादी चिन्तन का लक्ष्य नहीं वरन् साधनमात्र था। मार्क्सवाद मानवीय मुक्ति को गहनतम और उत्कट आकांक्षाओं को वैज्ञानिक ज्ञान एवं नवचेतना के अभ्युदय के साथ जोड़ता है। इस प्रकार वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था ही मानवता को शोषण से मुक्ति दिलाकर सच्ची शांति स्थापित कर सकती है।

निष्कर्ष

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्गगत चेतना का विवेचन करने के उपरान्त हम सहज इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३७७
२ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० १३३-१३४
३ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ११३
४ वही, पृ० १६१
५. वृन्दावनलाल वर्मा—रामदरश मिश्र, पृ० २१

पर सामाजिक गतिविधियो का अकन करते हुए अतीत की विवेचना की गई है। उपादेयता की दृष्टि से यह विवेचना आधुनिक समाज-व्यवस्था को भी प्रभावित किए बिना नही रह सकती। डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दो मे—"ऐतिहासिक उपन्यासकार का कार्य शुष्क इतिहास को कथानक मे गूँथ देने तक ही सीमित नही होता। उसे तत्कालीन शासको की मनोवृत्ति, प्रजा की राजनैतिक व आर्थिक दशा, उस युग के साहित्य, सस्कृति और कला पर भी प्रकाश डालते हुए तत्कालीन वातावरण को सजीव रूप देने मे उपस्थित करना पडता है।"[1] सर्वश्री यशपाल, रागेय राघव, राहुल साकृत्यायन, आचार्य चतुरसेन प्रभृति उपन्यासकारो ने प्राचीन गणतन्त्रात्मक विधान को आधुनिक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था से जोडने का प्रयास किया है। यशपाल तथा राहुल साकृत्यायन के उपन्यासो का स्वर मार्क्सवादी है। डॉ० रागेय राघव ने अपने उपन्यास 'मुर्दों का टीला' मे गणराज्य की गतिविधियो का विश्लेषण मार्क्सवादी दृष्टिकोण से किया है। विभिन्न प्रकार के शोषणो का विवेचन करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासो मे विभिन्न परम्पराओ एव सस्कृतियो का यथार्थपरक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। उदाहरण के लिए—दास-दासियो के क्रय-विक्रय, जनानी ड्योढ़ियो मे गोला-गोलियो की दयनीय दशा, वेश्यावृत्ति, दास-प्रथा, वीर्यदान-परम्परा, रक्ष तथा यक्ष सस्कृतियो की विसगतियां, नवाबो की यौन विकृतियां, सामाजिक कुरीतियो के प्रचलन के कारणो, धार्मिक व नैतिक पतन, नारी के बहुविध शोषण, साम्प्रदायिक वैमनस्य तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार की पृष्ठभूमि की सतर्क व्याख्या की गई है। इन सभी समस्याओ के मूल मे आर्थिक विषमता तथा आर्थिक शोषण प्रमुख कारण रहे हैं। शोषक तथा शोषित वर्गों की समस्याओ तथा मान्यताओ को उभारने मे यशपाल जी ने इतिहास को मार्क्सवादी दृष्टि से देखकर प्रतिबिम्ब म समाजवादी रग भरने का उपक्रम किया है। डॉ० रागेय राघव तथा राहुल साकृत्यायन के उपन्यासों मे प्रगतिवादी तथा समाजवादी चिन्तन का उन्मेष है। उन्होने अतीत का विश्लेषण मार्क्सवादी विचार-दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे किया है। उन्होने रूढ़िगत मान्यताओ पर कठोर प्रहार करके वर्तमान के सन्दर्भ मे परिवर्तन की अपेक्षा की है। पुरातन तथा नवीन वर्गों की मान्यताओ मे अन्तर के कारणो तथा सघर्ष की स्थितियो का भी विश्लेषण किया है। नारी-चेतना तथा शोषित वर्ग की वर्गगत चेतना को उभारकर वर्ग-सघर्ष को प्रेरणा भी प्रदान की है। बौद्धकालीन गणतन्त्रो के सामाजिक विधान की व्याख्या करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि उस काल मे यौन वर्जनाओ तथा आर्थिक विषमताओ का क्या स्वरूप था। बौद्धमत के

१. हिन्दी साहित्य समस्याएँ और समाधान—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० २८१

सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हुए जातिवाद दासता आर्थिक शोषण आदि रूढ़िगत संस्कारों को त्याज्य बताकर नवचेतना का प्रसार किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की सृष्टि समाजवादी विचारधारा एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन की समन्वित पृष्ठभूमि पर हुई है। सर्वश्री हजारीप्रसाद द्विवेदी आचार्य चतुरसेन वृन्दावनलाल वर्मा अमृतलाल नागर यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र आदि ने अतीत की गौरव गाथा कहते हुए युगीन आदर्शों का निरूपण किया है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास सामाजिक चेतना की उपन्यास कृतियों की शृंखला में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। अतीत को महिमान्वित करने का मोह उनकी रग रग में समाया हुआ है। दिव्या में चार्वाक की विवेचना मार्क्सवादी चिन्तन के समीप प्रतीत होती है। सभी उपन्यासों में सामन्तवादी विसंगतियों को उभारने का पूर्ण प्रयास किया गया है। संक्षेप में तत्कालीन परिस्थितियों प्रवृत्तियों समस्याओं एवं विसंगतियों के परिप्रेक्ष्य में वर्गगत चेतना के उदय और वर्गगत संघर्ष की प्रतिक्रियाओं को हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने नितान्त जीवन्त परिसन्दर्भों में उभारा है।

अध्याय ६

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष

आंचलिक शब्द की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में एक नवीन रचना शैली की औपन्यासिक कृतियाँ सामने आयी हैं जिन्हें आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गयी है। अंचल शब्द से आंचलिक विशेषण ठञ् प्रत्यय के योग से बना है। पाणिनीय सूत्र द्वारा जनपदैक देशात—अष्टा० ४।३।७ के अनुसार इस प्रकार [illegible] शब्द का अर्थ होता है— किसी देश या प्रान्त भाग से सम्बन्धित [illegible]।''[1] यह शब्द पाणिनीय व्याकरण में— अञ्च धातु में [illegible] निर्मित हुआ है तथा व्याकरण की दृष्टि से योग रूढ़ है। [illegible] शब्द अञ्चल है। साहित्य में अंचल तथा 'आंचलिक' [illegible] अभिधामूलक न होकर लक्षणामूलक अर्थ से होता है। [illegible] धातु के दो अर्थ होते हैं—गति और पूजा। पद्मचन्द्र कोश में 'अंचल' [illegible] अर्थ वस्त्र का छोर कपड़े का कोना पल्ला आदि लिया जाता है।[3] हिन्दी राष्ट्र-भाषा कोश के अनुसार— देश का वह भाग और प्रान्त [illegible], नदी के किनारे की भूमि तट या किनारा क्षेत्र। इस [illegible] शब्द अचरा का भी प्रयोग आंचल के अर्थ में किया गया है [illegible] अञ्चल शब्द का विकृत रूप आंचल के समान माना है।[4] [illegible] के अनुसार— अंचल उस भौगोलिक खण्ड को कहते हैं [illegible] और सामाजिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई का [illegible] रहन सहन प्रथाएँ उत्सव आदि आदर्श और [illegible] मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परस्पर समान और [illegible] भिन्न हो कि इनके आधार पर यह क्षेत्र' या [illegible]

---

१ वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी—सूत्र ११७६

२ हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि [illegible]

३ पद्मकोष—सं० जयशंकर जोशी पृ० ११२

४ हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश—सं० श्रीवास्तव [illegible]

लोकोक्ति, मुहावरे, राजनैतिक चेतना, आर्थिक कठिनाइयों आदि का सूक्ष्म निरीक्षण व उपयोग करता है।"[1]

आंचलिक उपन्यासों सम्बन्धी विवेचकों में दो प्रकार के वर्ग मिलते हैं। एक वर्ग शहरी मुहल्लों के जन-जीवन को अभिव्यक्त करनेवाले उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास कहता है, तो दूसरा वर्ग ग्राम्य जीवन तथा विशिष्ट अज्ञात-अंचलों तथा उनकी समस्याओं को दिग्दर्शित करनेवाले उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास की संज्ञा प्रदान करता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा इन अभिमतों की पुष्टि इस प्रकार की गई है—"नागरिक जीवन के चित्र तो क्रमागत सामाजिक उपन्यासों में रहते ही हैं, यदि आंचलिक उपन्यासों में वही वस्तु रखी जायेगी तो इस नयी विधा की विशेषता क्या होगी ? प्रश्न शिल्प का नहीं परम्परा का भी है। आंचलिक उपन्यास वस्तुतः सामाजिक उपन्यासों की प्रतिक्रिया में, बल्कि विद्रोह में निर्मित हुए हैं।"[2] डॉक्टर रामदरश मिश्र ने इस मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"आंचलिक उपन्यासों ने अनुभवहीन सामान्य या विराट् के पीछे न दौड़कर अनुभव की सीमा में आनेवाले अंचल-विशेष को उपन्यास का क्षेत्र बनाया है।"[3] वास्तव में— 'आंचलिक उपन्यासों की औपन्यासिक संरचना में नये आयाम विकसित हुए हैं और उन नव्य आयामों के कारण इनकी संरचना को भी सम्पूर्णता की दृष्टि से ही आंका जा सकता है।"[4]

इस प्रकार विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि आंचलिक उपन्यास का अपना एक चुना हुआ क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र की अपनी भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं, जिनका समग्र-चित्रण आंचलिक उपन्यासों में किया जाता है। ये विशेषताएँ उस अंचल विशेष के विशिष्ट रीति रिवाजों एवं जीवन-यापन के ढंग से सम्बन्धित होती हैं। आंचलिकता का समग्र रूप में चित्रण करते हुए आंचलिक उपन्यास अपने उद्देश्य की सिद्धि-हेतु एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। अंचल की भाषा का प्रयोग, वेशभूषा, सांस्कृतिक, सामाजिक मान्यताओं का चित्रण, लोकगीतों और लोककथाओं का प्रयोग आदि ऐसे तत्त्व हैं जो आंचलिक उपन्यासों को अन्य उपन्यासों से अलग करते हैं। ये उपन्यास धरती-गन्ध से आप्लावित होकर रसमय होने का परिचय देते हैं।

---

१ साहित्यिक निबन्ध—डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, पृ० ४७६

२ हिन्दी के आंचलिक उपन्यास—प्रकाश वाजपेयी, (प० नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा लिखित भूमिका से), पृ० २

३ हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० १८७

४ आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प—डॉ० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० १५

हिन्दी उपन्यासो मे आचलिक चेतना का उदय

प्रादेशिक उपन्यासो की सरचना का प्रारम्भ सन् १८०० से माना जाता है, किन्तु हिन्दी साहित्य के उपन्यासो म आचलिकता की प्रवृत्ति बहुत बाद मे आयी। ' हमारे देश की जाति, धर्म, दर्शन और सस्कृति की विविधता ने उपन्यास-कारो को विशिष्ट अचलो के जन-जीवन का जीवन्त चित्रण करने की प्रेरणा दी है। इनकी सम-विषम स्थिति के चित्र ही आचलिक उपन्यासो मे नवीन औपन्यासिक रस की सृष्टि करते है जिसे हमने 'आचलिक रस' के नाम से अभिहित किया है।"[1] हमारे यहाँ आंचलिकता के पोषक तत्त्वो का अस्तित्व तो बहुत पहले से प्रचुर मात्रा मे रहा है, परन्तु उपन्यास मे उसकी अभिव्यजना बहुत बाद म हुई और जब हुई तब काफी सघनता के साथ हुई।"[2] ' हिन्दी उपन्यासो म आचलिकता के वास्तविक स्वरूप का श्रीगणेश तो १९३० से ही हो चुका था, किन्तु इन उपन्यासो मे आंचलिक तत्त्वो का समाहार धीरे-धीरे होता रहा। हिन्दी उपन्यासो मे आचलिक तत्त्व कोई नया तत्त्व नही है। 'रेणु' स बहुत पहले प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, नागार्जुन आदि उपन्यासकारो के उपन्यासो मे वह वर्तमान था। हाँ उनके उपन्यास आंचलिक तत्त्व धारण करते हुए भी विशुद्ध आचलिक उपन्यास नही कहे जा सकते क्योकि उनकी दृष्टि अधिक व्यापक है, चित्रफलक अधिक विस्तारपूर्ण है और उनकी कृतियो मे वह रस नही जिसे हम आचलिक रस कह सकें।"[3]

हिन्दी म आचलिक उपन्यासो की परम्परा का चित्रण सभी उपन्यास-कार रेणु' के मैला आचल' से मानते हैं। डा० गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों मे—"इस परम्परा का प्रवर्तन एव विकास हिन्दी मे लगभग १९५० के बाद हुआ है। 'आचलिक' सज्ञा का आविष्कार फणीश्वरनाथ रेणु' द्वारा उनके उपन्याम मैला आचल' ('५४) की भूमिका मे हुआ था, किन्तु इस परम्परा का सूत्रपात इससे पूर्व ही नागार्जुन के उपन्यासो के द्वारा हो चुका था। आचलिक उपन्यासो मे किसी अचल या प्रदेश के ग्रामीण वातावरण एव लोक-सस्कृति का चित्रण किया जाता है। विशुद्ध आचलिक उपन्यासो की परम्परा 'नागार्जुन' से ही शुरू होती है।'[4] ' आचलिक उपन्यासो की परम्परा को आगे बढाने का श्रेय देवेन्द्र सत्यार्थी, रागेय राघव, उदयशकर भट्ट, वीरेन्द्रनारायण, शैलेश मटियानी, रामदरश मिश्र, कैलाश कल्पायन, लालजी शुक्ल प्रभृति को है।"[5]

---

१ हिन्दी के आचलिक उपन्यास—राधेश्याम कौशिक अधीर, पृ० ४६
२ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० १८९
३ साहित्यिक निबन्ध—डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, पृ० ४८२
४. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० ६३५
५. वही, पृ० ६३६

"आचलिक उपन्यासो का प्रादुर्भाव पश्चिमी सभ्यता एव आधुनिकता के कारण हुआ क्योकि तत्कालीन उपन्यासो मे अनुभूतियो की नग्न एव अर्थहीन अभिव्यक्ति, मूल्यहीनता, सत्रास, कुठा, अर्थशून्य बेईमानी, नपुसक आतक आदि का दबदबा बढ गया था।"[1] डा० प्रतापनारायण टण्डन ने यद्यपि आचलिक चित्रण का प्रारम्भ श्री वृन्दावनलाल वर्मा तथा बाबू शिवपूजन सहाय से माना है।"[2] "तथापि उन्होने केवल 'रेणु' के ही उपन्यासो को आचलिक कहा।"[3] श्रीवास्तव ने अपने चतुर्थ प्रकरण 'प्रेमचन्दोत्तर युग प्रयोग काल' के उपसहार म आचलिक सस्पर्श तथा स्थानीय रग देने के कौशल के महत्त्व को स्वीकार किया है और रेणु तथा नागार्जुन के उपन्यासो के साथ 'बहती गगा', 'बूँद और समुद्र' तथा 'सेठ बाँकेमल' के नाम स्थानीय विशेषताओ को उभारनेवाले उपन्यासो मे परिगणित कर लिये हैं।"[4]

हिन्दी मे आचलिक चेतना का उदय मूलत स्वतन्त्रता के पश्चात् ही माना जाता है। "आचलिक उपन्यास स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य का एक भव्य प्रयोग एव महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, जिसने साहित्य को गतिशील एव समृद्ध किया है। इसके पीछे मूल प्रवृत्ति राष्ट्र एव समाज की सास्कृतिक मर्यादा का अन्वेषण रहा है।"[5] अभी तक के आचलिक उपन्यास ग्रामीण अचलो से ही सम्बद्ध रहे हैं। इधर लखनऊ मथुरा, बम्बई आदि के जन-जीवन को लेकर भी अचलो का चित्रण करने की परम्परा चल पडी है, किन्तु इन उपन्यासो में जीवन का एक पक्ष ही उभरकर सामने आया है जबकि ग्रामीण अचल से सम्बद्ध उपन्यासो मे जन जीवन के विभिन्न पक्षो को उजागर करने मे सतर्कता बरतते हुए अधिक प्रयास किया है।' 'मैला आचल' के प्रकाशन के पश्चात् ही हिन्दी म अचल-विशेष के जनजीवन का चित्रण करनेवाले उपन्यासो को आचलिक सज्ञा से अभिहित किया जाने लगा।'[6] श्री राधेश्याम कौशिक ने महन्त धनराजपुरी का 'अविरल आँसू', वीरेन्द्रनारायण का 'अमराई की छाँह', निराला का 'बिल्लेसुरबकरिहा', नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'वरुण के बेटे', रागेय राघव के 'काका' और 'कब तक पुकारूँ', अमृतलाल नागर का 'सेठ बाँकेलाल', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'ब्रह्मपुत्र', उदयशकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य', शिवप्रसादसिंह का 'बहती गगा', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आचल', 'परती परिकथा', शैलेश-

---

१ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना—डॉ० ज्ञानचन्द गुप्त पृ० ३३
२ हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन पृ० २५६
३ हिन्दी उपन्यास का उद्भव तथा विकास—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन पृ० २८६
४ हिन्दी उपन्यास—श्री शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० ३७६
५ आंचलिक उपन्यास सम्वेदना और शिल्प—डा० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० ११
६ हिन्दी के आंचलिक उपन्यास—राधेश्याम कौशिक अधीर, पृ० ५०

मटियानी का 'हौलदार' और डॉ० रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर' को हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में माना है।"[1]

आंचलिक उपन्यासों का विकास वर्षों की साधना का परिणाम है। विद्वानों ने आंचलिक चेतना के उदय में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं। श्री विश्वनाथ-प्रसाद तिवारी ने हिन्दी के विशुद्ध आंचलिक कहे जानेवाले उपन्यासों के दो प्रधान भेद किये है—प्रथम, जन-जीवन चित्रण करनेवाले उपन्यास, जिनमे रेणु, नागार्जुन, देवेन्द्र सत्यार्थी, शिवप्रसाद मिश्र, राजेन्द्र अवस्थी, बलभद्र ठाकुर, रामदरश मिश्र आदि के उपन्यास आ जाते हैं, द्वितीय, जाति-विशेष के जीवन-चरित्र का चित्रण करनेवाले उपन्यास—जैसे भट्ट जी का 'सागर, लहरें और मनुष्य' को ही रखा जा सकता है। एक अन्य आलोचक ने आंचलिक उपन्यासों में कई अन्य उपन्यासों को भी जोड़ा है।" उनके मतानुसार—' आंचलिक उपन्यासों को वर्तमान युग की विशेष देन कहा जा सकता है। इनमे क्षेत्र-विशेष से सम्बन्धित जन-जीवन का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाता है। जनपदों की संस्कृति की रक्षा और विकास ही इनका नारा है। इस प्रकार के उपन्यासों में फणीश्वरनाथ 'रेणु' कृत 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' मे बिहार का ग्रामीण वातावरण, उदयशंकर भट्ट के 'सागर, लहरें और मनुष्य' मे बम्बई के मछुहारों का जीवन, नागार्जुन ने 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ' और 'वरुण के बेटे' में मैथिल प्रदेश के लोक-जीवन, अमृतलाल नागर ने 'बूंद और समुद्र' में लखनऊ के जीवन, रांगेय राघव ने 'कब तक पुकारूँ' में नट-जीवन को चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त देवेन्द्र सत्यार्थी का रथ के पहिए', राम-दरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर', शैलेश मटियानीकृत 'कबूतरखाना', 'हौलदार' आदि और शिवप्रसादसिंह का 'बहती गंगा' उपन्यास भी आंचलिक उपन्यासों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बन पड़े हैं।"[2] डॉ० सुषमा धवन ने आंचलिक उपन्यासों की गणना सामाजिक एवं समाजवादी उपन्यासों के अन्तर्गत की है।"[3] श्रीनारायण अग्निहोत्री ने आंचलिक उपन्यासों की विवेचना अलग से नहीं की है। उन्होंने आंचलिक विधा पर विशेष ध्यान न देते हुए अन्य विधाओं में इन उपन्यासों को वर्गीकृत कर दिया। उदाहरणार्थ—'परती परिकथा' को सामा-जिक कथानक वाले प्रेमाख्यानक उपन्यासों के अन्तर्गत"[4] और नागार्जुन तथा रांगेय राघव को—"राजनीतिक अथवा राजनीतिक कथानक वाले उपन्यासों के

१ हिन्दी के आंचलिक उपन्यास—राधेश्याम कौशिक 'मधीर', पृ० ५०
२ हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास—रामेश्वरनाथ भार्गव, पृ० १६७-१६८
३ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० २ व ५
४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन—श्रीनारायण अग्निहोत्री, पृ० २८४

अन्तर्गत रख दिया है।"[1] सन् १९६२ में श्री महेन्द्र चतुर्वेदी ने 'हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण' ग्रन्थ लिखकर, आंचलिक उपन्यासों पर अलग से विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने आंचलिक उपन्यासों के अन्तर्गत—" 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुःख-मोचन', 'वरुण के बेटे', 'मैला-आँचल', 'परती परिकथा', 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'बया का घोंसला' और 'सांप' आदि का उल्लेख किया है। साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि 'इस श्रेणी के अन्तर्गत डॉ० रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त एवं यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का भी उल्लेख किया जा सकता है।"[2] १९६३ में 'मधुदीप' (वार्षिक) में राजेन्द्र अवस्थी तृषित' ने लिखा है कि— 'हिन्दी में इन आंचलिक उपन्यासों की संख्या अंगुलियों में गिनने लायक है।"[3]

इस प्रकार आंचलिक उपन्यासों के रचना-विकास का अध्ययन करने के उपरांत हम देखते हैं कि आंचलिक उपन्यासों में कुछ ऐसे उपन्यास भी सम्मिलित किए गए हैं जिन्हें हम अर्ध-आंचलिक की संज्ञा भी दे सकते हैं। अर्ध-आंचलिक उपन्यास सामान्य उपन्यासों तथा आंचलिक उपन्यासों के बीच के वर्ग होते हैं क्योंकि उनमें आंचलिकता का कोई एक या अधिक तत्त्व विद्यमान रहता है। ये तत्त्व सामान्य उपन्यासों से भिन्न किन्तु आंचलिक उपन्यासों के तत्त्वों से मिलते-जुलते होते हैं। 'मुक्तावती', 'नेपाल की वो बेटी', 'सत्ती मैया का चौरा', 'नदी फिर बह चली', 'बहती गंगा' आदि उपन्यास इसी श्रेणी में माने जा सकते हैं। इन उपन्यासों में पूर्ण आंचलिकता के तत्त्व ग्रहण नहीं किए गए हैं। वास्तव में आंचलिक उपन्यास मानवीय संवेदना को उभारते हुए जन-जीवन को व्यापकता के साथ चित्रण करता है, किसी अंचल विशेष की संस्कृति, धार्मिक विश्वास, प्रथाओं, रहन-सहन रीति-रिवाजों तथा भौगोलिक सीमाओं से परिचित कराता है, लोकतन्त्रात्मक भावना उत्पन्न करता है, अनीति के विरुद्ध विद्रोह की प्रेरणा देता है, भारत की विभिन्न आंचलिक संस्कृतियों में अन्विति के सूत्र दिखाकर सांस्कृतिक एकीकरण का प्रयास करता है, राजनैतिक क्षेत्र में स्वार्थपरता, उथल पुथल, आर्थिक शोषण, अत्याचार, जन-चेतना आदि को प्रस्तुत करते हुए जनता को संगठित होने का सन्देश देता है। प्राय देखने में आया है कि आंचलिक उपन्यासों में स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों के चित्रण की ओर उपन्यासकारों का ध्यान केन्द्रित रहा है। 'कब तक पुकारूँ' जैसे स्तरीय उपन्यासों में भी रहस्योद्घाटन एवं तिलस्मी गूढ़ता आदि के चित्रण ने यथार्थ

---

१ हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन—श्रीनारायण अग्निहोत्री, पृ० २८८

२ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—श्री महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० २१४

३ मधुदीप वार्षिक, पृ० २५०

के आग्रह की प्रवृत्ति को धक्का पहुँचाया है तथा आंचलिकता को विनष्ट किया है। आंचलिक उपन्यासों में व्यक्त कथांचल तथा भौगोलिक वातावरण का चित्रण करने के साथ-साथ एक-दो खतरे और सामने आते प्रतीत होते हैं। प्रथम तो यह कि आंचलिकता पर अत्यधिक बल देने के कारण समग्र भारत को ध्यान में न रखने के कारण प्रान्तीयता की भावना का पुनरोदय हो सकता है तथा समसामयिक वास्तविकताओं के तटस्थ निरूपण में लेखक का सन्तुलन बिगड़ने का भय रहता है। अतः यह अपेक्षित है कि आंचलिक उपन्यासकारों को सचेत होकर स्थानीय रंग के साथ सार्वभौमिकता का भी समन्वय करना चाहिए।

आंचलिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की स्थितियाँ

आंचलिक उपन्यासों में युगीन परिस्थितियाँ ही वर्गगत चेतना की उद्भाविका रही हैं। आंचलिक उपन्यासों की मूल-प्रवृत्ति राष्ट्रीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मर्यादाओं के अन्वेषण से जुड़ी रही है। प्रत्येक उपन्यासकार अपनी अनुभूति तथा अभिव्यक्ति के आधार पर ही जन-मानस के हृदय को संस्पर्श करने में सफल होता है। यह सफलता उसे जन-मानस की वास्तविक परिस्थितियों के उल्लेख करके ही मिलती है। "युगीन परिस्थितियों की आवश्यकताओं, अभावों और विषमताओं का जीवन्त चित्रण उपन्यास में जिस विशदता से हो सकता है, या हुआ है, उतना साहित्य की अन्य विधाओं में दृष्टिगोचर नहीं होता। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का सृजन स्वतन्त्रता के पश्चात् की परिस्थितियों में हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों ने ही उपन्यासकारों को आंचलिक उपन्यासों के प्रणयन की प्रेरणा दी। हमारा देश विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों, वेश भूषाओं का भण्डार है। विभिन्न अंचलों के जन-जीवन को चित्रित करने के उद्देश्य से ही उपन्यासकार इस ओर प्रवृत्त हुए।"[1]

आंचलिक उपन्यासकारों ने समाजवादी रचनाओं से सम्बद्ध साहित्य प्रस्तुत कर ग्रामीण धरातल से उसको जोड़ा। फलतः ग्रामांचलों में भी नवीन चेतना आयी। डॉ० भगवतीप्रसाद शुक्ल ने कहा है—"स्वतन्त्रता के बाद अपने देश में समाजवादी समाज-रचना से सम्बद्ध कार्यों का विस्तार गाँवों तथा अंचलों तक होने लगा, जिसके फलस्वरूप अंचल-विशेष में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चेतना मुखरित हुई।"[2] ग्रामीण वातावरण में परम्परागत प्रगति-गामी विचारों, अंधविश्वासों तथा वैज्ञानिक मान्यताओं, स्वार्थ-लिप्सा और

१ हिन्दी के आंचलिक उपन्यास—राधेश्याम कौशिक, पृ० ११२-११४
२. आंचलिकता से आधुनिकता-बोध—डॉ० भगवतीप्रसाद शुक्ल, पृ० १२६

सरलता के मध्य सघर्ष की स्थितियाँ पनपती रही हैं। यही स्थितियाँ वर्ग-सघर्ष की परिस्थितियाँ बनकर आलोच्य उपन्यासो मे उभरी हैं। आचलिक उपन्यासकार अपेक्षित जीवन के प्रश्नो, आकाक्षाओ, विषमताओ, गरीबी और अशिक्षा द्वारा उत्पन्न शोषण की परिस्थितियो का उद्घाटन करता है। नागार्जुन के उपन्यासो मे अचल-विशेष के पात्रो को समाजवादी विचारधारा के साथ-साथ वर्ग-सघर्ष का सन्देश मिलता है। नागार्जुन प्रगतिशील लेखक हैं। उनकी अचलो से चुनी गयी कथावस्तु जन-सामान्य का जीवन चित्रित करती है—"ये जन-सामान्य की आर्थिक विषमता, पीडा अभाव, अपमान सघर्ष आदि को यथार्थवादी दृष्टि से उभारते हैं, साथ-ही साथ नयी चेतना के आलोक मे बनते नये मूल्यो और सम्बन्धो को भी उभारते हैं।"[1]

"आर्थिक स्तर पर जीवन की विषमता का निरूपण लेखक के समाजवादी दृष्टिकोण का परिचायक है।"[2] 'बाबा बटेसरनाथ' म शहर और ग्राम की स्थिति एव सुख-सुविधा मे अन्तर ही वर्ग सघर्ष का कारण है—"शहर की बू-बास बोलचाल से कहीं परगट हो वहाँ देहातियो को नाक-भौह नहीं सिकोडनी चाहिए बाबू! शहर आसमान मे नही हुआ करते। गाँव की तरह शहर भी इसी भूमि पर आबाद हैं। पढे-लिखे काफी ऐसे लोग हैं जो नासमझी के कारण गाँवो और शहरो को परस्पर प्रतिकूल बताते है। खाना और कपडो की तगी न रहे, सभी लिख-पढ जाएँ, बाहर आने-जाने की सुविधा मिले, काम व आराम का बदस्तूर सिलसिला हो मनोरजन के साधन सुलभ हो तो फिर इन देहातो का ढाँचा ही बदल जायेगा। आलस, पिछडापन, अभाव, अशिक्षा, अस्वास्थ्य, गन्दगी आदि दुर्गुण हमेशा नहीं रहेंगे।"[3] अस्तु स्पष्ट है कि आचलिक उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष की विभिन्न स्थितियाँ चित्रित करके उपन्यासकारो ने प्रगतिवादी सन्देश प्रसारित किया है। इनमे उल्लेखनीय है—शोषण के प्रति विद्रोह, जन जागरण एव देश-भक्ति की प्रतिष्ठा, पिछडे वर्गों के प्रति सहानुभूति, सास्कृतिक उत्थान की प्रेरणा, राजनैतिक चेतना आदि। इन्हें ही हम वर्ग-सघर्ष की सम्प्रेरक परिस्थितियाँ कह सकते है।

शोषण के प्रति विद्रोह

'परती परिकथा' मे लुत्तो वर्ग-सघर्ष का सदेश देता है किन्तु उसमे राजनैतिक समझदारी का अभाव प्रतीत होता है, अत वर्ग-सघर्ष उतना प्रभावी नही बन

---

१ हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—डॉ० रामदरश मिश्र पृ० १६४
२ हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन पृ० ३०५
३ बाबा बटेसरनाथ—नागार्जुन पृ० ६६

सका—"इस कथा मे जमींदार और मजदूरो की टकराहटो को अनचीन्हा कर दिया है।"[1] किन्तु अनेक आंचलिक उपन्यासो मे शोषण के प्रति विद्रोह की चेतना को प्रसारित कर वर्ग-संघर्ष की स्थितियो को यथावत् अंकित किया गया है। 'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास मे 'घुरबिनवा' दोपहर को बासी-मुँह भैंस चराकर जगजीतसिंह (मालिक) के यहाँ खयका लेने पहुँचता है तो उसे पारिश्रमिक के बदले झिडकी, मार और गालियाँ सुनने को मिलती हैं। धनेसरा के मन मे इस शोषण के प्रति विद्रोह की भावना वर्गगत चेतना से उद्भूत दिखाई गई है—"ये आदमी के आगे कभी नही झुकना चाहिए। मुझे नाही भइया कि ई कूद के पीठ पर चढ जायँगे और ऐसी मवारी कस देंगे कि छूटना मुहाल हो जायेगा।"[2] 'माटी की महँक' उपन्यास मे गौरी की परिवर्तित मानसिकता शोषण के प्रति विद्रोह की स्थिति उत्पन्न करती है। वह दुनिया को आग लगा देना चाहती है, क्योंकि—"इन्सानियत की कीमत उसके विरुद्ध गलत अफवाह फैलाकर चुकाई जाती है। अनाथ बेवा को सहानुभूति के दो शब्द कहने के बदले गालियाँ दी जाती हैं।"[3] शोषण के प्रति विद्रोह द्वारा वर्ग-संघर्ष को स्वर देने वाली नारियाँ आंचलिक उपन्यासो मे बहुतायत मे मिलती है। 'वरुण के बेटे' की मधुरी, 'सत्ती मैया का चौरा' की कलसिया, 'मैला आचल' की मलारी, 'उग्रतारा' की उगनी, 'कुम्भीपाक' की कुन्ती, 'मुक्तावली' की मुक्ता, 'नदी फिर बह चली' की परवतिया और 'जल टूटता हुआ' की लखनी, बदमी आदि वर्गगत चेतना से अनुप्रेरित नारियाँ हैं।

"सामन्ती युग का शोषण, जिसके नियामक विशेषकर राजा और जमींदार होते हैं, अपनी जीर्णावस्था मे भी निर्धन तथा असहाय लोगों को त्रस्त करते हैं। शोषण की शृंखला मे राजा और जमींदार के सिपाही और कारिन्दे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।"[4] फलत. वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास मे शोषण की स्थितियो का यथार्थमूलक चित्रण किया गया है। राजा के मझले कुमार की शादी मे—"कन्धो पर बीस रवबर सोलह बेगारी भारी-सी एक तख्तपोश ढोये जा रहे थे, उस पर दरी और जाजिम बिछी थी। मय साज-बाज के एक रण्डी उस तख्तपोश पर नाच रही थी। तबला, डुग्गी, सारगी, मजीरा—सब साथ दे रहे थे।"[5] जीवन-यापन की सामग्री मे अथवा मजदूरी मे शोषक-वर्गों की नीति का विरोध यदि

---

१ आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प—डॉ० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० ५४
२ अलग-अलग वैतरणी—शिवप्रसाद सिंह, पृ० २५३-२५४
३. माटी की महँक—सच्चिदानन्द धूमकेतु, पृ० २०४
४ हिन्दी कथा साहित्य पर सोवियत क्रान्ति का प्रभाव—डॉ० पुरुषोत्तम वाजपेयी, पृ० ३१५
५ बाबा बटेसरनाथ—नागार्जुन, पृ० ३८

सामान्य किसान-वर्ग करता था तो उसे अमानवीय यंत्रणाएँ भुगतनी पड़ती थीं, किन्तु वर्गगत चेतना उन्हें निरन्तर शोषण के प्रति विद्रोह को प्रेरित करती थी—"कानून-कायदे की बात वह घर-बैठे बघारा करें, मुझे कोई परवाह नहीं। मैं, जमींदारों ने अगर इधर आँखें उठाईं तो उनकी आँखें फोड़ दूँगा।"[1] 'काका' उपन्यास में रामधन वर्ग-संघर्ष को उभारता है—"तुम देवता हो काका, पर भिखारी हो। नया जमाना नया आदमी चाहता है... मैं...अपनी आत्मा को घोटकर नहीं रह सकता...हम किसी की मेहरबानी पर पलने वाले लोग नहीं हैं।"[2] शोषण का विरोध करता हुआ मौसी कहता है—" हम निरिच्छर का खून पी जायेंगे। कौन था वह, कसा सालर !' 'एक मौका तो दे मौसी, बाघ की तरह उसकी गरदन तोड़कर खून न पिया तो...।"[3] इस प्रकार अन्य अनेक आंचलिक उपन्यासों में वर्गगत चेतना के प्रादुर्भाव के कारण शोषण के विरुद्ध विद्रोह की आवाज उठाई गयी है।

जन-जागरूकता की स्थिति

जन-जागरूकता से तात्पर्य है—वर्गगत चेतना। निरन्तर क्रूरताओं तथा प्रताड़नाओं से आक्रान्त शोषित-वर्ग अब जागरूक होकर वर्ग-संघर्ष के लिए तत्पर दिखाई देता है। 'लोक परलोक' उपन्यास में मगनीराम की पत्नी मेहतरानी को गाली देती है, तब मेहतरानी काम छोड़कर चली जाती है। जब मुहल्ले के लोग बदबू से परेशान हो जाते हैं तो भंगियों के मुहल्ले में मगनीराम स्वयं जाकर खुशामद करके उसे लाता है। जब वहाँ उसे पुरानी सहजीव-समीर्द की बातें बताता है तो भंगी कह उठता है—'पहले की बात पहले गई। अब जि नायें होइगी साब तुमारे की, के हमारी बइमर-बानिन कूँ कछू बोलि जाय।'[4] निम्न-जाति की जागरूकता का चित्रण श्री राजेन्द्र अवस्थी ने इन शब्दों में किया है—"अब गाँव की जनता जाग रही है। ये अब अपनी शक्ति को पहचानने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगे हैं। गाँव का एका बना रहा, लोगों की चेतना विकसित होती रही और गाँव की भलाई के काम होते रहे तो अन्तिम विजय इन्हीं की होगी।"[5] 'सूरज किरन की छाँव' में नव-जागरण की भावना विद्यमान है—"वह तुम्हारा पादरी है चाहो तो उसे वोट डाल सकती हो पर तुम्हें कोई दबा नहीं सकता, तुम्हारा पति भी नहीं। तुम

---

१ गंगा मैया—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १०८
२ काका—रांगेय राघव, पृ० ७४
३ जंगल के फूल—राजेन्द्र अवस्थी, पृ० १५५
४ लोक-परलोक—उदयशंकर भट्ट पृ० ११०
५, सती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ७०३-७०४

आजाद देश की नागरिक हो, जिसे चाहो वोट दे सकती हो''।"[1] 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में रतिनाथ की चाची कहती है कि—"मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ मगर इतना समझती हूँ कि पच्चीस साल से रूस वालों ने अपने यहाँ जो नया संसार बसाया है उसके अन्दर राक्षसों की बड़ी-से-बड़ी सेना भी मात खा जायेगी।'[2] इसी भाँति 'सत्ती मैया का चौरा' में भी जन-जागरूकता की स्थिति चित्रित करके वर्ग-संघर्ष की प्रेरणा दी है—"हमारे यहाँ यह अपार शक्ति अभी तक सोई पड़ी हुई है। इसे जगाने के लिए रूसी और चीनी नेताओं की तरह के आदमियों की जरूरत है।'[3]

ग्राम-चेतना की अभिव्यक्ति

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् सरपंचों की विचारधारा में भी बहुत परिवर्तन हुआ है। आंचलिक उपन्यासों में ग्राम-चेतना की समग्र अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः ग्रामवासियों में राष्ट्रीय भावना, देश-भक्ति और स्वतन्त्रता के प्रति ललक इन उपन्यासों में स्पष्टतः दृष्टिगत होती है। 'ब्रह्मपुत्र' का देवकान्त अंग्रेजों के शोषण से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्नशील दिखाया गया है—"मरना तो है एक-न-एक दिन, आगे या पीछे। मैं फाँसी की रस्सी पर हँसते-हँसते झूल जाऊँगा और मरने से पहले भारत माता की हथकड़ी और बेड़ी जितनी भी ढीली कर सकूँ, उतना ही अच्छा है।"[4] 'रतिनाथ की चाची' में ताराचरण की वाणी में युगीन स्वर समाहित है—"जमाना बदल गया है, हम जब अंग्रेजों की नाक में कौड़ी बाँधते हैं तो राजा बहादुर की बिसात उनका दामाद हम लिवा ले जाय, तब चलेंगे। अन्त में हुआ यही कि दो-एक बूढ़ों को छोड़कर और कोई नहीं गया।'"[5] ग्रामों में दलीय प्रतिबद्धता के कारण भी वर्ग-संघर्ष पनप रहा है। शोषित-वर्गों में चेतना की किरण फूट रही है। 'सूरज किरन की छाँव' की मिसेज बैजो मत-पत्र को पेटी के ऊपर ही रखा छोड़ जाती है और कहती है—"अन्दर डालने में क्या रखा है? पैरों में आज जो बेड़ी पड़ी हैं, कल भी पड़ी रहेगी—चाहे कोई जीते, चाहे कोई हारे। मेरी हालत तो यही बनी रहेगी।'"[6]

---

१ सूरज किरन की छाँव—राजेन्द्र अवस्थी, पृ० १४७
२. रतिनाथ की चाची—नागार्जुन, पृ० ११६
३ सत्ती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ६०१
४ ब्रह्मपुत्र—देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ७७
५ रतिनाथ की चाची—नागार्जुन, पृ० ११६
६ सूरज किरन की छाँव—राजेन्द्र अवस्थी, पृ० १२६

पिछड़े वर्ग के प्रति सहानुभूति

समाज में पिछड़े वर्गों के प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण उभरकर तभी सामने आता है जब परिश्रम करनेवालों का बाहुल्य होता है, उनकी संगठित शक्ति होती है तथा उनमें वर्गगत चेतना होती है। अभी तक सबलों द्वारा निर्बलों का शोषण एक समस्या बना हुआ है। सबलों के अत्याचारों से आक्रांत पिछड़े वर्गों के प्रति सहानुभूति के उद्गार सर्वत्र व्यक्त हुए हैं। 'नई पौध' के दुर्गानन्दन इस वर्ग के प्रति सहानुभूति की आवाज इस प्रकार उठाते हैं—"आप लोग सामाजिक विषमता के कारण जिस मुसीबत में फँस गए थे, उसके बारे में दिगम्बर से मेरी काफी चर्चा हो चुकी है और हमने जो फैसला किया है सो आपको मालूम हो गया होगा व्यक्ति संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है।"[1] 'परती परिकथा' उपन्यास में जितेन्द्र का जीवन पिछड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। 'बलचनमा' में शोषित वर्ग का पक्ष लेते हुए बलदेवा और कालीचरण के नेतृत्व में गाँव में जुलूस निकलता है तथा पिछड़े वर्ग की सहानुभूति में नारे लगाये जाते हैं—"किसान राज कायम हो! मजदूर राज कायम हो! गरीबों की पार्टी—सोशलिस्ट पार्टी!"[2]

सांस्कृतिक उत्थान की प्रेरणा

हिन्दी के उपन्यासकारों का लक्ष्य अंचलों की सांस्कृतिक मान्यताओं को उजागर कर विविधता में एकता लाने का सक्रिय प्रयास करना है। इसी कारण सांस्कृतिक पक्ष को आंचलिक उपन्यासों में पूर्णतः उभारा गया है—'सचमुच जीविका का अधिकार सर्वहारा-वर्ग की अपनी समस्या है। लेखक ने अपनी वर्ग संघर्षीय भावना को असामाजिक व सामाजिक तत्त्वों तक विस्तृत कर दिया है।'[3] "जीवन के व्यापक क्षेत्र का चित्रण आंचलिक उपन्यासों की विशेषता है। यह तो सत्य है ही कि आंचलिक उपन्यासों में कथानक के आंचलिक होने के कारण लोक-संस्कृति का प्रत्येक पहलू छूने की चेष्टा लक्षित है वहाँ जन-जीवन का प्रत्येक क्षेत्र चित्रित करने का आंचलिक उपन्यासकार यथासम्भव प्रयत्न करता है। इस प्रकार विस्तार-व्यापकता को दृष्टिगत रखकर तो आंचलिक उपन्यासों में प्रगतिशील तत्त्वों का अस्तित्व मानना ही पड़ता है।"[4] 'बूँद और समुद्र' के उपन्यासकार के अनुसार—'मनुष्य का आत्मविश्वास जगाना चाहिए, उसके

---

१ नई पौध—नागार्जुन, पृ० १३०-१३१

२ बलचनमा—नागार्जुन, पृ० ६५

३ राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन—डा० ब्रजभूषणसिंह आदर्श पृ० ४२२

४. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास—राधश्याम कौशिक, पृ० १०३

जीवन मे आस्था जगनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुःख मे अपना सुख-दुःख मानना चाहिए। विचारो मे भेद हो सकता है, विचारो के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होता है। उससे उत्तरोत्तर समन्वयात्मक विकास भी।"[1]

धर्म संस्कृति का ही अंग माना जाता रहा है। पहले सांस्कृतिक उत्थान में धार्मिक आस्था अपना महत्त्व रखती थी, किन्तु आज प्रगतिशील विचारो के समर्थक सांस्कृतिक उत्थान में धर्म को कोई स्थान नही देते हैं, क्योंकि धर्म के नाम पर अपार शोषण हुआ है। 'नई पौध' मे पण्डितजी का कहना सर्वथा समीचीन है—"अब तो खैर सरधा-विश्वास कम हो गया। पहले मगर भागवत से काफी आमद थी।"[2] 'मुक्तावती' के पण्डित माधव मिश्र नवीन विचारो के होते हुए भी कहीं-न-कहीं पुरातन परम्पराओ से अपने-आपको प्रतिबद्ध पाते हैं जो सांस्कृतिक उत्थान में बाधक बनकर वर्ग-संघर्ष का कारण बनती हैं—"अब इन धर्म और धर्मशास्त्रो की मानव-समाज को जरूरत नही रही। इन धर्मों और धर्मशास्त्रो की आड मे सदियों से सारे विश्व मे मनुष्य-समाज पर अत्याचार होते आये है और आज मणीपुर की गरीब जनता भी धर्मशास्त्र के अत्याचार की ही शिकार बनी कराह रही है।"[3] 'माटी की महँक' उपन्यास मे मुकर्जी बाबू सांस्कृतिक उत्थान में युग-परिवर्तनकारी विचारो को महत्त्व देते हैं किन्तु हृदय के किसी कोने मे पुरानी परम्पराओं के प्रति छिपी आस्था अभी भी विद्यमान है। अतः बातों-ही-बातों मे वह गौरी से कह जाते हैं, "आज के जमाने मे धर्म-कर्म सभी उठता जा रहा है। ईश्वर का नाम नही लेने मे लोग अपनी प्रतिष्ठा समझ रहे हैं। भगवान के भक्तो को लोग ओछी निगाहो से देखते हैं।"[4]

राजनैतिक चेतना

आंचलिक उपन्यासो मे राजनैतिक चेतना वर्ग-संघर्ष का कारण बनकर उभरी है। यही चेतना श्रमिक-वर्ग मे संगठन की शक्ति बनकर प्रकट हुई है। 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास मे नयी पीढी को आशीर्वाद देता हुआ वट वृक्ष कहता है—"मैं आशीर्वाद देता हूँ, रुपउली वालो की यह एकता हमेशा बनी रहे! सुखमय जीवन के लिए तुम्हारी यह सामूहिक प्रचेष्टा कभी मन्द न हो! स्वार्थ की व्यक्तिगत भावना कभी तुम्हारी चेतना को धुंधला न बनाए!"[5] प्रगतिशील चिन्तन को प्रदर्शित करते हुए लुत्तो कहता है—"लहरो को गिनकर

---

१. बूँद और समुद्र—अमृतलाल नागर, पृ० ६०६
२ नई पौध—नागार्जुन, पृ० ४
३ मुक्तावती—बलभद्र ठाकुर, पृ० ३१७
४. माटी की महँक—सच्चिदानन्द धूमकेतु, पृ० ४२
५ बाबा बटेसरनाथ—नागार्जुन, पृ० १३६

भी आमदनी करनेवाला आदमी ही सरकारी कर्मचारी हो सकता है। कर्मचारी इतना कच्चा नहीं कि अपनी पोल खोल दे। एक हजार तो सिर्फ छित्तन बाबू दे रहे हैं "नये कानून की लहरें आती हैं, जाती हैं, चाँदी में रुपये मछलियों की तरह छटपटाते हैं। कागज में नोट पंछियों की तरह फड़फड़ाकर उड़ते हैं।"[1] शोषित वर्ग वर्गगत चेतना के फलस्वरूप राजनैतिक भ्रष्टाचार को समझने लगा है। 'कब तक पुकारूँ' का सुखराम कहता है – "यह कमीने नीच ही आज इन्सान हैं। इनके अतिरिक्त सबमें पाप घुस गया है, क्योंकि सबके स्वार्थ और अहंकारों ने इनकी आत्मा को दास बना लिया है। ये कमीन और गरीब अशिक्षा और अन्धकार में छटपटा रहे हैं। शोषण की घुटन सदा नहीं रहेगी। वह मिट जायेगी, सदा के लिए मिट जायेगी।"[2] 'बलचनमा' में उपन्यासकार का उद्देश्य—'बलचनमा के माध्यम से दीनहीन सर्वहारा-वर्ग का साधन-सम्पन्न शोषक-वर्ग के प्रति, वर्ग-संघर्ष का चित्रण कर, साधनहीन वर्ग में वर्ग-संघर्ष की ज्वाला को प्रदीप्त करना है।'[3] 'मैला आँचल' में रेणु ने—"गाँव की मर्यादा के भीतर समेटकर तत्कालीन राजनैतिक दलों के आपसी टकराव और अतिवादिताओं को बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया है।'[4] उसी के आधार पर राजनैतिक चेतना को उभारा है। विसागमुख के निवासियों ने ब्रह्मपुत्र में बहकर आनेवाली लकड़ी पर लगे टैक्स तथा पुलिस के अत्याचार के विरोध में अपनी आवाज उठाई है। वे राजनैतिक शोषण के प्रति भी सचेत हैं—'जैसे ही ब्रह्मपुत्र में बहकर आती लकड़ी पर टैक्स लगा हुआ है वैसे ही पुलिस धौंस जमाती है, वैसे ही हमारे नेता हम केवल वोट लेने के समय ही याद करते हैं।"[5] 'परती-परिकथा' में सामान्य जन राजनैतिक चेतना से युक्त दिखाई देता है। इस प्रकार आँचलिक उपन्यासों में राजनैतिक चेतना की स्थितियों का बहु-विध चित्रण किया गया है।

आंचलिक उपन्यासों में निरूपित वर्ग

आंचलिक उपन्यासों में सामन्तवादी तथा पूंजीवादी वर्गों की शोषक वृत्तियों का खुलकर चित्रण किया गया है। वर्गीय चेतना के आधार पर शोषित-वर्ग अत्याचारों का विरोध तथा संघर्ष करता है, किन्तु आर्थिक परिस्थितियों से विवश होकर उसे सब-कुछ सहन करना पड़ता है। उच्च-वर्गों में आंचलिक

१ परती परिकथा—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० १५७-१५८
२. कब तक पुकारूँ—रांगेय राघव, पृ० ६२८
३ हिंदी उपन्यासों में शास्त्रीय विवेचन—डा० महावीरमल लोढ़ा, पृ० ८३
४. समसामयिक हिंदी साहित्य उपलब्धियाँ—श्री मन्मथनाथ गुप्त, पृ० १३५
५ ब्रह्मपुत्र—देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ४४५

जीवन की विशिष्टताएँ परिलक्षित नहीं होती। "इस वर्ग के पात्र अधिकतर ऐसी विशेषताओं से युक्त होते हैं - 'बलचनमा' में छोटे मालिक और बड़े मालिक तथा मालकिन जिस अत्याचारी एवं शोषक प्रवृत्ति का परिचय देते हैं वही 'लोहे के पंख' के बच्चा बाबू 'अविरल आँसू' के निलहा साहब स्टील और 'अलग-अलग वैतरणी' के बुझारथसिंह के चरित्र में मिलती हैं।"[1] आलोच्य आंचलिक उपन्यासों में प्रमुख शोषक और शोषित वर्ग इस प्रकार हैं—

शोषक-वर्ग

जमींदार-वर्ग

'रतिनाथ की चाची' में शुभकपूर गाँव अशिक्षा तथा जमींदारी-शोषण से ग्रस्त है—"इस मौजे के मालिक रायबहादुर दुर्गानन्दनसिंह बड़े जमींदार तो थे ही, साथ ही लगान-तगादा का भी भारी कारोबार चलाते थे। तीन लाख रुपये पचीसों बस्तियों के इस समुद्र में दाँत-निपोड़े पूँछ खड़ी किए मगरों की तरह टहल-बूझ रहे थे। ब्याज की दर प्रतिमाह डेढ़ रुपया सैकड़ा थी···पुराने अँगूठे को साल साल नया कराते जाते। सूद भी मूल धन बन जाता···हवेली में नगद रुपया रखने के लिए चहबच्चा बनवाना पड़ा था।"[2] जमींदारी समाप्त हो चुकी थी, किन्तु सभी पुराने जमींदार बड़े कृषक बनकर संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं - "वर्शी बाबू जमींदार नहीं, किसान हैं। दस हजार बीघे जमीन है। दो दो हवाई जहाज रखते हैं। दूसरे हैं भोला बाबू। पन्द्रह हजार बीघे जमीन रखते हैं। डेढ़ दर्जन ट्रैक्टर रखते हैं। पर यह बात भी सत्य है कि ये जमींदार नहीं हैं।"[3]

'ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने में ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों ने भारत की आंचलिक आत्मा को अपनी गिरफ्त में भलीभाँति जकड़ने के लिए स्वार्थी देश-द्रोहियों का एक नया वर्ग पैदा किया था—जमींदार-वर्ग। खेतिहरों और छोटे किसानों को अपने नृशंस नियन्त्रण में रखकर शोषण की चक्कियाँ अबाध गति से चलाते हुए भारत में अंग्रेजी सरकार का सुदृढ़ स्तम्भ बने रहना ही इस वर्ग का प्रमुख उद्देश्य था।'[4] जमींदारों की ऐय्याशवृत्ति का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए 'हिरना साँवरी' उपन्यास में बताया गया है—'जब जमींदारी की प्रथा थी तो वहाँ दूर-दूर से बाइयाँ आकर नाचती-गाती थी और दाऊ जो उस समय

---

१ हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि—डा० आदर्श सक्सेना, पृ० १७४
२ रतिनाथ की चाची—नागार्जुन, पृ० ६७
३. परती परिकथा—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० ३१-३२
४. बाबा बटेसरनाथ—नागार्जुन (भूमिका से)

सेहरा नहीं गाएगी, वे सेहरा नहीं बाँधेंगे।'[1] इस प्रकार ताल्लुकेदार-वर्ग निम्न-वर्ग की नारियों का शोषण करते थे। धरणीधर को भी ताल्लुकेदारों की प्रवृत्तियाँ जन्मजात मिली हैं—'बिना आधे दर्जन अर्दलियों के उसका काम नहीं चलता था। एक साहब की मोटर पोंछ रहा है, दूसरा कपड़े निकाल रहा है, तीसरा जूते झाड़ रहा है।'"[2]

ताल्लुकेदार-वर्ग की ऐय्याश-प्रवृत्ति ने अनेक को दास बना लिया। दासत्व के साथ-साथ उनकी हुकूमतों ने निम्नवर्ग का निरन्तर शोषण किया, किन्तु वर्ग-गत चेतना एवं समाजवादी मार्क्सवादी विचारधारा के प्रसार-प्रचार के कारण अब वह वर्ग लुप्तप्राय हो गया है।

ठेकेदार-वर्ग

ठेकेदार-वर्ग के लोग मजदूरों की छँटनी कर तथा उन्हें कम मजदूरी देकर शोषण करते हैं। 'साँप और सीढ़ी' उपन्यास में इस वर्ग के शोषण का वर्णन किया गया है—"यह सब ठेकेदारों की बदमाशी है। यहाँ की मजदूरों की छँटनी के लिए ही बाहर से लोग लाए जा रहे हैं और हम उनके खिलाफ खड़े होना चाहिए।"[3] यदि मजदूर ठेकेदार पर शोषण का आरोप लगाता है तो ठेकेदार उन्हें कामचोर कहकर उन पर अनेकानेक झूठे आरोप लगाता है—"अभी कुछ दिन हुए सोनपुर में दयाशंकर मिला था। वह बता रहा था कि ठेकेदार यहाँ के मजदूरों से तंग आ गये हैं। कहते हैं इधर का मजदूर मुफ्तखोर और कामचोर होता ही है, पैसे भी ज्यादा माँगता है। वह तो नया नया काम था उन्हें आदमियों की जरूरत थी और ये पेशेवर मजदूर खाली नहीं थे।'[4] ठेकेदार-वर्ग निरन्तर चोरबाजारी करता है और दोषारोपण मजदूर-वर्ग पर होता है। उनकी यही नीति आर्थिक विषमता की स्थितियाँ पैदा कर देती है। गरीबों की स्थिति वैसी ही बनी रहती है। 'जल टूटता हुआ' उपन्यास में जमींदारी टूटने पर ठेकेदार वर्ग को भूमि-वितरण का ठेका दे दिया जाता है। मजदूर संघर्ष-भरे वातावरण में विद्रोही आवाज बुलन्द करते हैं—'पैसेवालों को खेत मिल रहे हैं, पैसेवालों को व्यापार मिल रहा है, चुनाव के लिए टिकिट मिल रहा है।'"[5]

---

१ श्मशान चम्पा—शिवानी, पृ० ८२
२ वही, पृ० ३६
३ साँप और सीढ़ी—शानी, पृ० ६४
४ वही, पृ० ६५
५ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ३३८

ठाकुर-वर्ग

ठाकुर-वर्ग भी शोषक है। शोषक-वर्गों के मध्य आपस मे भी संघर्ष की स्थितियाँ व्याप्त रहती हैं। 'लोक परलोक' उपन्यास मे गाँव के ठाकुर का लडका दुर्गासिह साधुवर्ग की शोषक-वृत्ति को उजागर करते हुए उनकी निन्दा करता है—"तो वे साधु हैं, दिन मे माला जपते, राति कूँ लुगाई रखते।"'हम जाई गाम मे रैंतें, जे साधु लगोटी मे रुपया बाँधे फिरतें, मूँड मुँडाय भये सन्यासी। हम तो साप कैतें चाएँ काऊ बुरी लगे, चाएँ काऊ भली।"[१] 'रूप और छाया' मे ठाकुर वीरसिंह के माध्यम से लेखिका ने—'समकालीन सामाजिक समस्याओं, समाज की स्वार्थपरता, धन-तृष्णा, बर्बरता, कृत्रिम सभ्यता और नारी शोषण आदि कुप्रवृत्तियो की चर्चा करते हुए प्रचलित सामाजिक कुरूपताओं के विरुद्ध विष उगला है।"[२] जमीदार बिन्दासिह जमीदारी-उन्मूलन के उपरान्त, अपनी झूठी प्रतिष्ठा का त्याग कर, स्वयं शोषण-चक्र मे पिसने से अपने-आपको बचाने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे अपनी पत्नी से विवाह मे कर्ज लेने की बात पर कहते हैं—"राजो, ठाकुर-घराने मे कोई कर्ज नहीं लेता, इसलिए मैं कर्ज नही लेना चाहता। कर्ज लेकर शादी-ब्याह करना अथवा कोई भी उत्सव मनाना स्वाभिमानी देश के नागरिको के लिए अभिशाप है।"[३] इस प्रकार अपदस्थ होने पर भी यह वर्ग अपने स्वाभिमान को बनाये रखने के लिए कृतसंकल्प है। उसकी शोषण की प्रक्रिया यथावत् चालू रहती है।

व्यापारी-वर्ग

व्यापारी-वर्ग अतिरिक्त मुनाफा कमाने की दृष्टि से शोषण करता है। 'होलदार' उपन्यास के—"लाला अमरनाथ की अलमोड़ा मे कपड़े की बहुत बडी दुकान थी और दुकानदारी के अलावा वह लकडी-चिरान की ठेकेदारी भी किया करता था। जसौतसिह तख्ते चीरने के हुनर मे बडा माहिर था और बहुधा उसे ठेकेदारो के निमन्त्रण आते थे। मजदूरी भी अच्छी मिल जाती थी।"[४] इसी जसौतसिह के माध्यम से लाला अमरनाथ गरीबो का शोषण करते थे। उनकी शोषक-वृत्ति ने शोषितो के हृदय मे वर्ग संघर्ष की चेतना उत्पन्न की। मुनाफा व्यापारी-वर्ग की कमजोरी है। वर्ग-वैषम्य एवं सामाजिक विकृति का एकमात्र कारण भी मुनाफा है। अतिरिक्त मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति के कारण

---

१ लोक परलोक—उदयशंकर भट्ट, पृ० ३८
२ रूप और छाया—सुश्री सन्तोष सचदेवा, पृ० ३७
३. वही, पृ० २३
४ होलदार—शैलेश मटियानी, पृ० १४०

व्यापारी-वर्ग सामान्य जनता का शोषण करता है। 'जल टूटता हुआ' के सुगन मास्टर खाली-पेट पन्द्रह अगस्त का पर्व मनाता है—"तीन महीने से तनख्वाह नहीं मिली थी, खेत में कुछ हुआ ही नहीं, उधार कहाँ तक देगा बनिया।"[1] इन्हीं विचारों से आक्रान्त होकर बनिये की महाजनी-वृत्ति का शिकार बनते हैं। 'परती परिकथा' में रोशन बिस्वाँ अपनी व्यापारिक वृत्ति के कारण शोषक के रूप में चित्रित हुआ है—"सर्वे के समय हजार-बारह सौ रुपये हमेशा घर में मौजूद रखने के लिए जमीन वालों ने रोशन बिस्वाँ से रुपया माँगा। बिस्वाँ ने सबको एक ही जवाब दिया, 'जमीन बधकी कौन लेता है आजकल? जेवर लाइए, नहीं तो जमीन-फरोख्तनामा लिख दीजिए।'''तीन सौ बीघे जमीन खरीदी है उसने।' "[2] इस प्रकार उसने अनेक गरीबों का शोषण किया। गाँव का मुखिया भी किसानों का भरपूर शोषण करता है—"मुखिया का खलिहान देखकर गाँव के कितने लोग रो पड़ते थे। धीमड़ के खलिहान में थोड़ा-सा डाँठ था केवल मुट्ठीभर। वह मुखिया के खलिहान को देखता हुआ इधर से उधर गुजर जाता। इस डाँठ में उसके भी खून-पसीने का हिस्सा शामिल है—यह सोचता हुआ वह उदास हो जाता है। कितना धूर्त्त है यह बेईमान, सौ रुपये कर्ज का पाँच सौ बना लिए और मेरे खेत हड़प लिए।"[3] इस प्रकार कालाबाजारी तथा अतिरिक्त मुनाफा हड़पने की दृष्टि से व्यापारी-वर्ग जन का शोषण करता है।

शोषित-वर्ग

शोषित-वर्ग सदैव दो समस्याओं में निरन्तर उलझा रहता है—एक है उनका पारिश्रमिक और दूसरा उनका आर्थिक शोषण। आंचलिक उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना से अनुप्रेरित शोषित-वर्ग सदैव वर्ग-संघर्ष के लिए तत्पर दिखाई देता है। आंचलिक उपन्यासों में निरूपित प्रमुख शोषित-वर्ग इस प्रकार हैं—

मजदूर-वर्ग

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आंचल' में कालीचरण एक समाजवादी नेता है। वह मजदूरों को शोषण से मुक्त होने की प्रेरणा देता है। युगों से पीड़ित, उपेक्षित इस वर्ग के लोगों को नयी दिशा प्रदान करता है—"मैं आप लोगों के दिल में आग लगाना चाहता हूँ। सोये हुओं को जगाना चाहता हूँ।'''

---

१. जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ८-६

२. परती परिकथा—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० ४१

३ पानी के प्राचीर—रामदरश मिश्र, पृ० २६७

आप अपने हकों को पहचानो। आप भी आदमी हैं, आपको आदमी का सभी हक मिलना चाहिए।"[1] 'बलचनमा' में वर्ग-संघर्ष का ही परिणाम है कि जमींदार के खिलाफ डॉ० रहमान की रहनुमाई में किसान-मजदूरों का एक संगठन बनता है तथा मजदूरों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करता है—"धरती किसकी ? जोते-बोये उसकी। किसान की आजादी आसमान से उतरकर नहीं आयेगी। वह पैदा होगी नीचे जुते धरती के भुरभुरे ढेलों को फोड़कर।"[2] 'वरुण के बेटे' में मजदूर-वर्ग का वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखता है कि किस प्रकार यह वर्ग अपनी रोटी-रोजी कमाने के लिए आपदाओं के मुँह में घुसकर संघर्षों से जूझता है—"दुनिया जब सोती है ये रात को गरोखर में जाल फैलाते हैं, बर्फ से जमे पानी में डुबकियाँ लगाते हैं। पुआल इनका बिछौना है, नंग-धड़ंग इनकी नियति है, भूख से तड़पना इनकी आदत है। रात को जब खुरखुन घर लौटता है और पत्नी से कुछ खाने को माँगता है तो काँपते शरीर को मिलते हैं मुट्ठी-भर कच्चे चावल।"[3] थके हुए खुरखुन में इतनी ताकत नहीं होती कि वह कच्चे चावलों को चबाए, फलतः वह उन्हें भिगो देता है और कहता है—"कच्चे चावलों से दाँत-मसूड़ों की कसरत नाहक कौन करवाए !"[4]

'होलदार' उपन्यास में मजदूर-वर्ग की कठिन जीविका का वर्णन किया गया है—"देख गुसैंणी, हम गरीबों का घर क्या गुलजार होता है ? खसम हमारे दिन-भर ओडगिरी, बढ़ईगिरी करेंगे या अलमोड़ा की बाजार जाकर लकड़ियों के गढ़ौल बेचेंगे, तब जाकर घर में जरा नूण-तेल-तमाखू की सूरत दिखाई देती है। अपनी खेती हम फुटकपालियों के पास ठहरी नहीं। पराए खेतों में अपने हाड़ों का रस निचोड़ा, तब कहीं जाके हमको चार डाडू जौल सनादिरे का नसीब होता है, गुसैंणी !"[5] 'वरुण के बेटे' उपन्यास में श्रमदान का कार्य भी मजदूरी पर हो रहा बताया गया है। सम्पन्न वर्ग द्वारा मजदूरों के शोषण पर विचार करता हुआ खुरखुन कहता है—'हे भगवान, कैसा जमाना आया है ! पच्चीस करोड़, पचास करोड़ रुपइया लगाकर दस-पन्द्रह साल में कोसी बाँध तैयार होंगे, हजारों का महावारी चारा पानेवाले पचासों आफिसर बहाल हुए हैं। लाखों के ठेके मिले हैं ठेकेदारों को ''''''पानी की तरह रकम बहाई जा रही है। फिर गरीब मजदूरों के साथ ही सुराजी बाबू लोग इस तरह का खिलवाड़

१ मैला आंचल—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० १५८
२ बलचनमा—नागार्जुन, पृ० २००
३. आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प—डा० ज्ञानचन्द गुप्त पृ० ४२
४ वरुण के बेटे—नागार्जुन पृ० १५
५ होलदार—शैलेश मटियानी, पृ० ३११

क्यों कर रहे हैं ? ऐसा अनर्थ तो न कभी सुना न देखा।''[1] मजदूर-वर्ग की निर्धनता का वर्णन 'पानी के प्राचीर' उपन्यास में किया गया है —'वे बिचारे ऐसे गन्दे स्थानों पर रहते हैं जहाँ से मिल का गन्धकभरा गराज चोटा जो मिल की नालियों में बहकर आस-पास के वातावरण को बदबू से भर देता है, वही इन लोगों की भूख को लुप्त कर रहा है।''[2] मजदूरों के दु:ख-दर्द को समझनेवाला मालिक शोषक-वर्ग में कोई विरला ही होता है अन्यथा वे निरन्तर मजदूर-वर्ग के शोषण में रत रहते हैं। 'जल टूटता हुआ' में कहा गया है— 'मजूर मजूर नहीं हैं, यन्त्र हैं। काम करते-करते जरा-सा किसी के हाथ थम गये, मालिक गालियों की बौछार करने लगा। कोई मजूरिन अपने नन्हे-से बालक को दूध पिलाने के लिए उठ गई तो गाली तो मिली ही, मजूरी भी काट ली गयी।''[3] इसी उपन्यास में सतीश जमींदार की नौकरी करता है। उसे वहाँ एक नयी ही दुनिया दिखाई दी —'एक दुनिया जिसका रंग मजदूरों और किसानों की चीख चिल्लाहटों के कंधे पर खड़ा था, जिसके कमल इन गरीबों के पसीनों के कीचड़ में खिले जिसका प्रकाश गरीबों की हड्डियों की रगड़ से फूटता था, जिसकी गोदी में खेलनेवाले कारिन्दों और दरबारियों की साँस में सड़ी मछली की गंध आती थी।'[4]

किसान-वर्ग

किसान-वर्ग भी शोषित वर्ग है। आधा गाँव में मिगदाद मि कहते हैं, आजादी के उपरान्त भी हमारे जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया 'हम ते भाई किसान हैं। पहलू वे हल चलाते रहे, अबकी हल चला रहे। हम ताई देखत बड़ी परसराम भैया, कि ई जमींदार लोगन का मिजाज जमींदारी के चल जाये से भी ठीक ना भया है जबो काश्तकारन का एका ना हुई, जमींदार लोगन का डेंगा हमनी के सिर से ना हटी।'[5] डॉ० मंजुलता सिंह के अनुसार— ''बलचनमा' भी एक साधनहीन परिश्रमी और ईमानदार किसान-जीवन की गाथा है। वर्ग-वैषम्य शोषण, बुर्जुआ-मनोवृत्ति पर 'बलचनमा' के माध्यम से लेखक ने कठोर व्यंग किए हैं।'[6] 'मैना आँचल' का प्रशान्त शोषण से आक्रान्त किसानों को देखकर व्रत लेता है— 'ममता ! मैं फिर काम शुरू करूँगा यहीं,

---

१ वरुण के बेटे—नागार्जुन पृ० ४४-४५

२ पानी के प्राचीर—रामदरश मिश्र, पृ० १५७

३ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र पृ० ६०

४ वही, पृ० ११३

५ आधा गाँव—राही मासूम रज़ा, पृ० ४२३

६ हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग—डा० मंजुलता सिंह, पृ० ३४७

इसी गाँव मे। मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी धरती पर प्यार के पौधे लहलहायेंगे। मैं साधना करूँगा ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आचल-तले। कम-से कम एक ही गाँव के प्राणियो के मुरझाए होठो पर मुस्कराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय मे आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।'[1] 'प्रशान्त के मन मे सर्वहारा-वर्ग के कल्याण की भावना वर्गगत चेतना के आधार पर जाग्रत होती है। सीधा सादा रास्ता' का ब्रह्मदत्त किसान-वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है, वह किसानो एव मजदूरो के हित-चिन्तन मे अपना जीवन अर्पण कर देता है। वह उच्च-वर्ग को सम्बोधित करते हुए कहता है—"आप मजदूरो का, गरीब किसानो का खाना छीनकर खा रहे हैं, आप उनकी अशिक्षा का लाभ उठाना चाहते हैं, आप अग्रेजो से लडना नहीं चाहते, आप अपने राज के लिए लडना चाहते हैं। आप चाहते हैं कि आपके बच्चे पढें साफ-सुथरे रहे। जो यह आपके लिए आवश्यकताएँ हैं, वह मजदूरो के लिए ऐय्याशियाँ करार दी जाती हैं क्योकि आप अपने स्वार्थ मे अधे हैं।"[2]

'मैला आचल' तथा 'परती परिकथा' उपन्यासो म किसानो के वर्ग वर्ग सघर्ष म रत चित्रित किये गए हैं। शोषण के खिलाफ वह विद्रोह की आवाज उठाता है—"जिलेभर के किसानो और भूमिहीनो मे महाभारत मचा हुआ है। सिर्फ भूमिहीनों मे ही नही, डेढ सौ बीघे के मालिक ने भी दूसरे बडे किसान की जमीन पर दावे किये हैं।"[3] जमीदारी-उन्मूलन तथा किसानो के विद्रोह ने भी मालिको पर कोई असर नही किया—"व्यक्तिगत जोतो की जमीन, बाग-बगीचे, कुँआ चभच्चा और पोखर, देवी-देवता के नाम चढी हुई जायदाद, चरागाह, परती-पतात, नदियो के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछएक अचल सम्पत्तियो के मामले मे जमीदारी उन्मूलन-कानून ने भू स्वामियो को ही खुली छूट दे रखी थी।'[4] फलस्वरूप कृषक-वर्ग का शोषण यथावत् बना रहा। कृषक-वर्ग की दीन हीन हालत ने उन्हे भाग्य-भरोसे बैठे रहने की अपेक्षा सघर्ष करने की प्रेरणा दी है।

नारी-वर्ग

नारी वर्ग सदियो से शोषित होता रहा है तथा आज भी उसका शोषण हो रहा है। नारी जीवन की अनेक समस्याएँ हैं जो उसके शोषित होने के लिए उत्तरदायी हैं। नारी चेतना के प्रादुर्भाव के कारण नारी कितनी भी शिक्षित हो

---

१ मैला आंचल—फणीश्वरनाथ रेणु पृ० ४०७
२. सीधा सादा रास्ता—डा० रागेय राघव, पृ० २८६
३ परती परिकथा—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० ३४
४ वरुण के बेटे—नागार्जुन, पृ० ३१

जाए, आर्थिक दृष्टि से कितनी भी आत्म-निर्भर हो जाए, किन्तु सत्य यह है कि आज भी यह वर्ग शोषण के चक्र मे निरन्तर पिस रहा है। इसका कारण पुरुष-वर्ग की शोषक-वृत्ति एवं असमानता का व्यवहार है। 'चौथी मुट्ठी' उपन्यास मे नारी-शोषण का चित्रण किया गया है—"सचमुच रतनसिंह डोगरी ने कभी कौशिला को कुतिया से ज्यादा महत्त्व नहीं दिया। सड़कों पर आवारा फिरने-वाली ढोली कुतिया की तरह कौशिला सिर्फ अपने ससुर की ही नहीं बल्कि सास की भी लाछनाओं, प्रताडनाओं के बीच पनपती रही।"[1] इसी उपन्यास की मोतिमा ऐसी ही कपालफूटी थी जिसे कमरतोड़ काम करने के उपरान्त बदले में सिर्फ रोटियों का सहारा मिलता था। प्यार-दुलार के नाम पर प्रताडनाओं, लाछनाओं के अतिरिक्त और कुछ नही।[2] अर्थ के आधार पर भी नारी-वर्ग का शोषण किया गया है। चम्पा का तिरस्कार करने तथा रुपये के आधार पर उसके शोषण करने पर वह ठाकुर से कहती है—"मुझे तुमसे रुपया नहीं चाहिए, ठाकुर! मैं तुम्हारी ब्याहता हूँ, तुम्हारा साथ चाहती हूँ। तुम जिस आग में मुझे झोंक गये हो उसे और तेज मत करो। इन रुपयों को अपने पास ही रखो।"[3] 'नई पौध' उपन्यास में खोंखा पण्डित रुपया लेकर अपनी नातिन का ब्याह बूढ़े से कर देता है—" खचिया-भर रुपैया गिनाया है पंडित ने।" 'अरे भइया! एको गो दाँत नहीं होगा उसके' बुढ़वा भारी मातबर है।'[4]

'जल टूटता हुआ' में बदमी को सेठ चम्पूलाल के यहाँ नौकरी करने के लिए उसका पति मजबूर करता है। सेठ पैसे के आधार पर बदमी की अस्मत लूटना चाहता है। बदमी जैसे तैसे बचकर भाग जाती है तथा अपने आदमी से शिकायत करती है तो उसका आदमी उसे पीटता हुआ कहता है—'हरजाई बड़ी पतिवरता बनी है तो रख अपना पतिवरतापन।" "मैं तो सन्न रह गयी उसका व्यवहार देखकर। और धीरे-धीरे मेरी समझ में बात आयी कि अस्मत बेचकर खाना ही इस घर का पेशा है। ननद सबकी मरजी से यह सब करती है, ससुराल नहीं जाती। बुढ़िया सास बनी-ठनी घूमती है सो इसीलिए। यह निकम्मा मरद सिंगार-पटार करके जुआ खेलता है, शराब पीता है। क्या कहूँ तिवारी जी! एक ओर मैं, दूसरी ओर सारा घर।'[5] नारी का शोषण बहुविधि से किया जाता है। पुरुष की सन्देह-वृत्ति नारी के जीवन में विष का बीज बो देती है। ग्राम्यांचल मे

१ चौथी मुट्ठी—शैलेश मटियानी, पृ० १५
२. वही, पृ० ७७
३ तीसरा पत्थर—रामकुमार भ्रमर, पृ० १४१
४. नई पौध—नागार्जुन, पृ० ३२
५ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० १४३-१४४

नारी घर का कार्य करने के साथ-साथ दूसरों के खेतों पर काम करने भी जाती है। 'एक मूँठ सरसों' उपन्यास में देवकी को उमेदसिंह घर से निकालकर दर-दर की भिखारिन बनने के लिए मजबूर कर देता है—"क्यों बे ससुरी, तूने क्या लगन नोट कर रखा है गाभिन होने का ?···मेरे साथ पौइण्टवाजी तू क्या लड़ेगी, ससुरी ? कैसी-कैसी सुसुरियों को मजा मारने के बाद चूतड़ों पर लात मार-मार के निकाल दिया है मैंने।"[1] इस सन्देह-वृत्ति के कारण उमेदसिंह असजीली देवकी को लात मारकर निकाल देता है। निष्कर्षतः हम देखते हैं कि नारी का शोषण अनेक प्रकार से किया गया है। उसकी शोषण-प्रक्रिया में अनेक समस्याएँ जुड़ी रही हैं, यथा—दहेज, वैधव्य, अशिक्षा, विवाह आदि। इन सभी समस्याओं से आक्रान्त नारी दासत्व ग्रहण करते हुए भी प्रताड़ित रहती है। आर्थिक स्वावलम्बन एवं शिक्षा के प्रसार ने आज नारी-वर्ग को चेतना प्रदान की है और उसे शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान की है।

सर्वहारा-वर्ग

सर्वहारा-वर्ग शोषितों का समवेत-वर्ग है जिसका चिन्तन वर्ग-विहीन तथा शोषणरहित समाज की स्थापना के लिए क्रियाशील रहता है। यह वर्ग शोषण के विरुद्ध लड़ता है। यह वर्ग वर्ग-संघर्ष के माध्यम से कुछ समय के लिए राज्य-सत्ता अपने हाथ में लेकर राज्य-विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है। सर्वहारा-वर्ग के व्यक्ति किसी प्रकार के शोषण को बर्दाश्त नहीं करते हैं। 'बलचनमा' उपन्यास का नायक बलचनमा सर्वहारा-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह विचारपूर्वक कहता है—"सच जानो भैया, उस बखत मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि जैसे अंग्रेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू भैया लोग एक हो रहे हैं, हल्ला-गुल्ला और झगड़ा-झंझट मचा रहे हैं, उसी तरह जन-बनिहार, कुली-मजूर और बहिया-खवास लोगों को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना होगा।"[2] बलचनमा के जीवन में विद्रोह की ज्वलन्त चेतना का सस्पर्श है जो रचनाकार की साम्यवादी दृष्टि को व्यक्त करता है।

'बाबा बटेसरनाथ' में शोषण के प्रति प्रतिरोध के आधार पर सक्रिय होकर सर्वहारा-वर्ग एक हो जाता है। इस एकता के आधार पर जमींदार दयानाथ के शोषण का विरोध करता है। जब जमींदार ने दयानाथ के शोषण के बारे में पूछा—" 'तुम सब की क्या राय है ?' 'कछार में या भिड़ पर हल नहीं चलेगा।' लोगों ने एक स्वर में कहा। दयानाथ ने फिर पूछा, 'नहीं चलेगा ?'

---

१ एक मूँठ सरसों—शैलेश मटियानी, पृ० ६

२ बलचनमा—नागार्जुन, पृ० ६६

'नही, नही, नही !' जोरो की आवाज आई उसी भीड़ के अन्दर से। दयानाथ ने देखा, सभी तरह के लोग हैं इसम—पण्डित शशिनाथ ठाकुर, हाजी करीमबक्स हैं मुसम्मात फुलिया है, अहीरो की बिरादरी के गौन उद महतो और सहदेव राउत हैं, भुट्टू पासवान हैं विजयबहादुरसिंह सिसोदिया हैं, जहदलो ओलहा हैं सोमना दोलिया है, अचवमनि मुसम्मात है, खेतिहर हैं, बनिहार हैं, हलवाहे-चरवाहे हैं—कौन नही ?'[1] इस विरोध मे सामूहिक चेतना तथा सर्वहारा-वर्ग की एकता परिलक्षित होती है। 'रतिनाथ की चाची' मे भी सर्वहारा-वर्ग की चेतना का प्रतिफलन हुआ है जो शोषित-वर्ग की मुक्ति का चिह्न है। श्री नागार्जुन समाज के पिछडे वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहते हैं—'समाज मे उन्ही को दबाया जाता है जो गरीब होते हैं। शास्त्रकारो की बलि के लिए बकरे ही नजर आये। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नही सूझा। बडे-बडे दांत और खूनी पजे पडितो के सामने थे। इसीलिए उधर से नजर फेरकर बेचारे बकरो का फतवा दे डाला।"[1] किन्तु आज सर्वहारा-वर्ग वर्ग-सघर्ष के माध्यम से सभी शोषक-वर्गों का उन्मूलन करने के लिए कृतसकल्प है। मार्क्स का विचार था कि हिंसा के माध्यम से ही शोषक-वर्ग की मनोवृत्ति बदल सकती है।

आंचलिक उपन्यासों में निरूपित वर्ग-संघर्ष के कारण

आंचलिक उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष के अनेक कारण बताये गये हैं। आचलिक उपन्यास ग्रामाचलो से सम्बन्धित होते हैं। अत ग्रामीण वातावरण से सम्बन्धित समस्याओ मे वहाँ की गरीबी तथा बेकारी बेगारी की समस्या प्रमुख है। 'जमीदार का बेटा' उपन्यास मे विभिन्न वर्ग यथा—ग्रामीण शिक्षित, अशिक्षित, कृषक तथा खेतिहर मजदूर इस समस्या की लपेट मे आये हुए हैं—"लड़ाई खत्म हुई, देश का विभाजन हुआ, स्वतन्त्रता मिली और साथ ही देश मे महँगाई और बेकारी—ये दो कृत्याएँ ऐसी आ जमी हैं कि लगता है, प्रवचन मे मगन रहनेवाला यह भारत देश शायद ही पिंड छुडा सके। बेकारी के कारण आज प्रतिदिन का जीवन ही सघर्ष बन गया है।"[3] गाँव मे गरीबी बेकारीजन्य है। बेकार लोगो के करुण क्रन्दन एव सत्रस्त जीवन का अमीरो के उन्मादित तथा ऐश्वर्यपूर्ण जीवन पर कोई प्रभाव नही पडता। 'मैला आचल' उपन्यास मे डॉ० प्रशान्त के सामने ग्राम मे व्याप्त गरीबी और तज्जन्य बेकारी के अनेक

---

१ बाबा बटेसरनाथ—नागार्जुन, पृ० १२६
२ रतिनाथ की चाची—नागार्जुन पृ० ७१
३. जमीदार का बेटा—दयानाथ झा, पृ० १४१

परिदृश्य हैं जो संघर्ष की स्थितियो को उद्घाटित करते है—"आम स लदे हुए पेडो को देखने से पहले उसकी आँखे इ मानो के उन टिकोलो पर पडती हैं जिन्हें आम की सूखी गुठलियो के सूखे गूदे पर जिन्दा रहना पडता है।" बेकारी सामाजिक विघटन का सूचक है। 'जगल के फूल' उपन्यास मे बेगार प्रथा के प्रति सारे गोंड-समाज मे विरोध है। परगना मांझी परतवाडे के तहसीलदार की मनमानी एव शोषण के सम्बन्ध म कहता है—"हमारे आदमियो को बुलाता है, मनमानी गालियाँ देता है और लात भी मारता है और फिर दिन-भर काम कराता है।'[२] शोषण के प्रति सचेत मजदूर-वर्ग कहता है—"इन लोगो से अब कोई मतलब नही। जो लिखा होगा करम मे भोगेंगे। ऐसे निर्दयी लोगा की बेगारी नही करेंगे।'[३] इसी उपन्यास की धनेसरी जो जमीदार के क्रूर व्यवहार से आक्रान्त है वर्गगत चेतना से उद्बुद्ध होकर निश्चय करती है—"टुकडे-टुकडे हो जाऊँगी, बाकी केहू की जूती नहीं चाटूँगी। छुट्ट रहूँगी, मन लायक मजूरी मिले तो काम करूँगी, नाही सूअर बकरी चराऊँगी।"[४] इसी प्रकार 'जल टूटता हुआ' म मजदूर-वर्ग बेकारी तथा बेगार-प्रथा से आक्रान्त हुआ कहता है— 'बबुआ, गाली दे लीजिए, यह तो शोभा है आप लोगो की। लेकिन यह सही है कि आपके यहाँ हमारे खानदान की परवरिश नही हो सकती। कितने महीने हो गये मुझे एक पाई भी नहीं मिली, एक मेरा ही पट तो नही न है कि आपके यहाँ जिया लूँ। घर के लोग क्या खायेंगे? खेत तो आपने हमारे बाप दादा को उनकी नौकरी मे दे दिया था, कोई अहसान तो नही है। खेत मे कुछ होता ही नही है। हम दोना भाई आपके यहाँ खटते हैं तो खेतो मे क्या अपने-आप अन्न पैदा हो जायेगा? और कुछ होता भी है तो बाढ मे क्या, पहली बरखा मे ही डूब जाता है, ताल म तो खेत दिता है।"[५] बेगार-प्रथा तथा बेकारी मजदूर-वर्ग का अभिशाप है। भविष्य की आशा म वे सगठित होते हैं तथा संघर्ष करते हैं। उनकी आशामयी भावना को पुष्ट करते हुए श्री नागर ने लिखा है—' जो काम करेगा वह पैसा भी पायेगा। निर्धन पब्लिक को धन मिलना चाहिए। शहर और गाँव—दोनो ही इस दृष्टि से भूखे हैं। इन दोनो को ही एक आर्थिक स्तर पर क्रमश ले आइये।"[६]

---

१ मैला आचल—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० १८५
२ जगल के फूल—राजेन्द्र अवस्थी, पृ० १५४
३ अलग-अलग वैतरणी—शिवप्रसाद सिंह पृ० २४२
४ वही, पृ० २५३
५ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ४७
६ बूँद और समुद्र—अमृतलाल नागर, पृ० ५६६

शोषित वर्ग मजदूर और किसानों की गरीबी, बेकारी और बेगारी उन्हें जीवनयापन की आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं करने देती। एक ओर उच्च-वर्ग के लोग घी स तर माल खाते हैं तो दूसरी ओर श्रमिक-वर्ग को दो जून सूखी रोटी भी नसीब नहीं होती। दोनों वर्गों के मध्य की दूरी की लम्बी खाई ही वर्ग-संघर्ष को जन्म देती है और वर्ग संघर्ष के अन्य कारणों का विवेचन भी आंचलिक उपन्यासों म हुआ है। इनमें से कतिपय प्रमुख निम्न प्रकार हैं—

जातीयता की भावना

अनेक उपन्यासों म जातीयता की भावना के कारण वर्ग-संघर्ष की उद्भावना हुई है। एक ओर ग्रामीण वातावरण म जातिवाद एक विडम्बना बना हुआ है और दूसरी ओर समाजवादी चेतना जाति एव वर्ग विहीन समाज की स्थापना का नारा लगाती है। ये परस्पर-विरोधी विचारधाराएँ संघर्ष को जन्म देती हैं—'*आज सुना है इस इलाके में चुनाव के चलते-चलते तुमने* जातीयता की आग भडका दी—आग भडका दी है इसीलिए आज उसी की लहर है। तुम और भगत, दोनों ने सीट के लिए कोशिश की और जब तुम्हें सीट मिल गई तो भगत भीतर ही-भीतर तुम्हें हराने की साजिश कर रहा है।'[1] चुनाव म प्रचार के लिए भी जातिवाद का सहारा लिया जाता है—'मेरीगंज मे सबसे ज्यादे यादवों की आबादी है। वहीं आपका जाना ही ठीक होगा। वहाँ आर्गेनाइज करने म दिक्कत नहीं होगी।"[2] श्री रेणु के शब्दों म—"पिछले आठ दस वर्षों से जातिवाद ने काफी जोर पकड़ा है। राजनीतिक पार्टियाँ भी जातिवाद की सहायता स संगठन जायज समझती हैं। राजनीति के दगल म सब-कुछ माफ है।'[3]

सामाजिक सम्बन्धों म भी जातिवाद की भावना संघर्ष का कारण बनती है। सामाजिक सम्बन्धों में एक जाति दूसरी जाति स घृणा करती है। 'साँप और सीढी' म जैनी की जूठी प्याली किसी बच्चे ने रसोई-घर म लाकर रख दी तो क्रोध मे आकर दलसाय की माँ ने प्याले बाहर फिंकवा दिए थे। चिल्ला रही थी—'अब इस घर म जात-पाँत का भेदभाव नहीं रहा। दिखता है, धीरे-धीरे पूरा गोवा इसाई हो जाएगा।'[4] जातिवाद की विडम्बना को लेकर निम्न-वर्ग म जागृति आई है। 'नदी का मोड़' उपन्यास मे निम्न-वर्ग म जागृति स्वर इस प्रकार गूँज रहा है—"तुम ठाकुर लोग चाहते हो कि छोटी कौम के आदमी

---

१ भूदानी सोनिया—उदयराजसिंह, पृ० २९३
२ मैला आचल—फणीश्वरनाथ रेणु पृ० ६५
३ परती परिकथा—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० ७०
४ साँप और सीढ़ी—शानी, पृ० १०२

तुम्हारी सेवा करें और अपमान का जहरीला घूंट पीते रहें। आँख खोलो, क्षितिज मे प्रकाश की ज्योति फूट निकली है। अँधेरे मे पड़ा सिसकता हुआ समाज आज सजग हो उठा है। वह अपना अधिकार पाना चाहता है।"[1] किन्तु क्या इस वास्तविकता को नकारा जा सकता है—"कितनी गन्दगी कितनी सडन है यहाँ के समाज मे! भला निर्धन और छोटी कौम का क्या मोल? जैसे पैर की जूती हैं सब।"[2] निष्कर्षत कहा जा सकता है कि जाति-वाद की भावना के कारण ही समाज मे वर्ग बने हैं। जाति-वाद की भावनाओ के आधार पर ही निम्न-वर्ग का शोषण होता रहा है और जाति-भावना के कारण ही वर्गों मे वैषम्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और वर्ग सघर्ष पनपता है।

अशिक्षा

आचलिक उपन्यासो मे अधिकतर कथानक ग्रामीण वातावरण को चित्रित करता है। अशिक्षा के कारण ग्रामवासी आज भी पुरानी रूढियो मे गहरी श्रद्धा और विश्वास रखते हैं। कोई भी नवीन परिवर्तन उन्हे सहज मान्य नही होता। अशिक्षा के कारण वे विकसित विचारो को ग्रहण करने से वचित रह जाते है। फलत ग्रामो म शोषण एव सघर्ष की स्थितियाँ यथावत् बनी रहती हैं। 'मैला आंचल' उपन्यास मे ग्रामीणो की धारणाएँ हैं कि—"डाक्टर लोग रोग फैलाते हैं। सूई भोककर देह मे जहर देते हैं, आदमी हमेशा के लिए कम-जोर हो जाता है। हैजा के समय कूपो मे दवा डाल देते हैं। गाँव का-गाँव हैजा मे समाप्त हो जाता है···पूरब मुलक कामरूप, कमिच्छा, आसाम से काला बुखार-वालो का लहू शीशी मे बन्द करके यही लोग ले आते हैं। इसके अलावा विलैती दवा मे गाय का खून मिला रहता है।"[3] यह अधविश्वास तथा मिथ्या धारणाएँ अशिक्षा के कारण ही पनपती है। अधविश्वास और अशिक्षा के कारण ही 'जगल के फूल' मे मुखिया नारायणदेव की महत्ता स्वीकारी जाती है—"सारे भूत-प्रेतो का वह मालिक है। चुडैल इसके इशारे पर नाचती हैं।"[4]

'सूखता हुआ तालाब' मे शकर का यह विचार कितना सार्थक है—"क्या होगा इस गाँव का, जहाँ जडता इतनी कि बेवकूफ आदमी भी सोझा-ओझा बन-कर ठग ले और चालाकी इतनी कि हर आदमी अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को

---

१ नदी का मोड —श्रीराम शर्मा, पृ० ३१
२ वही, पृ० ५४
३ मैला आचल—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० १६
४ जगल के फूल—राजेन्द्र अवस्थी तृषित, पृ० १०

बेच खाये।"[1] 'बबूल' उपन्यास में भी ग्रामवासियों की अशिक्षा का लाभ उठाकर ओझा लोगों के दोहन की चर्चा की गई है—"अभी खाली हाथ सामने बैठा है? लुच्चा कहीं का ! ला एक मन सिंदूर, आधा मन गांजा, पच्चीस बोतल शराब, तीस सेर कपूर, पाँच पसेरी गुर्ती, ढाई मन दूध और''।"[2] इस प्रकार अशिक्षा के कारण ग्रामवासी अभिशप्त जीवन व्यतीत करते हैं।

विघटित सामन्तवादी व्यवस्था

जमींदारी-उन्मूलन देश की सामन्तीय व्यवस्था को समाप्त करने की ओर एक सक्रिय तथा साहसी कदम था। सामन्तों तथा सामन्तवादी वृत्ति वाले लोगों की एकछत्र सम्पदा को विघटित करने में जमींदारी-उन्मूलन एक अमोघ अस्त्र साबित हुआ—"उन्मूलन के फलस्वरूप काश्तकारों पर जमींदारों-जागीरदारों के परम्परागत आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक प्रभुत्व और अर्द्ध-सामन्ती अधिकारों को गहरा धक्का पहुँचा।'[3] विघटित सामन्तवादी व्यवस्था एक ओर वर्गगत चेतना का परिणाम थी तो दूसरी ओर सामन्तीय अधिकारों के हनन की प्रक्रिया—"जमींदारों की पुश्तैनी पुख्ता दीवारें एक धक्के से ही जमीन पर आ रहीं, देखते-ही-देखते करैता का पूरा माहौल बदल गया। आसामियों ने खानदानी लाज-शरम छोड़कर जमींदार की छावनी से अपना रिश्ता तोड़ लिया। अब कभी दशहरे पर आसामियों की भीड़ जुहार करने नहीं आती। न ही कभी छावनी के मुख्यद्वार पर रखा बड़ा-सा परात नजराने के रुपयों से खनकता ही। यह सब-कुछ ताश के पत्ते की तरह हल्के-से धक्के से बिखर गया।"[4] 'जमींदारी जाते ही यहाँ जो धाँधली मची हुई है अब किसी की कोई नहीं सुनता। सभी छोटे-मोटे जमींदार लीडर बन बैठे हैं। दिन-भर लीडरी और रात में भट्ठी में शराब की पिआई। अब बकरे रोज कटते हैं।"[5] 'बलचनमा' में सामन्तवाद की पतनोन्मुख स्थिति का विश्लेषण किया गया है—"चौधरी लोगों का घराना किसी जमाने में बहुत ही भरा-पूरा और अकवाली था। अब इनकी जमींदारी तो रही नहीं थी, लेकिन रोब-दाब, रहन-सहन, चाल ढाल की बातचीत से हुकूमत की बड़ी विकट बू आती थी।"[6] 'हिरना साँवरी' में दुखमोचनसिंह की पारिवारिक स्थिति

---

१ सूखता हुआ तालाब—रामदरश मिश्र पृ० ८२
२ बबूल—विवेकी राय, पृ० ७१
३ भारतीय ग्राम सांस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास—डा० पूरनचन्द्र जोशी, पृ० ४२
४. अलग अलग वैतरणी—शिवप्रसाद सिंह, पृ० ३२
५ अँधेरे के विरुद्ध—उदयराजसिंह, पृ० १०
६ बलचनमा—नागार्जुन, पृ० ६

गिरती सामन्त-व्यवस्था का प्रतीक है—"कल्याण भवन करतरा की इकलौती हवेली थी। बाहर से उस पर झकाझक सफेदी पुती हुई थी लेकिन···भीतर की दीवारें मटमैली या पीली हैं···यहाँ की हवा वह नही है जो गाँव की और-और जगहो पर है।"[1] इसी प्रकार लडखडाती सामन्तशाही व्यवस्था का अकन 'लोक-परलोक' में भी मिलता है। बदलती सामन्तीय व्यवस्था मे "यह तो तयशुदा है कि जमींदार और राजा लोग अब नही रहेंगे।"[2]

'रतिनाथ की चाची' मे सामन्तीय जीवन का टूटन-स्वर ध्वनित तब होता है जबकि जमीदार-वर्ग सब तरह के प्रयत्न करके हार जाते हैं तथा अपना रोष कांग्रेस मन्त्रियो पर धमकी के रूप मे व्यक्त करते हैं—"आपका खादी का कुर्ता पहले हम अपने खून से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर जमीदारी-प्रथा उठा दीजिए।"[3] विघटित सामन्तवाद आज मुंह-बाये खडा है—"यद्यपि स्वाधीनता के साथ ही सामन्त-व्यवस्था का वैधानिक अन्त हो चुका है फिर भी मानसिक जगत मे सामन्तवाद की भावना अब भी शेष है। परम्परागत पीढी के वैचारिक जगत मे अभी युगानुकूल परिवर्तन नही आया है। परिणामत जनतान्त्रिक और सामन्त-वादी प्रवृत्तियो मे सघर्ष स्वाभाविक है। निश्चय ही इस सघर्ष मे जनतान्त्रिक प्रवृत्तियाँ प्रबल होती जा रही हैं।"[4] 'नदी फिर बह चली' मे परबतिया अपने सेठ से अपना सब-कुछ लौटाने को कहती है तो वे मुकर जाते हैं। परबतिया नव-चेतना से जागरूक है। वह अन्य नेताओ का सहारा लेकर मुकद्दमा दायर करवा देती है। सामन्तवाद टूटने के उपरान्त भी जनार्दनराय गीदड-भभकी देता है—"कुरमी-कुम्हार भी अपने को राजपूत-बामन समझने लगे हैं। यह बात ये लोग भूल गये कि तुम लोगो का उद्धार करनेवाले गाधीजी मर गये और हम अभी जिन्दा हैं। मगर याद रख परबतिया! सरकार को गाधी बाबा नही चलाते, सरकार को हम चलाते हैं।"[5] अन्तत हम देखते हैं कि सामन्तीय टूटन के उप-रान्त भी सामन्ती बू अभी तक मौजूद है। परिवर्तित स्थितियो से सामंजस्य न करने के कारण वर्ग-सघर्ष का जन्म होता है।

मार्क्सवादी चेतना

समाज में व्याप्त चेतना मार्क्सवादी चेतना का ही प्रभाव है। मार्क्सवादी चेतना के कारण ही वर्ग सघर्ष की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं। फणीश्वरनाथ रेणु

---

१. हिरना साँवरी—मनहर चौहान, पृ० १८
२. लोक परलोक—उदयशंकर भट्ट, पृ० २६
३. रतिनाथ की चाची—नागार्जुन, पृ० १४
४. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य-सक्रमण—डा० हेमेन्द्र पानेरी, पृ० २५१
५. नदी फिर बह चली—हिमांशु श्रीवास्तव, पृ० ३०५

ने अपने उपन्यास 'जुलूस' की भूमिका मे लिखा है—"पिछले कुछ वर्षों से मैं एक अद्भुत भ्रम मे पडा हुआ हूँ। दिन-रात, सोते-बैठते, खाते-पीते मुझे लगता है कि एक जुलूस के साथ चल रहा हूँ—अविराम। यह जुलूस कहाँ जा रहा है, ये लोग कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं, क्या चाहते हैं—मैं कुछ नही जानता।"[1] मार्क्सवादी चेतना का परिणाम यह हुआ कि—"मिलकियत का, स्वामित्व का धुर्रा उड गया। भूमिहीनो को एक ज्योति मिली। एक नया प्रकाश मिला। धरती माता उनकी भी है, वे अनाथ नही सनाथ हैं। उन्हें आज इसका आभास मिला।"[2] 'सत्ती मैया का चौरा' उपन्यास मे मानव के सर्वांगीण विकास का श्रेय मार्क्सवादी चेतना को दिया गया है। मुन्नी कहती है—"यूथ लीग के मत्री से उसका सम्पर्क और उसके द्वारा दिये गए मार्क्सवादी साहित्य के अध्ययन से अपनी परिस्थिति का वास्तविक ज्ञान मुझे मालूम हुआ है कि यह जगल क्या है ? यह अन्धकार क्या है ? "यह जगल बहुत बडा है, यह अधकार चारो ओर फैला हुआ है और यहाँ लाखों-करोडों लोग मेरी ही तरह से अलग-अलग घिरे हुए हैं और जो यह समझे हुए हैं कि वे अकेले ही हैं, अगर उन्हे यह अहसास हो जाये कि वे लाखो-करोडों हैं, जिनकी स्थिति एक है, जिसका मार्ग मुक्तिमार्ग एक है।"[3] यह कितनी बडी शक्ति होगी—"एक बार वे जाग जायें, अपनी ताकत को समझ जायें तो फिर वे अपना रास्ता आप बना लेंगे और अपने कधो से उन सारी ताकतों को झिझोडकर फेंक देंगे जो आज तक उन्हे दबाती आयी है।"[4]

'बाबा बटेसरनाथ' म मार्क्सवादी चेतना के आधार पर वर्ग-सघर्ष का चित्रण किया गया है—"गाँव को, जन-बल को अच्छी तरह से सगठित कर लेना चाहिए। अपनी रुपहली के इस आन्दोलन को जन-सघर्ष की जिला और देश-व्यापी धारा मे मिला लेना होगा।"[5] मार्क्सवादी चेतना के आधार पर ही मोहन माँझी ने किसानो के प्रतिनिधियो की सम्मिलित राय द्वारा तकावी-वसूली को स्थगित करने की माँग रखी तथा शोषक वर्गों को आगाह करते हुए कहा—"वे युग की आवाज को अनसुनी न करें। मलाही गोडियारी के मछुओ को गरोखर से मछलियाँ निकालने के पुश्तैनी हकों से वचित करने की उनकी कोई भी साजिश कामयाब नही होगी। रोटी-रोजी के अपने साधनो की रक्षा के लिए सघर्ष करनेवाले मछुए असहाय नही हैं, उन्हें आम किसानो और खेत-मजदूरों

१. जुलूस—फणीश्वरनाथ रेणु (भूमिका से)
२ भूदानी सोनिया—उदयराज सिंह, पृ० १६०
३ सत्ती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १३३-१३४
४ वही, पृ० ५६२
५. बाबा बटेसरनाथ—नागार्जुन, पृ० १३४

का सक्रिय समर्थन प्राप्त होगा।"[1] 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास मे लेखक मार्क्सवादी चेतना के आधार पर आजादी के प्रथम चरण मे सामन्तवादी व्यवस्था को समाप्त होते देखकर, भविष्य के प्रति आशावान दृष्टिगत होता है—"शोषण की घुटन सदा नही रहेगी। वह मिट जायेगी, सदा के लिए मिट जायेगी। सत्य सूर्य है। वह मेघो से सदैव के लिए घिरा नही रहेगा। मानवता पर स यह बरसात एक दिन अवश्य दूर होगी और तब नयी शरद् मे नये फूल खिलेंगे तथा आनन्द व्याप्त हो जायेगा।"[2] 'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास मे मार्क्सवादी विचारो के आधार पर तथा जमींदारो के अत्याचारो एव अनाचारो के आधार पर ही वर्ग-संघर्ष उभरता है—"इज्जत तो सबकी है बाबू! चाहे चमार की हो, चाहे ठाकुर की। हम आपका काम करते हैं, मजूरी लेते हैं। हमे गरज है कि करते हैं। आपको गरज है कि कराते हो। इसका मतलब ई थोडा हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये।"[3]

'दुखमोचन' उपन्यास मे भी निम्न-वर्ग मे नवचेतना का आविर्भाव हुआ है—"ऊँची जाति वालो के यहाँ अब वे अपमानजनक तरीको से कोई काम नही करेंगे, न कुछ इनाम-अकराम ही लेंगे। जूठन मे चाहे अमृत ही क्यो न रह गया हो, उसे कोई नही उठायेगा···।"[4] 'जल टूटता हुआ' उपन्यास मे भी इसी चेतना की अभिव्यक्ति हुई है—"स्कूल सबका है, हम हरिजन लोग अलग पैसा-रुपया नहीं दे सकते हैं तो मिहनत तो दे सकते हैं न। इस जवार मे तरह-तरह के हुनर-वाले कारीगर हैं, मजूर हैं, इन सबका फरज है कि वे स्कूल का मकान बनाने मे मदद करें।"[5] 'ग्रामसेविका' मे बी०डी०ओ० के भाषण मे भी सामूहिक चेतना पर बल दिया गया है—"आजादी के बाद गाँवो मे आज एक नयी हवा बह रही है। एक नयी रोशनी से सदियो के अधकार को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। गाँवो मे एक नई क्रान्ति हो रही है। इस क्रान्ति मे हरएक को भाग लेना है। जब तक हमारे गाँव की गरीबी दूर नहीं होगी, हमारा देश मजबूत और खुशहाल नही हो सकता।"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्सवादी चेतना के कारण ग्रामोत्थान हुआ है, शिक्षा का प्रसार हुआ है तथा आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने के लिए सामूहिक वर्ग-चेतना का उदय हुआ है।

---

१ वरुण के बेटे—नागार्जुन, पृ० २१६
२ कब तक पुकारूँ—रांगेय राघव, पृ० ६३४
३. अलग-अलग वैतरणी—शिवप्रसाद सिंह, पृ० २४६
४. दुखमोचन—नागार्जुन, पृ० ८०-८१
५. जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० १८१
६. ग्रामसेविका—अमरकान्त, पृ० १४६

मशीनीकरण

मशीनीकरण के कारण मजदूर-वर्ग की आजीविका में अन्तर आया है। 'अँधेरे के विरुद्ध' उपन्यास में डोमन की खीझ मशीनीकरण के कारण है। जब से गाँव में ऑटोरिक्शा आया है, उसकी रोटी-रोजी को धक्का लगा है—"मगर क्या करूँ, अब बाबूगन के बाबुओं की तीनपहिया फटफटिया चलने लगी है। कहाँ पैर की सवारी, कहाँ पैटरोल की सवारी! जिगना-बलचनमा बेचारे भोर से लेकर रात तक पैर नचाते रहते हैं, मगर तीनपहिया के सामने पार नहीं पाते।"[१] मशीनीकरण के कारण नवीन औद्योगिक समाज का निर्माण हुआ है। खेती-बाड़ी की उन्नति की दृष्टि से ट्रैक्टर आदि के प्रयोग यथोचित हैं, परन्तु गाँववालो के लिए तो इन वैज्ञानिक साधनों के साथ पैसे की समस्या जुड़ी हुई है। यह मशीनें आम आदमी की पहुँच से बाहर है। इसी कारण ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में इसका प्रवेश नगण्य है। ट्रैक्टर के बारे में गाँववालो ने बेतार की वाणी सुनी है—"उसी से सब-कुछ होगा—हल जोती, बिघा-कौडकमान, वही गोरा और धनकटनी भी। आदमी की क्या जरूरत?"[२]

मशीनीकरण के कारण परम्परागत वर्ण-व्यवस्था के स्थान पर नवीन वर्गों का उदय हुआ है। यन्त्र-युग के प्रारम्भ के साथ साथ मानव का स्थान गौण होता चला गया। 'जुलूस' उपन्यास की पविता मशीनीकरण के कारण व्याप्त बेकारी की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहती है—"दीदी जी, मेरे पास जमीन कहाँ? ·· हाँ, मालिक की खेती की बात पूछती है तो खेती अच्छी है। और अच्छी खेती हो या खराब, मानिव को इससे क्या? एक मिल अररिया कोट में भी चलायेंगे। अब खेती क्या है? 'बिजनेस' और 'मिल' वाले के हल असमान में चलते हैं।"[३] इसी प्रकार 'अलग अलग वैतरणी' उपन्यास में भी मशीनीकरण को ग्रामविकास का अभिन्न अंग माना गया है—"गाँव-गाँव में ट्यूब-वेल लग गये हैं।"[४]

मशीनीकरण के कारण ग्राम-विकास तो हुआ है किन्तु हजारों मजदूर बेरोजगार भी हुए हैं। फलत आर्थिक संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं और मशीनीकरण वर्ग-संघर्ष का कारण सिद्ध हुआ है।

रूढ़िवादिता

आज भी भारतीय समाज-व्यवस्था में अन्ध-विश्वासों की जड़ जमी हुई

---

१ अँधेरे के विरुद्ध—उदयराज सिंह, पृ० १८८
२ मैला आंचल—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० ३२०
३ जुलूस—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० १७५
४ अलग-अलग वैतरणी—शिवप्रसाद सिंह, पृ० ७०

है। 'कोहरे मे खोये चांदी के पहाड' मे उपन्यासकार का कहना है—"यह असल चुनौती है प्राचीन काल से चली आ रही अन्ध-विश्वासी परम्पराओ की जिन फँसी नारियाँ असमय ही वृद्धाएँ हो जाती हैं।'[1] "जिनसे ग्रस्त पिता अपन सुकुमार कन्याओ को अतिथियो की अवशायिनी बनाने मे नही हिचकते।"[2] वस्त जिले में गोडो की विशिष्ट जाति है। इनके अपने देवी-देवता होते हैं। गाँव क मुखिया 'गायता' कहलाता है। 'जगल के फूल' का गायता रूढिवादी अन्ध विश्वासो से परिपूर्ण है। देवता का परिचय देते हुए वह अग्रेज अफसर को बतात है—"सिरकार, ये बीमारियो का राजा है। सारी बीमारियाँ इसी के कहने प चलती हैं।"[3] रूढिवादिता पिछडेपन तथा शोषण का प्रमुख कारण बनी रहत है। शिक्षित नवयुवक इससे मुक्ति पाने के लिए सघर्परत हैं किन्तु पुरानी पीढ उन्हें स्वीकृति प्रदान नहीं करती। फलत वर्ग-सघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न ह जाती हैं।

रूढिवादिता एव अध विश्वासो का वर्णन 'सागर, लहरें और मनुष्य' 'हौलदार' एव 'आदित्यनाथ' मे भी किया गया है। सागर के किनारे बसे मछुअ की बस्ती बरसोवा के देवता 'खण्डाला' कहलाते हैं। नाली पूर्णिमा के दिन सभी बरसोवा के नर-नारी नारियलो मे रग-बिरगे कागज के फूल लगाकर जुलूस की शक्ल मे समुद्री देवता की आराधना के लिए जाते हैं। उनकी आकाक्षा है कि समुद्र के देवता उनसे प्रसन्न रहे—"समुद्र के किनारे जाकर सबने नारियल चढाए और खण्डाला देवता तथा समुद्र की पूजा की। तट की धूल माथे से लगाकर आँखो और शरीर पर पानी छिडककर कोलियो ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार रग बिरगे नारियलो का प्रसाद चढाया और गाते बजाते लौट आए।"[4]

'रतिनाथ की चाची' में भी शकर बाबा का प्राचीन परम्पराओ के लिए पूर्वाग्रह व्यक्त होता है—"बच्चा, अब कोई इन बातों का विचार नही करता। बैल ठहरे शिवजी के वाहन। इनके चार पैर धर्म के ही चार चरण। इसीलिए ब्राह्मण न हल जोतते है न गाडी चलाते हैं। चढना भी मना है।'[5] धर्म की आड मे ब्राह्मण-वर्ग की निष्क्रियता तथा शोषक वृत्ति का आज विरोध किया जाता है। 'सूखता हुआ तालाब' के नेता मोतीलाल का कथन इस चेतना की सही पुष्टि

---

१ कोहरे में खोये चाँदी के पहाड—जयप्रकाश भारती, पृ० १५

२. वही पृ० ६६

३ जगल के फूल—राजेन्द्र अवस्थी, पृ० १०

४ सागर, लहरें और मनुष्य—उदयशकर भट्ट, पृ० १५२ १५३

५. रतिनाथ की चाची—नागार्जुन, पृ० ६०

करता है—"ये सब बेवकूफियाँ अभी गाँव से नहीं गयी। लोग आज भी पुराने अंधविश्वासों के गुलाम बने हुए हैं। किया क्या जाए!"[1]

आर्थिक विषमता

आर्थिक असंतुलन विभिन्न विषमताओं को जन्म देता है और आर्थिक विषमता जीवन को अस्त-व्यस्त बनाती है। अतः समाज में अर्थ-संघर्ष की प्रक्रिया शाश्वत है। इसके स्वरूप में परिवर्तन होते हैं।"[2] आर्थिक विषमता का कारण आर्थिक शोषण है। जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण से यह विषमता निरन्तर बढ़ती रहती है। फलतः संघर्ष भी सर्वत्र व्याप्त रहता है। 'बलचनमा' स्वयं इसका वर्णन करता है—"हमारे पास कुल सात कट्ठा जमीन थी। मझले मालिक सौ कसाई के एक कसाई थे। बाबू के मरने पर बारह रुपये माँ को उन्होंने कर्ज दिये थे। बदले में सादे कागज पर अँगूठे का निशान ले लिया था। सूद देते-देते हम थक गए, मूर ज्यों-का-त्यों खड़ा था।"[3] इस तरह आर्थिक विषमता की खाई में पिसता हुआ बलचनमा कहता है—"गरीबी नरक है भैया, नरक! चावल के चार दाने छोड़कर बहेलिया जैसे चिड़ियों को फँसाता है, उसी तरह ये दौलतवाले·· फँसा मारते हैं।"[4]

'मैला आँचल' उपन्यास में आर्थिक व्यवस्था को आर्थिक विषमता के लिये उत्तरदायी ठहराया है। अतः शोषण एवं संघर्ष का क्रम सदा बना रहता है। 'जल टूटता हुआ' में जमींदारी-प्रथा टूटने पर भी यह संघर्ष तथा विषमता समाप्त हुई नहीं दिखाई देती—"जमींदारी टूट रही है, ये खेत कहाँ जा रहे हैं? पैसेवालों को खेत मिल रहे हैं, पैसेवालों को व्यापार मिल रहा है, दुकान मिल रही है, चुनाव के लिए टिकिट मिल रहे हैं, शिक्षा मिल रही है, दवा मिल रही है।"[5] किन्तु गरीब तथा निम्न-वर्ग की स्थिति यथावत् ही बनी रहती है। अतः 'शहर और गाँव के निर्धन व्यक्तियों को धन मिलना चाहिए। समाज में आर्थिक समानता लाना आवश्यक होगा।"[6] भारतीय मजदूर तथा किसान आज भी विकासात्मक परिवर्तन की प्रतीक्षा में है क्योंकि उसे आर्थिक शोषण से अभी मुक्ति नहीं मिली है—"···किसी भी किसान या मजूर को ले लो, उसके घर जाकर देखो, उसके तन के कपड़ों को देखो, उससे पूछकर समझो—उनमें क्या

१ सूखता हुआ तालाब—रामदरश मिश्र पृ० ४३
२ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य-संक्रमण—डा० हेमेन्द्र पानेरी, पृ० २१४
३ बलचनमा—नागार्जुन, पृ० ६७
४ वही, पृ० ६८
५ सती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० १६५
६. बूँद और समुद्र—अमृतलाल नागर, पृ० ३४४

परिवर्तन आया।"[1] सामाजिक विषमता आर्थिक विषमता का ही प्रतिफलन है, क्योंकि पारस्परिक सम्बन्धों के संयोजन में आर्थिक स्थिति एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष अनिवार्य है और पूंजीवादी शोषण से मुक्ति के लिए वर्ग-संघर्ष अनिवार्य है। आज—"व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है।"[2] समाजवादी समाज-व्यवस्था में सभी शोषण-क्रियाओं की पुनरावृत्ति नहीं होगी। अतः वर्ग-विहीन और शोषण-विहीन समाज की स्थापना होगी।

आर्थिक शोषण

आधुनिक जीवन की प्रमुख जटिलताएँ अर्थमूलक हैं। संतुलित अर्थ-व्यवस्था जन-जीवन का प्रमुख आधार होती है। जब तक शोषित-वर्ग को भर-पेट भोजन, तन ढकने को वस्त्र तथा आवास की पूर्ण व्यवस्था नहीं होती, तब तक इस वर्ग से सहयोग की अपेक्षा निरर्थक-सी प्रतीत होती है। निम्न-वर्ग को उसकी गरीबी बुरी तरह तोड डालती है। आंचलिक उपन्यासों में इस स्थिति को चित्रित किया गया है। आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए प्रयत्नशील शोषित-वर्ग को संगठित होना पडेगा। 'कन्दील और कुहासे' में कहा गया है—"जिस दिन मुल्क की जनता उठ खडी होगी, जिस दिन यह महँगाई, अत्याचार, जुल्म और बेईमानी उसके बर्दाश्त के बाहर हो जायेगी, उसी दिन तख्ता पलट जाएगा।"[3] 'वरुण के बेटे' उपन्यास में बताया गया है कि—"सम्पन्न-वर्ग विपन्न-वर्ग का शोषण करता है। ठण्डे पानी में घुसने तथा बोझ उठाने जैसे कष्ट-साध्य कार्य विपन्न-वर्ग को करने पड़ते हैं, परन्तु आय का दशांश ही उसे मिल पाता है।"[4] आर्थिक शोषण के चक्र में निरन्तर निम्न-वर्ग ही पिसता रहता है। अभावपूर्ण जीवन उसके संघर्ष का कारण बना रहता है। वर्गगत चेतना आर्थिक शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है—"विपन्न-वर्ग छोटे-से घर में अटा पड़ा रहता है और कथरी-गुदडी के टुकडों से अपना तन ढककर किसी प्रकार ठण्ड का मौसम व्यतीत करता है।"[5] शोषण की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए 'अलग-अलग वैतरणी' में बताया गया है कि जमींदारों के जुल्म से तो लोग मुक्ति पा गये, किन्तु—"जिन पर उस वक्त जुल्म होता था, वे ही आज जालिम बन गये हैं। छुटभय्ये लोग दो पैरों के आदमी हो गये तो आँख उलट गयी।"'वही छुटभय्ये जो पहले जमींदारों

---

१ सती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ५१२
२. बाबा बटेसरनाथ—नागार्जुन, पृ० ४१
३. कन्दील और कुहासे—गिरिधर गोपाल, पृ० १२७
४. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि—डा० आदर्श सक्सेना, पृ० १४६
५. वरुण के बेटे—नागार्जुन, पृ० ११

के बूटों से रौंदे जा रहे थे···अब गोल बनाकर अपने को कमजोरों, गरीबों को सताते हैं, लूटते हैं।···जमींदार था तो एक थोक थी···उस वक्त में लड़ाई बड़ी साफ थी। अब किससे लड़ें? अपने ही भीतर के लोग खोल ओढ़कर डाकू, लुटेरे और जालिम बन बैठे हैं।"[१] 'जल टूटता हुआ' उपन्यास में जगपतिया इस आर्थिक शोषण के विरुद्ध वर्गगत चेतना का प्रसारण करता है—"हलवाहों ने जगपति के सामने कसम खाई कि जो कोई इस माँग से कम ले वह अपनी बेटी से शादी करे। हलवाहे टस से मस नहीं हो रहे थे।···उधर खेत बीजों के इन्तजार में थे।···एक भयंकर तनाव की स्थिति आ गई थी।"[२] बुवाई के ऐन मौके पर इन लोगों ने हड़ताल करके बीस रुपये मासिक के स्थान, एक बीघा खेत का पारिश्रमिक तीस रुपया की माँग रखी थी। इस प्रकार जगपतिया मजदूर-वर्ग में आर्थिक शोषण के विरुद्ध उनके अधिकारों का बोध कराता हुआ वर्ग-संघर्ष को प्रोत्साहन देता है।

आर्थिक शोषण में अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। 'बलचनमा' उपन्यास में—"गिरहथ जरा-जरा-सी बात पर अपनी प्रजा की बुरी तरह से पिटाई करवाते। बलचनमा की दो 'किसनु भोग' आम तोड़ लेने पर खम्भे से बाँधकर पिटाई की गई थी।"[३] 'शालवनों के द्वीप' में वर्णित ओरछा गाँव आर्थिक विषमता का घर है। अमरसिंह आर्थिक दैन्यता का वर्णन करता हुआ कहता है—"बाँस की कमी नहीं। चारों ओर उसी का जंगल है। यों मेहनत भी खास नहीं लगती। छील-छीलकर चुपचाप बनाते जाने का काम है लेकिन खाली समय में घर के तीनों लोग भी काम करें तो चार-छह आने से अधिक का काम दिन-भर में नहीं होता। ऐसी स्थिति में उससे साल-भर में यदि केवल चार-पाँच रुपये ही कठिनाई से आते हों तो क्या आश्चर्य है!"[४] इस उक्ति में गाँव की अविकसित स्थिति परिलक्षित होती है। 'पियरी गाँव' में आर्थिक विकास में बाधक हैं—वहाँ के मुखिया। इन्हीं के माध्यम से आर्थिक शोषण की प्रक्रिया गतिशील रहती है—"तुम्हें शायद मालूम नहीं कि हमारे गाँव को ही कितने कुओं, खाद-कम्पोस्टों, बीजों और खादों, नयी तरह के हलों, मुर्गे-मुर्गियों, साँडों की सहायता मिली, किन्तु इनसे आम किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ। सब महाजन और फारम के लोग हड़प गये।"[५] 'पानी के प्राचीर' उपन्यास में बाढ़ के कारण आर्थिक स्थिति बड़ी नाजुक हो जाती है। नीरू आर्थिक शोषण से बड़ा परेशान

---

१ अलग-अलग वैतरणी—शिवप्रसाद सिंह, पृ० ६३२
२ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ४१
३ बलचनमा—नागार्जुन, पृ० १-२
४ शालवनों के द्वीप—शानी, पृ० ३१
५, सती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ७०४

रहता है—' उपवास-पर-उपवास हो रहे हैं, गहने और बरतन-भाडे पहले ही बनियो के पेट मे जा चुके । उधार कोई देता नही । पहले ही कई सौ रुपये की कर्ज की काली छाया घर को दबोच रखे है । जिसने एक रुपया दिया उसने दस रुपये लिख लिए हैं । मुखिया खार खाए बैठा है, कभी भी अपने रुपयो के लिए खुराफात कर सकता है । खेत रेहन पडे हैं, खेत मे कुछ हो न हो मगर मालगुजारी तो देनी ही पडेगी ।'"[1]

आज मजदूर-वर्ग वर्गगत चेतना से युक्त है किन्तु आर्थिक विषमता के कारण वे सभी प्रकार का शोषण सहते हैं, जिनका उन्हे आभास रहता है—' मुखिया ने हम सबको कर्ज दिया है, थोडा-थोडा खेत फँसा रखे हैं, इसीलिए हम उनसे डरते हैं । वे ही हम सब को बुलाकर ये सब काम करवाते हैं । हम लोग डर के मारे उनकी बात की हामी भरते हैं और उनके इशारो पर काम करते हैं ।'[2] "आर्थिक कमजोरी इस वर्ग की विवशता बनी हुई है जो सघर्ष को जन्म देती है । आज की विषाक्त राजनीति भी आर्थिक शोषण का कारण बनी हुई है—भयभीत निरीह जनता इन सबके बीच मे बुरी तरह पिस रही है । अगर स्पष्ट शब्दों मे कहा जाये तो आज की राजनीति हद-दर्जे की बेशर्म और क्रूर है । छिनाल की तरह सबको ठगती चली जा रही है । उनके मनोबल को इस प्रकार से नष्ट कर रही है ।"[3] आज ग्रामीण वातावरण मे भी वर्ग-भावना का विकास हो चुका है तथा जमीदारो व किसानो मे वर्ग-सघर्ष का सूत्रपात हो चुका है । " 'मैला आचल' उपन्यास मे गरीब और बेजमीन लोगो की हालत खम्भार के बैलो-जैसी बताई है "मुँह में जाली का जरब ।"[4] जिससे वे न कुछ खा सकते हैं तथा न कुछ पी सकते हैं, केवलमात्र उनका लक्ष्य एक ही रहता है—बस काम करते रहो । किन्तु आज शोषण के विरुद्ध उनका स्वर उभर रहा है—"सैकडो बीघे जमीन वाले किसान के पास पैसे हैं, पैसे से गरीब को खरीदकर, गरीब के गले पर, गरीब के जरिये ही छुरी चलाते हैं ।"[5] आर्थिक दृष्टि से शोषण की विवेचना 'हीरक जयन्ती' मे करते हुए नागार्जुन ने लिखा है कि एक ओर मालिक रिक्शो की सख्या बढाते जा रहे हैं, दूसरी ओर रिक्शा खींचनेवाले मजदूरो की स्थिति गिरती जा रही है । पूँजीवादी दृष्टि से मालिक-वर्ग अतिरिक्त लाभ हडप जाते हैं, जिसके आधार पर श्रम का शोषण होता है—"रिक्शो की तादाद पचास से ऊपर हो गई है । जो उन्हें खीचते हैं, उनकी

---

१. पानी के प्राचीर—रामदरश मिश्र, पृ० १३८
२ वही, पृ० २२५
३ आँधी के अवशेष—सुमेरसिंह दैया, पृ० ५०-५१
४ मैला आंचल—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० ६४
५. वही, पृ० २१५

फटी कमीजों के अन्दर से अब पीठों के अधिक हिस्से दिखाई दे रहे हैं।"[1]

वर्गगत चेतना के फलस्वरूप अब मजदूरों में मालिक के विरुद्ध चुनौती देने की शक्ति उत्पन्न हो गई है। 'चौथा रास्ता' उपन्यास का सामन्त मजदूर चुनौती-भरे स्वर में रूपसिंह से कहता—"चौधरी जी! हम मजदूर हैं, जहाँ शरीर हिलावेंगे पेट भर लेंगे। म्हारा आपका बिना काम चल जावेगा, पर आपकी सफेदी म्हारे बिना कायम नांय रहे।"[2] युगों से शोषित-वर्गों को भाग्य के आधार पर आश्वासन देते हुए शोषक-वर्ग यह कहता आया है कि भगवान की लीला को उन्हें सर झुकाकर स्वीकार करना चाहिए, किन्तु अब वे जागृत होकर वर्ग-संघर्ष की ओर अग्रसर हुए हैं। बलचनमा आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोह प्रकट करता हुआ कहता है—"भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गूदा चूर-चूर कर फाँकती थीं और मालिक लोग कनकजीर और तुलसी फूल के खुशबूदार भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, घी, चटनी, दही आदि खाते थे।"[3] *क्या यही भगवान की लीला है? क्या यही न्याय है?* उसके पिता ने मालिक के बगीचे से दो आम तोड़ लिए थे। इसके परिणामस्वरूप उन्हें यन्त्रणाएँ सहनी पड़ी थीं—"मेरे बाप को खमेली के सहारे कसकर बाँध दिया गया। जाँघ, चूतर, पीठ और बाँह—सभी पर बाँस की हरी कैली के निशान उभर आये।"[4] इस प्रकार अर्थ के आधार पर अनेक अत्याचार होते रहे हैं।

राजनैतिक भ्रष्टाचार

राजनैतिक आधार पर फैले हुए भ्रष्टाचार का विवेचन आंचलिक उपन्यासों में खुलकर हुआ है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'परती परिकथा' में एक गाँव में अठारह राजनैतिक पार्टियों का उल्लेख हुआ है। जमींदार के पुत्र जित्तन के मन में गाँव की अभावमयी जिन्दगी की उन्नति करने की पूर्ण लालसा है। गाँव में फैली दूषित राजनीति उसे इस मार्ग में क्रियाशील होने से रोकती है। लुत्तो के राजनैतिक चेहरे में स्वार्थपरता तथा बेईमानी की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। वह कहता है—"दोनों कैण्डीडेट मेरी मुट्ठी में हैं। मैंने लगी लगा दी है। एक को सरपंची का लोभ दिया है और दूसरा कुछ रुपया चाहता है।"[5] राजनैतिक चेतना का बोध पंचायत की ही देन है। 'जल टूटता

---

१ हीरक जयन्ती—नागार्जुन पृ० ७१

२ चौथा रास्ता—यज्ञदत्त शर्मा, पृ० ४२

३ बलचनमा—नागार्जुन, पृ० १७

४ वही, पृ० ३

५ परती परिकथा—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० ४४२

हुआ' उपन्यास का सतीश कहता है—'यह पंचायत राज्य पिछली पंचायत राज्यों से भिन्न होगा। यह सरकारी राज्य होगा, इसमें पंचों को सरकार की ओर से मजिस्ट्रेट के अधिकार दिए जायेंगे। इसीलिए जो अब तक ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू, जमींदार, मुखिया और दलाल रहे हैं वे इस बहती गंगा में हाथ धोना चाहते हैं, वे आज देश-भक्त हो गए हैं। पंच बनने के लिए तरह-तरह की बुरी चालें चल रहे हैं।'[1]

आंचलिक उपन्यासों में जातीयता के आधार पर राजनैतिक चुनावों में व्याप्त भ्रष्टाचार का विशद चित्रण हुआ है—"राजनीतिक कुचक्र इस सीमा तक भयावह हो गया है कि देश के जीवन से सिद्धान्त और आदर्शों का लोप हो गया है। राजनैतिक दल-बदल, रोज सरकारों का बनना और गिरना, मुख्यमंत्री से लेकर क्लर्क और चपरासी तक मची हुई लूटपाट, नोच-खसोट एक विचित्र-सी आपाधापी में आज मनुष्य बुरी तरह कुचला जा रहा है।"[2]

'मैला आंचल' का बावनदास तो जातिवाद के आधार पर ही राजनैतिक क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार को हटाने में अपनी जान गँवा बैठा—"सब चौपट हो गया'''यह बेमारी ऊपर से आई है। यह पटनियाँ रोग है। ''अब तो और धूम-धाम से फैलेगा।'''भूमिहर, राजपूत, कैथ, जादव, हरिजन—सब लड रहे हैं'' अगले चुनाव में तिगुना मेले चुने जायेंगे। किसका आदमी ज्यादा चुना जाय, इसी की लडाई है। यदि राजपूत पार्टी के लोग ज्यादा आए तो सबसे बडा मन्तरी भी राजपूत होगा।"[3] 'सत्ती मैया का चौरा' उपन्यास में भी इन्हीं भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है—"राजनीति और पार्टी में ईमान-विमान कोई चीज नहीं होता। हम अपनी पार्टी के खिलाफ फैसला नहीं दे सकते। फिर धर्म का भी यही सवाल है। हमारी वजह से सत्ती-थान की एक ईंट भी खटके, यह कैसे हो सकता है!"[4] 'जल टूटता हुआ' में सारे गाँव के ऊँची जाति के सरगना दबादब बेचारे हमिया को पीटे जा रहे थे। उसकी अमानवीय पिटाई ने बहन लवंगी के हृदय में विद्रोह की आग भडका दी। वह न्याय की माँग हरिजन नेता जग्गू से करती हुई कहती है—"हरिजनों के नेता, मैं तुमसे फरियाद करती हूँ कि वोट लेनेवाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून खून नहीं है, हमारी इज्जत इज्जत नहीं है तो हमारा वोट ही वोट क्यों है? ये देखो जग्गू नेता, तुम्हें याद है कि जब मुझे दलसिंगार बाबा ने पकडकर बेइज्जत करना चाहा था तो मैं फरियाद के लिए कहाँ-कहाँ रोई, सबने मजाक करके

१. जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ३०१
२ हिन्दी उपन्यास—डा० सुरेश सिन्हा, पृ० १४३
३ मैला आंचल—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० ३१०
४. सत्ती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ६६६

टाल दिया था। और तुमने भी कहा था, जाने दो बाबा, लोगो से कौन लडे ? ··· ये जग्गू नेता कल तक चिल्लाते थे कि नया जमाना आ रहा है, नयी जिन्दगी आ रही है ·।"[1] वर्ग-चेतना के आधार पर राजनैतिक भ्रष्टाचार एव अत्याचारो के विरोध मे भावनाएँ पनपती रहती हैं, जो धीरे-धीरे शोषित-वर्ग को वर्ग-सघर्ष की ओर ले जाती हैं।

'लोक परलोक' मे पचायत का चुनाव इसीलिए हुआ था ताकि ग्राम का विकास हो सके एव पारस्परिक झगडो का निपटारा हो सके। किन्तु भ्रष्टाचार वहाँ भी व्याप्त है—"जे ग्राम-पचायत का बनी है, कछु लोगन को खायवे-पीवे को इन्ताज गयो ऐ। लोग सारे सुपडन्ट समझते हैं अपने कूं।"[2] "मुखिया का चुनाव क्या आया, गाँव मे दरार पड गई। बाबूगज और बसन्तपुर की ही यह हालत नही है, जहाँ-जहाँ हमारे अचल मे ग्राम-पचायत का चुनाव हो रहा है, सब जगह वही हालत है। क्या करोगे ?"[3] पुलिस का अत्याचार भी राजनैतिक भ्रष्टाचार का ही एक स्वरूप माना जाता है—"सिपाही मे बडी ताकत होती है। वह राजा का आदमी होता है, वह सबसे घूस लेता है। गाँव के लोग उससे डरते हैं। वह जिधर ही जाता है, उधर ही नट-डरकर छिप जाते हैं।···चाहे जब, चाहे जिस नटनी को पकड ले जाता है।"[4] "दरोगाजी को जरूरत पडती है तो इनमे से किसी को बुलाकर सिपाहियो के जरिये समझा बुझाकर बनिया की चोरी करवा देते। माल बँट जाता। गाँव के बाहर पामड के पीछे जुए का एक अड्डा भी पुलिस ने बनवा दिया था, जिसकी नाल का तीन-चौथाई दरोगा के हाथ मे जाता था।"[5]

ग्राम-पचायतो के मुखिया एव सरपचो को पुलिस-कर्मचारियो ने अपनी ओर मिला लिया है। इस प्रकार शोषण का दायरा व्यापक होता जाता है। इसके अतिरिक्त बिचोलिए दलाल भी शोषक-वर्ग के समर्थक बनकर निरन्तर भ्रष्टाचार की वृद्धि मे सहायक बनते हैं। निरन्तर भ्रष्टाचार की प्रक्रियास्वरूप वर्ग-सघर्ष की स्थितियाँ उभरकर सामने आती हैं। 'पानी के प्राचीर' मे पाडेपुर के मुखिया कुबेर पाडे, पुलिस के दलाल बनकर पहले तो अपने ही गाँव के बैजनाथ को पकडवा देते हैं और फिर सहानुभूति का नाटक रचते हैं। बैजू की माँ की अस्सी-भर की हसली पचास रुपये मे गिरवी रखकर चालीस की बताते हैं तथा चालीस रुपये और पुलिस-दरोगा के माध्यम से हडप लेते हैं—

---

१ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ३५४
२ लोक परलोक—उदयशकर भट्ट, पृ० ११
३ अँधेरे के विरुद्ध—उदयराज सिंह, पृ० १६४
४ कब तक पुकारूँ—रांगेय राघव, पृ० ६१
५. वही, पृ० ६६

"बैजू ! क्या बताऊँ, दरोगा किसी तरह मानता ही नहीं। पचास रुपये से नीचे आ ही नही रहा था, बड़ी मुश्किल से चालीस पर तै किया है। अब तुम लोग कहीं से इन्तजाम करो।"[1]

आज आज़ादी मिले इतने वर्ष हो गये हैं, किन्तु ग्रामीण वातावरण मे शोषण एवं भ्रष्टाचार की प्रक्रिया यथावत् चल रही है। इस प्रक्रिया द्वारा ग्रामीणो का निरन्तर शोषण होता रहता है। 'जल टूटता हुआ' उपन्यास मे इसी भावना को अभिव्यक्त किया गया—"आजादी मिले इतने वर्ष हो गये, किन्तु आज भी गाँव सुगन तिवारी के रूप में कस्बे जा रहा है, आज भी जमुना भाभी के रूप मे गाँव की माताएँ अपने तन का छलना-छलला उतारकर बेटी के तन की शोभा बढाने की जगह चौधरी की तिजोरी दफना रही है।"[2] देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त भी जमींदार किसी-न-किसी प्रकार मछुओं से जल-कर वसूल कर लेते हैं—"गढ, पोखर के वास्तविक नये मालिक तो हमारी सरकार थी " जमींदारी-उन्मूलन के बाद देपुरा वालो का कोई हक नही रह गया था, गढ-पोखर पर। यह विशाल धन-सम्पत्ति अब जनता की थी। मगर नौकरशाही, भ्रष्टाचारो और कानूनी असगतियों के चलते जन-जीवन के साथ बेतुका खिलवाड़ अब भी चल रहा था।"[3] इस कारण राजनैतिक भ्रष्टाचार के कारण ग्राम्याचलो मे जहाँ शोषण हुआ है, वहीं वर्गगत चेतना के उदय के कारण वर्ग-सघर्ष की स्थितियाँ उभरी हैं।"

सामाजिक कुरीतियाँ

विवाह-प्रथा

यदि विवाह-प्रथा पर समकालीन दृष्टि से विचार किया जाये तो आज सभी कुरीतियाँ—जैसे आर्थिक शोषण, दाम्पत्य विघटन, वेश्या-प्रथा, दहेज-प्रथा, पर्दा-प्रथा, तलाक-प्रथा आदि इसी प्रथा का परिणाम नजर आती हैं। यही प्रथाएँ नारी-वर्ग के शोषण का कारण रही हैं। नारी-जीवन को अभिशाप बनानेवाली यही कुरीतियाँ वर्ग-संघर्ष को जन्म देती हैं। कही ये कुरीतियाँ वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियाओं के रूप मे भी सामने आती हैं। आंचलिक उपन्यासों मे मार्क्सवादी चेतना एवं समाजवादी अवधारणा के परिप्रेक्ष्य मे विवाह की पुरानी मान्यता को अस्वीकृत किया गया है। प्रारम्भ मे—"यौन-सम्बन्धो से उत्पन्न उत्तरदायित्व को सही दिशा प्रदान करने के लिए सम्भवतः विवाह-

---

१. पानी के प्राचीर—रामदरश मिश्र, पृ० ५३
२. जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० २९
३. वरुण के बेटे—नागार्जुन, पृ० १२७

संस्था का जन्म हुआ। यौन-स्वेच्छाचार को विवाह ने एक सीमा तक नियन्त्रित किया। सगोत्र-विवाह आदि के विधि-निषेध इसमें जुड़ते चले गये और विवाह एक महत्त्वपूर्ण विधान बन गया।"[1] किन्तु कालान्तर में ही इसके दुष्परिणाम समाज में प्रकट हुए।

'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास की आरती और जूनतारा की इच्छा विवाह से पूर्व वर-पक्ष को देखने की है। ये दोनों जागरूक युवतियाँ हैं, अतः सोचती हैं कि—"विवाह तो जग-लीला है। हमारे पुरखाओं ने विवाह न किया होता तो आज हम भी न होते। विवाह तो पाप नहीं, जब पाप नहीं तो शरम भी क्या है? बुरे से बँधने के बजाय तो अच्छे से बँधना ही शुभ है। एक बार की भूल पूरे जीवन को नष्ट कर देती है।"[2] विवाह के माध्यम से नारी-शोषण के असंख्य दृश्य उपन्यासों में उल्लिखित हैं, जिन्होंने संघर्ष को जन्म दिया। आंचलिक उपन्यासों में कतिपय विवाह-प्रणालियों का निरूपण हुआ, जिन्होंने कुरीतियों के रूप में नारी-जीवन को अभिशप्त बना दिया और संघर्ष की प्रेरणा दी।

अनमेल विवाह

नारी के सामाजिक शोषण की प्रचलित यह विवाह-पद्धति एक कुरीति है। फूल-सी सुकुमारी कन्या वृद्ध पुरुष के गले मढ़ दी जाती है तथा समस्त जीवन कुंठाओं से ग्रस्त संघर्षमय स्थितियों में व्यतीत करती है—'कितने ही लूले-लंगड़े, अन्धे, अपाहिज और बूढ़े भोला पण्डित की कृपा से अधखिली कलियों-जैसी बालिकाओं को गृहलक्ष्मी के रूप में पाकर निहाल हो गये। एक-एक ब्याह में पचास रुपये बँधे हुए थे।'[3] अतः अनमेल-विवाह आर्थिक शोषण तथा भ्रष्टाचार का बिन्दु बना रहा है। नागार्जुन के 'नई पौध' उपन्यास में आर्थिक विषमता के कारण अनमेल-विवाह को प्रश्रय मिलता है—'पन्द्रह साल की छोकरी पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी? हे राम!'[4] किन्तु आज के युवक नवचेतना से अनुप्रेरित होकर कहते हैं—"...लाज-शरम धो धोकर यह पी गये हैं, तो क्या हम भी बेहया बन जाएँ?'[5] नागार्जुन के उपन्यास 'उग्रतारा' की उगती भी अनमेल-विवाह के प्रति क्रान्तिकारी विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती है—"...सब-कुछ ठीक

---

१ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य-संक्रमण—डा० हेमेन्द्र पानेरी, पृ० १७३
२. ब्रह्मपुत्र—देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ५८-५६
३ रतिनाथ की चाची—नागार्जुन, पृ० ७१
४ नई पौध—नागार्जुन, पृ० २६
५. वही, पृ० ६०

है। लेकिन स्त्री-पुरुष के बीच उम्र का इतना बडा फासला किस तरह मखौल उडा रहा था विवाह-सस्कारो का ? बाबू भीखनसिंह को कानूनी तौर पर इस बलात्कार का हक हासिल हुआ।"[1] अनमेल-विवाह के कारण ही छोटी उम्र मे नारी वैधव्य का रूप धारण कर लेती थी, फलतः उन्हें सामाजिक एव पारिवारिक यातनाएँ भुगतनी पडती थी।

दहेज-प्रथा

नारी के आर्थिक शोषण की दृष्टि से दहेज-प्रथा एक भीषण समस्या बनकर समाज के सामने उभरी है। दहेज-प्रथा ने सैकडो नारियो का जीवन नारकीय बना दिया है। दहेज-प्रथा के फलस्वरूप उत्पन्न सघर्ष का उल्लेख 'हिरना सांवरी' मे किया गया है। विवाह देर से होने का कारण पैसा ही था— "माता-पिता लाख चाहकर भी बेटियो की शादी न कर पाते थे, क्योकि उनके पास दहेज के लिए पैसा नही होता था। कुछ लोगो मे दहेज बेटेवाले देते हैं। उन्हें भी पैसो के लिए माथा पीटना पडता था।"[2] दहेज एक ऐसी सामाजिक बुराई है जो अन्य अनेक कुरीतियो को जन्म देती है—"पारिवारिक कलह, अनमेल-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि सब इसी के विकसित रूप हैं।"[3] आज विवाह, विवाह न होकर मानो एक व्यापार बन गया है। 'माटी की महॅक' मे माधो पडित के लिए कार्य-व्यापार गरीब लडकियो का विवाह ही है। दहेज-प्रथा की भीषणता की आड मे वह अग-भग लडको से इन लडकियो का विवाह कराकर इस प्रथा को और भी भीषण बनाता है। इस प्रकार वह दलाली का काम करता है। इस दृष्टि से विवाह एक व्यापार तथा दहेज एक समझौता बन गया है। दोनो ही क्रियाएँ शोषण की प्रतिक्रियाएँ बनकर समाज मे भीषण सघर्ष उत्पन्न कर देती हैं।

'शालवनो के द्वीप' उपन्यास मे भी दहेज-प्रथा द्वारा नारी-शोषण का वर्णन किया गया है—"इस बीच ब्याह की तैयारी खूब जोर-शोर से हुई। कुछ दिनो बाद जब 'मोलाहिना' (वधू की कीमत) की पूरी व्यवस्था हो गई तो नगद तीस रुपये, एक हाँडी शराब और एक सूअर का चढाव लेकर चमरू के पिता लडकी के गाँव आए, जिसके बिना वधू का आना असम्भव था।"[4] 'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास मे दहेज-प्रथा की भयावहता के कारण पुष्पा का विवाह विधुर से किया जाता है। इस प्रकार इस प्रथा के प्रचार-प्रसार द्वारा शादी-

---

१ उग्रतारा—नागार्जुन, पृ० ४१
२ हिरना सांवरी—मनहर चौहान, पृ० १५
३. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम-चेतना—डा० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० १३७
४. शालवनो के द्वीप—शानी, पृ० १०१

ब्याह के एजेंट नारी-जीवन मे विषमता तथा कटुता के बीज बो देते हैं तथा जीवन में सघर्षमय स्थितियाँ उत्पन्न कर देते हैं—"आज के लोगो की शिक्षा तथा सामाजिक प्रतिष्ठा केवल दहेज लेने तक ही सीमित है।"[1] यही सामाजिक सघर्ष की स्थितियाँ हैं। दहेज-प्रथा पर व्यग करते हुए डॉ० रामदरश मिश्र ने कहा है—"ये मासखोर के बुलबुल हैं। बेटा कई बार मिडिल मे फेल हो चुका, दरवाजे पर एक बैल है और दहेज माँगते हैं डेढ हजार । ये हैं मिस रौली के मिसिर जी, दो बैल की खेती है, किन्तु लडका मैट्रिक पास करके दफ्तर मे साठ रुपया पा रहा है। बाप कहता है लडका साहब है, माँगते हैं दो हजार।"[2] वर्गगत चेतना के फलस्वरूप कमलिया दहेज-प्रथा द्वारा शोषण का विरोध करते हुए कहती है—"मैं बापू के नाम लिखी हुई तो नहीं हूँ। मैंने अपना जीवन किसी के हाथ गिरवी नहीं रखा। अपने जीवन का भाडा मैं खुद चुकाऊँगी।"[3] इस उद्धरण से स्पष्टत परिलक्षित होता है कि दहेज-प्रथा नारी के शोषण का प्रमुख कारण बनी रही है।

विवाह-विच्छेद-प्रथा

अवैध यौन सम्बन्धों के कारण भी विवाह विच्छेद होते हैं। स्त्री-पुरुष के वैचारिक मतभेदो के कारण पारिवारिक जीवन विच्छृखलित होने लगता है। उनके दाम्पत्य जीवन के विषाक्त होने पर सघर्ष की स्थितियाँ पनपने लगती हैं। विवाह विच्छेद को एक ओर सामाजिक कुरीति के रूप मे देखा गया है तो दूसरी ओर शोषण स मुक्ति का साधन माना गया है। आंचलिक उपन्यासो मे यह प्रथा वर्ग सघर्ष की प्रतिक्रिया के रूप मे प्रतिफलित हुई है। अवैध यौन-सम्बन्धो एव अवैध सन्तानो के पालन पोषण का दायित्व समाज मे वर्गगत सघर्ष की प्रतिक्रिया के रूप में पनपा है। 'मैला आचल' तथा सागर, लहरें और मनुष्य' मे अवैध गर्भ को स्वीकृति प्रदान कर मानवीय दृष्टिकोण का परिचय दिया गया है। 'हिरना सॉवरी मे कुँवारी हिरना सियाराम की गर्भवती हो अवैध सन्तान को जन्म देती है। काले फूल का पौधा' मे मिसेज घोष कहती हैं—"पति का दास मत बनो, जीवन वृथा हो जायगा।'[4] 'वरुण के बेटे' की मधुरी को विवाह सम्बन्ध विच्छेद की सलाह देते हुए कुसुम कहती है—"लात मार साले को ! जब तेरा आदमी ही बौड़म निकला तो ससुर की क्या बात

१ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ३५
२ वही, पृ० ३६
३ ब्रह्मपुत्र—देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ३४५
४. काले फूल का पौधा—डा० लक्ष्मीनारायणलाल, पृ १०३

करती है।"[1] इस प्रकार ससुराल के अत्याचारों से तंग आयी मधुरी निश्चय कर लेती है—"वह कभी उस नशाखोर बुड्ढे (ससुर) की लात बात बर्दाश्त करने नहीं जायेगी·· फिर से शादी कर लेगी किसी दिलेर, नेकचलन और मेहनतकश जवान से·· और बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिन्दगी नहीं गुजार सकती क्या ?"[2]

शोषण के विरुद्ध नारी-वर्ग में नवचेतना का प्रादुर्भाव हुआ तथा इसी वर्ग-गत चेतना ने नारी को संघर्ष की ओर उन्मुख किया। 'सूरज किरन की छांव' में बजारी का अन्त तक शोषण होता है। शोषण के घात-प्रतिघातों के फल-स्वरूप उसे नवचेतना प्राप्त होती है। वह कहती है—"क्या औरत की जिन्दगी में इसके सिवाय कुछ नहीं है ? यदि नहीं है तो दुनिया में औरत होना सबसे बड़ा पाप है। या तो आदमी को जन्म के साथ ही उसका गला घोंट देना चाहिए, जो वह नहीं कर सकता, या औरत को खुद जहर खाकर मर जाना चाहिए, इसके सिवाय उसके सामने कोई चारा नहीं है। जब आदमी उसे जीने नहीं देना चाहता तो घुएँ में घुटने और तड़पने देने का भी उसे अधिकार नहीं है।···क्या औरत आदमी की धरोहर है ? जब तक चाहे उसका उपयोग करे और जब चाहे किसी कबाड़ी को बेचकर चल दे।"[3] घृणास्पद वैवाहिक विसंगति से शोषित बजारी संकल्प लेती है कि अब मैं प्रयत्न करूँगी कि उस गाँव की—'किसी बजारी को निर्वासित होकर मिसेज बैजो जोसेफ न बनना पड़े।"[4] यह संकल्प नारी की सामाजिक जागरूकता का द्योतक है।

समाज में व्याप्त कुरीतियाँ ही समाज में शोषण की स्थितियाँ पैदा करती हैं। इन कुरीतियों में वेश्यावृत्ति, दहेज-प्रथा, विधवा का शोषित जीवन आदि सारी स्थितियाँ वर्ग-संघर्ष को जन्म देती हैं। परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों में इन प्रथाओं को तोड़ने एवं शोषण से मुक्ति पाने का अथक प्रयास जारी है। आंचलिक उपन्यासकारों ने बड़ी सजगता से इन समस्याओं का चित्रण किया है।

यौन-विकृतियाँ

यौन-स्वच्छन्दता के कारण अनेक प्रकार की यौन-विकृतियाँ उभरी हैं। समाज में यौन-विकृतियाँ शोषण का कारण बनकर संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। 'मछरी मरी हुई' में शीरी समलैंगिक यौन-विकृति से पीड़ित है।

---

१ वरुण के बेटे—नागार्जुन, पृ० ९६
२ वही, पृ० १२१-१२२
३. सूरज किरन की छांव—राजेन्द्र अवस्थी, पृ० १६०
४ वही, पृष्ठ १६८

"एक दिन बडी बहन ने बियर से भरे गिलास के साथ समझाया कि दो औरतें भी परस्पर शारीरिक जीवन बिता सकती हैं। बडी बहन ने तरीका बताया। अपने बताये तरीके पर आगे बढती गयी। शीरी आश्चर्यचकित थी कि वह बेहद उत्तेजित थी। बहन जो करना चाहती थी, करने देती थी। कोई पुरुष शीरी को इतनी शीतलता, इतनी शीतल उत्तेजना, इतनी उत्तेजक शारीरिक वेदना नही दे सकता था।"[1] "शीरी अपनी बडी बहन की नगी देह से लिपटी रहती थी। अपनी अँगुलियो से उसे सहलाती और थपथपाती रहती थी।"[2] पराये स्त्री-पुरुष के प्रति यौन-व्यवहार सघर्ष की स्थिति को जन्म देता है। आर० गौरी बनर्जी लिखते हैं कि—"यौन-सम्बन्धी अनियमितताओ की घटनाएँ नियन्त्रण के अभाव मे घटती हैं।"[3] 'सूरज किरन की छाव' मे यौन-अतृप्ति की स्पष्ट झलक मिलती है—"भाग लेकर आयी है गुनिया, उसमे इत्तो गुन कहाँ! हम तो तरसते हैं, कोई प्रेमी आकर प्यार-भरी चुटकी ले जाए, तो अपने भाग सिराहें।"[4] 'पानी के प्राचीर' मे यौनवृत्ति के आधार पर किये गए शोषण के सम्बन्ध मे बिदिया चमारन कहती है—"इन छोकरो और बूढे बैलो की आसक्ति केवल मेरी देह के लिए है। अधेरे मे उसे चूसकर ये बामन लोग उजाले मे पण्डित बने घूमेगे और उसकी छाया से भी बचने का ढोंग रचेंगे। इनमे देने की कसक बिल्कुल नही है, बस सब लेकर हजम कर जाने का हौसला है। कैसे हैं ये बामन कुत्ते, रात में विष्ठा तक खा लेंगे और दिन को ओठो पर पान की पीक पोतकर महकने की कोशिश करेंगे।"[5]

निम्न-वर्गों का उच्च-वर्ग के लोगों द्वारा इस वृत्ति के आधार पर किया गया शोषण भी वर्ग-सघर्ष का कारण बनता है। 'दीर्घतपा' उपन्यास म बेला गुप्त कहती है— 'सतीत्व क्या है ? कुछ नही'''पाप क्या है ? पुण्य क्या है ? देश को स्वतन्त्र करना ही सबसे बडा पुण्य है ''भूख लगती है वैसे ही देह की भूख है।'[6] यौन विकृति का स्पष्टीकरण करते हुए डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है कि— 'स्वाभाविक यौनवृत्ति और यौन व्यापार के स्थान पर अत्यन्त अस्वाभाविक रूप म यदि मनुष्य यौन-तृप्ति पाये, तो वही यौन-विकृति है। ये विकृतियाँ एक ओर तो दमन, वर्जना और अवरोध का परिणाम हैं और दूसरी ओर स्वाभाविक विकास की वियोजित या विच्छिन्न अवस्थाएँ हैं।'[7] 'अलग-

१ मछली मरी हुई—राजकमल चौधरी, पृ० ४६

२ वही, पृ० १२०

३ सेक्स डेलीक्वेन्ट वोमेन एण्ड देयर रिहैबिलीटेशन—आर० गौरी बनर्जी, पृ० ६२

४ सूरज किरन की छाव—राजेन्द्र अवस्थी, पृ० १८

५ पानी के प्राचीर—रामदरश मिश्र, पृ० ५०

६ दीर्घतपा—फणीश्वरनाथ रेणु पृ० ४४

७ हिन्दी साहित्य कोश—धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ६६८

अलग वैतरणी' मे पटनहिया की यौन-विकृति का रूप यह है कि—"वह छोटे-छोटे लडको को नगा कर देखने में यौन-सतुष्टि प्राप्त करती है। मास्टर शशिकान्त भी यौन-विकृति से आक्रान्त रहता है। वह अपने शिष्यो के माध्यम मे इस विकृति को प्रदर्शित करता है। शिवराम अपनी विकृत व दानवी भूख को गोपाल के शरीर मे शान्त करता है। सर्वप्रथम तो सेवा-रूप मे स्वीकारता है किन्तु ज्यो-ज्यो वह इस दलदल मे धँसता गया, गन्दे कीडे उसके तन-मन पर रेंगते रहे और धीरे-धीरे वह उस दल का नियमित सदस्य बन गया।"[1] समलिंगी बूढा बच्चे से कामेच्छा पूर्ण करता है।

यौन-विकृतियो को आचलिक उपन्यासो मे पूर्णत उभारा गया है। 'हिरना सावरी' उपन्यास मे छोटी आयु मे उत्पन्न यौन-चेतना का वर्णन किया गया है, जिसके आधार पर हिरना पैसा लेकर शरीर बेचने को मजबूर हो जाती है। वह कहती है—"मैंने सोचा, पैसा। अनजाने मे मेरा हाथ पेट को छूने लगा। यहाँ पैसा ही तो पल रहा है।"[2] 'सत्ती मैया का चौरा' उपन्यास मे यौन-चेतना द्वारा शोषण या विद्रोह किया जाता है— "आपने लडकी रखी है, इसकी परवस्ती का इन्तजाम कर दें।…लडकी आपके पास सोयी है कि कोई ठट्ठा है।"[3] एक मूठ सरसो' मे उदुवा-सदुवा का वार्तालाप यौन-विकृति का परिचायक है—"'यार, सदुवा! औरतें झटुक कैसे लगाती होगी, रे?' 'जैसे हमारी देवकी प्यारी की महतारी रेवती काकी ने खडकसिंह चचा के साथ लगाया था।' "और वह इस प्रकार देवकी के साथ यौन-कुचेष्टाएँ करने की कोशिश करता है। जब देवकी विरोध करती है तो वह कहता है—"चुप, ससुरी! झटकेली होकर भी बहुत पतिव्रता सीता-सावित्री के जैसे नखरे मत कर।…नही तो, हम तेरी झगुली फाड देंगे, तेरे नाक-कान काट लेंगे।"[4] इसी उपन्यास की रेवती कहती है कि—"पाप-कलको की जडें फैलती जा रही हैं। मैं तो एकदम हैरत मे आ गई हूँ कि होते हुए अपने खसम के पराये मर्द से गर्भ-धारण कैसे कर लेती होगी आजकल की औरतें?"[5] आर्थिक अभावों के कारण भी नारी-वर्ग अन्य पुरुषो से यौन-सम्बन्धो को स्थापित करने के लिए मजबूर किया जाता रहा है। 'रतिनाथ की चाची' पुरुष-वर्ग पर व्यग कसते हुए कहती है कि—"उस धनी सज्जन का नाम तुम्हे बताना नही चाहती कि जिसका हृदय हम विधवाओ के प्रति करुणामय

१ अलग-अलग वैतरणी—शिवप्रसाद सिंह, पृ० ४४२
२. हिरना सांवरी—मनहर चौहान, पृ० १६५
३ सत्ती मैया का चौरा—भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० ५६१
४. एक मूठ सरसो—शैलेश मटियानी, पृ० ५६
५. वही, पृ० ५७
६ वही, पृ० १६

है। इतना करुणामय कि तीन तीन विवाहिताएँ और पाँच-पाँच रखेलियाँ रहते हुए भी चूडियो से सूनी कलाई की ओर ललचाई निगाह से देखा करता है।"[1] 'कब तक पुकारू' उपन्यास की प्यारी दरोगा के द्वारा शोषित होती है। यद्यपि वह दरोगा की यौन-कुचेष्टाओ के प्रति सचेत थी, किन्तु आर्थिक विवशताओ ने उसे ऐसा करने को मजबूर किया। दरोगा की नजरें बार-बार उस पर पडती थी। प्यारी शायद ताड गई थी। उसके उठे वक्ष पर दरोगा की नजरो के साँप बार-बार फन मारते और फिर वह महेडी मारते अपना रोष दिखाते इसीला पर। मैं विक्षुब्ध था।[2] 'परती परिकथा' में एयोनी साहब सुल्तानपुर के मालिक हैं, वे यौन-विकृत हैं। एक दिन श्री शिवेन्द्रनाथ मिश्र ने उनकी पत्रक मे लिखित पक्तियो को जब पढा तो उनकी सही स्थिति सामने आयी—' " योर नेकेड वीमैन तुम्हारी नगी औरतें पोखरे म नहाने आती हैं। हम दूरबीन से उन्हे देखते हैं। दूरबीन की राह वे हमारे एकदम करीब आ जाती हैं। हम उन्हे अपने पलग पर देखना माँगते हैं।'[3]

"मनुष्य के जीवन मे यौन की आवश्यकता अत्यन्त गहन और शाश्वत है। यौन-आवश्यकता मनुष्य की भूख की तरह है।"[4] 'सागर लहरें और मनुष्य' मे पुरुष की नपुसकता नारी की यौन असतुष्टि का कारण बनकर मानसिक विकृति को जन्म देती है—"हर रात रत्ना के सहवास मे उस अपनी कमजोरी मालूम देती जैस उसके शरीर की सामर्थ्य रति-उत्तेजना म उसके सामने हीन है।"[5] रत्ना इस नपुसकता से निराश हो उठती है—' दोनों हाथ उठाकर जूडे को कसते हुए उसकी छाती और भी उभर आई। बहुत देर तक तकिए को छाती स दबाये वह शीशे म अपना मुँह देखती रही और अत्यन्त निराशा स अपने ज्वार को पीने लगी। इस माणिक के पास उस जिसके लिए आना पडा। रोटी, कपडा, गहना, और भूख। वह मानसिक भूख के लिए बेचैन हो उठी। उसके जी म आया माणिक को छोडकर कही चली जाय।'[6] इस प्रकार मनुष्य की जब स्वाभाविक रूप म यौन तृप्ति नही होती है तो यौन-विकृतियो का जन्म होता है। इस यौन सतुष्टि के लिए वह अनेक अस्वाभाविक क्रियाएँ अपनाता है। यदि इसम भी तृप्ति न हो तो वह अर्थ के माध्यम स यौन-अतृप्ति की पूर्ति करता है, जो समाज म सघर्ष का परिवेश उत्पन्न करती है।

---

१ रतिनाथ की चाची—नागार्जुन, पृ० ८६
२ कब तक पुकारू—रांगेय राघव, पृ० ४४
३ परती परिकथा—फणीश्वरनाथ रेणु पृ० ४३८
४ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना—डॉ० ज्ञानचन्द गुप्त, पृ० ११२
५ सागर लहरें और मनुष्य—उदयशकर भट्ट, पृ० १६२
६ वही, पृ० १६४

साम्प्रदायिक सघर्ष

सकुचित धार्मिक भावना को लेकर निरन्तर बडे-बडे सघर्ष होते रहे हैं। भारत के विभाजन के पश्चात् साप्रदायिक सघर्षों की रक्तरजित पृष्ठभूमि उभरकर सामने आयी। 'सत्ती मैया का चौरा' उपन्यास मे साप्रदायिकता के कारण धर्म का स्वरूप विकृत हुआ माना गया है। धर्म तथा मजहब प्राथमिक अवस्था मे आचरणमूलक पवित्रता के चिह्न थे किन्तु अब वर्गगत सघर्ष का कारण बने हुए हैं—'ये मजहब, ये धर्म जिसके प्रवर्तक ससार के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य थे, जिनका उद्देश्य मानवता को ऊँचा उठाना था'' आज उनकी आड म क्या-क्या अनाचार हो रहे हैं, कैसे-कैसे अत्याचार जोडे जा रहे हैं, किस तरह एक-दूसरे के दिल मे एक-दूसरे को शत्रु बनाया जा रहा है। एक-दूसरे को लडाया जा रहा है।''[1] इसी उपन्यास मे अन्यत्र उपन्यासकार ने कहा है कि— वर्ग-सघर्ष के आधार पर ही साम्प्रदायिकता एव धार्मिक सकुचितताओ का अत हो सकता है। विधान कानून बना लेने से ही क्या होता है इस मर्ज का एक यही वाहिद इलाज है—वर्ग चेतना ''वर्ग-सघर्ष'' क्रान्ति।''[2]

भारत के विभाजन के साथ ही साम्प्रदायिकता की भीषण आँधी चली। दानवता की होली मानवता के वक्षस्थल पर खेली गयी। साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता मे बाधक सिद्ध हुई है। 'जल टूटता हुआ उपन्यास मे बाबू महीपसिंह मुसलमानो के द्वारा होने वाले अत्याचारो की कथा कहते हैं—'मुस्लिम लोगो का ऐलान है कि एक हिन्दू को मारने से मुसलमान को हजार बहिश्तो का फल मिलता है। कुरान शरीफ का भी यही हुकुम है, इसलिए मुसलमान निरीह हिन्दुओ को बेरहमी से कतल कर रहे हैं।''[3] 'सत्ती मैया का चौरा' मे मुन्नी की धारणा है कि साम्प्रदायिक सघर्ष द्वारा शोषण का अन्त करने का मात्र एक उपाय है—' वह है—वर्ग-चेतना पैदा करना, जनता की मुक्ति की लडाई को वर्ग-सघर्ष के स्तर पर ले जाना। मुस्लिम जनता और हिन्दू जनता मे जैसे ही वर्ग-चेतना का प्रादुर्भाव होगा, उन्हे धर्म के नाम पर कोई सामन्त या पूँजीपति भडका नही सकेगा। वर्ग-चेतना धर्मों की दीवारो को हमेशा के लिए गिरा देगी।'[4] स्पष्ट है कि वर्गगत चेतना साम्प्रदायिक विष को सदा-सर्वदा के लिए समाप्त कर देगी। इसका कारण साम्प्रदायिक सघर्ष ही रहा है। 'माटी की महक' मे मास्टर सुगन साम्प्रदायिक दगो के पीछे जातिगत अह की भावना

---

१ सत्ती मैया का चौरा—भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० ५०

२. वही, पृ० ६६५

३ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० १६

४. सत्ती मैया का चौरा—भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० ५६३-५६४

देखते हैं। यह सघर्ष हक के लिए कम और अह-सतुष्टि के लिए अधिक होता है। आगे चलकर यही सघर्ष वर्ग-सघर्ष का कारण बन जाता है—"धर्म और मजहब, मजहब और धर्म—ये तो केवल दिखावे के सामान रह गये हैं, प्रधान रह गया है—आदमी का दम्भ। हर साल यही दम्भ प्रधान हो उठता है। अब यह भी कोई धर्म है कि जिस रास्ते ताजिया जाता है उसी रास्ते जायेगा ? लीकों के पीछे इतना मोह ? भरी हुई फसल को रौंदकर ताजिया ले जायेंगे, फले हुए पेडों की डाल काटकर ही ताजिया ले जायेंगे, जरा सा झुक नहीं सकते।"[1] महत्त्व पर्व का नहीं, अपितु महत्त्व है सघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न करने का।

वस्तुत जातिवादी आधार पर साम्प्रदायिक दगों को प्रोत्साहन दिया जाता है—'भारत मे हिन्दुत्व और इस्लाम के झगडे बहुत पुराने समय से चले आ रहे हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों को आपस म लडाकर अग्रेजो ने भारत मे अपने शासन की नींव मजबूत की और कूटनीतिक तौर तरीकों से ऐसी भयावह स्थिति पैदा कर दी कि उक्त समस्या दिन-पर-दिन उलझती ही गई। हिन्दू-मुस्लिम समस्या का आधार धार्मिक ही नहीं है, वरन् उसका विशिष्ट राजनैतिक पहलू है जिसने एकता के किसी प्रयत्न को कारगर सिद्ध नहीं होने दिया। ऊपरी तौर पर उसका रूप धार्मिक दिखाई देता है, लेकिन वास्तव मे धर्म का तो राजनैतिक महत्त्वाकाक्षा को पूरा करने के लिए मात्र 'हथियार' के रूप म नाम लिया गया। यदि राजनैतिक पहलू मूल में नहीं होता तो केवल धर्म के कारण इन दो जातियों म इतना वैमनस्य कभी नहीं बढता।"[2] 'सत्ती मैया का चौरा' मे लेखक ने मुन्नी के माध्यम से साम्प्रदायिक सघर्ष को वर्ग-सघर्ष के परिप्रेक्ष्य म रूपायित किया है—"स्कूल और सत्ती मैया का चौरा के रूप मे हमारा सघर्ष एक मजिल तक पहुँच गया है, जिसके आगे गाँवों की तरक्की का दरवाजा हमेशा के लिए खुल जाता है।"[3] डॉ० महावीरमल लोढा का मत है कि—"साम्प्रदायिक सघर्ष मे गाँव म समाजवादी समाज स्थापित करने की कल्पना ही इस उपन्यास का लक्ष्य है।"[4] निष्कषत कहा जा सकता है कि आचलिक उपन्यासों मे चित्रित साम्प्रदायिक सघर्ष वर्ग-सघर्ष का उत्प्रेरक और मार्क्सवादी चेतना का प्रसारक है। यह संघर्ष वर्गगत शोषण के विरुद्ध संगठित शक्ति द्वारा विद्रोह करने की चेतना प्रदान करता है।

---

१ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र पृ० २३
२ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द—डॉ० महेन्द्र भटनागर पृ० ६८
३ सत्ती मैया का चौरा—भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० ६८०
४. हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन—डॉ० महावीरमल लोढ़ा, पृ० ६०

आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ

शोषण की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ निरंतर पनपती हैं। शोषण की चक्की के दो पाटों में पिसता हुआ शोषित-वर्ग अपने अधिकारों की माँग करते हुए आन्दोलन का सहारा लेता है। 'जुलूस' उपन्यास में वर्ग-चेतना की भावना मुखर हुई। श्रमिकों तथा मिल-मालिकों में जब सम्बन्ध कटु और तनावपूर्ण हो गए तो छोटन बाबू ने शोषित वर्गों की भीड़ के साथ अमीर तालेवर गोडी के मकान के पास एकत्रित होकर कहा— 'गाँव के लोग मर रहे हैं और आपकी मिल चालू है। निकालिए एक हजार चन्दा। नहीं तो इसी बार आपका लाइसेंस कैंसिल नहीं करवाया तो मेरा नाम छोटन बाबू नहीं।'[1] इसी प्रकार जब अचलगढ़ के ठाकुर गलत ढंग से पट्टेदारी कराकर बीस बीघा जमीन हड़पने की कोशिश कर रहे थे तब जनबल के संगठित आधार पर काका तिवारी ने कहा—"खेत कैसे जोतोगे ठाकुर! सैकड़ों वर्षों से जेठ-बैसाख के ताप में जो खून-पसीना बहाके, जोत-बोके, इसके ढेले फोड़-फाड़ के अपना पेट पालते आये हैं, तुम समझते हो, इसे आसानी से छोड़ देंगे?'[2] 'ब्रह्मपुत्र' में राखाल काका की वेदना आन्दोलनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करती है—"दिसागमुख में कितनी अनबन है। इसका बस चले तो पानी पर दीवारें खड़ी कर दें, हवा को भी बाँट लें। कोई बात हुई भला? बड़ा गड़बड़ घोटाला है। मीरी, असमिया और नेपाली में वर्षों से लड़ाई चल रही है—खूनी लड़ाई और छिपी लड़ाई।"[3]

आन्दोलनकारी प्रवृत्तियों का प्रसार कृषक वर्ग में भी परिलक्षित होता है—'किसानों की जमीन पर दावे किये हैं" हजारों बीघे वाला भी एक इंच जमीन छोड़ने को राजी नहीं। छः महीने से गाँव का बच्चा-बच्चा पक्की गवाही देना सीख गया है…छः महीने में ही गाँव एकदम बदल गया है। बाप-बेटे में, भाई-भाई में, अपने हक को लेकर ऐसी लड़ाई कभी नहीं हुई।'[4] साम्यवादी विचारों के प्रचार-प्रसार के कारण किसानों में प्रादुर्भूत चेतना का निरूपण 'जंगल के फूल' उपन्यास में किया गया है। सिरहा कहता है—'हमें दो एकड़ जमीन देकर सरकार यह बताना चाहती है कि हम सिर्फ दो एकड़ जमीन के मालिक हैं। बाकी जमीन हमारी नहीं है।'[5] जन-जागरण के कारण देश में जन-आन्दोलनों को महत्त्व मिला है। सामान्य जनता उनमें सम्मिलित होने में अपना गौरव अनुभव करती है। 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास का जैकिसुन इस आन्दोलन में

१. जुलूस—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० १८४
२. वही, पृ० १८५
३. ब्रह्मपुत्र—देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ११६
४. परती परिकथा—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० १४६
५. जंगल के फूल—राजेन्द्र अवस्थी तृषित, पृ० ११५

सक्रिय भूमिका का निर्वाह करता है—'मिदनापुर के किसानो ने लगानबन्दी का आन्दोलन छेड दिया। दक्षिण मलाबार के मोपलो ने बगावत कर दी। पजाब मे सरकार के पिट्ठू महन्तो के खिलाफ अकाली सिखो की घृणा भडक उठी।"[1] इस प्रकार इन सघर्षों ने जन-जागरण की चेतना को प्रश्रय दिया। यह सघर्ष शोषण के विरोध मे प्रस्तुत किया गया था। नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' मे बताया है कि इन आन्दोलनकारी क्रियाओ से प्रभावित होकर किसान सगठित होने लगे। उनका नारा था— कमानेवाला खायेगा, इसके चलते कुछ हो। ब्राह्मणो मे इस बात को लेकर दो दल हो गये, एक दल जमीदारो की ओर था, दूसरा किसानो की ओर। किसान बित्ताभर भी जमीन छोडने को तैयार नही थे। उनमे गजब का जोश था। सभा, जुलूस, दफा एक सौ चौवालीस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, भूख-हडताल, रिहाई—यह सिलसिला किसानो को ठडा नही कर सका।"[2]

'नदी फिर वह चली' म उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि व्यर्थ मे किए जानेवाले सघर्ष का कुछ फल नही निकलता। सघर्ष का महत्त्व देश के सामाजिक और आर्थिक विकास म ही जाना जा सकता है—"सघर्ष किया जा रहा है, मगर निरर्थक सघर्ष को हम सघर्ष नही कह सकते। वास्तविक सघर्ष तो वह है, जिसके दौरान में जनसाधारण की सामाजिक और आर्थिक अवस्था विकसित हो।"[3] सघर्ष जोश तभी पकडता है जब जन-सामान्य को उसका महत्त्व ज्ञात हो तथा उसके प्रतिफल को प्राप्त करना एक लक्ष्य हो। 'कब तक पुकारू' के रचनाकार डॉ० रागेय राघव के शब्दो म—'शोषण का आर्थिक पहलू ही देखना काफी नहीं है। शहरो म बैठनेवाले आधुनिकता के नजरिये से सब-कुछ देख सकते हैं पर असली भारत तो गाँव मे है जो अब भी मध्यकालीन विश्वासो से ग्रस्त है। वे विश्वास मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था से नियत्रित है। मैंने उनको स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।"[4] 'साप और सीढी' का दलसाय एक क्रान्तिकारी पात्र है। मजदूरो के हक मांगने के लिए वह जुलूस निकालने की तैयारियाँ करता है। सभी मजदूरो को एकत्र करके वह केदार जी को आदेश देता है कि वे सभी निम्नाकित माँगे रखी जायेंगी—'(१) सबो की मजदूरी बढाकर पहले की तरह रखी जाय। (२) स्थानीय मजदूरो के साथ सौतला व्यवहार बन्द हो। (३) मजदूर महिला और पुरुष दोनो की मजदूरी बराबर हो। (४) *खदान के सरकारी अधिकारियो और ठेकेदारो द्वारा महिला मजदूरो का शोषण*

---

१ बाबा बटसरनाथ—नागार्जुन पृ० ६७
२ रतिनाथ की चाची—नागार्जुन, पृ० ९९-१००
३ नदी फिर वह चली—हिमाशु जोशी, पृ० २७६
४ कब तक पुकारू—रागेय राघव (भूमिका, द्वि० सस्करण १९६०)

बन्द हो। इज्जत के साथ किया गया खिलवाड़ हरगिज बर्दाश्त नहीं किया जायेगा।'[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्ग-संघर्ष को बढ़ावा देने के लिए जुलूस अनिवार्य कदम हो जाता है। जुलूस, नारेबाजी, हकों की माँग, शोषक-वर्ग की नींव हिला देने के लिए एक सशक्त कदम है।

ग्रामीण वातावरण में पारस्परिक वैमनस्य भी संघर्ष को जन्म देता है। आर्थिक उन्नति में वे लोग एक दूसरे के बाधक बनकर पनपते हैं तथा शोषण की प्रक्रिया को तीव्र बनाते हैं। 'चौथी मुट्ठी' में एक सखिया जब मेहनत के बल पर धन एकत्र करता है तो सब उसके विरुद्ध हो जाते हैं। पुलिस के दरोगा के बल पर उसका शोषण करते हैं। सखिया वर्ग-गत चेतना से युक्त होकर कहता है—"हुजूर, आप माई-बाप हैं, जरा मेरी भी फरियाद सुनें। मैं एक मामूली-सा दूध बेचनेवाला इन्सान था। अपनी मेहनत और आपकी मेहरबानी से एक दुकान खोली, दूसरी दुकान खोली, तीसरी, दोनों दुकानों में खुद अपने हाथों से सारा सामान तैयार करता हूँ। हुजूर! आपकी दुआ से ईश्वर ने रोजगार में बरकत दे दी। आज जरा अच्छी हालत में हूँ। बस इतना ही मेरा कसूर है।"[2] ग्राम्य राजनीति ने भी शोषण की अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं। इन परिस्थितियों के प्रति वर्गगत चेतना प्रदान करना भी उपन्यासकार का लक्ष्य रहता है। 'जंगल के फूल' उपन्यास में आदिवासी राजनैतिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते हैं तो ग्रेयर की क्रूर यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। वह कहता है—'ये जंगली, हमसे लड़ने की हिम्मत करते हैं। उसने गायता के गाल पर कसकर चाटे लगाए और अपने भारी जूते की एक ठोकर उसके पेट में मारी, फिर एक सैनिक को बुलाकर हुक्म दिया कि इनके गले में फन्दा लगाकर झाड़ से लटका दिया जाय।'[3] इस विकराल शोषण ने वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया। आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ आंचलिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष के अनुप्रेरक तत्वों के रूप में उल्लिखित हुई हैं। आन्दोलन, हड़ताल, जुलूस, संघर्ष आदि सभी कार्य शोषण से मुक्ति पाने अथवा दिलाने का सक्रिय प्रयास मात्र है। आन्दोलनकारी समस्त प्रवृत्तियाँ सम्मिलित रूप में एक विशाल चेतना की जन्य हैं। जन-मानस में अपने हक को पहचानने की शक्ति उत्पन्न करती हैं। यह शक्ति उन्हें संघर्ष की दिशा प्रदान करती है तथा संघर्ष को उस समय तक जारी रखने की प्रेरणा देती है, जब तक कि सभी प्रकार के शोषणों का समाज से अन्त न हो जाय।

सांस्कृतिक पतन

भारतीय संस्कृति का परम्परागत स्वरूप हमें ग्राम्यांचलों में देखने को

१ सांप और सीढ़ी—शानी, पृ० १०५
२ चौथी मुट्ठी—शैलेश मटियानी, पृ० २१
३ जंगल के फूल—राजेन्द्र अवस्थी, पृ० २५४

मिलता है। आंचलिक उपन्यासकार इन पुराने मूल्यों को ही उजागर करते हुए नवीन मूल्यों में परिणति की प्रक्रिया तथा उसमें उत्पन्न स्थिति को भी सांस्कृतिक धरातल पर उतारते हैं। इन उपन्यासकारों की दृष्टि समग्र चित्रण की रहती है। वर्ग संघर्ष की प्रतिक्रियास्वरूप ग्रामीण सांस्कृतिक मूल्यों में भी परिवर्तन आया है। यहाँ पर नवीन तथा प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के संघर्ष से परिवर्तन का क्रम प्रस्तुत किया है। इस प्रक्रिया में कहीं-कहीं घातक-कुरुचि प्रवृत्तियाँ भी उत्पन्न हुई। वस्तुतः — यहाँ आवश्यकता इस बात की थी कि व्यक्ति तथा समाज में समुचित सामंजस्य स्थापित किया जाए तथा दोनों को केन्द्र में रखकर सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों का परिष्कार किया जाय।"[1] आंचलिक उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की उन समस्त प्रभाव-रेखाओं को उजागर करने का प्रयत्न किया है जो आज हमें ग्राम-जीवन की समस्त संभावनाओं से परिचित कराती हैं।"[2] फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' उपन्यास में ये संभावनाएँ साकार हुई हैं। 'मैला आँचल' का डॉ० प्रशान्त ग्रामवासियों में प्यार के बीज पुनः बो देने का प्रयत्न करता है—'मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएँगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारत माता के मैले आँचल तले! कम से कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाए ओठों पर मुस्कुराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।'[3] प्राचीन संस्कृति की निरन्तर टूटन ने ग्रामवासियों के आत्मविश्वास को खो दिया है। उनमें स्वार्थपरता के बीज पनप रहे हैं। फलतः नवीन संस्कृति को अपनाने में वे स्वयं को सक्षम नहीं पाते। उनके मानसिक धरातल पर सांस्कृतिक परम्पराओं को लेकर संघर्ष छिड़ा रहता है।

नवीन सांस्कृतिक प्रभाव के आगमन ने प्राचीन संस्कृति का पतन तो किया ही, साथ ही साथ स्वार्थपरता, नीचता, क्रूरता आदि भावनाओं को भी जन्म दिया है। अब—"गाँववाले उतने निश्छल नहीं हैं, जितना आप उन्हें समझते हैं। यहाँ की हवा ही ऐसी है कि आग भी पानी जैसी शीतल लगती है।"[4] 'जमींदार का बेटा' में, सांस्कृतिक धरातल में नवीनीकरण के संघर्ष को इस वाक्य द्वारा स्पष्ट किया है—'बात यही है कि निर्गुन गावे धक्का पावे, कमर डोलावे टक्का पावे।'[5] अतः ग्राम्यांचल आधुनिकता से संत्रस्त दृष्टिगत होते हैं—"गाँव का वातावरण जितना सरल और स्वच्छ दीखता है, उतना नहीं

१ हिंदी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० रमेश तिवारी, पृ० ३०६

२ स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना—डॉ० ज्ञानचंद गुप्त, पृ० २०८

३. मैला आंचल—फणीश्वरनाथ रेणु पृ० ३३४

४ दूब जनम आई—शिवप्रसाद मिश्र पृ० १०२

५ जमींदार का बटा—दयानाथ झा, पृ० १०६

होता। छोटी सी जगह, छोटी बातें ही तूफान उठाने को काफी होती हैं। छोटी-छोटी बात-बात पर माया और ब्रह्म की दुहाई देनेवाले ग्रामीण, अपनी शान या भौतिक समृद्धि के लिए सहोदर भाई का भी गला काटने से नही हिचकिचाते।"[1] गाँव के आदमी गाँव मे ही अज्ञान कुलशील बन गए है। आज कोई भी एक-दूसरे से मुक्त हृदय से नही मिल पाता। प्रत्येक दूसरे को संशय की दृष्टि से देखता है। बेरोजगारी ने भी यहाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है, जिसके कारण गाँव के गाँव टूट रहे हैं। अब वहाँ की संस्कृति न पुरानी है, न नयी, सभी कुछ अस्त-व्यस्त हो गया है।

ग्राम्यांचल मे नवीन सांस्कृतिक चेतना

'अलग-अलग वैतरणी' मे मकर-सक्रान्ति के पर्व पर बुझारथसिंह के वक्तव्य द्वारा नवीन चेतना-विकास का आभास मिलता है—"क्या रखा है इस दिखावे मे ? सारा रस्म-रिवाज हमी निभाते चलें ? जब गाँव के लोगो ने नजराना बन्द कर दिया तो हम यह सब काहे को करते फिरें ?"[2] वास्तव मे गतिशीलता सांस्कृतिक मूल्यो की विशेषता है। परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ सांस्कृतिक मूल्यो मे परिवर्तन आना स्वाभाविक है—"संस्कृति मे जड की स्थिति पतन का परिचायक होती है।"[3] अत संस्कृति मे परिवर्तित अवस्था के साथ ही मूल्यगत परिवर्तन होना आवश्यक है। संस्कृति में गतिरोध आने का कारण है—एक ओर तो हमारा दीप्तिमान भव्य अतीत और दूसरी ओर विशृंखलित वर्तमान—"इसलिए हमारा देश समय के अनुकूल चलने के लिए नितान्त अशक्त है। समय के साथ चलने के लिए जिन संस्कारो का बल चाहिए, उसके प्रति हमारा समाज जागरूक नही।"[4] हमारा देश अनेकानेक संस्कृतियो एवं रीति-रिवाजों का अजायबघर है। आज "भौतिक विज्ञान की इतनी तेजस्वी प्रगति के युग मे ये तमाम पुराना ढाँचा अर्थहीन हो गया है। इन देवता से चिपकी मनुष्य चेतना को तुरन्त मुक्त होना चाहिए। श्रद्धा के प्रतीक की आवश्यकता है किन्तु अंधश्रद्धा के प्रतीक नहीं।"[5] अत विचारों और व्यवहारो की असमानता के कारण पुरातन एवं नवीन सांस्कृतिक मान्यताओ मे संघर्ष अवश्यम्भावी है। 'लोक परलोक' उपन्यास मे इस चेतना का संकेत मिलता है—"सब वर्गों मे चेतना थी तो अपने को बड़ा मानने मे। लोधे और अहीर

१ दूब जनम आई—शिवप्रसाद मिश्र, पृ० १२६
२. अलग-अलग वैतरणी—शिवप्रसाद सिंह, पृ० ४५६
३ स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास मूल्य संक्रमण—डॉ० हेमेन्द्र पानेरी, पृ० १०२
४ बूंद और समुद्र—अमृतलाल नागर, पृ० ३७४
५ वही, पृ० ३७५

अपने को 'क्षत्रिय' कहलाना पसन्द करते। बढई, विश्वकर्मा ब्राह्मण बनकर जनेऊ पहनने लगे थे। चमार जाटव कहलाकर गर्व अनुभव करते।"[1] इसी नवीन चेतना के बहाव मे 'सारा आकाश' का गिरीश भारतीय सस्कृति को 'गोबर सस्कृति'[2] की सज्ञा देता है। वह कहता है—'जिसे तुम भारतीय सस्कृति, भारतीय गरिमा कहते हो—मुझे वह सारी एक सिरे से अतीतजीवी भूतो की सभ्यता और सस्कृति लगती है।'[3] वह पुरातन सस्कृति मे युगानुकूल परिवर्तन की *अपेक्षा करता है। मानव-व्यक्तित्व के निर्माण मे सास्कृतिक मूल्य ही सहायक* होते हैं। फलत सास्कृतिक गतिरोध की स्थिति का परिष्कार आवश्यक है। इस दिशा मे आचलिक उपन्यासकारो के प्रयास सराहनीय हैं।

मूल्यगत सक्रमण

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। आज विश्व की वर्तमान परिस्थितियो पर दृष्टिपात करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के विविध क्षेत्रो मे ह्रास अथवा विकार का क्रम गतिशील है। प्राचीन मूल्य आज विरूप हो गये हैं। फिर भी समाज म कोई न कोई मूल्य सभी स्थितियो म विद्यमान रहते हैं। पुराने तथा नये मूल्यो मे सघर्ष की प्रक्रिया चलती रहती है। डॉ० रामगोपाल-सिंह चौहान के कथनानुसार—"माना कि पुरानी आस्थाएँ टूट रही हैं, लेकिन नई आस्थाओं के निर्माण की अनिवार्यता का महत्त्व भी अपने स्थान पर है। आस्था ही तो वह जड है जिससे मनुष्य अपने जीवन के वृक्ष म हर पतझड के बाद नई बहार लाता है। पुरानी आस्थाएँ मिट रही हैं तथा नई आस्थाएँ जन्म ले रही हैं।"[4] मानव-जीवन और मूल्य दोनों ही इसकी प्रभाव-व्याप्ति के क्षेत्र हैं। सामाजिक मूल्यो के टूटने की प्रक्रिया का चित्रण *'जल टूटता हुआ'* उपन्यास में बडी मार्मिकता के साथ हुआ है—"*अब तो एक-दूसरे की जमीन निकालने मे, एक-दूसरे का खेत बढकर जोत लेने मे, एक दूसरे स बढकर सचय कर लेने मे, स्वार्थ साधने मे, अपकार करने मे, एक दूसरे को पीछे छोडना चाहते हैं, तो पूरे बनिया हो गये हैं कुली हो गये हैं। बनियागीरी और कुलीगीरी ही इनके जीवन का मूल्य बनती जा रही है*" हर आदमी अब अपने-अपने उत्सवो के कामो का बोझ अकेले कन्धे पर उठाये छटपटाता है, ये उत्सव उत्सव न रहकर अब बोझ बनते जा रहे हैं, सामूहिकता खण्ड-खण्ड मे बँटकर इकाइयो मे छटपटा रही है।"[5]

---

१ लोक परलोक—उदयशंकर भट्ट, पृ० १३८-१३९

२ सारा आकाश—राजेन्द्र यादव, पृ० १२१

३ वही, पृ० २२१-२२२

४. स्वातत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास—डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान, पृ० ३४४

५ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० १४४

वस्तुतः आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से 'कृतिकारों ने विशिष्ट भूखण्डों की ज्वलन्त समस्याएँ, उनके पारस्परिक अन्तर्विरोध, जीवन-संघर्ष, पारस्परिक बदलाव, नये सम्बन्ध-बोध, मूल्य-विघटन आदि को प्रामाणिक संदर्भों में उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है।'[1]

हिन्दी साहित्यिक संरचना में स्वातंत्र्योत्तर काल में मूल्यों का प्रश्न बहुचर्चित हुआ है। अनियन्त्रित परिस्थितियों ने उन सभी आदर्शों और मूल्यों का अवमूल्यन कर दिया, जिनके प्रति स्वतन्त्रता से पूर्व जन-सामान्य की आस्था थी। आंचलिक उपन्यासकार सामाजिक दायित्व और सामाजिक मूल्यों के प्रति सजग रहे हैं। 'ये मूल्य व्यक्ति को नियन्त्रित कर सामाजिक संदर्भ में उसके व्यक्तित्व को निखारते हैं। कार्ल मार्क्स के मतानुसार उत्पादन और वितरण के साधनों में परिवर्तन के साथ ही सामाजिक चेतना में भी परिवर्तन होता है। इन परिवर्तनों के अनुरूप ही नये मूल्यों का प्रादुर्भाव होता है।'[2] ग्राम में मूल्यों के विघटन के साथ-साथ गाँव भी विघटित हो रहे हैं—"गाँव टूट रहा है, मूल्य टूट रहे हैं, सत्य टूट रहा है। कोई किसी का नहीं, सभी अकेले हैं, एक-दूसरे के तमाशाई वही क्यों सबका ठेका लिए फिरे···इस जमाने में दो ही शक्तियाँ विकासमान हैं, पैसा और गुंडई···।"[3] 'अलग-अलग वैतरणी' में जीवनगत मूल्यों के विघटन की प्रतिक्रिया का निरूपण इस प्रकार हुआ है—"यहाँ कैसे रहें यह गाँव तो अब वह रहा ही नहीं। जिधर देखता हूँ अजीब कुहराम है। सभी परेशान हैं, सभी दुःखी। पता नहीं इस गाँव पर किस ग्रह की छाया पड़ गयी है। किसी के चेहरे पर खुशी दीखती ही नहीं।"[4]

मूल्यगत विघटन के कारण सारा वातावरण गाँव में नरक सा प्रतीत होने लगता है। 'जल टूटता हुआ' में बाँधों की दरार टूटते मूल्यों की तथा जल-जीवन का प्रतीक है। बाँध बँधकर भी दरक रहे हैं तथा जल को संयत करने में अपने-आपको असमर्थ पा रहे हैं, ठीक ग्राम-जीवन भी ऐसा ही प्रतीत हो रहा है। मूल्यों के परिवर्तन के साथ उदासीनता का साम्राज्य छाया हुआ है—"बाँध जगह-जगह से टूट रहे हैं और पानी बिखरता हुआ फैल रहा है। न पानी रुकने में आ रहा है और न एक-साथ एक धारा के रूप में बहने में·· इस ज्वार का जीवन भी तो जल ही है लेकिन पहले एक-साथ बहता था, बाढ़ में उमड़ता था, एक साथ गर्मी में सूखता था, एक था। अब तो नये-नये बाँध बँध रहे हैं। उस

१ आंचलिक उपन्यास : सम्वेदना और शिल्प—डॉ० ज्ञानचंद गुप्त, पृ० ९९
२ हिंदी कथा साहित्य पर सोवियत क्रांति का प्रभाव—डॉ० पुरुषोत्तम वाजपेयी, पृ० ३११
३ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ३८६ (आराधना प्रेस, ब्रह्मनगर, कानपुर, प्रका० पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र० सं० १९७६)
४ अलग अलग वैतरणी—शिवप्रसाद सिंह, पृ० २६२

जल के किनारे"'वे बोध भी पुजना नहीं हैं।"[1] ग्रामीण परिवेश की इस संघर्षशील स्थिति ने ही वर्ग-संघर्ष को विस्तार दिया है। नागार्जुन ने 'उग्रतारा' में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। इस उपन्यास में उगनी का मत है — "देहात में रहना हो तो गुंडा बनो कामेश्वर! गुण्डों से दोस्ती करो, उन्हें खिलाओ-पिलाओ। तुम उनका काम करो, वे भी तुम्हारा करेंगे '''।"[2] मूल्य परिवर्तित होने से गाँवों का विनाश हुआ है—"गाँव-समाज में, मनुष्य के साथ मनुष्य का व्यक्तिगत सम्पर्क घनिष्ट था। किन्तु अब नहीं रहा। एक आदमी के लिए उसके गाँव का दूसरा आदमी अज्ञात कुलशील छोड़ और कुछ नहीं है। कहाँ है आज का कोई उपयोगी उत्सव-अनुष्ठान जहाँ आदमी एक-दूसरे से मुक्त प्राण होकर मिल सकें?"[3] मूल्यगत संक्रमण नवीन चेतना का विकास करते हैं वर्ग-संघर्ष को जन्म देते हैं तथा शोषण-चक्र को समाप्त करते है। 'परती परिकथा' में इस चाक्रिक प्रक्रिया का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि संसार में नाश और निर्माण का क्रम चलता ही रहता है—'पुरानपुर ही नहीं सभी गाँव टूट रहे हैं, गाँव के परिवार टूट रहे हैं, व्यक्ति टूट रहा है—रोज-रोज काँच के बर्तन की तरह।'''नहीं'''निर्माण भी हो रहा है।'''नया गाँव, नये लोग और परिवार। गाँवों का नवनिर्माण हो रहा है, टूटे खण्डहरों को साफ करके नींवें डाली जा रही हैं।"[4]

मूल्यगत संक्रमण के अन्तर्गत ही आदर्श तथा यथार्थ का द्वन्द्व घटित होता है। पुरातनवादी मूल्य आदर्शोन्मुख हैं तथा नूतन मूल्यों में यथार्थ की छाप है। 'सती मैया का चौरा' का मैन इन्सपेक्टर की नौकरी करते हुए आदर्शों से टूट जाता है और रिश्वतें लेना शुरू कर देता है। मन्ने भी आदर्श एवं यथार्थ के द्वन्द्व में टूट रहा है। वह पुरातन मूल्यों की अवहेलना करता हुआ स्वयं से कहता है—"तू क्यों अपने को इस जाल में फँसाकर अपने हाथ-पैर तोड़वा रहा है, तू क्यों यहाँ अपनी जिन्दगी सड़ा रहा है, अपना वक्त खराब कर रहा है, अपनी योग्यता का दुरुपयोग कर रहा है, अपना भविष्य बिगाड़ रहा है? यह पीड़ा ही है, जो गाँव को पूर्णरूप से उसका जीवन-क्षेत्र नहीं बनने देती।"[5] आदर्श तथा यथार्थ के चित्रण के साथ-साथ वर्गगत चेतना ने, बदलते मूल्यों को नवीन दिशा दी है। आदर्शवादी मूल्य-विघटन के साथ यथार्थवादी मूल्यों की स्थापना होती है; किन्तु वास्तविकता को कैसे नकारा जा सकता है—

---

१ जल टूटता हुआ—रामदरश मिश्र, पृ० ५७२
२. उग्रतारा—नागार्जुन, पृ० १०२
३ परती परिकथा—फणीश्वरनाथ रेणु, पृ० ४७०-४७१
४. वही, पृ० १६
५. सती मैया का चौरा—भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० २६८

"अंधेर मचा हुआ है। न रिश्वत समाप्त हुई है न सिफारिशों का जोर कम हुआ है। दिया जलाकर ढूंढ देखो— न्याय नाम की चीज नहीं मिलती है।"[1] स्पष्ट है कि यथार्थवादी मूल्यों को भी सही रूप में नहीं अपनाया जा रहा है। संघर्ष की स्थितियाँ स्वार्थपरक भावनाओं के कारण जन्मती हैं— 'यह मूल्यों में अन्तर्विरोध की स्थिति है। परम्परागत मूल्यों को भी नहीं त्याग सकते और नवीन मूल्यों के आकर्षण में भी फँसे हुए हैं।'[2] यथार्थवादी मूल्यबोध के कारण समाज में पिछड़े वर्गों के प्रति सहानुभूति प्रकट की जा रही है तथा उन्हें ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जा रहा है—"आज के पिछड़े वर्ग का रूप सामाजिक कम किन्तु आर्थिक अधिक है।"[3] इसी भावबोध से प्रेरित होकर 'बाबा बटेसरनाथ' का किशनू कहता है—' नहीं रे, नहीं ! तू जिस युग में पैदा हुआ है वह राजाओं, जमींदारों और सेठ-साहूकारों का युग नहीं है बल्कि तेरे जैसे आम नौजवानों का है।...मैं बूढ़ा जरूर हो आया हूँ लेकिन बीते युगों की सड़ाँध का समर्थन किसी भी कीमत पर नहीं कर सकूँगा। भविष्य तेरे जैसे तरुणों के हाथ में है।"[4]

यथार्थवादी मूल्यों के आग्रह से समाज के पिछड़े वर्गों के प्रति सहानुभूति के दृष्टिकोण का निर्माण तभी होता है जबकि समाज में परिश्रम के आधार पर जीविकोपार्जन करनेवालों की संख्या का बाहुल्य हो तथा उन्हें मान्यता प्राप्त हो। यथार्थ और आदर्श तथा नवीन और पुरातन मूल्यों के संघर्ष का उल्लेख करते हुए 'बाबा बटेसरनाथ' तथा 'सत्ती मैया का चौरा' उपन्यासों में कहा गया है कि— 'क्योंकि पुरानी बातें, पुरानी आदतें पुरानी मनोवृत्ति, पुराने संस्कार, पुराना चरित्र अचानक नहीं बदल पाते, धीरे-धीरे, बहुत धीरे-धीरे, बहुत जोर लगाने और हमेशा सचेत रहने पर बदलते हैं, बहुत-कुछ नया हो जाने पर भी इनके अवशेष बने रहते हैं। यह कोई घर नहीं कि गिराकर नया घर बना लो, यह कोई कपड़ा नहीं कि एक उतारकर दूसरा पहन लो। यह तो जिन्दगी है जो बनते-बनते ही बनती है।'[5] संघर्ष इस स्थिति में भी व्याप्त हो जाता है। यही संघर्ष वर्ग-संघर्ष के विस्तार में सहायक होता है।

'अचला' उपन्यास में ग्राम-जीवन की टूटती आस्थाओं का उल्लेख हुआ है। मूल्यगत-संक्रमण के कारण आध्यात्मिक मूल्यों की भौतिक मूल्यों के समक्ष कोई स्वीकृति नहीं है—"आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के कारण भी पुरातन मूल्यों में

---

१ ब्रह्मपुत्र—देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ३३४
२ स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास मूल्य संक्रमण—डॉ० हेमेन्द्र पानेरी, पृ० ३०६
३ हिंदी कथा साहित्य पर सोवियत क्रांति का प्रभाव—डॉ० पुरुषोत्तम वाजपेयी, पृ० ३२६
४ बाबा बटेसरनाथ—नागार्जुन, पृ० ४४
५ सत्ती मैया का चौरा—भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० ६८१

परिवर्तन आया है। शैक्षणिक चेतना ने भी मूल्य-परिवर्तन किया है। शिक्षा के क्षेत्र म बहुधा वैज्ञानिक शिक्षा पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि विज्ञान ने परम्परागत आस्थाओ तथा मूल्यों को विच्छृखलित किया है, किन्तु—"विज्ञान ने जिन आस्थाओं और मूल्यो का विच्छृखलित किया है, उनसे कही अधिक सबल आस्थाओ और मूल्यो को जन्म दिया है।"[1] बोगार्डस का मत है कि प्रवृत्ति व सभी मानवीय सम्बन्ध मूल्य ही हैं। समाज म मूल्यो का अपना विशिष्ट अस्तित्व होता है—"विभिन्न प्रकार के पर्यावरण म मनुष्य मूल्यो एव प्रतीको का विकास करता है। वे मानव मस्तिष्क म एक-साथ जन्मते हैं जो कि सामाजिक सम्बन्धो को बढाते हैं, विकसित करते हैं, सुधारते हैं। यही नही, प्रत्येक अलगाव एव विभेद के समय मानव को एक-साथ करते है।"[2] विज्ञान की उन्नति से पूर्व मूल्य स्तर के आकने का आधार धार्मिक चेतना थी किन्तु विज्ञान न मूल्यों का आकलन परीक्षण के आधार पर किया है। इस रूप म आज जन्मजात प्रवृत्तियो के साथ-साथ पर्यावरण को भी महत्त्व प्रदान किया है। निष्कर्षत कहा जा सकता है कि मूल्यो क सक्रमण की स्थिति बडी विचित्र प्रतीत होती है। जिन मूल्यो को हम आज उद्देश्य मानकर आगे बढते हैं वही मूल्य कल एकमात्र बिन्दु बनकर रह जाते हैं और उनमे परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। 'सत्ती मैया का चौरा' उपन्यास में इस स्थिति का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लेखक न कहा है— इतनी परेशानी इतनी तकलीफें, इतनी मेहनत, इतना सघर्ष नौकरी रिश्वत रोजगार रुपया सब व्यर्थ हो गया, कुछ भी हासिल नही हुआ और जिन्दगी ऐसे ही रह गयी।'[3] फलत सक्रमित मूल्यो के प्रति गहन आस्था तथा स्वीकृति की आतुरता अनिवार्यता प्रतिलक्षित होती है। जब तक परिवर्तित मूल्यो को समाज म पूर्णत स्वीकार नही किया जाता, शोषण की प्रक्रिया तथा सघर्ष एव क्रान्तिकारी चेष्टाएँ समाप्त नही हो सकती।

निष्कर्ष

हिन्दी के आचलिक उपन्यासो मे चित्रित वर्ग-सघर्ष की प्रवृत्तियो का विश्लेषण करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आचलिक उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष का समन्वित (मार्क्सवादी एव समाजशास्त्रीय) स्वरूप उपलब्ध होता है। भारत के ग्राम्याचलो म मार्क्सवादी चेतना का प्रसार प्रचार राजनैतिक चिन्तन-प्रक्रिया के कारक के रूप मे नही अपितु शोषण के विरुद्ध क्रान्तिमन्त चेतना के रूप मे हुआ है। अस्तु, आलोच्य उपन्यासो म आचलिक

१ हिंदी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष—डॉ० ओंकार नाथ श्रीवास्तव, पृ० १२
२ दि डवलपमेन्ट आफ सोशल थाट—बोगार्डस, पृ० ६३५
३ सत्ती मैया का चौरा—भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० ५२०

जीवन और समाज को विघटनकारी प्रवृत्तियों से आक्रान्त चित्रित किया गया है। सर्वश्री फणीश्वरनाथ 'रेणु', नागार्जुन, हिमांशु जोशी, रामदरश मिश्र, शैलेश-मटियानी, देवेन्द्र सत्यार्थी, सच्चिदानन्द धूमकेतु, भैरवप्रसाद गुप्त, उदयशंकर-भट्ट, शिवप्रसाद सिंह, हिमांशु श्रीवास्तव, राही मासूम रजा, आनन्द प्रकाश-जैन, उदयराजसिंह प्रभृति आंचलिक उपन्यासकारों की कृतियों में स्थानीय तथा क्षेत्रीय जीवन में व्याप्त कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का वर्ग-गत संघर्ष की विडम्बनाओं के रूप में रूपायित किया गया है। वर्ग-संघर्ष के मूलभूत कारणों में ग्राम्यांचलों में व्याप्त निरक्षरता, जातीय वैमनस्य, आर्थिक पिछड़ापन, नैतिक पतन, मूल्यगत संक्रमण और सामाजिक अपराध वृत्ति प्रमुख हैं। पूंजीवादी एवं सामन्तवादी व्यवस्थाओं द्वारा शोषण ने भी आंचलिक जीवन की प्रगति-शील चेतना को कुण्ठित और विघटित किया है। मार्क्सवादी चेतना-विकास से उद्भूत प्रगतिकामी प्रवृत्तियों को भी आंचलिक उपन्यासकारों ने विशदता से निरूपित किया है। समष्टि रूप में आंचलिक उपन्यासों में चित्रित वर्ग-संघर्ष प्रवृत्तिमूलक दृष्टि से मार्क्सवादी, सामाजिक यथार्थवादी एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्त्वतः भिन्न प्रकार का है।

अध्याय ७

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे वर्ग-संघर्ष

मनोविज्ञान शाब्दिक व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या

'मनोविज्ञान शब्द का अग्रेजी पर्याय 'साइकोलॉजी' यूनानी भाषा का शब्द है। "यह उस भाषा के दो पदो अर्थात साइके और 'लोगस से मिलकर बना है। 'साइके' का अर्थ है—जीवात्मा और लोगस का अर्थ है—विज्ञान। इन दो शब्दो के मिश्रण से 'साइकोलॉजी' शब्द बना है जिसका अर्थ है—जीवात्मा का विज्ञान।"[1] डॉ० नगेन्द्र ने 'साइके' का अर्थ आत्मा तथा विश्वात्मा से लिया है। "वर्तमान युग मे इसे मनोधातु मन (विशेषकर मनोविश्लेषण मे) के पर्याय के रूप मे व्यवहार मे लाया जाता है।"[2] मनोविज्ञान जैसा कि शाब्दिक व्युत्पत्ति से स्पष्ट है यह मन का विज्ञान है। मन को वैज्ञानिक रूप मे समझना, उसका व्यवस्थित रूप आँकना तथा उससे उद्भूत एव प्रेरित विभिन्न क्रियाओ-प्रतिक्रियाओ का विश्लेषण करना ही मनोविज्ञान का प्रमुख उद्देश्य है। मनोविज्ञान का कार्य केवल चेतन मन का विश्लेषण करना ही नही, वरन् अर्द्ध-चेतन एव अचेतन मन के कार्य-व्यापारो का अध्ययन करना भी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है। मानव की सुषुप्त भावनाओं को उजागर करने मे भी यह विज्ञान विशिष्ट महत्त्व रखता है। इसी प्रकार समाज मे व्याप्त सघर्ष, वर्गो की चेतना, अर्द्धचेतन तथा अचेतन मन से सम्बन्ध रखनेवाले आचरण का अध्ययन भी मनोविज्ञान करता है। ऐसे मनोविज्ञान को सामूहिक एव वर्ग मनोविज्ञान (Group Psychology) कहा गया है।

मनोविज्ञान पारिभाषिक स्वरूप-विश्लेषण

प्रारम्भ मे मनोविज्ञान को आत्मा से जोडते हुए उसे 'आत्मा का विज्ञान' कहा गया। सोलहवी शताब्दी तक इसीलिए 'मनोविज्ञान' दर्शन का एक अग

---

१ मनोविज्ञान परिचय—लालजीराम शुक्ल, पृ० २

२ मानविकी पारिभाषिक कोश (मनोविज्ञान खण्ड)—डा० नगेन्द्र, पृ० २१७

बना रहा तथा आत्मा की खोज ही उसका मुख्य विषय बना रहा। तत्पश्चात् आत्मा के वैज्ञानिक अध्ययन की विफलताओं के कारण इसका सम्बन्ध मस्तिष्क से जोड़कर इसे 'मस्तिष्क का विज्ञान' माना गया किन्तु मनोवैज्ञानिक मानसिक शक्तियों तथा मस्तिष्क के स्वरूप को सही सही निर्धारित नहीं कर सके, क्योंकि सम्पूर्ण मस्तिष्क एक-साथ कार्य करता है फलत इसे 'चेतना का विज्ञान' कह-कर मन की चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन प्रक्रियाओं के अध्ययन का माध्यम बनाया गया किन्तु सी० वुडवर्थ ने प्रश्नवाचक चिह्न लगाकर यह सिद्ध कर दिया कि मानव की क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ उसके व्यवहार से आँकी जाती हैं। अतः आधुनिक काल में इस व्यवहार का अध्ययन करनेवाला विज्ञान माना गया है। "मनोविज्ञान जीवन की विविध परिस्थितियों के प्रति प्राणी की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है। प्रतिक्रियाओं तथा व्यवहार से तात्पर्य प्राणी की सभी प्रकार की प्रतिक्रियाओं, समायोजन-कार्यों तथा अनुभवों से है।"[1]

मानव सदैव से दूसरे मानवों का साथ ढूँढता रहा है। समूह में घुलने मिलने की प्रवृत्ति उसकी प्रकृति में ही निहित है। प्रत्येक मनुष्य यह चेष्टा करता है कि समाज की स्वीकृति उसे प्राप्त हो। वह इस प्रकार का व्यवहार करता है कि दूसरे उसके व्यक्तित्व का आदर करें और उसे महत्त्वपूर्ण समझें। मानव की इसी प्रकृति के आधार पर मनोविज्ञान में 'समाज मनोविज्ञान' का महत्त्व स्वीकारा गया है। समाज मनोविज्ञान आधुनिक युग की देन है। "हम डेविड-ह्यूम बैन हीगल, काम्टे एवं मार्क्स के नाम का उल्लेख सामाजिक मनोविज्ञान के प्रवर्त्तकों के रूप में कर सकते हैं।"[2] "मानव की सामाजिक प्रकृति ही सामाजिक मनोविज्ञान की आधारशिला है। उस व्यक्ति की दूसरे व्यक्तियों के साथ प्रतिक्रिया, विभिन्न समूहों में उसका व्यवहार उसकी समाज की स्वीकृति की चाहना, उसकी सामाजिक समूहों के प्रति मनोवृत्ति उसके अपने पड़ोसियों से झगड़े तथा शत्रुओं से लड़ाइयाँ इत्यादि सब समाज-मनोविज्ञान की पाठ्य वस्तुएँ हैं।"[3] क्लिनबर्ग की परिभाषा में एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्तियों के साथ प्रतिक्रिया करते समय व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है। वह कहते हैं—"समाज-मनोविज्ञान व्यक्तियों के व्यवहार का दूसरे व्यक्तियों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अध्ययन है।"[4] वर्ग-संघर्ष की दृष्टि से सामाजिक मनो-विज्ञान का ही विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत सन्दर्भ में हम यह देखने का प्रयास करेंगे

---

१ एजूकेशनल साइकॉलॉजी—चार्ल्स एसकिनर, पृ० १
२ समाज मनोविज्ञान—डा० एस० एम० माथुर पृ० ३
३ वही, पृ० १
४. सोशियल साइकॉलॉजी—क्लिनबर्ग, पृ० १

कि मूल मानवीय वृत्तियों अथवा मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन मानव की संघर्ष-वृत्ति पर किस प्रकार प्रभाव डालता है।

मूल प्रवृत्तियों का विश्लेषण

"मूल प्रवृत्ति एक प्रकृतिदत्त शक्ति है। इसके कारण प्राणी किसी वस्तु-विशेष को देखकर उस ओर स्वभावतः आकर्षित होता है। इस आकर्षण के फल-स्वरूप वह एक विशेष प्रकार के भावों और क्रियात्मक प्रवृत्ति का अनुभव करता है। इस अनुभूति के परिणामस्वरूप वह उपस्थित वस्तु से सम्बन्धित एक विशेष प्रकार की क्रिया में संलग्न हो जाता है।"[1] मैक्डूगल का विश्वास है कि मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार ही मानव-व्यवहार को समझने की कुंजी है। मैक्डूगल मूल प्रवृत्तियों को जन्मजात प्रवृत्तियाँ कहते हैं। ये मूल प्रवृत्तियाँ समय आने पर उत्तेजना पाकर प्रकाश में आती हैं। विशेष गुण युक्त संवेगात्मक उत्तेजना की अनुभूति ही मूल प्रवृत्ति का उजागर करती है।

श्री दिनेश भारद्वाज के अनुसार 'मानव में कुछ प्रकृतिदत्त प्रवृत्तियाँ होती हैं। ये प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं जो व्यक्ति के जन्मजात संस्कारों में पायी जाती हैं। मानव में कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ तथा कुछ मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं। दोनों का ही सम्बन्ध मस्तिष्क से है।'[2] मैक्डूगल के अनुसार—"प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के साथ संवेग का सम्बन्ध रहता है। परन्तु सामान्य प्रवृत्तियों का सम्बन्ध संवेग से नहीं रहता। मूल प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से जाग्रत होकर कार्य करती हैं जबकि स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ सामान्य रूप से।"[3] डॉ॰ सरयूप्रसाद चौबे की मूलप्रवृत्तियों के उदयीकरण के सम्बन्ध में धारणा है कि—'प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के उदय के लिए एक निश्चित समय होता है। उस समय के आने पर वे गतिशील हो जाती हैं।'[4] श्री लालजीराम शुक्ल मूल प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि "मूल प्रवृत्तियों के कामों में बुद्धिमानी रहती है, किन्तु यह बुद्धिमानी व्यक्ति-विशेष की न रहकर समस्त जाति की होती है।"[5] इनके अनुसार किसी विशिष्ट मूल प्रवृत्ति का यथासमय उपयोग न किया जाय तो वह मूल प्रवृत्ति सर्वथा नष्ट नहीं होती, किन्तु अविकसित रह जाती है। इस दृष्टि से मूल प्रवृत्तियों की जानकारी तथा मानव-विकास में उनका योग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

---

१ ऐन आउटलाइन ऑव साइकॉलाजी—मैक्डूगल, पृ० ११०
२ सरल शिक्षा मनोविज्ञान—श्री दिनेशचन्द्र भारद्वाज, पृ० ६७
३ वही, पृ० ६७
४ मनोविज्ञान और शिक्षा—डा० सरयू प्रसाद चौबे, पृ० १८७
५ शिक्षा मनोविज्ञान—लालजीराम शुक्ल, पृ० ५८

मूल मानवीय प्रवृत्तियों को परिभाषित करते हुए विलियम जेम्स ने लिखा है—'मूल प्रवृत्ति किन्ही लक्ष्य विशेषों की पूर्ति के लिए आचरण की वह क्षमता है जिसम न तो लक्ष्य का पूर्व ज्ञान रहता है और न उस आचरण को शिक्षा ही मिली होती है।[1] वुडवर्थ ने मूल प्रवृत्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है—मूल प्रवृत्ति बिना सीखा हुआ व्यवहार है।"[2] किन्तु यह परिभाषा भ्रामक परिलक्षित होती है। साहित्यकारों ने भी साहित्य के स्थायित्व को मूल प्रवृत्तियों पर निर्भर माना है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी न मूल प्रवृत्तियों की विशिष्टता को स्वीकारा है—"वही साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अवलम्बित हो। ईर्ष्या और प्रेम, क्रोध और लोभ, भक्ति और विराग दु ख और लज्जा, सभी हमारी मौलिक प्रवृत्तियाँ है। इन्हीं की छटा दिखाना साहित्य का परम उद्देश्य है।'[3] श्री इलाचन्द्र जोशी कहते हैं—"अन्तर्मन के अतल म दबी पड़ी ये प्रवृत्तियाँ वैयक्तिक और फलस्वरूप सामूहिक मानव के आचरणों तथा पारिवारिक और सामाजिक सगठनों को किस हद तक युगों स परिचालित करती आयी हैं और आज भी कर रही है, इसका यदि खाता तैयार किया जाये तो आश्चर्य स स्तब्ध रह जाना पड़ेगा।[4]

मूल प्रवृत्तियों की प्रकृति सार्वभौमिक होती है। यह एक जन्मजात तथा पैतृक विशेषता है। विभिन्न अवस्थाओ म य मूल प्रवृत्तियाँ परिपक्वावस्था को प्राप्त करती हैं। मूल प्रवृत्तियाँ अपन मौलिक रूप म अपरिवर्तित रहती हैं। मूल प्रवृत्तियों म कभी कभी अन्तर्द्वन्द्व भी होने लगता है। जेम्स ने उनकी सख्या ३२ मानी है। थानडाइक न १०० म अधिक मूल प्रवृत्तियाँ मानी है। वर्नार्ड ने ११० मानी है तो वारेन के अनुसार मूल प्रवृत्तियों की सख्या छब्बीस है। कर्कपैट्रिक ने इनकी सख्या पाँच मानी है तथा मैक्डूगल ने मूलप्रवृत्तियों की सख्या १४ मानी है।'[5] अधिकाश मनोविज्ञानवेत्ता मैक्डूगल के वर्गीकरण को स्वीकार करते हैं। मैक्डूगल के द्वारा निर्दिष्ट मूल प्रवृत्तियाँ तथा सम्बद्ध सवेग निम्नांकित हैं—

मूल प्रवृत्तियाँ	सवेग
(१) खाद्यान्वेषण (Food-Seeking)	क्षुधा (Appetite)
(२) पलायन (Flight)	भय (Fear)

१ टैक्स्ट बुक आव साइकालॉजी—विलियम जेम्स पृ० ३९१
२ साइकॉलॉजी—रॉबर्ट एस० वुडवर्थ पृ० २७२
३ कुछ विचार—प्रेमचन्द पृ० ४२
४ प्रेत और छाया (भूमिका)—इलाचन्द्र जोशी
५. Social Psychology—W Mc Dougall, P. 228

(३) योधन (Pignacity)	क्रोध (Anger)
(४) जिज्ञासा (Curiosity)	आश्चर्य (Wonder)
(५) निर्माण (Construction)	रचनात्मक भाव (Creativeness)
(६) संग्रह (Hoarding)	संग्रह भाव (Possession)
(७) विकर्षण (Repulsion)	घृणा (Disgust)
(८) शरण याचन (Appeal)	दुःख (Distress)
(९) यौन प्रवृत्ति (Pairing)	कामुकता (Lust)
(१०) शिशु-रक्षा (Parental)	वात्सल्य (Parental Love)
(११) सामाजिकता (Social instinct)	एकाकीपन का भाव Feeling of Loneliness)
(१२) आत्म प्रकाशन (Assertion)	उत्साह (Elation)
(१३) विनम्रता (Submission)	आत्महीनता (Negative-Self feeling)
(१४) हास्य (Laughter)	हर्ष (Amusement)

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों मे कुशल उपन्यासकार अपने उपन्यासो मे वर्णित पात्रो की स्थितियों के अन्तर तथा व्यक्त होनेवाली क्रिया प्रतिक्रियाओ के चित्रण में ऐसा सामंजस्य बैठाता है कि -- 'पाठकों की कल्पना मे पात्र और उनकी परिस्थितियाँ साकार होती जाती हैं।'[1] अन्तर्मुखी तथा बाह्यमुखी पात्रों की अलग अलग समस्याएँ होती हैं। सफल मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने नानाविध समस्याओं का चित्रण किया है।

हिन्दी मे मनोवैज्ञानिक उपन्यास के लेखन की परम्परा

डार्विन, मार्क्स और फ्रायड की खोजो ने उपन्यासकारो में नई चेतना का प्रादुर्भाव किया। नये नये आर्थिक और मनोवैज्ञानिक अनुसंधानो के प्रकाश मे उपन्यासकारो के चिन्तन एवं विश्लेषण मे परिवर्तन उपस्थित किया। बाह्य संघर्ष की प्रेरणा मे आन्तरिक संघर्ष का पूरा हाथ रहता है फलत मानव के अन्त संघर्ष की विवेचना की ओर उपन्यासकारो का ध्यान आकृष्ट हुआ। 'मनोवैज्ञानिक उपन्यास का जन्म किस समय हुआ अर्थात् किस समय साहित्य मे इस तरह के उपन्यास के लिखने की प्रथा प्रारम्भ हुई यह कहना कठिन प्रतीत होता है।'[2] सेमुअल रिचर्डसन को अंग्रेजी साहित्य का सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक

---

१ शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—डा० त्रिगुणायत पृ० १२६

२ जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन—डा० देवराज उपाध्याय, पृ० १

यथाकार माना जाता है। सामान्यत उपन्यासकारो का ध्यान मनुष्य के बाहरी रूप पर ही केन्द्रित रहता है कि तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो पात्रों के आन्तरिक रूप का विवेचन अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो को दो श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है —(१) 'आचरण-वादी मनोवैज्ञानिक'—इन विद्वानो के समक्ष मनुष्य की आन्तरिक सत्ता का कोई महत्त्व नही रहता। वे मनुष्य को बाहरी क्रिया कलापो के माध्यम से ही समझने की चेष्टा करते हैं, (२) दूसरे प्रकार क मनोवैज्ञानिको को हम मनोविश्लेषण-वादियों' की श्रेणी मे रख सकते हैं।

'हिन्दी मे मनोवैज्ञानिक ढग से भावना चित्रण करन का सवप्रथम प्रयास जैनेन्द्रकुमार ने किया। 'परख' जिसका प्रकाशन, सन् १९२९ मे हुआ था, हिन्दी का पहला मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रधान उपन्यास माना जाता है।[1] डॉ० रामदरश मिश्र मनोवैज्ञानिक उपन्यासो का आरम्भ प्रेमचन्द-युग से ही मानते हैं, किन्तु उपन्यासो मे वास्तविक दृष्टिकोण के आधार पर मनोवैज्ञानिक तत्त्वो की विवेचना प्रेमचन्दोत्तर युग स आरम्भ हुई। डॉ० रामदरश मिश्र क अनुसार, 'मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहने का तात्पय उन उपन्यासो स है जो मूलत मनो-विश्लेषण पर आधारित हैं। मनोविश्लेषणवाद मस्तिष्क के चेतन, उपचतन और अवचेतन तीन विभाग कर अवचेतन को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। अवचेतन मे मनुष्य की कुछ आदिम वासनाएँ पैदा रहती हैं। फ्रायड इन्हे यौन वासनाएँ, एडलर इन्हे हीनता की भावनाएँ युग इन्हे जीवनेच्छाएँ मानता है। अवचेतन मे जो आदिम वासनाएँ पैदा होती हैं वे अपनी प्रकृति मे बडी ही अपरिष्कृत और उद्दण्ड होती हैं।"[2] जब इन वासनात्मक वृत्तियो का दमन किया जाता है तब ये ग्रन्थियाँ हिस्टीरिया, नर्वसनेस, उन्माद तथा प्रेत बाधाओ को जन्म देती हैं। अवचेतन स्वरूप की व्याख्या भी दो रूपो म प्रकट होती है—सामूहिक अवचतन तथा वैयक्तिक अवचेतन। फ्रायड क साथ युग के सामूहिक अवचेतन स इलाचन्द्र जोशी बहुत प्रभावित है। उनके अनुसार जब 'हमारी मूल भावनाएँ सहज स्वाभाविक जन्मजात मनोवृत्तियाँ सब सामाजिक शासन-चक्र द्वारा बाधा पाती हैं तब हमारा सचेतन मन उन सहज प्रवृत्तियो को अन्तश्चेतना के भीतर ढकेल देता है। वहाँ वे ऐसी दबी पडी रहती हैं कि फिर आसानी स ऊपर नही उठ पाती। पर बीच-बीच म जब वे शेषनाग के फन की तरह आन्दोलित हो उठती हैं, तब हमार सचेत मन का प्रचण्ड वेग स हिला देती हैं।[3] अत "फ्रायड को काम

१ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० १७४
२ हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—डा० रामदरश मिश्र, ६६-६७
३ विवेचना—इलाचन्द्र जोशी, पृ० ५५

अतृप्ति तथा युग की सामूहिक अवचेतना का मिला-जुला रूप जोशी जी के उपन्यासो मे दिखाई देता है।"[1]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में विवेक, बुद्धि तथा यौन-प्रवृत्ति का सघर्ष देखने को मिलता है— 'उनकी नायिकाओ के अचेतन मन मे उनकी विवेक-बुद्धि (कान्शियस) तथा यौन (सैक्स) प्रवृत्ति मे निरन्तर द्वन्द्व चलता है और लम्बे मानसिक सघर्ष मे उनकी विवेक-बुद्धि ही प्रबल रहती है।"[2] मनोवैज्ञानिक उपन्यासो का अभिप्राय उपन्यास की मनोवैज्ञानिक रचना एव प्रतिपादन शैली से है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास म—'कथाकार अपनी कथावस्तु की योजना एक विशिष्ट ढग से करता है, एव विचित्र भाषा का प्रयोग करता है, घटनाओ को धुनिये की तरह धुन-धुनकर रुई के मुलायम गाले की तरह बना देता है अथवा ऑब्जेक्टिव का सब्जेक्टिव बनाकर उपस्थित करता है।'[3] डा० महावीर लोढा ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो की दो श्रेणियाँ मानी है—समाजपरक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकार तथा व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकार। "श्री इलाचन्द्र जोशी मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकार है। उनकी मान्यता है कि मनुष्य की सामूहिक अवचेतना के भीतर सृष्टि के प्रचण्ड आदि शक्ति के स्रोत विद्यमान है।'[4] समाजपरक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासो म इलाचन्द्र-जोशी के 'जिप्सी', मुक्तिपथ तथा 'जहाज का पछी' उपन्यासो की गणना की गयी है तथा व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासो मे डॉ० देवराज के 'पथ की खोज', बाहर और भीतर', डॉ० रांगेय राघव का पतझार', राजेन्द्र-यादव का 'कुलटा', देखे अनजाने पुल' तथा 'शह और मात' की विवेचना की गयी है। डॉ० सुषमा धवन के शब्दो मे—"मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति आधुनिकतम युग-चेतना की देन है और उसे साकार अभिव्यक्ति देने के लिए उपन्यास का नवीन रूप अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।"[5] डॉ० सुषमा धवन ने मनोविश्लेषण-वादी उपन्यासो के अन्तर्गत जैनेन्द्र जी के परख' सुनीता', सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', इलाचन्द्र जोशी के 'सन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित', लज्जा', 'मुक्तिपथ', सुबह के भूले', जिप्सी', 'जहाज का पछी', अज्ञेय के शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', डा० देवराज क 'पथ की खोज', 'बाहर-भीतर', धर्मवीर भारती के 'गुनाहो का देवता', 'सूरज का सातवाँ घोडा', अनन्त गोपाल शेवडे का निशा गीत, मृगजल', प्रभाकर माचवे का 'द्वाभा', 'साचा', यादवचन्द्र जैन

१ हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन— डा० महावीर लोढा, पृ० १००
२ हिन्दी उपन्यास मे चरित्र-चित्रण का विकास—डा० रणवीर रांग्रा, पृ० ३६४
३ आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान —डा० देवराज उपाध्याय, पृ० ४.५
४ हिन्दी उपन्यासो का शास्त्रीय विवेचन —डा० महावीर लोढा, पृ० ६६
५ हिन्दी उपन्यास —डा० सुषमा धवन, पृ० १६५

का 'पत्थर पानी', डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का 'काले फूल का पौदा' तथा गिरिधर गोपाल का 'चादनी के खण्डहर' आदि उपन्यासों को सम्मिलित किया है। डॉ० गणेशन ने इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय तथा जैनेन्द्र जी के उपन्यासो को मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के अन्तर्गत माना है। इसी प्रकार अन्य उपन्यास-विषयक अनुसधानकर्ताओ ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासो की सूचियाँ प्रस्तुत की हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ म उन मनोवैज्ञानिक उपन्यासो को अधिगृहीत किया है जिनम मनोविश्लेषण का सघर्षमूलक प्रवृत्तियों से सीधा सम्बन्ध है तथा जिन उपन्यासों मे वर्ग चेतना की अभिव्यक्ति वर्ग-सघर्ष की सम्प्रेरक रही है।

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रणालियाँ

मनोविश्लेषण की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक प्रणालियो का विशेष महत्त्व है। इनका प्रयोग मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के कथ्य सदर्भों तथा चरित्र-निरूपण मे सागोपाग मिलता है। एक मनोविश्लेषक जिन प्रणालियो को अपनाता है उनमे से प्रमुख हैं — मुक्त आसग प्रणाली (फ्री एसोसिएशन मैथड), बाधकता विश्लेषण (ऐनेलिसिस ऑव रेज़िस्टेन्स), सम्मोह-विश्लेषण (हिप्ना-ऐनेलिसिस) प्रत्यव-लोकन विश्लेषण (ऐनेलिसिस ऑव रिकोलेक्शनस), निराधार प्रत्यक्षीकरण (हैल्युसीनेशन ऐनेलिसिस), सक्रमण विश्लेषण (ऐनेलिसिस ऑव ट्रासफ़ेंस) आदि। आलोच्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासो में इन प्रणालियों का नानाविध प्रयोग हुआ है।

मुक्त आसग प्रणाली (फ्री एसोसियशन मैथड)

पात्रो के अचेतन मानस की व्याख्या मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे अनिवार्यत मिलती है। जब कोई उपन्यासकार किसी ऐसी प्रणाली का प्रयोग करता है जो पात्रो के अचेतन मे दबी हुई अनुभूतियो को प्रकाश मे लाकर उनको चेतन के सदर्भ मे व्याख्या करे तो वहाँ मुक्त आसग प्रणाली का प्रयोग होता है। फ्रायड का मत है कि किसी भी मनोवैज्ञानिक प्रणाली के प्रयोग द्वारा मनोविश्लेषक का कर्तव्य व्यक्ति की मानसिक ग्रन्थियो को उसके विगत जीवन की उन घटनाओ की स्मृति म परिवर्तित करना है, जिनके कारण वे ग्रन्थियाँ पडी हैं। मुक्त आसग के द्वारा अचेतन में पडी ग्रन्थियो को चेतन मनोदशा मे लाया जाता है।

मुक्त आसग प्रणाली मे पात्र को आराम से लिटाकर कहा जाता है कि वह अपनी आलोचनात्मक शक्ति को दबाकर विगत की घटनाओ तथा अनुभूतियो को स्मृति मे लाया जाए। जैसे ही कोई घटना या बात स्मृति मे आये, अपनी ओर से बिना कुछ मिलाये कहता जाये। फ्रायड का विश्वास है कि इन स्मृतियों के स्वत-परिवर्तित प्रवाह म व्यक्ति की अचेतन ग्रन्थियों के पडने के कारणों

की खोज की जा सकती है। 'जयवर्धन' उपन्यास का विल्बर हूस्टन तो वास्तव मे मनोविश्लेषक के रूप मे सामने आया है। वह कहता है— "मैं उनके पास आपका निजत्व ले जाना चाहता हूँ।"[1] "मैं जीवन का विद्यार्थी हूँ और उसी के नियमो की शोध मे हूँ।"[2] "मुझे आपका कर्म-विवरण नही चाहिए, वह तो उजागर है ही, आया हूँ तो अंतरग लेने आया हूँ।"[3] इसी प्रकार 'निर्वासित' उपन्यास का धीराज, महीप के समक्ष अपने हृदय का बोझ हल्का करने के लिए व्याकुल हो उठता है। धीराज की मुखाकृति को देखते हुए महीप समझ जाते हैं कि अब वह इस मानसिक स्थिति मे है कि हृदय खोलकर विगत अनुभूतियो को सामने रख सकेगा। 'इसलिए उसके मन की बातें जानने का कौतूहल होते हुए भी महीप एक चतुर मनोविश्लेषक की तरह उसे उकसाता नही, केवल जिज्ञासु-भाव स उसकी ओर देखता रहता है। धीराज क्षण-भर के लिए चुप रहा और फिर मुक्त आसग के रूप में उसकी वाग्धारा वह निकली जो अगले तीन पृष्ठो तक प्रवाहित होती रही है।"[4]

बाधकता विश्लेषण (रेज़िस्टेन्स)

मुक्त आसग अपनी सह स्मृतियो सुनाते हुए पात्र का रुख जब बदल जाता है तो बाधकता प्रतीत होती है। इस बाधकता का कारण अचेतन मे कोई ऐसी घटना उसकी स्मृति मे उभर आती है जो उस अत्यधिक दुःखी करती है। अत वह उस दबा देना चाहता है या कोई घटना ऐसी स्मृति मे आ जाती है जो अनैतिक और असामाजिक होती है जिसे वह लज्जावश छुपा लेता है। फ्रायड ने पात्र की इस स्थिति को बाधकता (रेजिस्टेन्स) कहा है।'[5] अत फ्रायड पात्रो की बाधकता को हटाकर उनकी गुप्त बातें जान लेने पर विशेष बल देता है। 'निर्वासित' उपन्यास मे महीप के समक्ष धीराज अपने सभी भावो का अभिव्यक्त करने के लिए जब आतुर है तो अचेतन की बाधक स्मृतियाँ उसे ऐसा करने से रोकती हैं—'यद्यपि धीराज अपने मन की बहुत-सी गाँठें उसके आगे खोलने के लिए प्रारम्भ से ही उत्सुक रहा, तथापि वह अभी तक अन्तर की बहुत-सी बाधाओ से पार नहीं कर पा रहा था।'[6] कभी कभी मनोविश्लेषक के प्रति पूर्ण भरोसा न होने की वजह स भी पात्र उसके सामन खुल नही पाता। जयवर्धन'

१ जयवर्धन—जैनेन्द्र, पृ० १८
२ वही, पृ० ४५
३ वही, पृ० २३
४ निर्वासित—इलाचन्द्र जोशी, पृ० ८२-८५
५ साइको एनालेटिकल मेथड एड दि डॉक्टरीन ऑव फॉयड—डलबिज, पृ० ५४
६. निर्वासित—इलाचन्द्र जोशी, पृ० ८६

की इला भी हूस्टन के समक्ष कुछ भावो की अभिव्यक्ति मे बाधा का अनुभव करती है, "पर जब जयवर्धन ने इला को समझा दिया कि हूस्टन तो सत्य की खोज मे है, इसलिए वह उसम रोक पैदा न करे,'[1] तब इला की भावना म परिवर्तन आया तथा वह मुक्त आसग की स्थिति मे आ गयी। 'कल्याणी' उपन्यास मे नायिका अपनी भावनाओ को प्रकट करते-करते रुक जाती है तब वकील साहब ने पूछा "क्यो-क्यो, क्या बात है?' एकदम बाधकता आन उपस्थित हुई और हठात् सम्भलती हुई बोली—'कुछ नही, कुछ नही' और फिर अभिव्यक्त भाव से घडी की ओर देखते हुए बोली—'ओह! आठ हो गया, मैं भूली हुई थी। मुझे एक जगह जाना है। अच्छा तो आप'' ' कहती हुई वह उठ खडी हुई और वहाँ से चल दी।'"[2] इसी प्रकार मुक्त आसग अवस्था मे बाधक तत्त्वो की विवेचना तथा बाधकता की स्थिति का चित्रण 'सुखदा' 'कल्याणी', व्यतीत, निर्वासित', 'जयवर्धन' आदि उपन्यासों म हुआ है। मुक्त आसग के लिए कई तत्त्वो का सहारा लेना पडता है जैसे—सम्मोह विश्लेषण, प्रत्यवलोकन विश्लेषण, प्रत्यक्षीकरण की अभिव्यक्ति आदि।

प्रत्यवलोकन प्रणाली

यह मनुष्य के अचेतन को अभिव्यक्त करने मे सबम सफल प्रणाली है। स्मृतियाँ आकस्मिक रूप से प्रकट नही होती—'इनके पीछे इच्छा-शक्ति की प्रेरणा रहती है।' "जो स्मृतियाँ अचानक उभर आई प्रतीत होती हैं, वे भी किसी समय की हमारी इच्छा के परिणामस्वरूप ही बाद मे प्रकट हुई होती हैं। वास्तव मे स्मृतियो की तीव्रता और स्पष्टता उन्हे प्रेरित करनेवाली इच्छा की तीव्रता पर निर्भर करती है।'[3] डॉ० एडलर का कहना है कि 'मनुष्य की स्मृतियाँ जीवन के प्रति बन चुके दृष्टिकोण के प्रतिकूल नही जा सकती। जीवन मे असख्य दुखद-सुखद घटनाएँ घटित होती रहती हैं और उन सबके सस्कार मनुष्य के अचेतन पर पडते रहते हैं। जब कोई घटना आकस्मिक रूप से स्मृति-पट पर उभर आए तब मनुष्य के अचेतन मे पडे हुए सस्कार उभरकर चेतन म आ जाते ह, जो मनुष्य के जीवन दर्शन के अनुकूल हो।'[5] 'शेखर एक जीवनी' मे शेखर ने अपनी माँ के बारे मे अविश्वास प्रकट करके उसके अह को चोट पहुँचाई और अपनी डायरी में लिखा कि वह माँ को नही मानेगा। उसकी यह

१ जयवर्धन—जैनेन्द्र, पृ० १०५
२. कल्याणी—जैनेन्द्र, पृ० १९
३ एन आउटलाइन ऑव साइकॉलॉजी—मैक्डूगल, पृ० ३१०
४. वही, पृ० ३१०
५ वाट लाइफ सूड मीन टु यू—एडलर, पृ० ७३-७४

भावना डायरी में इन शब्दों में उतरी है—"अच्छा होता कि मैं कुत्ता होता, दुर्गन्धमय कीड़ा-कृमि होता—बनिस्बत इसके कि मैं वैसा आदमी होता, जिसका विश्वास नहीं है।"[1] अपने कटु अनुभव के प्रति अपने विशेष ज्ञान के कारण उसे बाल्यकाल में ही विश्वास हो गया था कि इस संसार में अन्याय ही अन्याय है और यह अन्याय विशेषकर उस पर किया जाने के लिए है।[2] वह विचार करता है कि—'उसके चारों ओर दुःख है, दारिद्र्य है, पीड़ा, रोग, मृत्यु सब-कुछ है। देश-विदेश के धर्म के ठेकेदारों ने अपनी कुल आविष्कार-शक्ति को खर्च करके नरक में जिन बुरी से बुरी, भयकर से भयकर यातनाओं का सृजन किया है, वे सभी संसार में और उसके संसार में मौजूद हैं।'[3] इसी प्रकार प्रत्यवलोकन के आधार पर 'नदी के द्वीप', सोया हुआ जल, 'सोलही लहरों की बाँसुरी' आदि में भी विवेचन मिलता है। प्रत्यवलोकन प्रणाली द्वारा हम असम्बद्ध स्मृतियों पुरानी स्मृतियों तथा कल्पित स्मृतियों का विश्लेषण करते हैं। अतः प्रत्यवलोकन प्रणाली में अतीत के विश्लेषण द्वारा वर्तमान की व्याख्या करने के लिए व्यक्ति के प्रकट प्रतिक्रियाओं के कारणों को उसके बाल्यकाल के जीवन के प्रति दृष्टिकोण में खोजना होता है।

सम्मोह-विश्लेषण

सम्मोह की क्रिया एक उच्च सुझावपूर्ण अवस्था होती है। सम्मोह-निद्रा में व्यक्ति उन सब अनुभूतियों को स्पष्टतया याद कर लेता है जो वर्षों से उसके अचेतन में दबी पड़ी रहती हों।[4] मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में से श्री इलाचन्द्र जोशी ने इस प्रणाली के आधार पर नायक-नायिकाओं की अचेतन प्रेरणाओं को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। पत्रों द्वारा मानसिक मन भी सम्मोह की अवस्थाएँ उत्पन्न कर देती है। 'नदी के द्वीप' में रेखा के पत्र में भुवन के प्रति स्थापित एवं वर्णित विचार सम्मोह अवस्था का विश्लेषण करते हैं—'पर अब मैं उनके (चन्द्र माधव के) साथ न जा सकूँगी—न अकेले न पार्टी में। इसलिए जाने की बात छोड़ देनी चाहिए। हाँ, आप अगर और लोगों को साथ लेकर जानेवाले हों तो मैं चल सकती हूँ और आपका साथ पाकर प्रसन्न होऊँगी—हाँ, आप मेरा साथ चाहें तब।'[5] "आपकी चिट्ठी की बाट जोहती रहूँगी। बल्कि सोचती हूँ,

---

१. शेखर एक जीवनी (भाग-१)—अज्ञेय, पृ० ३६
२. वही, पृ० १५३
३. वही, पृ० ७४
४. साइकालोजी एण्ड लाइफ—वच, पृ० ५१८
५. नदी के द्वीप—अज्ञेय, पृ० ११२

कुछ दिन आपके निकट इसलिए रह सकूँ कि जानूँ, कि आपने क्षमा कर दिया है, नहीं तो गहरा परिताप मुझे सालता रहेगा।"[1]

पूर्व-वृत्तात्मक प्रणाली (केसहिस्टरी मैथड)

व्यक्तित्व-अध्ययन के लिए पूर्व-वृत्तात्मक प्रणाली श्रेष्ठतम प्रणाली है। "अन्य प्रणालियाँ प्राय विश्लेषणात्मक होती है जबकि यह सश्लेषणात्मक है। यदि इस प्रणाली का उचित प्रयोग किया जाय तो यह मनोविज्ञान और साहित्य दोनों की कसौटी पर पूरी खरी उतर सकती है।"[2] "इस प्रणाली मे मनोवैज्ञानिक अपने पात्र की वर्तमान मानसिक अवस्था और उसके कारणो के लिए उनके पूर्ववृत्त और उसकी विगत अनुभूतियो को एकत्रित करता है। मनोविश्लेपण के आधार पर निकाले गये विश्लेपित विभिन्न आँकडो तथा निष्कर्षों को सम्मिलित करता है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासो मे इस प्रणाली का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ है। 'जहाज का पछी' उपन्यास मे पहले तो ऐसे पूर्ववृत्त आते हैं, जो पात्रो की अपनी जबानी कहे गये हैं जैसे करीम चाचा की 'आप बीती कहानी'[3]। यह कहानी लगभग तेरह पृष्ठ तक चलती है। इसी उपन्यास म 'पलोरा' का पूर्ववृत्त आता है जो 'छोटी उमर मे ही शारीरिक आत्मिक, नैतिक और आर्थिक शोषण का शिकार बनने के कारण जिसका सत्व निचुड जाता है।"[4] इस प्रकार के पूर्ववृत्तो के विश्लेषण से एक बात प्रकाश म आती है कि इन स्त्री-पात्रो के पागलपन का मूल उनकी अतृप्त सेक्स-प्रवृत्ति म है तथा पुरुप पात्र आर्थिक विषमताओ से आक्रान्त हो, अनेकानेक समस्याओ मे उलझते हुए अपना वास्तविक सतुलन खो बैठते है। अत. इन समस्याओ के निराकरण की तथा मार्गान्तीकरण की महती आवश्यकता है।

शब्द-सहस्मृति परीक्षण का प्रयोग

इस परीक्षण मे एक शब्द शृखला सुनाई जाती है तथा प्रतिक्रिया-स्वरूप देखा जाता है कि कौन सा शब्द सबसे अधिक उभरा है। व्यक्ति द्वारा पकडे गये शब्द के विश्लेपण द्वारा उसकी मानसिक कठिनाइयो को पकडने तथा अपराधियो की जाँच करने के लिए यह प्रयोग किया गया है। इलाचन्द्र जोशी ने इस शब्द-सहस्मृति परीक्षण का प्रयोग अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे किया है। 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ 'विवाह' शब्द से चौंक उठता है तथा

---

१ नदी के द्वीप—अज्ञेय, पृ० १२४

२ पर्सनैलिटी ए साइकॉलॉजिकल इटरप्रिटेशन—आलपोर्ट, पृ० ३६४-३६५

३ जहाज का पछी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० १३९-१४७

४. वही, पृ० २०२ २०४

'जिप्सी' उपन्यास का नायक 'नीरू' शब्द के द्वारा पात्रों से अपना सहज सह-सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। "जो शब्द पात्रों के भीतर दुखद अनुभूतियो को उद्दीप्त करते हैं, उनके प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया शीघ्र प्रकट नही होती।"[1] 'प्रेत और छाया' की मंजरी जब पारसनाथ के सामने फिलासफर लड़की के विवाह की चर्चा करती है तो विवाह शब्द सुनते ही पारसनाथ का मुँह अत्यन्त गम्भीर हो आया। यहाँ तक कि उसपर हल्की-सी कालिमा पुत गयी, पता नही क्यो, यह शब्द वर्षों से उसके अन्तर्मन के लिए हौआ बना हुआ था।"[2] पारसनाथ ने जो अपने माता-पिता के वैवाहिक जीवन का रूप देखा था उसने उसके मन मे ऐसी घृणास्पद ग्रंथि उत्पन्न कर दी थी कि वह विवाह शब्द से भी कतराता था। इलाचन्द्र जोशी के अन्य उपन्यास 'जहाज का पंछी', 'निर्वासित', 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'जिप्सी' आदि मे भी शब्द-स्मृति-परीक्षण के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

निराधार प्रत्यक्षीकरण की अभिव्यक्ति (हैल्युसीनेशन ऐनेलेसिस)

इस प्रणाली द्वारा मानसिक उथल-पुथल की निराधार प्रत्यक्षीकरण चेष्टा की जाती है। हैल्युसीनेशन तथा स्वप्न मे अन्तर यह है कि स्वप्न मे निराधार प्रत्यक्षीकरण सुषुप्तावस्था मे होता है और हैल्युसीनेशन मे वह जाग्रतावस्था मे ही हो जाता है। 'हैल्युसीनेशन मे अधिकतर दृष्टि तथा ध्वनि-सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण ही पाया जाता है।"[3] जैनेन्द्र के 'कल्याणी' उपन्यास मे नायिका इसी अवस्था के प्रत्यक्षीकरण का अवसर देती है जो निराधार होता है—"प्रतिदिन गुसलखाने म रोने और झगडने की आवाजें सुनती है और एक आदमी को वहाँ से निकलकर जाते हुए देखती है।"[4] 'कल्याणी' उपन्यास मे लेखक ने मृत्यु-तत्त्व का प्रभाव दिखाया है। अतः हैल्युसीनेशन की प्रारम्भिक अवस्था मे तो वह अपने प्रत्यक्षीकरण के सत्य होने की बात को टालती रही, 'उसने सोचा होगा कुछ कही मन का भय ही न हो।'[5] पति के छोड़कर चले जाने पर यह दृढ विश्वास होने लगा कि उन्होने स्त्री की हत्या की है। वह नशा करना शुरू कर देती है और उस परिस्थिति से सह-सम्बन्ध स्थापित कर रोज रोने-सिसकने की आवाजें सुनती है। गर्भवती होने पर वह उस स्त्री को प्रतिदिन घर मे देखती है। वह उससे बचना चाहती है पर कहाँ बचे ! उसकी फटी आँखें तथा कातर मुद्रा

१. इमोशनल फैक्टर्स इन वरबल लरनिंग—एच० डी० कार्टर, पृ० १०८ (जरनल ऑव एजुकेशन साइकॉलॉजी, १६३७)
२ प्रेत और छाया—इलाचन्द्र जोशी, पृष्ठ १७१
३. प्रयोगात्मक मनोविज्ञान—शशिलता सिन्हा, पृष्ठ १५७
४ कल्याणी—जैनेन्द्र, पृष्ठ ७३-७४
५ ऐन आउटलाइन ऑफ साइकॉलॉजी—मैकडूगल, पृष्ठ ३७३

रोज उसे आक्रान्त किए रहती है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे व्यक्ति की स्थितियों तथा प्रणालियो के अध्ययन के फलस्वरूप कुछ प्रवृत्तियाँ उभरकर सामने आती है, जो मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यथा—मनोभावो की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति, अहं तथा आत्मोत्सर्ग के चित्रण की प्रवृत्ति विवेकबुद्धि, यौन के अन्तर्गत द्वन्द्व की स्थिति के चित्रण की प्रवृत्ति, अचेतन द्वन्द्वो के चित्रण की प्रवृत्ति, अनुभाव-चित्रण की प्रवृत्ति, मुग्ध-दमित द्वारा व्यक्तित्व के अकन की प्रवृत्ति, आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति, सम्मोह द्वारा दबी अनुभूतियो के उद्घाटन की प्रवृत्ति, स्मृतियों द्वारा कार्य-कारण के खोज की प्रवृत्ति आदि।

विभिन्न प्रवृत्तियो के चित्रण द्वारा मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे उपन्यासकार पात्रो की मानसिक कुठाओ के निराकरण की चेष्टा करता है। वह परिस्थितियो का विश्लेषण करते हुए वास्तविक लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की दिशा प्रदान करता है। मानसिक कुठाएँ मानव की इच्छा-शक्ति को कमजोर बनाती हैं। दुर्बल व्यक्तित्व वाला व्यक्ति न तो समाज से टक्कर लेने का साहस करता है न ही विद्रोह। अत मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार समाज मे शोषण के विरुद्ध मानव की मन स्थिति बनाने के लिए पूर्णत प्रयत्नशील होता है।

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासो की प्रवृत्तियाँ

मनोवैज्ञानिक उपन्यासो की सृजनात्मक प्रवृत्तियो म स प्रमुख निम्नलिखित हैं—

मनोभावो की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति

व्यक्ति की मानसिक प्रतिक्रियाओ का भाव के साथ-साथ बाह्य शारीरिक परिवर्तनों स भी सम्बन्ध है। 'किसी स्थिति म पड़ते ही व्यक्ति की प्रतिक्रिया एकदम प्रकट नही हो जाया करती। ज्यो ज्यो और जिस-जिस रूप मे वह उससे प्रभावित होता जाता है, त्यो-त्यो और उसी रूप मे उसकी मनोदशा भी बदलती जाती है। स्थिति मे पड जाने के पश्चात् और प्रतिक्रियात्मक विस्फोट होने से पहले व्यक्ति के अग प्रत्यगो मे जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तन होते हैं, उनमें व्यक्ति की बदलती हुई मन स्थिति प्रतिबिम्बित हो उठती है।'[१] मन स्थिति द्वारा मनोभावो की अभिव्यक्ति की दृष्टि से जैनेन्द्र जी के पात्र मासल कम किन्तु मानसिक अधिक हैं। भावावेग की स्थितियाँ जैनेन्द्र जी के 'विवर्त' 'त्यागपत्र' और 'सुनीता' उपन्यासो मे उपलब्ध होती हैं। ट्रेन उलटने के बाद 'विवर्त' का

१ साइकॉलॉजी आफ पर्सनैलिटी—स्टेगनर, पृष्ठ २३६

क्रातिकारी जितेन भुवनमोहिनी के यहाँ गया। वहाँ अखबार पढते-पढते उसके मन मे जो खलबली मची, उसका अनुमान इसी से लगाया जाता है कि, 'वह जोर-जोर से सिगरेट के कश खीचता हुआ कमरे मे टहलने लगा और अलमारी के शीशे के सामने जाकर अपने को पूरी तरह देखने लगा।"[1] इसी प्रकार के अनुभाव 'त्यागपत्र' मे मृणाल के पत्र पाकर सुशीला के भाई के मन मे भी उठते हैं तथा सुखदा स प्रथम वार भेंट करते हुए क्रातिकारी लाल के मन मे भी ऐसे ही अनुभव प्रकट होते हैं।

अह तथा आत्मोत्सर्ग के चित्रण की प्रवृत्ति

मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे निरूपित स्त्री-वर्ग सामान्यत आत्मोत्सर्ग के लिए तत्पर रहता है तथा पुरुष-वर्ग का अह उसपर अपनी प्रभुता बनाए रखता है। हरिप्रसन्न, जितेन, नन्दकिशोर, राजीव तथा शेखर मे अह का भाव पाया जाता है। 'सुखदा' के लाल को क्रातिकारी अथवा विद्रोही बनानेवाला तत्त्व उनका अह ही है। अहम्भाव का परिचय देते हुए 'सन्यासी' उपन्यास की जयन्ती कहती है—'आप बडे अहकारी हैं' इस अहभाव से चाहते हैं कि जिस स्त्री से आपका सम्बन्ध हो वह पूर्ण रूप स आपकी होकर रहे.. वह सब कुछ बिना किसी असमजस के आपके पैरो तले समर्पित कर दे।"[2] इस अहकारी वृत्ति के प्रति शान्ति का आत्म-समर्पण कर आत्म-हत्या करना विद्रोही वृत्ति का परिचायक है।

विवेक-बुद्धि तथा यौन प्रवृत्ति मे द्वन्द्व का चित्रण

अज्ञेय जी के उपन्यासो मे यौन प्रवृत्ति और विवेक-बुद्धि मे घोर सघर्ष चित्रित किया गया है। शेखर पर विवेक का कडा अकुश रहता है। इसीलिए वह सेक्स-प्रवृत्ति पर विवेक-विजय प्राप्त कर लेता है। "सस्कार और शिक्षा उसके जीवन की गाँठ बन गये हैं।"[3] "उसका सरस्वती की ओर प्रवृत्त प्रेम शारदा की ओर उन्मुख हो जाता है किन्तु कटकमय पथ पर न जाने का उनका मूक समझौता रहता है।"[4] उसके जीवन मे सस्कारो का महत्त्व बहुत ऊँचा रहा है। वह निरतर मानसिक द्वन्द्व मे आक्रात रहता है। शशि के प्यार मे भी वह—'निर्द्वन्द्व आमस्तक डूब नही सकता, क्योकि न वह पशु है और न ही अनपढ गवार। वह शिक्षित सभ्य और सस्कृत है।"[5]

---

१ विवर्त—जैनेन्द्र, पृष्ठ २३
२. सन्यासी—इलाचन्द्र जोशी, पृष्ठ ३८१
३. शेखर एक जीवनी (भाग २)—अज्ञेय, पृष्ठ २२२
४ वही, पृष्ठ १७२
५. वही, पृष्ठ २२१

अचेतन द्वन्द्वों के उद्‌घाटन की प्रवृत्ति

शेखर के मन मे दमित-वासनाएँ अचेतन मे अपना स्थान ग्रहण कर द्वन्द्वरत रहती हैं तथा उसे व्यथित किए रहती हैं। 'पर्दे की रानी' उपन्यास मे निरजना इन्द्रमोहन के उग्र रूप से ही परिचित होने पर भी उसे अपनी ओर आकृष्ट करने की भरपूर कोशिश करती है किन्तु शीला को हृदयसे चाहने पर भी उसका विनाश करने पर तुली रहती है। अत. इन दोनो के प्रति प्रकट भावनाओ मे सघर्ष अचेतन द्वन्द्व का उद्‌घाटन करता है। जैनेन्द्र जी का अचेतन द्वन्द्वो को उद्‌घाटित करने मे सराहनीय प्रयास रहा है। अचेतन द्वन्द्व के उद्‌घाटन मे अनेक मनोवैज्ञानिक प्रणालियो का प्रयोग किया जाता है।

अनुभाव-चित्रण की प्रवृत्ति

किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया एकदम प्रकट नही होती है वरन् पहले व्यक्ति के अग-प्रत्यगो मे जो सूक्ष्म परिवर्तन होते हैं वही उसकी बदलती मन स्थिति को प्रदर्शित करते हैं। 'सुनीता' उपन्यास का हरिप्रसन्न सत्या को पढाने से कतराता है। उसके एकाएक सत्या के आने पर वह घबरा जाता है—" 'मुझे जीजी ने भेजा है' सुनकर हरिप्रसन्न घबराया—'जल्दी-जल्दी हाथ की उँगलियाँ मलने लगा।' "[1] इस अनुभाव-चित्रण द्वारा पात्र की मनोदशा प्रकट हो जाती है। जैनेन्द्र के उपन्यासो मे अनुभाव-चित्रण कूट-कूटकर भरा हुआ है।

मुख-इंगित द्वारा व्यक्तित्व-अंकन की प्रवृत्ति

मुख-इगित-दशा मे मनोवेग बरबस उमड पडते हैं। 'कल्याणी' उपन्यास मे नायिका के पति असरानी पाठ-पूजा का विरोध वकील साहब के सामने करते हुए कहते हैं कि स्वास्थ्य की उपेक्षा कर पाठ-पूजा का कोई महत्त्व नही है। 'कल्याणी' पहले तो सुनती रही किन्तु मनोवेग के बहाव मे वह चिल्ला उठी—"बस हुआ। अब आप चुप रहिए, क्या चाहते हैं आप ? यह कि मैं मर जाऊँ ? कहते-कहते उसके होठ काँपकर नीले पड गये।"[2] इसी तरह सुखदा की मन-स्थिति मुख-इंगित द्वारा अभिव्यक्त होती है। क्रातिकारी गंगासिंह के प्रति सहानुभूति एकदम घृणा-रूप मे प्रकट होती है—"उसके मन मे पति के प्रति ऐसा विद्वेष पैदा हो रहा था कि वह स्वयं उससे सहम गई और गुस्से से फफकती

---

१. सुनीता—जैनेन्द्र, पृ० १०६
२. कल्याणी—जैनेन्द्र, पृ० ४३

हुई कमरे से बाहर निकल पड़ी।"[1] "मुख-इंगित द्वारा कभी-कभी पात्र अपनी वास्तविकता को छिपा लेता है एक चेहरा है जिसे ओढ़ लेने पर काम बनने मे मदद मिलती है वह रग जो वास्तविकता को अन्यथा दिखा सके। चमक ऊपरी है, भीतर जाने क्या है।"[2]

सम्मोह द्वारा दबी अनुभूतियो के उद्घाटन की प्रवृत्ति

जैनेन्द्र के उपन्यासो मे व्यजकता तथा दार्शनिकता एक ऐसी उलझन है, जो उनके उपन्यासो को विशिष्ट रग प्रदान करती है। "सम्मोहन द्वारा व्यक्ति के अचेतन मे दबी अनुभूतियो को प्रकाश मे लाया जा सकता है।"[3] किन्तु इस *प्रक्रिया का प्रतिफल अस्थायी होता है। उपन्यासो म सम्मोहन का सबसे बड़ा* लाभ यह प्रतीत होता है कि इससे पात्र की अचेतन मे पड़ी ग्रंथियो को उद्घाटित कर चरित्र-विकास मे योग दिया जा सकता है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास 'जिप्सी' का नायक भूपेन्द्र इस प्रक्रिया द्वारा नायिका के अचेतन मे दबी प्रेरणाओ को प्रकाश मे लाता है। इसी आधार पर 'मुक्तिपथ' की सुनन्दा, राजीव को अपनी विवशता का परिचय देते हुए वैधव्य की समस्या को प्रकाश मे लाती है—"मुझ अनाथिनी को आप किसी अछोर और अकूल की ओर खीच ले जाना चाहते हैं? मुझ अबला और असहाय नारी को इस सकरी चहारदीवारी के भीतर गलन दीजिए।"[4] इसी प्रकार 'प्रेत और छाया' की मजरी मे विद्यमान प्रतिशोध तथा विद्रोह की प्रवृत्तियाँ प्रकाश मे आती हैं। 'मुक्तिपथ' की सुनन्दा विद्रोह की प्रवृत्ति का उद्घाटन प्रतीक रूप म करती है—"विश्व मे बद्ध जीवन *को मुक्त करने के लिए बाहर के तालाबो मे नहर काटकर प्रवाह-पथ मुक्त करने की ही आवश्यकता नही है,* वरन् भीतर के जलाशयो को भी निकास और *विकास की आवश्यकता है।"*[5]

आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति

मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति मानसिक व्यथा का मार्गान्तीकरण करने मे सहायक होती है। आत्मविश्लेषण-प्रवृत्ति के आधार पर पात्र निस्सकोच अपना वर्णन लिखकर अथवा बोलकर अभिव्यक्त करता है। इसी प्रवृत्ति के आधार पर 'सुखदा' उपन्यास की नायिका कहती है—"सच्च

१. सुखदा—जैनेन्द्र कुमार, पृ० २७
२ कल्याणी—जैनेन्द्र, पृ० ३६
३ साइको एनालिटिकल मैथड एण्ड दि डॉक्टरीन आफ फ्रॉड—डलबिज, पृ० २०८
४ मुक्तिपथ—इलाचन्द्र जोशी, पृ० ११६
५ वही, पृ० ४१२

चाहूँ—अब कहने बैठी हूँ तो लज्जा किस बात की करूँ ? विवाह से पहले मैंने सोचा था कि विवाह जहाँ भी होगा उसकी आमदनी सात सौ, आठ सौ रुपए होनी चाहिए।"[1] प्रसंग आने पर वह अपनी किसी बात को गुप्त नहीं रखती। यहाँ तक कि यह भी बता देती है, पाठक की सहानुभूति चाहती हूँ क्योंकि यह सच है कि हरिदा की ओर जाते हुए मैंने हल्का मेक-अप किया था।"[2] अतः 'सुखदा' तथा 'व्यतीत' उपन्यास आत्मविश्लेषणात्मक शैली में लिखे गये हैं।

स्मृतियों द्वारा कार्य-कारण खोज की प्रवृत्ति

स्मृतियों का विश्लेषण करके उपन्यासकार पात्र के जीवन-दर्शन को अभिव्यक्त करना चाहता है। व्यक्ति-मनोविज्ञान की यह एक महत्त्वपूर्ण खोज है। डॉ० एडलर का विश्वास है कि मनुष्य की स्मृतियाँ जीवन के प्रति बन चुके दृष्टिकोण के प्रतिकूल नहीं जा सकतीं। जीवन में असंख्य दुःखद-सुखद घटनाएँ घटित होती रहती हैं और उन सबके संस्कार मनुष्य के अचेतन पर पड़ते रहते हैं, पर जब चाहे कोई घटना आकस्मिक ढंग से स्मृति-पट पर उभर आए, ऐसा नहीं होता। मनुष्य के अचेतन में पड़े हुए घटनाओं के केवल वही संस्कार उभरकर चेतन में आ जाते हैं, जो मनुष्य के जीवन-दर्शन के अनुकूल हों।"[3] व्यक्ति मनोविज्ञानवेत्ताओं के मतानुसार कल्पित स्मृतियाँ भी उपेक्षणीय नहीं होती हैं। इसी आधार पर 'शेखर : एक जीवनी' में शेखर को अपने [illegible] घटनाएँ याद हैं यद्यपि उसके द्वारा वर्णित अपने जन्म की बातें—"[illegible] विभिन्न मौकों पर विभिन्न असम्बद्ध वाक्यों को सुनकर, टूटी-फूटी [illegible] देखकर, टूटे-टूटे अव्यक्त विचारों की किसी प्रगूढ़ अंतःशक्ति की [illegible], एकत्रित किए हुए मनश्चित्रों का पुंज है।"[4] शेखर में सबसे [illegible] तथा स्मृतियों में अहंभाव, भय तथा सेक्स की प्रवृत्ति है—"[illegible] पहले की है तथा कौन बाद की, यह बता सकना शेखर के लिए [illegible], क्योंकि वे लगभग एक ही काल की हैं।"[5] शेखर की [illegible] में एकसूत्रता है तथा तीनों मिलकर, जीवन के प्रति [illegible] को उभारकर सामने रखती हैं।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि हिन्दी के प्रमुख [illegible] की मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्तियाँ मानव-मन की [illegible] मन-

---

१. सुखदा—जैनेन्द्र, पृ० १५-१६

२. वही, पृ० ६६

३. वाट लाइफ सूड मीन टू यू—एडलर, पृ० [illegible]

४. शेखर : एक जीवनी (भाग १)—अज्ञेय, पृ० [illegible]

५. वही, पृ० ५०

स्थितियों को अभिव्यक्त करते हुए जीवन-गत दृष्टिकोण को समझने में सहयोग प्रदान करती है।

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्ग संघर्ष की स्थितियाँ

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की स्थितियों को 'अचेतन संघर्ष' के आधार पर उभारा गया है। यद्यपि अन्य उपन्यासों की तुलना में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्रत्यक्ष सामाजिक संघर्ष का अभाव दृष्टिगत होता है किन्तु अंतर्द्वन्द्व की स्थितियाँ सामाजिक परिवेश में व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के प्रति किए गए व्यवहार के आधार पर परिलक्षित होती हैं, जो मूलतः वर्ग संघर्ष को जन्म देती हैं। उदाहरण के लिए हम नारी-मनोविज्ञान के संदर्भ में संघर्ष की स्थितियों को देखें। प्रारम्भ से ही शोषित नारी की कुंठित मानसिक स्थितियाँ पुरुष से विद्रोह करती हैं। जैनेन्द्र के 'सुखदा' उपन्यास की नायिका क्रांतिकारी दल की बैठक में भाग लेने जाती है। पति के मना करने पर वह कहती है—"स्त्री में भी हृदय होता है और वह भी दायित्व रखती है। मैं इस सभा में जाऊँगी, तुम रोक नहीं सकते।"[1] सुखदा को अपनी निर्णायक बुद्धि पर पूर्ण विश्वास है। वह इसी आधार पर पति के निर्णय का विरोध करती है। वास्तव में इस निर्णय के अंतर्गत शोषण के विरुद्ध अचेतन मानस में दबी पुरातन स्मृतियाँ ही हैं। डॉ० रणवीर रांग्रा के अनुसार अब तक के उपन्यासों में तो थी व्यक्ति और समाज के संघर्ष तथा समाज के भीतर वर्ग और वर्गों के संघर्ष की कहानी, पर यह संघर्ष यहीं तक सीमित न रहा। इसके बाद व्यक्ति और व्यक्ति में संघर्ष छिड़ गया। जिन कारणों से समाज का विघटन हुआ था, उन्हीं कारणों से वर्गों तथा परिवारों का विघटन आरम्भ हो गया। फलतः मनुष्य की आस्था अपने परिवेश—समाज, वर्ग तथा परिवार—से हटकर अपने में ही केन्द्रित होती गयी। उसकी बहिर्मुखता घटने लगी और वह अंतर्मुख होता गया।"[2] अतः जीवन में व्याप्त वर्ग-संघर्ष का स्थान मानसिक संघर्ष ने ले लिया।

निष्कर्षतः यह कहना होगा कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में भी सामाजिक तथा वर्ग-गत संघर्ष का अभाव नहीं है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अभिव्यक्त वर्ग-गत संघर्ष प्रत्यक्ष प्रकट न होकर मानसिक स्थितियों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। परिवार के सदस्यों द्वारा शोषण-चक्र की परिधि में ही व्यक्ति के चेतन तथा अचेतन मन में संघर्ष की स्थितियाँ जन्मती हैं। मार्क्स भी सर्वहारा-वर्ग की क्रांति का सहारा लेकर 'वर्ग-संघर्ष' द्वारा पूँजीवादी मनोवृत्ति को ही

१ सुखदा—जैनेन्द्र, पृ० ३१

२ हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास—डॉ० रणवीर रांग्रा, पृ० १३७

समाप्त करना चाहता था, क्योकि जब तक मानव मे 'सग्रह-वृत्ति' की भावनाएँ समाप्त नही होगी, समाज मे निरतर शोषण की प्रक्रिया चलती रहेगी।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो ने वर्गगत चेतना का अभिव्यक्त करते हुए शोषण के प्रति विद्रोह की भावना को दर्शाया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे जमाने की खुदगर्जी के प्रति पात्रो के मन मे असतोष व्यक्त किया गया है। कानून के ठेकेदारो, खुशहालो और सरमायेदारो के प्रति उनका मन सदैव विद्रोही रहता है। वे उन्हे शोषित वर्ग की अवनति के लिए उत्तरदायी मानते हैं। 'जहाज का पछी' उपन्यास के करीम चाचा इस प्रकार के शोषण के प्रति अपनी विद्रोही भावना इन शब्दो म अभिव्यक्त करते हैं—"आज एक ओर तरक्की की बातें सुनने मे आयी है, दूसरी ओर पहले से ज्यादा अमीरों के हाथो से गरीबो के गले कट रहे हैं। उनका खून कानूनी कायदो स इस तरकीब से चूसा जा रहा है कि देखनेवालो को कुछ पता ही नही चलता।"[1] 'चढती धूप' उपन्यास की तारा भी सघर्ष की स्थितियो का स्पष्टीकरण करते हुए कहती है—"दु ख और शोषण के अटूट चक्र मे जिन्होने जीवन बिताया है, व प्राण की असली और नक्ली पुकारो को पहचानते हैं।"[2] इसी उपन्यास मे उपन्यासकार ने समाज की वास्तविक स्थितियो का अकन करते हुए वर्ग-चेतना द्वारा श्रेणी वैषम्य को मिटाकर वर्गहीन समाज-स्थापना का सदेश दिया है। श्री शुक्ल के शब्दो म— 'आरम्भ से ही क्रातिकारी मानस-गठन को लेकर चलनेवाले तरुण भारतीय विद्यार्थी और उसके हर्ष-विषाद, भूख-प्यास, अश्रु-हास और प्रेम-घृणा का चित्रण ही मेरा लक्ष्य रहा है। एक ओर सदियो की पूँजीवादी विकृतियो मे पले अपने जीवन-व्यापी सस्कारो से मुक्त होने की छटपटाहट है, दूसरी ओर एक सर्वथा नूतन जीवन-दर्शन, समाज शक्ति और राजनीति का अपनाने की आकुल चेष्टा, इस चेष्टा मे बुद्धि के प्रकाश और मन के स्वप्न के अनुरूप सफल न हो पाने पर कुण्ठा, ग्लानि और वैफल्य की भारी क्राति-अनुभूति। इसके लिए आवश्यक है कि वैयक्तिक पूँजीवाद का अत हो और उसकी शक्तियो पर साहित्य और राजनीति दोनो मे अधिक स अधिक पैनी, कठोर और आक्रमणात्मक चोट की जाए।"[3] स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे भी सघर्षमूलक स्थितियो का प्रभावकारी ढग स अकन हुआ है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों मे विवेचित वर्ग

मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म शोषक तथा शोषित वर्गों का चित्रण तथा उनकी

१ जहाज का पछी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० १४६
२. चढ़ती धूप—रामेश्वर शुक्ल अचल, पृ० २३६
३. वही, पृ० ४-५

संघर्ष-वृत्ति का निरूपण प्रत्यक्षतः न होकर, मनोवैज्ञानिक तत्त्वों, प्रणालियों, स्थितियों तथा मानसिक कार्य-व्यापार के माध्यम से चित्रित मिलता है। सभी प्रकार के शोषक-वर्गों के मानस में धन संग्रह का कुचक्र सदैव क्रियाशील रहता है और इसी आधार पर वे शोषण की प्रक्रिया को गतिशील रखते हैं। अस्तु, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में शोषक एवं शोषित दोनों ही प्रकार के वर्ग मिलते हैं।

शोषक-वर्ग

आज समाज में पैसा सबसे बड़ी वस्तु है। प्रेम तथा स्त्री दोनों को ही पैसे के बल पर खरीदा जा सकता है। 'त्यागपत्र' की मृणाल शोषक-वर्ग की प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए कहती है कि व्यभिचारिणी स्त्री को भी ये लोग पैसे के लोभ में अपनाने को तत्पर रहते हैं। वह अपने प्रेमी की शोषकवृत्ति का उल्लेख करते हुए कहती है "मैं कहती हूँ महीने दो महीने के भीतर यह आदमी यहाँ से चल देगा और मेरे पास एक पैसा भी नहीं छोड़ेगा। वह जानता है कि पैसे की दुनिया है। इसलिए सात सौ आठ सौ जो हाथ बनेगा, वह आड़े दिन काम ही आयेगा। वह भी जानता है कि एक पाहिशा औरत चाहे जैसे जो लेगी उसके पास पैसा छोड़ने की जरूरत नहीं।"[1] मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में शोषक-वर्ग की शोषण-प्रक्रिया का चित्रण विभिन्न रूपों में हुआ है। 'जीने के लिए' उपन्यास में जमींदार-वर्ग के शोषण की प्रक्रिया उल्लिखित हुई है—"मीनापुर के जमींदार रायबहादुर कन्हाईसिंह अपने जुल्मों के लिए काफी बदनाम थे। मीनापुर के किसानों की गाय भैंसें, साग-भाजी, फल-फूल ही नहीं उनकी इज्जत भी कन्हाईसिंह के पैरों के नीचे थी। दूध उनसे बचने पर गाय-भैंसवालों को मिलता था। तरकारी उनके लिए आवश्यक होने पर बाजार या घर में जाती थी। मीनापुर का कोई किसान न था जिसके अँगूठे के निशानवाले सादे दो-चार कागज कन्हाईसिंह के पास न हों।"[2]

जमींदार-वर्ग के शोषण का चित्रण 'सीमा रेखा' उपन्यास में मिलता है। १८५७ के गदर में जो भारतीय लोग अंग्रेजों के काम आए बन गए। जब अंग्रेजों की जीत हुई और उन्होंने समूचे देश में गाँव-गाँव से हथियार छीन लिये तब कुछ ऐसे कार्य भी उन्होंने किए, जिनमें देश में उनका साथ देनेवाले कुछ लोग धनी बन गये। बड़ी-बड़ी जागीरें और आज के चोट्टे जमींदार इन्हीं अंग्रेजों ने अपनी कलमों से गढ़ा।"[3] 'बहादुरी में ऐसे लोग जागीरदार और जमींदार

---

१ त्यागपत्र—जैनेन्द्र, पृ० ५६-५७

२ जीने के लिए—राहुल साकृत्यायन, पृ० ३३१

३ सीमा रेखा—शिवमूर्ति शिव, पृ० ३६

घोषित किए जाते और ऐसे बडे इलाके पर, जिसकी वे नस-नस पहचानते होते, अग्रेज लोग जमीदार का हक घोषित करते। ये जमीदार इस क्षेत्र की माल-गुजारी अग्रेजी सरकार को देते और अपने इलाके म तैमूरी हुकूमत चलाते।"[1] 'चढ़ती धूप' मे मोहन कहता है—"किसानो के क्रियाशील वर्ग पर जमींदारो के कर्मचारी और महाजनो के दूत निर्दयतापूर्वक प्रहार कर रहे हैं। पुलिस की ओर से भी उन्हे पूरा-पूरा सहयोग मिल रहा है। ··देहातो म सनसनी थी। जनता और जमींदारो मे किसी क्षण सघर्ष हो सकता था।"[2] 'जमींदारो, अधिकारियो और महाजनों का शोषण देख-देखकर मरे भीतर जलन होती थी।"[3] 'सीमा रेखा' का रघू भी जमीदारा के रक्षक-रूप म चित्रित हुआ है—'विजय सिंह ही अपने नौकरो और रियाया को गाली देकर नही पुकारते थे बल्कि उनका खैरख्वाह नौकर रघू भी सबको गालियाँ देता था।"[4]

'चढती धूप' उपन्यास म पूँजीपति-वर्ग की नीतियो का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वे मजदूरो को गुमराह करके अपनी शोषण-प्रक्रिया को बरकरार बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं—"पूँजीपति निश्चेष्ट नही हैं। उनकी ओर से दलाल नियुक्त हैं जो मजदूरों मे फूट डालने की कोशिश किया करते हैं—उनके सामने उनके नेताओ के चरित्र और ईमानदारी पर आक्षेप करते हैं—उन्हें मजदूरो के पैसो पर पलनेवाला, उनके यूनियन के धन पर ऐश करनेवाला बताते हैं। सरकारी क्षेत्रो मे उन्हें रूस म पैसा पानेवाला और यहाँ 'बोलशेविक' क्राति का षड्यत्र रचनेवाला कहा जाता है······ उन्हे मजदूरो की वर्तमान दुर्व्यवस्था और तबाही का जिम्मेदार ठहराया जाता है।"[5]

ठाकुर-वर्ग की विवेचना 'सीमा रेखा' मे और ठेकेदार वर्ग, सेठ और व्यापारी-वर्गों की स्थिति का चित्रण 'जहाज का पछी', 'पाँव मे आँख वाले', 'परतु', 'उनसे न कहना' तथा 'निमत्रण' आदि उपन्यासो म मिलता है—"तुम लोग समाज के ठेकेदार हो या उन ठेकेदारो के पिट्ठू, ऐसी झूठी और ढोग-भरी व्यवस्था का जाल फैलाए बैठे हो कि प्रतिपल जो ज्वलत सत्य तुम लोगो की आँखो से गुजरता है उसे कुचलने या उसका गला घोटने का अमल करने मे ही अपनी झूठी मनुष्यता की शान मानते हैं।"[6] 'पाँव मे आँख वाले' उपन्यास के "सेठ बनारसी को भी किसी की तबाही मे आनद आता था। दुष्ट, भ्रष्टाचारी और धन के लिए नीच से नीच काम करनेवाला बनारसी अपने होठो

१. सीमा रेखा—शिवमूर्ति शिव, पृ० ३७
२ चढती धूप—रामेश्वर शुक्ल अचल, पृ० ८७
३. वही, पृ० ६४
४. सीमा रेखा—शिवमूर्ति शिव, पृ० ४३
५. चढ़ती धूप—रामेश्वर शुक्ल अचल, पृ० २७७
६. जहाज का पछी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० ४४

पर एक आकर्षक कुटिल मुस्कान रखता था।''''''बनारसी जितना क्रूर उतना ही धार्मिक।''[1] वह पाठ-पूजा को केवल ढोंग के रूप में अपनाये रहता है तथा प्रभु से सदैव अधिक सम्पन्न बनने की प्रार्थना करता है। 'जीने के लिए' उपन्यास का सेठ रामगोपाल सुचितसिंह को दरबान बनाना चाहता है तथा वेतन भी अधिक देना चाहता है किन्तु सुखुसिंह (बड़े भाई) सुचितसिंह को समझाते हुए कहता है—''भैया, सेठ हो चाहे साहूकार, उनकी नौकरी मैं तुम्हारे लिए कभी भी पसंद नहीं करूँगा। एक दो महीने आव-भगत होगी और उसके बाद तुम्हें खरीदा हुआ गुलाम समझा जायेगा।''[2]

डॉ० प्रभाकर माचवे कृत 'परंतु' उपन्यास के सेठ जी का विश्वास है कि ''ये और ऐसी सब युवतियाँ उनके सुखोपभोग के लिए पैदा हुई हैं। उन्हें कृतज्ञ होना चाहिए कि एवज में वह उन्हें रुपए दे देते हैं। अन्य लोग तो वह भी नहीं देते। इस प्रकार बलात्कार करा लेना जैसे इस वर्ग की अनाथा, दरिद्रा रूपवतियों का जन्मसिद्ध अधिकार है।'[3] 'उनसे न कहना' के बिहारी पण्डित पैसे के सम्बन्ध में सदा सतर्क रहते थे। उनका विचार था कि ''पैसा अपने मान-अभिमान की रक्षा तभी करता है जब वह अपने पास अपने अधिकार में रहता है।'[4] इस प्रकार शोषक-वर्ग पैसे को अधिक महत्त्व देता है। उनकी संग्रह-वृत्ति ही गरीबों के शोषण का कारण बनती है। 'निमंत्रण' की मालती कहती है कि सामूहिक कुटुम्ब-प्रणाली भी शोषण का कारण बनती है क्योंकि—''कुटुम्ब ने मनुष्य को खरीद लिया है तथा उसने उसे पूँजी का संचय सिखाया। फिर आगे चलकर उसी पूँजी ने आज एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के आगे विवश, पंगु, हीन, दयनीय और पथ का भिक्षुक बनाकर छोड़ दिया है।'[5] वस्तुतः वर्ग-का कुचक्र ही शोषण का महत्त्वपूर्ण कारक बनता है। मार्क्स की धारणा है कि वर्ग-संघर्ष के द्वारा ही पूँजीवादी मनोवृत्ति को समाप्त कर, वर्ग-विहीन, धर्मविहीन तथा राज्यविहीन समाज की स्थापना हो सकती है। इस संघर्ष के पश्चात् सामाजिक परिवर्तन-प्रक्रिया में बाधक वर्गों का अस्तित्व सदैव के लिए समाप्त हो जायेगा।

शोषित वर्ग

शोषित वर्गों के अन्तर्गत मजदूर तथा कृषक वर्गों का चित्रण मनोवैज्ञानिक

१ पाँव में आँख वाले—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ० १४-१५
२ जीने के लिए—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३८
३ परन्तु—प्रभाकर माचवे, पृ० ६६
४. उनसे न कहना—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० ८१
५. निमंत्रण—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ० १२६

उपन्यासों में मिलता है। कहीं-कहीं पर सम्मिलित रूप में सर्वहारा-वर्ग का भी निरूपण हुआ है। 'सूनी घाटी के सूरज' में किसान मजदूर की स्थिति का यथार्थ-परक चित्रण हुआ है—"इन लोगों में प्रत्येक परिवार के साथ यदि कुछ भूमि थी तो वह बीघा-डेढ़ बीघा पथरीली भूमि से अधिक न थी। केवल अपने गौरव की प्रतिष्ठा में वे अपने-आपको किसान कहते थे। वस्तुतः वे सभी मजदूर थे।"[1] 'पथचारी' उपन्यास में समाजगत आर्थिक वैषम्य एवं बेकारी की समस्या का चित्रण हुआ है। लेखिका ने धन के विषम वितरण के परिणामों पर गम्भीरता से विचार किया है—"धनिकों को बेकारी-जैसी समस्या से कोई परिचय नहीं होता क्योंकि वे ऐश्वर्यपूर्ण जीवन-यापन करते हैं। मद्यपान करते हैं, मोटरों में भ्रमण करते हैं।"[2] "उधर निम्नवर्ग इतने निर्धन हैं कि दो जून रोटी भी अपने परिवार को नहीं खिला सकते। पत्नी को मृत्यु-शैया पर पाकर भी डाक्टर को नहीं बुला पाते।"[3]

इस शोषित वर्ग की मदद करने के लिए कुछ लोग क्रान्तिकारी कदम उठाते हैं। 'चाँदी की रात' में एक पात्र शोषित वर्ग की सहायता हेतु अमीरों को लूटता है तथा डाकू बन जाता है—"बतला दूँ, मैं डाकू सरदार हूँ। दुःखी और गरीब मनुष्यों की मदद करता हूँ। सताता ऐसे लोगों को हूँ जो निर्धनों का शोषण करते हैं।"[4] 'तीसरा आदमी' उपन्यास में कमलेश्वर शोषित वर्ग की दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं—"सीली हुई दीवारें, सड़े अनाज की तरह महकता हुआ बिस्तर, कोने से आती हुई राशन की गंध, मैले कपड़ों की भमक और उनसे फूटती हुई चिन्ता के बालों में पड़े तेल और बंधी श्रेणी की बू···।"[5]

आज भी शोषित वर्ग निर्मम शोषण के कारण अभावमय जीवन व्यतीत कर रहा है। अतः उसके अभावों तथा परिस्थितियों को चित्रण कर उन्हें प्रकाश में लाने तथा वर्ग-गत चेतना को उद्भूत करने में आधुनिक उपन्यासकार पूर्णतः सजग एवं प्रयत्नशील हैं। 'जीने के लिए' उपन्यास में "कन्हाई सिंह ने चाहा कि जिन पर विश्वास नहीं है, उन्हें खेत से निकाल लिया जावे। किसान इस प्रकार जीवन से भी बढ़कर अपनी प्यारी जीविका को छिनते देख अधीर हो गये। उनकी आँखों के सामने दाने-दाने के लिए बिलबिलाते अपने बच्चों की सूरत घूमने लगी, आगम अन्धकार मालूम होने लगा।"[6] इस तरह के शोषण से तथा

१ सूनी घाटी का सूरज—श्रीलाल शुक्ल, पृ० ६४
२. पथचारी—उषादेवी मित्रा, पृ० ५३
३ वही, पृ० ६६
४. चाँदी की रात—कमल शुक्ल, पृ० ५१
५ तीसरा आदमी—कमलेश्वर, पृ० ३१
६. जीने के लिए—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३३२

गरीबों को जेल में ठूँसने के प्रश्न को लेकर किसानों की स्त्रियों में क्रांति की भावना का विस्फोट हो गया—"घर के पुरुषों के चले जाने पर किसान स्त्रियों ने बगावत का लाल झण्डा उठाया। पुराने गीतों की जगह अब वह क्रांति के गीत गाती फिरती थीं। सैकड़ों वर्षों तक सुधारक उपदेश देकर जो काम नहीं कर पाये, वह इस छोटे-से आंदोलन ने चन्द महीनों में कर दिखाया। वह अब मुक्त थीं और अपने पतियों की तरह अपने खेतों पर डटी थीं।"[1] 'विवर्त' उपन्यास का जितेन समाज में समान रूप से धन का वितरण चाहता है। वे अमीर जो गरीबों का शोषण करते हैं उन्हें वह चोर मानता है। तिन्नी जितेन के दृष्टिकोण की व्याख्या करती है—"ये चोर मुझे समझाते कि चोरी हम करते हैं, लेकिन चोरों के यहाँ से चोरी का माल खुद चुराकर लाते हैं कि साहू को दे दें ..." और कहते थे कि साहू, जानती हो कौन है? गरीब जितने हैं सब साहू हैं और अमीर बहुत-से चोर हैं।"[2] 'निर्वासित' उपन्यास में शारदा शोषक तथा शोषित वर्गों का विवेचन करती हुई कहती है—'वर्तमान युग में सारी मानव-जाति को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जाता है—एक पुरुष-वर्ग और दूसरा स्त्री-वर्ग। ये दोनों शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के ही पर्याय-वाची हैं। जिस अल्पसंख्यक सबल वर्ग ने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दासता से सारे विश्व को दुर्बल राष्ट्रों या वर्गों को गुलामी की जंजीर से जकड़ रखा है, वह पुरुष-वर्ग है।"[3]

'जहाज का पंछी' का नायक अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए धनिक-वर्ग पर व्यंग्य कसता है तथा उनकी शोषक नीतियों का विरोध करता है—"आप मुझे शौक से पुलिस के हवाले कर सकते हैं पर गाली देने का कोई अधिकार नहीं है।"[4] "मैं न किसी गरीब की लगाई रोजी छीनना चाहता हूँ, न चोरी को अपना पेशा बनाने की इच्छा रखता हूँ न किसी की बहू-बेटियों पर बुरी नजर रखता हूँ, न हजारों लाखों आदमियों के शोषण द्वारा आर्थिक चर्बी चढ़ाकर मोटा होना चाहता हूँ।"[5] 'शेखर : एक जीवनी' का शेखर भयंकर सामाजिक संघर्ष से ग्रसित है। वह वर्ग गत दोषित परम्पराओं से मुक्ति पाने के लिए छटपटाता रहता है। वह शशि से कहता है—'कुछ करूँगा जिसे क्रांति कहते हैं। सब चीज उलट-पुलटकर रखूँगा। कुछ टूट-फूट हो जायेगी तो कहूँगा कि पुरानी

---

१ जीने के लिए—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३३२
२ विवर्त—जैनेन्द्र, पृ० ८७
३ निर्वासित—इलाचन्द्र जोशी, पृ० २२२
४ जहाज का पंछी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० २३६
५ वही, पृ० २३८

सड़ी हुई थी।"[1] श्रमिक-वर्ग मिहनत की कमाई पर सतोष करता है अत उनम पूँजीवादी मनोवृत्ति नही पनप पाती। सीमा-रेखा' उपन्यास मे एक मजदूर दिनेश से कहता है—"मिहनत की कमाई बरक्कत की कमाई होती है। हम मिहनत की कमाई खाना चाहते हैं। बहुत दूर हाथ चलाते हुए एक बुड्ढे मजदूर ने सिद्धान्त पेश किया—'पसीने के बाद लहू मे सफाई आ जाती है।'"[2] इस तरह 'चढती धूप', सन्यासी', 'अपने-अपने अजनबी', शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', विवर्त', 'कल्याणी' आदि उपन्यासो मे शोषित-वर्ग का विवेचन किसी न किसी रूप मे हुआ है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासो में वर्ग-संघर्ष के कारण

मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे चित्रित वर्ग-संघर्ष के उत्प्रेरक कारणो मे स प्रमुख हैं—रूढिवादिता, अंधविश्वास, सामन्तवादी व्यवस्था, मशीनीकरण, आर्थिक विषमता, अशिक्षा जातिवाद तथा मार्क्सवादी चेतना का उदय।

रूढिवादिता

'टूटे हुए लोग' उपन्यास में लील की सास, उसकी खाली मांग और माथे पर बिन्दी न देखकर कहती है—' यह क्या विधवाओ जैसी हालत बना रखी है ? न मांग मे सिंदूर, न माथे पर बिन्दिया" खसम क जीते जी ही रॉड हो गई क्या ?'[3] उसके कथित शब्द लीलू पर बहुत प्रभाव डालत हैं तथा उन शब्दो का प्रतिफलित रूप जब अपने प्रेमी समीर पर देखती है तो व्यथित हो कह उठती है—"यहाँ आकर देखा तो आप बीमार पडे हैं, अब पक्का विश्वास हो गया कि उसकी जुबान वास्तव म काली है।"[4] लीलू द्वारा व्यक्त भाव अंधविश्वास और रूढिवादिता के परिचायक हैं। 'यह भी नही' धारावाहिक उपन्यास के माध्यम स महीपसिंह कहते हैं, "हमारा आर्थिक ढाँचा जिस ढग से और जिस तेजी से बदल रहा है उसके कारण व्यक्ति को जिन नई स्थितियो का सामना करना पड रहा है, उसमे इस तरह की गुँथी हुई परिवार-व्यवस्था अपनी सगति लगातार खोती चली जा रही है।"[5] जहाज का पछी' उपन्यास मे बताया

---

१ शेखर एक जीवनी (दूसरा भाग)—अज्ञेय, पृ० ११५
२. सीमा रेखा—शिवमूर्ति सिंह, पृ० ६
३. टूटे हुए लोग—अजीज आजाद, पृ० ७४
४ वही, पृ० ७४
५ यह भी नही—महीपसिंह (धारावाहिक उपन्यास, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ७ मार्च १९७६), पृ० ३१

गया है कि मानसिक उपचार में भ्रमपूर्ण अधविश्वासो की विवेचना से बडी सहायता मिलती है। 'त्यागपत्र' उपन्यास की मृणाल रूढिवादिता से ग्रस्त है। वह पति के अतिरिक्त अन्य किसी के प्रति निष्ठावान नही है। उसका यह कथन कि—'पत्नी का धर्म पति है, घर पतिगृह है, उसका धर्म, कर्म और मोक्ष भी वही है।'[१] यह भावना उसके मानस को भयभीत किए रखती है और अन्तत. सघर्ष का कारण बनती है। रूढिवादिता से ग्रस्त बुआ प्रमोद से कहती है कि—'मैं समाज को तोडना-फोडना नही चाहती हूँ। समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ? या कि किसके भीतर बिगडेंगे ? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मगलाकांक्षा मे खुद ही टूटती रहूँ।'[२]

जैनेन्द्र के उपन्यासो मे पुराने सामाजिक बधनो के टूटने तथा मान्यताओ के शिथिल होने पर एक सामाजिक अव्यवस्था तथा नैतिक अराजकता की परिस्थिति उत्पन्न होती चित्रित की गई है। जैनेन्द्र के पात्र रूढि और अन्धविश्वास का विरोध करते पाये जाते हैं। वे वर्ग-भेद को मिटाकर समाज के स्वरूप मे क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते हैं। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे रूढिवादिता से सत्रस्त पात्रो का चित्रण अन्तत सघर्षजन्य परिस्थितियो को जन्म देता है।

अशिक्षा

वर्ग-सघर्ष के कारणो मे अशिक्षा प्रमुख है। अशिक्षा के कारण ही 'अज्ञातवास' उपन्यास का "बैजनाथ मुख्तार जैसा चाहता है वैसा करता है। वे समझते, कहीं कुछ धोखा है पर जान न पाते कि वह धोखा कहाँ है।"[३] शिक्षा का महत्त्व स्वीकारते हुए 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास मे कहा गया है—'शिक्षा, सभ्यता, संस्कार' हमे अपने से ऊपर उठाते हैं, अपने व्यक्तित्व की सीमाओ से निकालकर एक बृहत्तर अस्तित्व मे, उच्चतर, अपर—लौकिक बल्कि सार्वलौकिक अनुभूति के क्षेत्र मे ले जाते हैं।'[४] इस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे भी अशिक्षा के कारण शोषण-प्रक्रिया की निरन्तरता का चित्रण किया गया है। 'विवर्त' उपन्यास की मृणाल, 'एकतारा' उपन्यास की चाची भी अशिक्षित होने के कारण ही नयी व्यवस्था से वैचारिक मेल नही रख पातीं, फलत सघर्ष की स्थितियाँ

---

१ त्यागपत्र—जैनेन्द्र, पृ० ३२

२. वही, पृ० ७३

३ अज्ञातवास—श्रीलाल शुक्ल, पृ० २१

४ शेखर : एक जीवनी (भाग २)—अज्ञेय, पृ० २२२

उत्पन्न हो जाती हैं । अशिक्षा के कारण ही कुंठित मन से चाची कहती हैं—"और पराये मर्दों के क्वारे जवानों के यहाँ यों रात भर रहना कहाँ की सभ्यता है ? हमारी माँ-बुआओ ने तुम्हारी उम्र की लडकियो के लिए पर्दा कहा है। ···अब देखें तो जमाना ही पलट गया है । नाश हो जाये ऐसी सभ्यता का ! अब ये पढ़-लिख गयी, इन पर किसी के कहने का क्या असर है ?"[१]

मशीनीकरण

आज मशीनें मानव का स्थान ले रही हैं। विद्युत्-गणक द्वारा निर्मित कृत्रिम मस्तिष्क अब स्मृति, चिन्तन तथा निर्णय करने मे भी मानव-मस्तिष्क की समानता करने लगा है। मशीनीकरण ने एक ओर सभ्यता-विकास के चरणों मे एक नया कदम जोडा है तो, वही शोषण के लिए भूमिका भी प्रस्तुत की है। 'जहाज का पछी' उपन्यास के नायक का कथन द्रष्टव्य है—"मेरी उम्र पचपन साल की हो चुकी है। मैंने वे दिन भी देखे हैं जब 'सेफ्टी रेजर' का नाम तक कोई नही जानता था। तब तक नाइयों की हालत बहुत अच्छी थी। इसके बाद धीरे-धीरे घर-घर मे सेफ्टीरेजर रखने का रिवाज चल पड़ा और सिर्फ गरीब ही नही बल्कि पैसेवाले लोग भी अपने हाथो स दाढी बनाने लगे। इन छोटे-छोटे सस्ते टुकड़हा 'ब्लेडो' ने नाइयों का सारा पेशा ही चौपट कर दिया ,"[२] एक ओर वैज्ञानीकरण ने नाइयों का धधा चौपट कर दिया, दूसरी ओर व्यापारिक कम्पनियो के लिए अधिकतम लाभ कमाने का रास्ता खोल दिया—"बडी बडी अमेरिकी और अग्रेज कम्पनियाँ बडी-बडी मशीनो के जरिये हर रोज इस तरह के अनगिनत ब्लेड तैयार करके दुनिया-भर मे भेजती रहती हैं और अरबों-खरबो रुपया कमा रही हैं। अगर वे चाहें तो ऐसे ब्लेड तैयार कर सकती हैं कि एक ब्लेड एक आदमी की जिन्दगी भर चले। पर वे बराबर रुपया खसोटते रहने के लिए ऐसे ब्लेड तैयार करती हैं जो दो बार से ज्यादा नही चलने पाते। फिर नाई की मजूरी से वे सस्ते पड़ते हैं। ऐसी हालत मे नाइयो को कौन पूछता है ?"[३] आज मनुष्य की तुलना मशीन से की जाती है और उसस भी उस प्रकार की कार्यविधि एव क्षमता की अपेक्षा की जाती है। चटकती कलियाँ उभरते काँटे' उपन्यास मे इस स्थिति की उपेक्षा करते हुए कहा गया है—'मनुष्य का शरीर मशीन नहीं है···का।···काम···निरतर काम ! मशीन के पुर्जे को भी तेल से चिकनाया जाता है, उसकी सफाई की जाती है, तब कही वह काम करता

---

१ एक तारा—प्रभाकर माचवे, पृ० २०
२ जहाज का पछी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० २६६
३. वही, पृ० २६६

है पर प्रशांत अपने माता-पिता के देहांत के बाद निरंतर दौड़ता ही रहा था··· दौड़ता ही रहा था। उसका शरीर इस दौड़, लगातार परिश्रम को सहन न कर सका और वह बीमार पड़ गया।'[1] इस प्रकार मनुष्य से निरंतर श्रम करने की अपेक्षा को मशीनीकरण ने जन्म दिया। इस अपेक्षा के कारण श्रमिक वर्ग का भरपूर शोषण हुआ है और संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं।

सामन्तवादी व्यवस्था

अनेक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सामन्ती व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पन्न हुए शोषण की स्थितियों को दर्शाया गया है। ये शोषण की प्रक्रियाएँ ही निरंतर वर्ग-संघर्ष को जन्म देती हैं। 'सीमा रेखा' उपन्यास में (जमींदारी-उन्मूलन) कानून बदलने के साथ-साथ जमींदार जमीनों पर अपने पाँव जमाते आये हैं—"जमींदार घबडाये। उन्होंने कानूनों से भी समझौते किए और दिन पर दिन वे अपनी उन जमीनों पर पाँव जमाते गये, जिन्हें वे अपने कर्मचारों और हल-वाहों को दे चुके थे। समझौते से दी गई जमीन, समझौते से भी नहीं, जबर्दस्ती हल चलाकर छीन ली गयी।"[2] गरीबों में आर्थिक कठिनाइयों के कारण ही दुष्प्रवृत्तियाँ जन्मती हैं। यह साहसिक प्रयास उसकी वर्ग-गत चेतना का द्योतक है। 'चटकती कलियाँ उभरते काँटे' में लेखक ने कहा है—"राजस्थान के गाँवों में किस प्रकार अब सामन्ती संस्कृति के घृणित अवशेष मौजूद हैं और वे किस प्रकार भोली-भाली जनता को कष्ट देते हैं। जागृति का नया सूरज उदय होता है और सभी किसान एक प्रबल संगठन बनाकर अत्याचारियों को खदेड़ देते हैं।"[3]

आर्थिक विषमता

आर्थिक विषमता के कारण ही 'विवर्त' उपन्यास की मोहिनी और जितेन के पारस्परिक सम्बन्ध विकसित नहीं हो पाते। जितेन इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है—"तुम ठहरी अमीरजादी, मैं मेहनत करके खाता हूँ। पाई-पाई पसीने के बल पर मुझे कमानी होती है फिर हमारे बीच यह क्या हो गया है? सोच लो मोहिनी, कहीं तुमसे भूल तो नहीं हो गई?"[4] पैसेवालों की तुच्छ एवं स्वार्थी मनोवृत्ति का वर्णन 'कटी' उपन्यास में मिलता है—"यहाँ पैसा ही सब कुछ है। सब पैसे के पीछे भागते हैं। पैसेवालों के तलुवे चाटते हैं। यहाँ पैसा

---

१. चटकती कलियाँ उभरते काँटे—लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ५६
२. सीमा रेखा—शिवमूर्ति शिव, पृ० २२
३. चटकती कलियाँ उभरते काँटे—लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ३४
४. विवर्त—जैनेन्द्र, पृ० १३

है तो काबिलियत है, बाकी सब व्यर्थ।····· पैसेवाले बहुत होशियार होते हैं। बडे ही धूर्त। जान भले ही निकल जाये पैसा नही निकलना चाहिए। उन्हें फिक्र है तो एक कि पैसा बढे कैसे ? मुनाफा अधिक से अधिक कैसे हो ?"[1] उनकी इसी मनोवृत्ति के कारण समाज मे आर्थिक विषमता फैलती है, जो अन्तत वर्ग-सघर्ष का कारण बनती है। प्रेत बोलते हैं' उपन्यास मे लेखक ने कहा है—'कि आज की इस आर्थिक विषमता और बुरी स्थिति मे प्रत्येक व्यक्ति का दिमाग सिर्फ दो हिस्सो मे बँट रहा है। अपनी आर्थिक समस्या को किस प्रकार हल किया जाये ?—गुजारे के लायक पैसा कहाँ से आये ? और दूसरे इन झझटो को कैसे शात किया जाय ?···कुछ का कहना है कि आर्थिक अभाव ही सबके मूल मे है।"[2] अत स्पष्ट है कि आर्थिक विषमता वर्ग-सघर्ष का प्रमुख कारण है। 'सन्यासी' उपन्यास मे जोशी जी ने लिखा है कि—' दलितों की दीनता और निर्धनो की पराधीनता के विरुद्ध जैसी जबर्दस्त आवाज इस युग मे उठाई जा रही है, वैसी शायद ही पहले कभी किसी युग मे उठाई गई हो। साथ ही धन के वैभव के प्रति मस्तक नत करने की दास-प्रवृत्ति जिस हद तक इस युग के बने हुए नेताओ के भीतर पाई जाती है, वह भी अतुलनीय है।"[3]

मार्क्सवादी चेतना का प्रसार

मार्क्सवादी चेतना के प्रसार-प्रचार ने समाज के शोषित वर्गो मे वर्ग-गत चेतना का उदय किया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे 'जहाज का पछी', 'अन-चाहा', 'सीमा रेखा', 'विवर्त', चढती धूप', 'त्यागपत्र', 'सोया हुआ जल', 'तीसरा आदमी' तथा 'टूटे हुए लोग' म मार्क्सवादी चेतना का प्रसार-प्रचार मिलता है। 'विवर्त' उपन्यास मे वीर मार्क्सवादी चेतना का उद्‌घोषक है—"रुपया सरकार बनाए, हम क्यो न बनाएँ ? किसके के हाथ नही हैं, श्रम के हाथ सत्ता होनी चाहिये, श्रम सिक्का हो और सिक्का मिट्टी हो, तब है क्राति, बाकी तमाशा है, बाकी सब सरकार की पूजा है, क्राति कहते हैं पर करते पूजा हैं। धन लूटकर सिवा इसके क्या होता है कि धन ईश्वर बनता है।"[4] अत धन की नही वरन् श्रम की ईश्वर की पूजा की तरह आराधना होनी चाहिए। श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यास 'मुक्तिपथ' मे सामूहिक हितचिन्तन की प्रेरणा प्रदान की है। इस हितचिन्तन की अनुप्रेरणा मे मार्क्सवादी चैतन्य का सदेश छिपा हुआ

---

१ कटी—डॉ० पुष्कर दत्त शर्मा, पृ० २१९-२२०
२. प्रेत बोलते हैं—राजेन्द्र यादव, पृ० २५६
३. सन्यासी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० १८३
४. विवर्त—जैनेन्द्र, पृ० १६४

है—"सामूहिक हित के लिए, मनुष्य को अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख और राग-विराग की भावनाओं की विशेष व्यवस्था की एक विशेष स्थिति में स्थापित हो जाने तक तिलांजली देनी ही होगी।[1] डॉ० रांगेय राघव का 'घरौंदा' उपन्यास मनोवैज्ञानिक स्तर पर मनोविकृतियों का विश्लेषण करता है। इसमें उपन्यासकार ने प्रगतिशील दृष्टिकोण का उभारकर मार्क्सवादी चेतना को उद्घाटित किया है। डॉ० सुरेश सिन्हा के शब्दों में इस उपन्यास में —"रूढ़ियों एवं जर्जरित परम्पराओं के प्रति तीव्र विरोध की भावना अभिव्यक्त हुई है।"[2] 'जिप्सी' उपन्यास में श्रम और सम्पत्ति के संघर्ष की स्थिति के प्रस्तुतीकरण का आधार भी मार्क्सवादी चेतना ही है— उपन्यास का रंजन और मनिया स्थिर चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। उत्तेजना का सबसे बड़ा व श्रेष्ठ कारण धन है, शक्ति है और स्थिर चेतना का आधार श्रम है। इस दृष्टि से उपन्यास को सम्पत्ति और श्रम के संघर्ष का महाकाव्य भी कह सकते हैं।[3]

'शेखर एक जीवनी' में शेखर के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व से नवयुग चेतना की अनुगूंज स्पष्ट सुनायी देती है—'हम इस या उस दुर्व्यवस्था के नहीं हम इस ऐसे पन के दो ही तादृशत्वभाव के विरोधी हैं, हम सभी कुछ बदलना चाहते हैं, हमारी विद्रोह-प्रेरणा धर्म के राजसत्ता के, अर्थसत्ता के और अन्त में अपने व्यक्तित्व के प्रति विद्रोही है।[4] इलाचन्द्र जोशी ने आधुनिक पूँजीवादी संस्कृति में मध्य व्यक्ति के अहम्भाव को टटोला है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर उपन्यासकार के द्वारा व्यक्ति के चेतन संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, सामाजिक हितचिन्तन तथा अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण हुआ है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियाएँ

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप समाज में निरन्तर हो रहे शोषण की कुछ स्थितियाँ उभरकर सामने आयी हैं। विशेष रूप से इन उपन्यासों में नारी-शोषण की मार्मिक स्थितियों का विश्लेषण हुआ है। नारी वर्ग सदैव से पीड़ित वर्ग रहा है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार द्वारा उसमें नवचेतना का विकास हुआ है, किन्तु आज भी वह अपने आपको रूढ़िवादी संस्कारों से मुक्त नहीं कर पायी है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार नारी के सम्पूर्ण

---

१ मुक्तिपथ—इलाचन्द्र जोशी, पृ० ४०७
२ हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास—डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० ५०० ५०१
३ आलोचना (उपन्यास अंक ११) पृ० ६१
४. शेखर एक जीवनी—अज्ञेय, पृ० ३४

व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए मूल मानवीय वृत्तियाँ—प्रेम तथा काम के आधार पर नारी के शोषण का विरोध करते हैं । साथ ही अर्थ के आधार पर नारी-शोषण का विरोध भी करते हैं। इसके अतिरिक्त आलोच्य उपन्यासो मे वर्ग सघर्ष के परिणामस्वरूप जो प्रतिक्रियाएँ उभरी हैं, वे हैं—आर्थिक शोषण, नैतिक विघटन, सामाजिक कुरीतियाँ यौन-विकृतियाँ, राजनैतिक भ्रष्टाचार, आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ तथा सास्कृतिक पतन ।

नारी-शोषण

श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यास 'निर्वासित' मे नारी-शोषण का मूल कारण उसकी आर्थिक दासता को माना है जो सम्पूर्ण नारी-वर्ग के लिए अभिशाप बनी हुई है— 'हमारी तरह ही देश की लाखो-करोडो नारियो को जानकर या अनजाने मे घोर सामाजिक विषमता का शिकार बनाकर अत्यन्त असहाय और दयनीय जीवन का असहनीय भार चुपचाप ढोना पड रहा है, वह कोई साधारण कारण नही हो सकता । उस कारण का बीज समाज के उसी दुष्ट व्रण के भीतर निहित है जिसने आर्थिक दासता से सम्पूर्ण शोषित वर्ग के जीवन को विषमय बना रखा है ।"[1] पथ की खोज' उपन्यास मे आर्थिक शोषण से मुक्ति का उपाय नारी वर्ग का आर्थिक स्वावलम्बन माना गया है । अत चन्द्रनाथ की दूसरी पत्नी आशा समस्त नारी-वर्ग को स्वावलम्बन का सदेश प्रदान करती हुई कहती है—"मैं हमेशा से यह मानती आ रही हूँ कि रुपये के मामले मे स्त्रियो को स्वावलम्बी होना चाहिए । मैं गम्भीरता से सोच रही हूँ कि कही नौकरी करनी शुरू कर दू ।'[2] इसी उपन्यास मे सामाजिक रूढियो के प्रति भी नारी ने विरोध की आवाज उठाई है। साधना अपने पति को छोडकर चन्द्रनाथ के पास आ जाती है तथा स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कहती है—"क्या नारी को यह अधिकार नही कि वह भी दुनिया मे अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा करे ? और अपने मनोनुकूल आदर्शों के लिए जीवित रहे ? क्या नारी मात्र साधन है, पति की वासना पूर्ति का साधन, घर मे उसके आराम का और बाहर ऐश्वर्य-प्रदर्शन का साधन ' बच्चे पैदा करने का साधन ?"[3]

'उलझी लकीरें' उपन्यास के नीहार बाबू ने नारी वर्ग के शोषकों पर प्रहार करते हुए कहा है—"यह सब पुरुष-समाज की पाशविक व्यवस्था है जिसने नारी को अपनी वशवर्तिनी बनाने के लिए, अपना शासन थोपने के लिए, ऐसे नियम बनाये हैं । मैं कहता हूँ, क्या पाप नारी ही करती है, पुरुष नही करता ? यदि

---

१ निर्वासित—इलाचन्द्र जोशी, पृ० ३५१
२ पथ की खोज—देवराज, पृ० ३६
३ वही, पृ० २२४

ऐसा है, तो क्यों नहीं एक वृद्धा से युवक का विवाह हो जाता ?'[1] नारी वर्ग को पुरातन संस्कारों और मान्यताओं के आधार पर बहुविध प्रताडित करने की योजनाएँ शोषक-वर्ग के प्रतिनिधि पात्रों द्वारा बनायी गयी हैं। 'जयजयवन्ती' उपन्यास में विकल के अवचेतन मानस का विश्लेषण करते हुए लेखक ने नारी के प्रति अपनी भावनाओं को इन शब्दों मे प्रकट किया है—"औरत पैसे के लिए अपना शरीर बेचती है।"[2] एक ओर नारी-वर्ग की विवशताओं को समाज के समक्ष रखा है तो दूसरी ओर नारी को दानवी का रूप माना है—"नारी छलना है प्रवचना है, और है पुरुष की सम्पूर्ण शक्ति का हरण कर देनेवाली दानवी।"[3] डूबते मस्तूल' की नायिका मानसिक विकृति के कारण नवागन्तुक पुरुष को 'अक्लर' मान-कर अपने शोषण की व्यथा उसके सामने रखती है— "मैं पागल हो रही थी, इस ख्याल से कि उसके और भी बीवियाँ हैं और कोई शौहर पैसे की खातिर अपनी बीवी को बेच सकता है।"[4] 'वत्सला टूट गई' उपन्यास में डॉ० वत्सला डॉ० निहार के प्रेम की टूटन के कारण टूट गई। 'डोरोथी' के शब्दों म यह टूटन इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है—"आपने वत्सला जीजी के साथ अन्याय किया है, आपको उन्हीं के साथ विवाह कर लेना चाहिए था। वे आपके अभाव मे कितनी दुःखित हैं और किस प्रकार उनका जीवन एक जीवित-जाग्रत अभिशाप बन गया है।"[5] वत्सला स्वयं अपने बलिदान से अपने प्रेमी डॉ० निहार के जीवन को सरस बनाती है किन्तु उसकी टूटन तथा विघटित जीवन का जिम्मेदार पुरुष-वर्ग ही है।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के 'शृंगार' उपन्यास की पेरिन अपने शोषण की वेदना को इन शब्दों में व्यक्त करती है—"मेरा वह पति अशोक मुझे अवसर मारता था वह भी किसलिए कि मैं पापा से रुपये मँगाकर उसे देती रहूँ। मैं तरह-तरह के बहाने बनाकर हजारों रुपए पापा से मँगाती और वह ऐश से पैसे उड़ाता। मेरी इच्छा होती, मैं पूरी बात पापा को बताऊँ, पर हिम्मत न होती। एक बार ऐसा हुआ कि माँ बननेवाली थी। अशोक ने कहा मैं गर्भपात करा लूँ।'[6] उसी दिन से पेरिन पुरुष-समाज को ही घृणा की दृष्टि से देखने लगी। उस वर्ग-गत चेतना के कारण ही यह अनुभूति हुई कि—"मैं अशोक की पत्नी नहीं, रखैल हूँ। इसकी प्रेमिका नहीं मशीन हूँ, पैसे देनेवाली, तन देनेवाली।"[7]

१ उलझी लकीरें—राजेन्द्र मोहन अग्रवाल पृ० २६
२ जयजयवन्ती—रमेश वर्मा, पृ० २२४
३. वही, पृ० १२४
४. डूबते मस्तूल—नरेश मेहता, पृ० ५६
५ वत्सला टूट गई—डा० लक्ष्मीकान्त शर्मा, पृ० १७६
६ शृंगार—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ८६
७. वही, पृ० ६०

नारी वर्ग का शोषक होते हुए भी 'शह और मात' का नायक शक्ति से अपरिचित नही है। पुरुषो के मन मे आनेवाली हर भाव लहर को जैसी सचाई से वह पढ सकती है, कोई मनोवैज्ञानिक नही पढ सकता किन्तु फिर भी नारी-वर्ग पुरुषो के द्वारा अवमानित होता है, शापित होता है तथा कुण्ठाओ म ही समाप्त हो जाता है। इन उपन्यासो म कही-कही नारी का विद्रोही स्वर भी सुनाई देता है —' मैं जो कर रही हूँ वह वर्जनीय है, अनुचित है और शायद किसी के प्रति विश्वासघात है ··। लेकिन विश्वासघात न करने का ठेका मैंने ही लिया है ?"[1]

मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे सेठ-साहूकारो द्वारा किये गए नारी शोषण की स्थितियो का चित्रण हुआ है। 'परन्तु' उपन्यास मे सुरा और कामवासना से उन्मत्त सेठ के विवश नारी के प्रति दुर्व्यवहार का चित्रण हुआ है—"कोठी के एक ओर भैया सरयू पाण्डे ने एकान्त कोठरी मे बडी रात तक काम-काज निबटाकर घर लौटती हुई हेम को पकडकर बन्द कर दिया था और वह चिल्लाए नही इसलिए मुह मे कपडा ठूँसकर, हाथ पैर बाँधकर गठरी की भाँति एक ओर डाल दिया था। उसके साथ कलकत्ते के नामी गिरामी सेठ लक्ष्मीचन्द्र बलात्कार का प्रयत्न करने बढे।"[2] 'द्वाभा' उपन्यास मे कहा गया है—"स्त्री की सृष्टि जगत् को मुग्ध करने के लिए नही, अपने पति-देवता को सुख देने के लिए हुई है। एडमड बर्के—स्त्रियो को किसी भी वय मे स्वाधीन छोडना उचित नही। हरेसन—पुरुषो के अधीन रहने से ही स्त्रियो की सबसे बडी शोभा है।'[3] इस प्रकार नारीशोषण के विविध रूप हम मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे पाते है। नारी को सीमाओ मे बाँधकर उसके अधिकारो को सीमित कर उसकी विवशताओ से लाभ उठाते हुए शोषण करने म ही शोषक वर्ग आनन्दित हुआ है।

सामाजिक कुरीतियाँ

डॉ० देवराज के अनुसार—' मनोवैज्ञानिक, सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टिकोण से साहित्य के मूल्यांकन करनेवाले सिद्धान्त को उत्पत्तिमूलक सिद्धात कहा जा सकता है। हमने इतिहास के सहारे आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियो का अध्ययन किया और इस परिणाम पर पहुँचे कि उस समय की परिस्थितियाँ पतनोन्मुख-कारिणी थी, नीचे ले जाने वाली थी। समाज मे आर्थिक वैषम्य उत्पन्न कर उत्पीडन करने वाली थी।"[4] आर्थिक वैषम्य ने अनेक सामाजिक कुरीतियो को जन्म दिया है यथा—*कन्या के जन्म को अभिशाप मानना,*

१ शह और मात—राजेन्द्र यादव, पृ० ३६

२ परन्तु—प्रभाकर माचवे, पृ० ६८

३ द्वाभा—प्रभाकर माचवे, पृ० ४२

४ साहित्य तथा साहित्यकार—डा० देवराज उपाध्याय, पृ० ४०

दहेज की कुरीति, वैधव्य, तलाक, वेश्यावृत्ति, दाम्पत्य-जीवन मे टूटन और संयुक्त परिवारो का विखण्डन आदि। इन सभी परिप्रेक्ष्यो मे आलोच्य उपन्यासों के माध्यम से आर्थिक शोषण तथा वर्ग-संघर्ष का चित्रण हुआ है।

कन्या-जन्म : एक अभिशाप

"सुता-जन्म आजकल अभिशाप हो गया है। विवाह एक समस्या हो गया है। लडके मे ऐसी क्या खूबी है कि जिसके लिए वधूपक्ष के पिता को धन खर्च करना पडता है? मानो वह नाता पति-पत्नी का नाता न होकर, जन्म-संगिनी पाने की अभिलाषा न होकर व्यापार का माध्यम हो गया है। यह नाता भी पैसो से तुलता है और उसके आकर्षण मे सद्गुणो को ठुकरा दिया जाता है। उसे धन देकर बेच दिया जाता है।"[1] इन सभी स्थितियों मे नारी का ही निर्ममतापूर्वक शोषण होता है। अत रश्मि अपने पिता से कहती है—"सोचिए पिताजी! मैं कोई भैंस-गाय तो हूँ नही, जिसे खरीदार देखने आता है, हाथ फेरकर, बजाकर, परखकर, मोलभाव करता है और नापसन्द आने पर छोडकर चल देता है... पैसे खर्च करने पर वह वस्तु ग्राहक की, जैसे चाहे प्रयोग करे। यह अत्याचार क्यो?"[2]

प्रेम की समस्या

प्रेमी तथा पति के अस्तित्व का प्रश्न मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे निरन्तर बना रहा है क्योकि आज के युग मे—"प्रेम एक संक्रामक रोग है और इसका बुद्धिजीवियों मे बडा प्रचलन है।"[3] आज प्रेम-प्रसगो को बहुत महत्त्व दिया गया है—"मैं प्रेम को एक तीव्र भावात्मक संवेग मानती हूँ, मुझे तुम्हारा उत्तेजित प्रेम चाहिए।"[4] अजु अपने प्रेमी से निजी भावनाओ की अभिव्यक्ति इस प्रकार करती है। 'चढती धूप' मे ममता का प्रेमी अपने मनोभावो को व्यक्त करते हुए कहता है—"ममता को मैंने आत्मा के समस्त निर्मालय से प्यार किया है। उसके सामने जाकर मेरी सारी वासनाएँ—लिप्सा मे जैसे प्रचण्ड अग्नि मे निमज्जित हो जाती हैं। मैं चाहता हूँ उसका विवाह किसी सुयोग्य सम्पन्न व्यक्ति के साथ हो जाए—वह सुखी हो।"[5] कतिपय मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे पति तथा प्रेमी के स्वतत्र अस्तित्व का प्रश्न तथा सघर्ष, वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रिया के

१. कलमी लकीरें—राजेन्द्र मोहन भटनागर, पृ० ८६
२ वही, पृ० ७०
३ बसाला टूट गई—डा० लक्ष्मीकान्त शर्मा, पृ० २०२
४. पाँव में आँख वाले—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० २६
५ चढ़ती धूप—रामेश्वर शुक्ल, पृ० ५७

रूप मे भी अभिव्यक्त हुआ है। इस अभिव्यक्ति मे नारी-विद्रोह के स्वर प्रमुख है—'अब वह समय आ रहा है कि आप युगो के अन्धकार मे बद्ध, सदियो के क्रूर निर्यातन से पीडित नारी आत्मा के विद्रोह की आवाज को किसी भी छल-छद्म से दबाने म समर्थ नही हो पायेंगे। उनकी अन्तरात्मा की वह फुफकारती हुई पुकार उस अन्धकार-लोक की प्रत्येक कन्दरा म गूंजती हुई प्रचण्ड विस्फोटको के साथ बाहर के विश्व मे निश्चित रूप म फूटने के लक्षण प्रकट कर रही है।"[1]

विवाह-सम्बन्धो की बिडम्बना

विवाह का विरोध तथा विवाह द्वारा व्याप्त सघर्ष की स्थितियो को भी आलोच्य उपन्यासो म उभारा गया है—'जीवन को देखने के दृष्टिकोण म फिर जबर्दस्त परिवर्तन हुआ। मार्क्स और फ्रायड ने समाज और व्यक्ति को देखने का नया चश्मा दिया।'[2] 'जहाज का पछी' उपन्यास मे बेता द्वारा बाल-विवाह तथा ससुराल के बारे म सुनी हुई बातें, ससुराल के प्रति उसके मन मे घृणा उत्पन्न कर देती हैं—"उसने केवल इतना सुन रखा था कि ससुराल मे मायके की सी स्वतन्त्रता का लेश भी नही पाया जा सकता और बहू को सैंकडो बधनो के बीच मे दबकर, सिकुडकर, सिमटकर रहना होता है।"[3] 'एक तारा' की तारा के मन मे विवाह के सम्बन्ध मे इस प्रकार के विचार उठते हैं—'क्या यह स्त्री-जीवन के लिए आवश्यक है ?—या विवाह स्त्री के जीवन मे एक बडी जजीर है, एक रोडा है एक बाधा है ?' 'विवाह कैसा ? प्रेम विवाह या करार के तौर पर दो व्यक्तियो का किया हुआ समझौता ? या अग्नि-ब्राह्मण-देवताओ की साक्षी मे किया हुआ पाणिग्रहण ?'[4] विवाह के माध्यम से नारी-शोषण की प्रक्रिया का बखान करते हुए 'उलझी लकीरें' उपन्यास की अचल कहती है—"रश्मि, यह विवाह नही हुआ, मुझे जिन्दा आग मे झोक दिया गया है। मध्य-काल मे सतियाँ जौहर करती थी, पर मैं जीवित रहती हूँ और जलती हूँ, वह अग्नि ऐसी है जो शत-शत चिताओ की अग्नि तो धधका रही है लेकिन पूर्णतया नष्ट नही करती।'[5] विवाह व्यवस्था के प्रति उपन्यासकार की प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है—'विवाह का बन्धन, जिसे समझदार बुजुर्गों ने इतनी गलतियो, परीक्षाओ के बाद निकाला, एक मखौल की बात बन जाता है।"[6]

---

१ इलाचन्द्र जोशी और उनके तीन उपन्यास—सुखदेव स्याल, पृ० ३५
२ साहित्य सहचर—हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३०
३ जहाज का पछी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० २६१ २६२
४ एक तारा—प्रभाकर माचवे, पृ० ५१
५. उलझी लकीरें—राजेन्द्र मोहन अग्रवाल, पृ० ८६
६. अज्ञातवास—श्रीलाल शुक्ल, पृ० ३६

उपन्यास में धार्मिक शोषण की चर्चा हुई है—"देश-विदेश के धर्म के ठेकेदारों ने अपनी कुल आविष्कार-शक्ति को खर्च करके नरक में जिन बुरी से बुरी और भयंकर से भयंकर यातनाओं का सृजन किया है, वे सभी मजार में, उसके मजार में मौजूद हैं, और वह उन्हें स्वीकार नहीं करता, उनके विरुद्ध विद्रोह करता है।"[1] 'जलतरंग' उपन्यास में कहा गया है, "धर्म के किताबी नियमों को जीवन में होना अलग चीज है, धर्म बिलकुल अलग।"[2]

धार्मिक तथा नैतिक पतन से सम्बन्धित परिस्थितियों को सशक्त भाषा में चित्रित करने का सफल प्रयास अज्ञेय जी के उपन्यासों में हुआ है। डॉ० दीक्षित के शब्दों में—"'अज्ञेय' के लेखन में विवेकयुक्त सात्विकता तथा भावागत अभिजात्य की रक्षा हुई है।"[3] डॉ० रामरतन भटनागर ने धार्मिक परिवर्तन की प्रक्रिया को रचनाधर्मी स्तर पर स्वीकारा है—"महान् रचनाएँ नये-नये युग-धर्मों से पुष्ट होकर नये रूप-रंग ग्रहण करती हैं। जिन धर्मों की रचनाकार को सम्भावना भी नहीं हो सकती, वे युग-धर्म की भूमिका पर रचना में अनायास ही उदित हो जाते हैं।"[4] आज का युवा-वर्ग धर्म के रूढ़िवादी स्वरूप में आमूल-चूल परिवर्तन लाने के लिए कृतसंकल्प है। आज वह धार्मिक स्वच्छन्दता तथा नैतिक बल के लिए आग्रहशील है—"सचमुच में माँ सभी पुराने मूल्यों की लाशों को ढोने वाली एक सीढ़ी है, धर्म को आज के समस्त भौतिक उपकरणों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समझनेवाली सतयुग की कोई धार्मिक महिला! पुरान युग की धर्म-सत्य से ढकी एक मरी! एक लाश।"[5] 'विवर्त' उपन्यास में जैनेन्द्रकुमार कहते हैं—"धर्म का ढकोसला बहुत हुआ, लाखों उसके नीचे पामाल हुए पड़े हैं। पैसा पुजता है और सम्पत्ता का छल फैलता है।...धर्म की ओढ़ी हुई खाल खुल गई है, असलियत उघड़ आई है असलियत यह है कि नशा दे-देकर दुनिया को बेवकूफ बनाया गया है। धर्म से धन आता है और धन से धर्म पलता है, इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ कर देना है।"[6] श्री अचल ने कहा है—"धर्म और संगठित वर्ग' ने शोषण की जो नई दिशाएँ दी हैं और मनुष्य के पीछे मौत जैसा स्थिर, काला परदा टाँग दिया है उसे मैं पूँजीवाद का प्रचार समझता हूँ। लोगों में गलतफहमी फैला दी गई है कि साम्यवाद धर्म, ईश्वर-वाद और आध्यात्मिक उन्नति का तिरस्कार करता है। एक खास वर्ग समाज

१ शेखर एक जीवनी (भाग १)—अज्ञेय, पृ० ७२
२ जलतरंग—शैलेश मटियानी, पृ० ५६
३ आलोचना प्रक्रिया और स्वरूप—डा० आनन्द दीक्षित, पृ० ७
४ वही पृ० १३५
५ गाँव में गाँव वाले—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ० ७२
६ विवर्त—जैनेन्द्रकुमार, पृ० ८७

मे है···कारण स्पष्ट है। ईश्वर की दृष्टिगत सत्ता के खात्मे के साथ-साथ ईश्वर मे विश्वास होना घापपन समझा जाने लगा है। आर्थिक परिस्थितियों की निर्धारण-शक्ति के अटूट विश्वास ने ईश्वरवाद की जड़ें खोखली कर दी हैं।"[1] इसी शोषण के प्रश्न को राजेन्द्र यादव ने अपने उपन्यास मे उठाया है—"आप क्या समझते है ? मनुष्य जाति या धर्म के लिए है, या जाति या धर्म मनुष्य के लिए ?"[2] इस प्रकार धार्मिक-नैतिक शोषण से सम्बद्ध पतनोन्मुखी प्रवृत्तियो का सशक्त अकन मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे हुआ है।

आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ

आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ यथा—हड़ताल, जुलूस, तालाबन्दी आदि स्थितियों का चित्रण मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे भी प्रभूत हुआ है। ये स्थितियाँ वर्गगत सघर्ष के परिणामस्वरूप ही उभरकर सामने आती हैं। कतिपय उपन्यासो मे आन्दोलनकारी प्रवृत्तियो का चित्रण रूस की 'ओप्रीचिन्ना प्रणाली के अनुरूप पनपा दिखाई देता है—"सामन्त वर्ग एव राजाओं का विरोध खत्म करने तथा केन्द्रीभूत रूसी राज्य को सुदृढ बनाने के लिए जो असाधारण कार्यवाही की गई, उस प्रणाली को 'ओप्रीचिन्ना' कहते है।"[3] इस प्रणाली के चित्रण के आधार पर मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो ने ऐसे पात्र दिए हैं' जो विघटन, सत्रास, कुण्ठा आदि के प्रवाह मे बहते चले जाते है, और बाहर से संघर्ष करते-करते भीतर से टूट चुके है, जो अपने से पराजित हो चुके है। आवश्यकता ऐसे पात्रो की थी जो सघर्षों से जूझते हुए भी भीतर से टूटे नही।"[4] सघर्षों की स्थितियाँ, जीवन की क्रियाओ मे, परिस्थितियो के घात-प्रतिघात से निर्मित होती हैं। 'कटी' उपन्यास के रचयिता ने परिस्थिति-द्वन्द्व को सघर्ष का मूलभूत कारण मानते हुए कहा है—"अमीर और गरीब के मध्य का अन्तराल न आर्थिक सहायता से भरता है, न सहानुभूति के टोकरो से। यह तो स्थितियो का वैपरीत्य है।"[5] 'सन्यासी' म श्री इलाचन्द्र जोशी कहते हैं—"दलितो की दीनता और निर्धनो की पराधीनता के विरुद्ध जैसी जबरदस्त आवाज इस युग मे उठाई जा रही है वैसी शायद ही पहले कभी किसी युग मे उठाई गई हो।"[6] 'जिप्सी' उपन्यास का वीरेन्द्र मार्क्सवादी सिद्धातों को माननेवाला है। अतः आर्थिक

---

१ चढ़ती धूप—अचल, पृ० ११८-११९
२. प्रेत बोलते हैं—राजेन्द्र यादव, पृ० २२
३. सोवियत सघ का सक्षिप्त आर्थिक इतिहास—अ० पोद्कोलिज़न, पृ० १५
४. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० १२१
५. कटी—डा० पुष्करदत्त शर्मा, पृ० ११२
६. सन्यासी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० १८३

वैषम्य की खाई को पाटने के लिए संघर्ष की एक अत्यावश्यक भूमिका स्वीकार करता है।

'जहाज का पंछी' उपन्यास का नायक वर्गगत चेतना की अनिवार्य संभावनाओं के संबंध में कहता है— 'एक दिन वह भी आएगा जब सिर्फ मेरी ही नहीं, सभी की वैयक्तिक चेतना विकसित होकर सामूहिक चेतना के विकास में सहायक होती हुई उसके साथ मिलकर एक पूर्णतः नई चेतना को जन्म देगी।'[1] इस प्रकार 'जहाज का पंछी' का नायक बराबर सर्वहारा-वर्ग-जागृति के मूल प्रश्न को उठाता है। अचल' जी ने अपने पात्र मोहन राके द्वारा आन्दोलनकारी प्रवृत्तियों को प्रश्रय प्रदान किया है। वह कहते हैं, "जनवर्ग की अन्त शक्ति को उत्पादक अभिव्यक्ति देना—इस विद्रोह-शक्ति को पूर्णता तक पहुँचा देना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।"[2] कामरेड जयनाथ कहते हैं— 'हमारे देश में दोहरा शोषण है। विदेशी सरकार के 'कॉलोनियल' शोषण और देशी पूँजीवाद के घृणित शिकंजे में हम दोहरे शिकार हैं। पर हमारे दुःख का प्रत्येक दिन लाल क्रान्ति का विजय-दिवस है।'[3] कामरेड मालती कानपुर के हड़तालियों के लिए चन्दा एकत्रित करती है तथा मजदूरों को संदेश देती है—' अपने श्रम की पैदावार का शोषण अब हम बर्दाश्त न करेंगे। मजदूर सभा और कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में हमारा विश्वास बराबर समाजवादी क्रान्ति पर दृढ़ होता गया है।'[4] इन्हीं आन्दोलनकारी प्रवृत्तियों के कारण भारत सरकार ने आपात-स्थिति घोषित की। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बीस सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत सूत्र सं० १, ३, ४ ६ तथा १५ में निम्न वर्गों को शोषण से मुक्त कराने का संकल्प व्यक्त किया है। इस कार्यक्रम के— तृतीय सूत्र में भूमिहीनों व समाज के कमजोर वर्गों को आवासीय भू-खण्डों को तेजी से आवंटित करना, चतुर्थ सूत्र में मजदूरों से जबरन काम लेने को तत्काल गैरकानूनी घोषित किया जाना तथा पंचम सूत्र में ग्रामीणों पर कर्ज का बोझ समाप्त कर ऋण-वसूली पर कानूनी प्रतिबन्ध का लगाया जाना, छठे सूत्र में खेतिहर मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी कानूनों में संशोधन किया जाने का आग्रह है।'[5] आदि-सूत्रों के माध्यम से वर्ग-गत शोषण की समाप्ति का लक्ष्य ही प्रमुख दृष्टिगत होता है।

---

१ जहाज का पंछी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० ४४६
२ चढ़ती धूप—रामेश्वर शुक्ल 'अचल', पृ० ६६
३ वही, पृ० २८०
४ वही, पृ० २८१
५ आपात स्थिति क्यों ?—जुलाई १९७५, पृ० १४–१६

आर्थिक शोषण

समस्त वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया मूलत आर्थिक शोषण के विरुद्ध पनपी है। कतिपय मनोवैज्ञानिक उपन्यासों मे पागलपन तथा उन्माद की अवस्था को अत्यधिक आर्थिक सम्पन्नता के परिणाम के रूप मे चित्रित किया गया है। 'जहाज का पंछी' उपन्यास म उपन्यासकार ने पूँजीवादी मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए कहा है—"कौन महाचुम्बक उन लोहे के पुतलो को नचा रहा है?" रुपया! रुपया! हाय रुपया! मुझे मिल जा रुपया! दूसरो की पॉकेट खाली करके केवल मेरे पास आ जा रुपया!"[1] आज समाज म अर्थवादी रिश्ते ही महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। 'एक तारा' के उपन्यासकार ने उचित ही कहा है कि—"आदमी और आदमी के रिश्ते आर्थिक और सिर्फ आर्थिक हैं···।"[2] इसीलिए समाज म संघर्षपूर्ण स्थितियो का अतिरेक है क्योकि पैसे के आगे न मानवता का कोई मूल्य है और न ही योग्यता का। 'चटकती कलियाँ उभरते काँटे' उपन्यास मे आर्थिक जटिलताओ स पूर्ण जीवन मे भावनाओ को महत्त्वहीन कहा गया है—"बड़े आदमियो के मन मे जहाँ आर्थिक दृष्टिकोण प्राय प्रबल रहता है, भावुकता की कोई गुंजाइश नही रहती।"[3] सच तो यह है कि पैसे के बल पर सब-कुछ खरीदा जा सकता है—इज्जत प्यार, सम्मान, प्रतिष्ठा आदि।

पैसे के अभाव मे ही नारी का क्रय-विक्रय होता है। 'विवर्त' उपन्यास की तिन्नी को उसका पिता पचास रुपये मे बेच देता है। 'चढ़ती धूप' का उपन्यासकार कहता है कि यन्त्र-युग मे गुलामी आर्थिक शोषण ही है यथा—गुलामो पर शारीरिक सख्तियाँ कम होने लगी हैं पर आर्थिक शोषण की फाँसी का फन्दा और कस दिया गया है। जहाँ कोड़े थे वहाँ कम मजदूरी और उसमे भी कटौती आ गई।"[4] इसी उपन्यास की ममता कहती है—'इतना विराट शोषण है—इतना सूक्ष्म प्रकाण्ड अनय है—ऐसी भयकर दासता कि कहते नही बनता। लोगो की आत्मा तक मे गुलामी बस गयी है। दिल टूटे हुए हैं—आँखो की दृष्टि पथरा चुकी है, हमारे बड़े-बड़े लवदार नेता जो पूँजीपतियो से रुपया पाने की अभिलाषा रखते हैं इस दोहन को कायम रखना चाहते है। इनके मायाजाल हमे तोड़ने हैं।"[5] 'जयजयवन्ती' उपन्यास मे भी आर्थिक शोषण का मूल कारण आर्थिक अभावों को ही बताया गया है—"औरत पैसे के लिए ही अपना शरीर

१. जहाज का पंछी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० २०८
२. एक तारा—प्रभाकर माचवे, पृ० ५
३. चटकती कलियाँ उभरते काँटे—लक्ष्मीकान्त शर्मा, पृ० ४६
४. चढ़ती धूप—अंचल, पृ० ८१
५. वही, पृ० ९३

बेचती है। 'पैसा दो, शरीर लो। सौदा खरा नक्द'''।'[1] इस प्रकार आर्थिक शोषण के प्रति चेतना-विकास तथा उससे मुक्ति-प्राप्ति हेतु संघर्ष की दिशा प्रदान करना ही इन उपन्यासकारों का मुख्य लक्ष्य रहा है।

राजनैतिक भ्रष्टाचार

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पूंजीवादी मनोवृत्ति के फलस्वरूप जन्मे राजनैतिक भ्रष्टाचार का नानाविध निरूपण हुआ है। वस्तुतः वर्ग-संघर्ष एवं वर्ग-क्रान्ति के द्वारा ही पूंजीवादी मनोवृत्ति को समाप्त किया जा सकता है। चन्द्र जी ने अपने उपन्यास 'पाँव में आँख वाले' में भ्रष्टाचार की नीति का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—"मैं आपको अपने देश के लोगों के बारे में एक रहस्य की बात बता रहा हूँ हम सब रोगी हैं, असाध्य रोग के रोगी। रोग का नाम है बेईमानी! छोटे-बड़े अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, नेता-अधिकारी, अफसर-चपरासी सब इस रोग से आक्रान्त हैं। किसी को ज्यादा और किसी को कम, पर है सेंट-परसेंट यह बेईमानी का रोग हम सबको। नगरों, महानगरों में तो यह रोग है ही, और अब गाँवों में भी तो '।"[2] पूंजीवादी युग की भ्रष्टाचारी नीति का उल्लेख करते हुए उपन्यासकार ने कहा है—"इस पूंजीतन्त्र के बीच सचाई एक मजाक बन गई है। आदमी को किसी भी तरह पैसा कमाना चाहिए। जिसके पास पैसा है वह इस जमाने में अपनी कोई भी खोई वस्तु पुनः पा सकता है, किसी भी कलंक को धो सकता है।"[3] समाज के भ्रष्टाचारी वर्ग ने लबादा ओढ लिया और 'हाय पैसा हाय पैसा' का नाद गुंजा रहे हैं—'रुपये पर रुपये कमा रहे हैं और दूसरी ओर भुखमरी, बेकारी चोरी, घूसखोरी, मिलावट, भ्रष्टाचार, व्यभिचार एक आकर्षक पोशाक में हमें एक तरह की सभ्य मृत्यु दे रहे हैं।"[4] 'यह कितना अच्छा सूत्र है—आदमी रिश्वत लेता हुआ पकड़ा जाता है और रिश्वत से ही छूट जाता है।"[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में राजनैतिक शोषण तथा राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति उपन्यासकारों ने सचेतन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

यौन विकृतियाँ

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आलन फ्रोमे ने कहा है कि—"मनुष्य के प्रत्येक कार्य

---

१ जयजयवन्ती—रमेश वर्मा, पृ० २२४
२ पाँव में आँख वाले—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ३४
३. वही, पृ० ४०
४ वही, पृ० ५४
५. वही, पृ० ५६

एवं कार्य-प्रणालियो के मूल मे उसी की प्रेरणा है और उसके रूप मे उसी की अभिव्यक्ति रहती है।"[1] प्रसिद्ध मनोवेत्ता मैक्डूगल का मत है कि—"मनुष्य की यह मूल प्रवृत्ति उसके स्थायी भावो, ग्रन्थियो, प्रवृत्तियो आदि जिस किसी मे प्रवेश करती है उसे अपार शक्ति प्रदान करती है जबकि उसका विशिष्ट रूप उसके अन्तराल मे अचेतन रूप मे विद्यमान रहता है।"[2] इन कथनो के आलोक मे यदि हम मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे निरूपित वर्गगत सघर्ष के अनुप्रेरक तत्त्वो का विश्लेषण करें तो यौन विकारो को प्रमुख घटक के रूप मे पायेंगे। जहाज का पछी' उपन्यास मे नारी-शोषण का चित्रण यौन-विकृतियो के सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है—"सयोग से वह असहाय लडकी अपने सतीत्व को बचाकर दुष्टो के हाथ मे मुक्त हो पाई है।"[3] प्रेमी द्वारा व्यक्त चेष्टाएँ भी वासना का ही प्रतीक हैं। 'वत्सला टूट गई' उपन्यास म डॉक्टर के विदेश जाने पर डोरथी का विसूरना तथा डॉक्टर द्वारा अश्रुसिक्त कपोलो पर चुम्बन जडने की प्रक्रिया उद्दाम वासना की परिचायक हैं—"ये चुम्बन साक्षी है हमारे प्रणय के, इन्ही की मीठी-मीठी स्मृति, तुम्हे वियोग की घडियाँ काटने मे मदद करेगी।'[4] इसी उपन्यास मे फ्रेंच युवक की उद्दाम वासना-युक्त चेष्टाएँ यौन विकृति की परिचायक है—"उसकी दृष्टि मे एक जुगुप्सा थी और अपहरण एव बलात्कार की शत-सहस्र प्रवृत्तियाँ उसकी क्रूर दृष्टि मे से झांक रही थी। मैं सोचने लगा यह युवती अजीब चगुल मे जैसे फँस गई है। उसकी मुखमुद्रा से जैसे प्रतीत हो रहा था कि वह इन लोगो से किनारा-कशी करना चाहती है। पर ये कि उसे छोडना ही नही चाहते।"[5] प्रस्तुत सन्दर्भ मे एक अन्य उपन्यासकार का कथन है— नारी मे पुरुष से आठ गुनी अधिक वासना होती है, और उसके आवेग मे वह भाई-पुत्र का सम्बन्ध नहीं देखती, इतिहास इस बात का साक्षी है। पूरन की सौतेली माँ ने क्या किया, कुणाल की माँ—अशोक की पत्नी भी तो अपने पुत्र पर मोहित हो गई थी।"[6] उपन्यासकार अजीज आजाद ने 'टूटे हुए लोग' उपन्यास मे यौन के आधार पर शोषण का विरोध किया है[7]—"मैं तो इतना जानता हूँ कि सैक्स मनुष्य की एक प्राकृतिक भूख है और भूख को शान्त करना एक प्राकृतिक आवश्यक्ता।··· नियम बनानेवालो ने ही इस वासना की भूख को मिटाने के लिए पति-पत्नी का

---

१ दि साइकॉलॉजी ऑफ सैक्स—आलन फ्रोमे, पृ० ६४
२. सोशल साइकॉलॉजी—डब्ल्यू० मैक्डूगल, पृ० ७०
३. वे दिन—निर्मल वर्मा, पृ० १४७
४ जहाज का पछी—इलाचन्द्र जोशी, पृ० १७७
५. वत्सला टूट गई—लक्ष्मीकान्त शर्मा, पृ० ५१
६ वही, पृ० ६१
७. उलझी लकीरें—राजेन्द्रमोहन अग्रवाल, पृ० ४४

रिश्ता बनाया है। अत: स्त्री एक अमुक व्यक्ति को अपना तन समर्पित करती है तो उसे उचित समझा जाता है ''धर्म समझा जाता है, अगर वही तन दूसरे व्यक्ति को समर्पित कर दे, तो उसे कलकिनी, पापिन, बदचलन और भी न जाने क्या-क्या समझ लिया जाता है, क्यो ?''[1] 'शेखर . एक जीवनी' मे "शेखर के यौन-भाव का विकास तीन बिन्दुओ पर दिखाई देता है आत्म-रति, समलिंगी रति तथा विपरीत-लिंगरति । उसमे आत्मरति मुख्य रूप से वहाँ दिखाई पडती है, जहाँ भीतर से उसका आत्म-पक्ष प्रबल होकर लोगो को अपनी ओर आकृष्ट कर अपनी पूजा करवाना चाहता है।"[2] राजकमल चौधरी के 'देहगाथा' उपन्यास मे यौन-वृत्ति शोषण की परिचायक है— "मैं जानता हूँ कि मैं किसी भी औरत को प्यार नहीं कर सकता। औरत मेरे लिए माध्यम मात्र है, उद्देश्य नही और साधन को सिद्ध समझने की गलती मैं नहीं कर सकता।"[3] इस कथन मे नारी-शोषण की भावना छिपी हुई है। श्री घनश्याम मधुप ने राजकमल चौधरी के उपन्यासों का विवेचन करते हुए लिखा है कि ' 'मछली मरी हुई' की कथा 'अर्थ-चक्र' और 'समलैंगिक मिलन' को आधार मानकर लिखी गई है।"[4] उपन्यास-कार ने स्वय स्वीकार किया है कि—"दौलत का थोड़ा-सा नशा, यौन पिपासाओ की थोडी सी उच्छृंखलता, थोडे-से असामाजिक-अनैतिक कार्य आदमी को एबनॉर्मल बना देते हैं।"[5] इस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे यौन-विकृतियाँ सामान्यत नारी-शोषण का प्रत्यय बनकर प्रतिफलित हुई हैं।

मूल्यगत संक्रमण

अनेक मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रिया के रूप मे मूल्य-गत संक्रमण से निष्पन्न स्थितियो का चित्रण हुआ है। इस संक्रमण मे रूढिवादी जर्जरित मान्यताओ पर आधारित प्राचीन आदर्शों के स्थानापन्न नवीन मूल्य हैं। वर्ग-संघर्ष की प्रेरणा से प्रेरित घेरे के बाहर' उपन्यास का कुमार परम्परागत सामाजिक मूल्यो के स्थान पर नवीन मूल्यो का आह्वान करता हुआ कहता है— "मैं कहता हूँ आखिर यह समाज है क्या ? हम तुम सब मिलकर ही तो समाज हैं। हम मिलकर सारे बन्धन तोड फेंकें। नये नियम बनायें। जो विरोध करें उन्हें ठोकर मारकर गिरा दें।"[6] इसी तरह 'सुखदा' उपन्यास के लाल का विश्वास

१ टूटे हुए लोग—भजीज आजाद, पृ० ९१-९२
२ अज्ञेय के उपन्यास . कथ्य और शिल्प—डा० नन्दकुमार राय, पृ० ७६
३. देहगाथा—राजकमल चौधरी, पृ० ७७
४. हिन्दी लघु उपन्यास—घनश्याम मधुप, पृ० १८५
५. मछली मरी हुई—राजकमल चौधरी, पृ० १४८
६. घेरे के बाहर—द्वारकाप्रसाद, पृ० २८४

है कि शोषण के प्रति चेतनायुक्त सघर्ष एक दिन अवश्य सफल होगा —'सोसा यटी गिरेगी और सब टूट जायगा।'[1] 'टूटे हुए लोग' उपन्यास मे खोखले आदर्शों एव जर्जरित रीति-रिवाजों के आधार पर हो रहे शोषण का विरोध किया गया है—"इस समाज के जहरीले वातावरण मे जहां खोखली सभ्यता और झूठे रीति-रिवाजो की आड मे कितनी ही मासूम अबलाओ का गला घोटकर रख दिया है—उन्हे जीते-जी लाशो की तरह धर्म और रीति रिवाजो का कफन पहनाकर जला दिया जाता है, कितनी ही कलियाँ खिलने से पहले मसल दी जाती हैं।"[2] हमे ऐसे रीति-रिवाजो को बदलना चाहिए जिनके आधार पर मानवता का गला घोटा जाता हो। 'कटी' उपन्यास के रचयिता ने परम्पराओ के परिवर्तन को मुक्तकठ से स्वीकारा है—'दो दशाब्दियो म सब कुछ बदल गया। अब कहां है वह सस्कारी झिझक ? कहां हैं वे आशकाएँ जो परम्परा से मुक्त नही होने देती थी ?[3]

ऐसा ज्ञात होता है कि ये उपन्यासकार बदलते हुए मूल्यो के प्रति पूणत आस्थावान् है तभी तो व नवीन युगीन मूल्यो का समर्थन करने के लिए कृत-सकल्प है। श्रीलाल शुक्ल ने 'अज्ञातवास उपन्यास मे बताया है कि यद्यपि पुरातन मूल्य टूटन की स्थिति मे हैं और नवीन मूल्य उनका परिष्कृत रूप ही हैं तो भी शोषण की स्थितियां इन मूल्यो मे भी विद्यमान हैं—"इधर हम लोगो का यह हाल है कि वेश्याओ का तिरस्कार करते हैं। उन्हे पुरानी सस्कृति का कलक मानते है। बुजुर्गों की बात भूल गये हैं। उनसे सम्बन्ध रखने को दुराचार समझने लगे है। उनके मुकाबले किसी मित्र की बीवी से सीधा सम्बन्ध रखने की कोशिश करते है।'[4] वस्तुत यह कृत्य भी नारी शोषण का ही प्रतीक है। इसी उपन्यास मे प्रतीकात्मक रूप मे नवीन मूल्यो को ग्रहण करन के आग्रह के साथ साथ परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है—"ओ निर्वासिता वनवासियो, अपनी अज्ञात तपोमयी गुफाओ स लौट आओ, अपना विक्षोभ छोडो ! यह पुराना घर एक नवीन तेजस्विता मे तुम्हारा आह्वान करता है। आओ अपने को एक-दूसरे मे समाविष्ट करो ! मेरी जागृति की आलोकधार मे एक साथ प्रस्फुटित होकर निर्बाध बहो ! अपनी अपूर्णता को खोकर मुझे सम्पूर्णता मे सम्पृक्त करो !"[5] श्री राजेन्द्र मोहन अग्रवाल भी कहते हैं कि नवीन व्यवस्था म परिवर्तित मूल्यो का सम्मान करो। वे अपने उपन्यास 'उलझी लकीरें म निहार

१ सुखदा—जैनेन्द्रकुमार, पृ० ६७
२ टूटे हुए लोग—अजीज आजाद, पृ० ११६
३ कटी—पुष्करदत्त शर्मा पृ० १३
४ अज्ञातवास—श्रीलाल शुक्ल पृ० ३६
५ वही पृ० ११७

बाबू के शब्दो मे इसकी अभिव्यक्ति करते हैं— मैंने कभी यह तो नहीं कहा कि प्राचीन परम्पराएँ पूर्णतया बुरी है। लेकिन मेरा सिद्धान्त है जीवन परिवर्तन माँगता है अत पुरानी नीव नया निर्माण।'[1] शखर भी कहता है—"धिक्कार है समाज की उन न्यूनताओ को, जो यौवन की शक्ति के खण्डन का अपराध करती हैं। धिक्कार है समाज के उस मिथ्या को जो जीवित सत्य से हमे भ्रष्ट करता है।"[2]

मूल्यगत सक्रमणावस्था का समुज्ज्वल पक्ष यह है कि श्रम के महत्त्व को स्वीकारा गया है—'श्रम केवल श्रम जीवन के रुद्ध स्रोतो को प्रवाह एव गति दे सकता है।'[3] आधुनिक समाज मे 'ईमानदारी सबसे बडा शत्रु है सत्य सबसे बडा पाप है धन सबसे बडा अभाव है और जीवन का सबसे बडा अभिशाप है।'[4] आज पति पत्नी पिता पुत्र आदि जितने भी सम्बन्ध हैं वे 'अर्थ' से सीधे जुडे हुए हैं। तनिक सी विषम परिस्थिति उत्पन्न होने पर ये खोखले सम्बन्ध टूटकर बिखर जाते हैं। आज के समाज मे स्वार्थ, घृणा और ईर्ष्या अनुदिन बढ रही है। आज का मानव अपनी निजी स्वतन्त्रता के प्रति विश्वास करता हुआ रूढियो तथा जर्जरित मान्यताओ को तोडने का दम्भ करता है। समूह-परिवार का विखण्डन इसी मान्यता का प्रतीक बनता है। यह निश्चित है कि पूँजीवादी शोषक मूल्यो का विघटन वर्ग सघर्ष द्वारा ही सम्भव है। अनेक उपन्यासो का घटनाचक्र इस कथन की सपुष्टि करता है।

सास्कृतिक पतन

आलोच्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म सास्कृतिक दृष्टि से पतनोन्मुखी स्थितियो का चित्रण हुआ है— सक्रान्तिकालीन और ह्रासोन्मुख सस्कृति का वह विराट क्षण जैनेन्द्र के उपन्यासो म सपुष्टित है जो वर्तमानकालिक सस्थितियो के भीतर से व्यक्ति और समाज की दुर्बलताओ की ओर उँगली उठाता है।'[5] 'कल्याणी उपन्यास की नायिका पश्चिम और पूर्व की सस्कृतियो की तुलना करती है और पश्चिम की सस्कृति का अनुकरण भारतीयो के लिए अहितकर मानती है—'यह सस्कृति (विलायती सस्कृति) या तो आदमी आदमी के बीच मे स्वार्थ का सम्बन्ध बनाकर हथियार की जरूरत पैदा कर देगी, नहीं तो उनके दर्मियान एक खाई बनी रहने देगी। इस सस्कृति मे हृदय नहीं है, हिसाब है।'[6] पाश्चात्य

---

१ उलझी लकीरें—राजेन्द्र मोहन अग्रवाल पृ० ३०
२ शेखर एक जीवनी—अज्ञेय पृ० ४१
३ मुक्तिपथ—इलाचन्द्र जोशी पृ० ४११
४ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन पृ० २३२
५ साहित्य का श्रेय और प्रेय—जैनेन्द्रकुमार पृ० १८८
६ कल्याणी—जैनेन्द्रकुमार, पृ० ७८-७९

संस्कृति या भारतीय संस्कृति पर आरोपण एव अन्धानुकरण ही सांस्कृतिक पतन का मूल कारण है । सांस्कृतिक पतन की स्थितियो को न केवल मानव-व्यवहार अपितु, बोलचाल तथा रहन सहन मे भी जाना जा सकता है । सांस्कृतिक संस्कारो मे परिवर्तन के अनुक्रम को स्वीकारते हुए श्री इलाचन्द्र जोशी सामूहिक चेतना के महत्त्व को स्वीकारते है—"सबकी सम-चेतना, सबके सम-उद्योग, सबके सम-अधिकार और सबकी सम शक्तियाँ, सब सामूहिक विकास द्वारा सम-कल्याण की परमतम परिस्थिति की ओर सबकी सम प्रगति ।"[1]

वास्तव मे मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष की प्रतिक्रियाओ के रूप मे सांस्कृतिक पतन की स्थितियाँ उतनी स्पष्टत परिलक्षित नही होती हैं जितनी कि अन्तर्द्वन्द्व तथा दमित वासनाओ के विस्फोट के रूप मे । इसका कारण मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष को अधिकाशत प्रतीकात्मक रूप मे ही अभिव्यक्ति मिली है । निश्चय ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार मूल मनोवृत्तियो का विश्लेषण करके मानवीय वृत्तियो की दिशा-परिवर्तन का सदेश देते हुए मनुष्य की कुठाओ, वर्जनाओ तथा हीन भावनाओ का निराकरण करने म महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं ।

निष्कर्ष

वास्तव में मनोविश्लेषणवादी कथा कृतियो का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति के चेतन, अचेतन और अवचेतन मनस् की प्रवृत्तियो का निरूपण करना होता है, किन्तु व्यक्ति मानस सामाजिक परिवर्तनो के प्रभाव से अछूता नही रह सकता, अत प्रासगिक रूप म सामाजिक जीवन की सघर्षमूलक स्थितियो का चित्रण भी वैयक्तिक मनोद्वन्द्व के साथ साथ उपन्यासों म अनिवार्यत हो जाता है । सर्वश्री इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, जैनेन्द्र, प्रभाकर माचवे रघुवश, नरेश मेहता सर्वेश्वर-दयाल सक्सना प्रभृति मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की कृतियाँ इसी दृष्टि स विवेच्य हैं कि उनके माध्यम से वर्ग सघर्ष की जिन स्थितियो एव प्रतिक्रियाओ का चित्रण हुआ है वे मूलत व्यक्ति की सग्रह (Instinct of Hoarding) एव आक्रामक (Instinct of Pugnacity) मनोवृत्तिया का ही परिणाम है । मनुष्य की सग्रहवृत्ति ही जब अत्यधिक स्वार्थ-केन्द्रित हो जाती है तो शोषण की प्रक्रिया को जन्म देती है । यह शोषण मूलत आर्थिक होते हुए भी समाज के विभिन्न वर्गों और पक्षा को प्रभावित करता है । शोषण के प्रतिकार के लिए विभिन्न वर्गों म जन्मी चेतना ही अन्तत वर्ग सघर्ष का कारक बनती है । हिन्दी के आलोच्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो ने इन्हीं परिसदर्भों म वर्ग-सघर्ष को सफलतापूर्वक रूपायित किया है ।

---

1 मुक्तिपथ—इलाचन्द्र जोशी, पृ० ३५३

उपसंहार

इस प्रकार हिन्दी के सामाजिक, यथार्थवादी, मार्क्सवादी चेतना-प्रसूत, ऐतिहासिक, आंचलिक तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का वर्ग-संघर्ष निरूपण की दृष्टि से अध्ययन-अनुशीलन करने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आलोच्य उपन्यासों में वर्ग-वैषम्य से उद्भूत चेतना का सशक्त अंकन हुआ है। यों तो हिन्दी उपन्यास के उद्भव-काल से लेकर प्रेमचन्द के युग तक रचित उपन्यासों में वर्ग चेतना और तज्जन्य संघर्ष का विविध कथ्य-सन्दर्भों में अपेक्षित रूपांकन हुआ है, किन्तु प्रेमचन्दोत्तर-युगीन हिन्दी औपन्यासिक संरचना के प्रवृत्तिमूलक विकास में वर्ग संघर्ष एक सशक्त आयाम के रूप में उभरा है। सैद्धान्तिक दृष्टि से 'वर्ग-संघर्ष' को सामान्यतः मार्क्सवादी चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में ही विवेचित किया जाता है, और वर्ग संघर्ष की व्याप्ति या परिधि-विस्तार पूँजीपति और सर्वहारा वर्गों तक ही परिसीमित रहता है, किन्तु वर्ग-संघर्ष का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि वर्गों की उद्भावना मूलतः सामाजिक कारणों से ही होती है। जाति, व्यवसाय, आय, आयु, योग्यता, लिंग, वर्ण, परम्परा, समूह-भावना आदि के आधार पर वर्गों की निरन्तर संरचना होती रहती है। पूँजीपति और सर्वहारा वर्गों की भाँति सामाजिक विकास के परिसन्दर्भ में उद्भावित वर्गों में भी संघर्ष की प्रक्रिया निरन्तर क्रियाशील रहती है। वास्तव में वर्ग-संघर्ष के मूलभूत कारण, अनुप्रेरक परिस्थितियाँ और प्रतिक्रियाएँ मार्क्सवादी चेतना के आधार पर निर्मित वर्गों और समाजशास्त्रीय दृष्टि से रचित वर्गों में एक-सी हैं। इसीलिए प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की आयाम विस्तृति एवं रचनाफलक अत्यन्त व्यापक हैं।

हिन्दी के प्रबुद्ध कथाकारों ने वर्ग-वैषम्य की विसंगतियों तथा विडम्बनापूर्ण परिणितियों को बड़ी सूक्ष्मता से पहचाना है। प्रेमचन्द के युग तक की औपन्यासिक संरचना की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी चेतना परवर्ती उपन्यासों में सामाजिक यथार्थवादी चेतना के रूप में अभिव्यंजित हुई है। इसीलिए प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की लोमहर्षक प्रतिक्रियाओं का यथार्थ-चित्रण सम्भव हो सका है। इन प्रतिक्रियाओं में आर्थिक शोषण, साम्प्रदायिक वैमनस्य, राजनैतिक भ्रष्टाचार, नारी की शोचनीय स्थिति, सामाजिक कुरीतियाँ, नैतिक अवमूल्यन, मूल्यगत संक्रमण, पारिवारिक विघटन, आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ, यौन विकृतियाँ,

सास्कृतिक पतन आदि उल्लेखनीय हैं। इमी के साथ-साथ निर्धनता, निरक्षरता, बेकारी, जर्जरित रूढ़िवादी मान्यताएँ और प्रतिगामी सस्कारशीलता आदि भी वर्ग-वैषम्य के ही अभिशाप हैं। आलोच्य उपन्यासो के कथ्य-सन्दर्भों मे उल्लिखित सभी प्रतिक्रियाएँ किसी-न-किसी रूप मे चित्रित हुई हैं। यह बात दूसरी है कि मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासो मे निरूपित वर्ग-सघर्ष की स्थितियो और प्रतिक्रियाओ का स्वरूप सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक, आचलिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे निरूपित प्रवृत्तियो से किंचित् भिन्न है। इस भिन्नता का दूसरा कारण मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासकारो एव अन्य कथाकारो की रचना-प्रक्रिया और चिन्तन-पद्धति का मौलिक अन्तर भी है। इस दृष्टि से सर्वश्री यशपाल, रागेय राघव, राहुल साकृत्यायन, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, नागार्जुन, मन्मथनाथ गुप्त, रामेश्वर शुक्ल 'अचल', यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', आनन्द शकर 'माधवन', यज्ञदत्त शर्मा, मनहर चौहान प्रभृति उपन्यासकारों तथा सर्वश्री भगवतीचरण वर्मा, आचार्य चतुरसेन, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, शम्भूदयाल सक्सेना, श्री गोपाल आचार्य प्रभृति उपन्यासकारो की रचनाएँ तुलनीय हैं। इसी प्रकार आचलिक उपन्यासकारो यथा सर्वश्री फणीश्वरनाथ 'रेणु', उदयशकर भट्ट, रामदरश मिश्र, हिमाशु श्रीवास्तव, सच्चिदानन्द 'धूमकेतु', शैलेश मटियानी, देवेन्द्र सत्यार्थी, शिवप्रसाद सिंह, उदयराज सिंह आदि तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो यथा सर्वश्री जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, डॉ० देवराज, डॉ० रघुवश, डॉ० पुष्करदत्त शर्मा, डॉ० लक्ष्मीकान्त शर्मा, निर्मल वर्मा, दानी, राजेन्द्र यादव, श्रीलाल शुक्ल आदि की कृतियों मे निरूपित वर्ग-सघर्ष के कथ्यमूलक-सन्दर्भ तथा चित्रण-शैली की भगिमाएँ भी भिन्न हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सृजनात्मक प्रेरणाओ के अनुरूप ही आलोच्य उपन्यासो के रचनात्मक परिदृश्य सँजोये गए हैं। दूसरे शब्दो मे वर्ग-सघर्ष की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप मे समानान्तर चित्रण होते हुए भी प्रतिपाद्यमूलक वैशिष्ट्य के कारण स्वरूप सर्वथा भिन्न किम्वा नवीन है।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक मे हम कह सकते हैं कि सभी प्रकार के उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष की उत्प्रेरक परिस्थितियाँ मुख्यत आर्थिक ही हैं। अर्थ ही अनर्थ का कारण बनकर वर्गगत वैषम्य और सघर्ष को जन्म देता है। यह कहना तो कठिन है कि जिस वर्ग-विहीन समाज की परिकल्पना कार्लमार्क्स ने की थी उसमे आर्थिक शोषण का अन्त हो गया होता किन्तु भारतीय सामाजिक सरचना और प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों मे निरूपित वर्ग-सघर्ष और उसकी रोमाचक प्रतिक्रियाओ के सन्दर्भ मे यह अवश्य कहा जा सकता है कि वर्ग-भावना

का तिरोभाव आर्थिक शोषण से मुक्ति की ओर एक निश्चित प्रयास अवश्य है। पूँजीवादी मनोवृत्ति, मशीनीकरण के दूषण, जातीय स्वाभिमान से जन्मा वैमनस्य, सामाजिक कदाचार, यौनाचार की विकृतियाँ, नारी-शोषण आदि अन्ततः अर्थाभाव अथवा अर्थ के अत्यधिक संग्रह से ही जुड़े हुए हैं। मनोविश्लेषणवादियों ने संग्रह को (Instinct of Hoarding) एक मूल मनोवृत्ति माना है; यह वृत्ति किस प्रकार वर्ग-संघर्ष का एक आयाम बनी है? यह बात मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के अध्ययन-अनुशीलन से स्पष्ट हो जाती है। वर्ग-संघर्ष की वे स्थितियाँ अत्यन्त घातक हैं जो मानवीय मूल्यों के विघटन और नैतिक संक्रमण की प्रक्रिया को निरन्तर क्रियाशील रखती हैं। किसी भी मानव-समाज में मूल्य-विघटन शोषण और पतन को चरम सीमा पर पहुँचा सकता है, यह बात आलोच्य उपन्यासों के कथ्य-सन्दर्भों में भली-भाँति प्रकट हुई है। इस दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-उपन्यास-सरचना को हम सार्थक कह सकते हैं कि उसके माध्यम से भारतीय जीवन और समाज का सोद्देश्यतापूर्ण जीवन्त चित्रण हुआ है। प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-उपन्यासों में शोध की अपरिमित सम्भावनाएँ हैं जिनमें से वर्ग-संघर्ष की दृष्टि से मूल्यांकन का माध्यम प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध बना है। मुझे विश्वास है कि प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों का विभिन्न सामाजिक दृष्टियों एवं कोणों से अध्ययन-अनुसंधान करके हम उनकी रचनाधर्मी सार्थकता को सच्चे अर्थों में उजागर करते हैं।

□

शोध-प्रबन्ध मे विवेचित उपन्यास

1.	अचल मेरा कोई	वृन्दावनलाल वर्मा	1953
2	अजय की डायरी	देवराज	1970 (द्वि० स०)
3	अधूरा स्वर्ग	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	1966
4	अधेरे के विरुद्ध	उदयराज सिंह	1970
5	अधेरे बन्द कमरे	मोहन राकेश	1966 (द्वि० स०)
6	अनदेखे अनजाने पुल	राजेन्द्र यादव	
7	अनामन्त्रित मेहमान	आनन्दशकर 'माधवन'	1961
8	अपने खिलौने	भगवतीचरण वर्मा	1957
9	अभिसधि	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	1963
10	अमृत और विष	अमृतलाल नागर	1971
11	अमृतपुत्र	ज्ञान भारिल्ल	1970
12	अमिता	यशपाल	1950
13	अलग अलग वैतरणी	शिवप्रसाद सिंह	1967
14	अज्ञातवास	श्रीलाल शुक्ल	1968
15	आखिरी दाँव	भगवतीचरण वर्मा	1973
16	आठवी भाँवर	आनन्दप्रकाश जैन	1969
17	आदित्यनाथ	बलभद्र ठाकुर	1958
18	आधा गाँव	राही मासूम रज़ा	1966
19	आँधी के अवशेष	सुमेरसिंह दईया	1971
20	आभा	चतुरसेन शास्त्री	1958
21	उखडे हुए लोग	राजेन्द्र यादव	1956
22	उग्रतारा	नागार्जुन	1963
23	उडे पन्ने	सरस्वतीसरण 'कैफ'	1964
24	उनसे न कहना	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	1957
25	उलझी लकीरें	राजेन्द्र मोहन अग्रवाल	1965
26	ऊजली	ललितकुमार 'आजाद'	1971
27	एक और मुख्यमत्री	यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'	1969

✓28	एक इंच मुस्कान	मन्नु भण्डारी तथा राजेन्द्र यादव	1963
29	एक तारा	प्रभाकर माचवे	1964
30	एक मूँठ सरसों	शैलेश मटियानी	1972
31	एकदा नैमिषारण्ये	अमृतलाल नागर	1972
32	एक प्रश्न	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	1961
33	एक ही रास्ता	सुदेश रश्मि'	1956
34	कचनार	वृन्दावनलाल वर्मा	1968
35.	कन्दील और कुहासे	गिरिधर गोपाल	1969
36	कब तक पुकारूँ	डॉ० रांगेय राघव	1957
37	कल्याणी	जैनेन्द्र कुमार	1956
38	कहाँ और क्यों ?	रामप्रसाद मिश्र	2017 सम्वत्
39	कटी	डॉ० पुष्करदत्त शर्मा	1973
40	काका	डॉ० रांगेय राघव	1953
41	कॉचघर	रामकुमार भ्रमर	1971
42	काला जल	शानी	1965
43	काली आँधी	कमलेश्वर	1973
44	काली लड़की	कमल शुक्ल	1972
45	काले फूल का पौधा	लक्ष्मीनारायण लाल	1955
46	कुण्डली चक्र	वृन्दावनलाल वर्मा	2011 सम्वत्
47	कोरा कागज	अनन्त गोपाल शेवड़े	1971
48	कोहरे में खोये चाँदी के पहाड़	जयप्रकाश भारती	1969
49	कोहबर की शर्त	केशवप्रसाद सिंह	1965
50	कोई अजनबी नहीं	शैलेश मटियानी	1966
51	गढ़कुण्डार	वृन्दावनलाल वर्मा	1956
52	गंगा मैया	भैरवप्रसाद गुप्त	1960
53	गर्म राख	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	1959
54	ग्राम-सेविका	अमरकान्त	1962
55	गिरती दीवारें	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	2003 सम्वत्
56	गुण्ठन	गुरुदत्त	1962
57	गुनाहों का देवता	धर्मवीर भारती	1957
58	गोली	चतुरसेन शास्त्री	1957
59	गंगा के तट पर	जगदीशप्रसाद 'पाण्डेय'	1968
60	घरौंदा	डॉ० रांगेय राघव	1946

61	घेरे के बाहर	द्वारकाप्रसाद	1947
62	चक्कर क्लब	यशपाल	1956
63	चटकती कलियां उभरते कांटे	लक्ष्मीकान्त शर्मा	1976
64	चढ़ती धूप	रामेश्वर शुक्ल 'अचल'	1955
65	चारुचन्द्रलेख	हजारीप्रसाद द्विवेदी	1963
66	चाँदी की रात	कमल शुक्ल	1972
67	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	2017 सम्वत्
68	चीवर	डॉ० रांगेय राघव	1946
69	चौथा रास्ता	यज्ञदत्त शर्मा	1960
70	चौथी मुट्ठी	शैलेश मटियानी	1962
71	छोटी चम्पा बड़ी चम्पा	लक्ष्मीनारायण लाल	1661
72	जंगल के फूल	राजेन्द्र अवस्थी	1960
73	जनानी ड्योढ़ी	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	1972
74	जमींदार का बेटा	दयानाथ झा	1969
75	जयजयवन्ती	रमेश वर्मा	1972
76	जय जगलधर बादशाह	धर्मेश शर्मा	1965
77	जय यौधेय	राहुल सांकृत्यायन	1946
78	जय वासुदेव	रामरतन भटनागर	1947
79	जयवर्धन	जैनेन्द्रकुमार	1956
80	जल टूटता हुआ	रामदरश मिश्र	1969
81	जलतरंग	शैलेश मटियानी	1973
82	जब सूरज ने आँखें खोली	कमल शुक्ल	1973
83	जहाज का पंछी	इलाचन्द्र जोशी	1955
84	जिप्सी	इलाचन्द्र जोशी	1952
85	जीने के लिए	राहुल सांकृत्यायन	1965
86	जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	1965
87	झूठा सच	यशपाल	1967 (तृ० सं०)
88	झाँसी की रानी	वृन्दावनलाल वर्मा	1949
89	टूटा हुआ व्यक्तित्व	मनहर चौहान	1969
90	टूटे हुए लोग	अजीज आजाद	1974
91	टेढ़े मेढ़े रास्ते	भगवतीचरण वर्मा	1973
92	ठकुराणी	यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'	1970
93	ठुकराए हुए लोग	सचीन्द्र उपाध्याय	1966
94	डूबते मस्तूल	नरेश मेहता	1954

128	निशिकान्त	विष्णु प्रभाकर	
129	नेपाल की वो बेटी	बलभद्र ठाकुर	1958
130	पचपन खम्भ लाल दीवारें	उषा प्रियवदा	1972
131	प्रभावती	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला	1958
132	पतन	भगवतीचरण वर्मा	1965
133	पथचारी	उषादेवी मित्रा	1949
134	पथ की खोज	देवराज	1951
135	पर्दे की रानी	इलाचन्द्र जोशी	2015 सम्वत्
136	परन्तु	प्रभाकर माचवे	1940
137.	परती परिकथा	फणीश्वरनाथ रेणु'	1957
138	परिवार	यज्ञदत्त शर्मा	1955
139	प्रगति के पथ पर	गुरुदत्त	1973
140	प्रेत और छाया	इलाचन्द्र जोशी	2015 सम्वत्
141	प्रेत बोलते हैं	राजेन्द्र यादव	1952
142	पुनर्नवा	हजारीप्रसाद द्विवेदी	1973
143	पार्टी कामरेड	यशपाल	1958 (तृ० स०)
144	पानी के प्राचीर	रामदरश मिश्र	1961
145	पाँव मे आँख वाले	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	1970
146	बडी बडी आँखें	उपेन्द्रनाथ 'अश्क	1955
147	बदलते रग	रजनी पणिकर	1972
148	बदलता युग	यज्ञदत्त शर्मा	1969
149	बबूल	विवेकीराय	1967
150	बहती गगा	शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'	1946
151	बहता पानी	मन्मथनाथ गुप्त	1955
152	ब्रह्मपुत्र	देवेन्द्र सत्यार्थी	1956
153	बलचनमा	नागार्जुन	1956
154	बात बात मे	यशपाल	1966
155	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	1971 (द्वि० स०)
156	बीज	अमृतराय	1959
157	बूंद और समुद्र	अमृतलाल नागर	1956
158	भिखारिणी	विश्वम्भरनाथ कौशिक	1957
159	भूदानी सोनिया	उदयराजसिंह	1957
160	भूले बिसरे चित्र	भगवतीचरण वर्मा	1959
161	मगरमच्छ	शम्भुदयाल सक्सेना	1965

196	वत्सला टूट गयी	लक्ष्मीकान्त शर्मा	1976
197.	वदिता	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	1975
198.	वरुण के बेटे	नागार्जुन	1957
199	वय रक्षाम	आचार्य चतुरसेन	1967
200.	वाणभट्ट की आत्मकथा	हजारीप्रसाद द्विवेदी	2003 स० (प्र० स०)
201.	विवर्त्त	जैनेन्द्रकुमार	1957 (द्वि० स०)
202	विस्मृत यात्री	राहुल सांकृत्यायन	1967
203	विषाद मठ	डॉ० रागेय राघव	1956
204	विराटा की पद्मिनी	वृन्दावनलाल वर्मा	2010 सम्वत्
205	विजय	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	1957
✓206.	वे दिन	निर्मल वर्मा	1964
207	वैशाली की नगरवधू	चतुरसेन शास्त्री	1969 (सा० स०)
208	सघर्ष	विश्वम्भरनाथ कौशिक	1957
209	सती मैया का चौरा	भैरवप्रसाद गुप्त	1959
210.	समझौता	श्री श्रीराम शर्मा	1964
211	स्वप्नमयी	विष्णु प्रभाकर	1969
212.	सबहि नचावत राम गोसाईं	भगवतीचरण वर्मा	1971
213.	सह्याद्रि की चट्टानें	चतुरसेन शास्त्री	1958
214	सागर, लहरें और मनुष्य	उदयशंकर भट्ट	1955
215	साँप और सीढ़ी	शानी	1971
216	सामर्थ्य और सीमा	भगवतीचरण वर्मा	1975
217.	सारा आकाश	राजेन्द्र यादव	1960
218	सिंह सेनापति	राहुल सांकृत्यायन	1961
219.	सीधा सादा रास्ता	डॉ० रागेय राघव	1955
220	सीमा रेखा	शिवमूर्ति शिव	1961
221	सुनीता	जैनेन्द्रकुमार	1957
222	सुहाग के नूपुर	अमृतलाल नागर	1966 (प्र० स०)
223	सुखदा		
224	सूखता हुआ तालाब	रामदरश	1972
225	सूनी घाटी का सूरज	श्रीलाल शुक्ल	1957
226	सूरज किरण की छाव	राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित'	1964
227.	सूरज का सातवा घोड़ा	धर्मवीर भारती	1965
228.	सोना और खून	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	1960
229	सोमनाथ	चतुरसेन शास्त्री	1954

162.	मछली मरी हुई	राजकमल चौधरी	1966
163	मट्टी का दीया	गुरुदयालसिंह	1966
164	मधुर स्वप्न	राहुल सांकृत्यायन	
165	मनुष्य के रूप	यशपाल	1949
166	मनुष्यानन्द	बेचन शर्मा 'उग्र'	1964
167	मरुप्रदीप	रामेश्वर शुक्ल 'अचल'	1951
168	महाकाल	अमृतलाल नागर	2004 सम्वत्
169	महाकाल	गुरुदत्त	1975
170	मशाल	भैरवप्रसाद गुप्त	1959
171	मृगनयनी	वृन्दावनलाल वर्मा	1952
172	माटी की महक	सच्चिदानन्द धूमकेतु'	1969
173	मानव और दानव	मन्मथनाथ गुप्त	1955
174	मुक्तावली	बलभद्र ठाकुर	1958
175.	मुक्तिपथ	इलाचन्द्र जोशी	1951
176	मुर्दों का टीला	डॉ० रांगेय राघव	1948
177	मैला आँचल	फणीश्वरनाथ 'रेणु	1967
178	मोर छाल	श्याम परमार	1963
179	यथार्थ से आगे	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	1955
180	यह पथ बन्धु था	नरेश मेहता	1962
181.	यह भी नहीं	महीपसिंह	1967
182	ये गलियाँ ये रास्ते	जैनेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'	1973
183	रजनीगन्धा	यज्ञदत्त शर्मा	1973
184	रतिनाथ की चाची	नागार्जुन	1953
185	राई और पर्वत	डॉ० रांगेय राघव	1967
186	रथ से गिरी बाँसुरी	हिमांशु श्रीवास्तव	1967
187.	राग दरबारी	श्रीलाल शुक्ल	1968
188.	राणा साँगा	सत्य शकुन	1973
189.	रीछ	विश्वम्भरनाथ 'उपाध्याय'	1967
190	रूप और छाया	सतोष सचदेवा	1956
191	रूपा जीवा	लक्ष्मीनारायण लाल	1956
192	रेखा	भगवतीचरण वर्मा	1964
193	लोक लाज खोई	सुरेन्द्र पाल	1963
194	लोक परलोक	उदयशंकर भट्ट	1958
195	वचन का मूल्य	शत्रुघ्नलाल शुक्ल	1967

196	वत्सला टूट गयी	लक्ष्मीकान्त शर्मा	1976
197.	वदिता	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	1975
198	वरुण के बेटे	नागार्जुन	1957
199	वय रक्षाम	आचार्य चतुरसेन	1967
200	वाणभट्ट की आत्मकथा	हजारीप्रसाद द्विवदी	2003 स० (प्र० स०)
201.	विवर्त्त	जैनेन्द्रकुमार	1957 (द्वि० स०)
202	विस्मृत यात्री	राहुल साकृत्यायन	1967
203.	विषाद मठ	डॉ० रागेय राघव	1956
204	विराटा की पद्मिनी	वृन्दावनलाल वर्मा	2010 सम्वत्
205	विजय	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	1957
206	वे दिन	निर्मल वर्मा	1964
207	वैशाली की नगरवधू	चतुरसेन शास्त्री	1969 (सा० स०)
208	सघर्ष	विश्वम्भरनाथ कौशिक	1957
209	सत्ती मैया का चौरा	भैरवप्रसाद गुप्त	1959
210.	समझौता	श्री श्रीराम शर्मा	1964
211	स्वप्नमयी	विष्णु प्रभाकर	1969
212	सबहि नचावत राम गोसाईं	भगवतीचरण वर्मा	1971
213	सह्याद्रि की चट्टानें	चतुरसेन शास्त्री	1958
214	सागर, लहरें और मनुष्य	उदयशकर भट्ट	1955
215	साँप और सीढी	शानी	1971
216	सामर्थ्य और सीमा	भगवतीचरण वर्मा	1975
217	सारा आकाश	राजेन्द्र यादव	1960
218	सिंह सेनापति	राहुल साकृत्यायन	1961
219	सीधा सादा रास्ता	डॉ० रागेय राघव	1955
220	सीमा रेखा	शिवमूर्ति शिव	1961
221	सुनीता	जैनेन्द्रकुमार	1957
222	सुहाग के नूपुर	अमृतलाल नागर	1966 (प्र० सं०)
223	सुखदा		
224	सूखता हुआ तालाब	रामदरश	1972
225	सूनी घाटी का सूरज	श्रीलाल शुक्ल	1957
226	सूरज किरण की छाव	राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित'	1964
227	सूरज का सातवां घोड़ा	धर्मवीर भारती	1965
228	सोना और खून	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	1960
229	सोमनाथ	चतुरसेन शास्त्री	1954

शोध-प्रबन्ध मे विवेचित सदर्भ-ग्रन्थ

आज का हिन्दी उपन्यास—इन्द्रनाथ मदान
आधुनिक उपन्यास उदभव तथा विकास—डॉ० बेचन
आलोचना प्रक्रिया और स्वरूप—डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित
अर्थ और परमार्थ—भगवतीचरण पाणिग्रही
आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डॉ० शुभकार कपूर
आचलिकता और आधुनिक परिवेश—श्री शिवप्रसादसिंह
आचलिकता के आधुनिक बोध—डॉ० भगवतीप्रसाद शुक्ल
आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य—डॉ० हरदयाल
आचलिक उपन्यास सम्वेदना और शिल्प—डॉ० ज्ञानचन्द्र गुप्त
अज्ञेय का रचना ससार—गगाप्रसाद विमल
आपात स्थिति क्यो ?—
अज्ञेय के उपन्यास कथ्य और शिल्प—डॉ० नन्दकुमार राय
आज का हिन्दी साहित्य—प्रकाशचन्द गुप्त
आधुनिक उपन्यासों मे प्रेम की परिकल्पना—डॉ० विजय मोहन सिंह
आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन—डॉ० के० के० मिश्र
आधुनिक राजनीतिक चिन्तन—फ्रान्सीसी डब्ल्यू० कोकर
आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ—डॉ० वीरकेश्वर प्रसादसिंह
आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ—हरिदत्त वेदालकार
आधुनिक राजनीतिक विचारो का इतिहास—डॉ० पी० डी० शर्मा
आधुनिक साहित्य—नन्ददुलारे वाजपेयी
आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास—डॉ० बेचन
आधुनिक हिन्दी साहित्य—प्रकाशचन्द गुप्त
आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डॉ० श्रीकृष्णलाल
आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान— डॉ० देवराज उपाध्याय
आधुनिक हिन्दी साहित्य मे व्यग—डॉ० धीरेन्द्र मेहदीरत्ता
आलोचना प्रक्रिया और स्वरूप—डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित
इलाचन्द्र जोशी और उनके तीन उपन्यास—सुखदेव स्याल
उन्नीसवी शताब्दी—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

उपन्यासकार गुरुदत्त व्यक्तित्व और कृतित्व—डॉ० मनमोहन सहगल
उपन्यासकार प्रेमचन्द—डॉ० सुरेश गुप्त
उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी शिल्प और चिन्तन—
डॉ० ललित शुक्ल
उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा—डॉ० शशिभूषण सिंहल
ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एवं स्वरूप—डॉ० गोविन्दजी
कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र—मार्क्स तथा एंजिल्स
काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—जयशंकर प्रसाद
किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों का वस्तुगत तथा रूपगत विवेचन—
डॉ० कृष्णा नाग
कुछ विचार—प्रेमचन्द
गांधीवाद की शव परीक्षा—यशपाल
जैनन्द के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन—डॉ० देवराज उपाध्याय
जैनेन्द्र के व्यक्तित्व और कृतित्व—सत्यप्रकाश मिलिन्द
तुला और तारे—डॉ० सावित्री सिन्हा
दहेज प्रथा का अन्त—नरेश मेहता
दहेज प्रथा का अन्त—शिवानी
दहेज प्रथा का अन्त—कन्हैयालाल नन्दन
दहेज-विरोधी आन्दोलन एक समस्या—भँवरमल सिंघी
द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—हीरालाल पालित
दर्शन दिग्दर्शन—राहुल सांकृत्यायन
द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास—
डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
दो सौ नये निबन्ध—डॉ० कमलेश्वर
धर्म और समाज—डॉ० राधाकृष्णन्
धर्म और समाजवाद—गुरुदत्त
नई इमारत—रामेश्वर शुक्ल 'अचल'
नया साहित्य नये प्रश्न—नन्ददुलारे वाजपेयी
नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि—प्रकाशचन्द गुप्त
परिवार की उत्पत्ति—एंजिल्स
परीक्षा गुरु—श्रीनिवास
प्रगतिवादी काव्य साहित्य—डॉ० कृष्णलाल हंस
प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ—डॉ० रामविलास शर्मा
प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक—आर० एल० सिंह

पद्मकोश—जयशंकर जोशी
प्रयोगात्मक मनोविज्ञान—शशिलता सिन्हा
पूँजी (खण्ड १)—कार्ल मार्क्स
प्रेमचन्द—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन
प्रेमचन्द एक अध्ययन—राजेश्वर गुरु
प्रेमचन्द एक विवेचन—डॉ० इन्द्रनाथ मदान
प्रेमचन्द और उनका युग—डॉ० रामविलास शर्मा
प्रेमचन्द और शरत्चन्द के उपन्यास : मनुष्य और बिम्ब—
डॉ० सुरेन्द्रनाथ तिवारी
प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व—हसराज रहबर
प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास साहित्य—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
प्रेमचन्द-साहित्य मे व्यक्ति और समाज डॉ० रक्षा पुरी
भारतीय मजदूरो की समस्याएँ—सत्यप्रकाश मिलिन्द
भारत वर्तमान और भावी—रजनी पामदत्त
भारत एक बदलती दुनिया—ब्रीटिस पिटनीलैम्ब
भारतीय आदिम साम्यवाद से दास-प्रथा तक—श्री श्रीपाद डागे
भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण—भगवतशरण उपाध्याय
भारतीय समाज तथा सस्थाएँ—जी० के० अग्रवाल
भारतीय जनता तथा सस्थाएँ—रवीन्द्रनाथ मुकर्जी
भारतीय सामन्तवाद—डॉ० रामशरण शर्मा
भारतीय सामाजिक सस्थाएँ—पी० डी० पाठक
भारतीय सामाजिक सस्थाएँ—डॉ० के० के० मिश्र
भारतीय सामाजिक सस्थाएँ—द्वारिकाप्रसाद गोयल
भारतीय सामाजिक सस्थाएँ—ओमप्रकाश जोशी
भारतीय सामाजिक सरचना और सस्कृति—शम्भूरत्न त्रिपाठी
भारतीय धर्म और सस्कृति—डॉ० बुद्धप्रकाश
भारत के प्रमुख उद्योग—वेदप्रकाश सिंह
भारतीय सस्कृति के आधार—श्री अरविन्द
भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र—तेजमल दक
भारतीय सस्कृति की कहानी—भगवतशरण उपाध्याय
मजदूर वर्ग और किसानो का सहयोग—लेनिन
मनुस्मृति—प्रथम अध्याय, श्लोक ५
मनोविज्ञान परिचय—लालजीराम शुक्ल
मनोविज्ञान और शिक्षा—डॉ० सरयूप्रसाद चौबे

मानव और संस्कृति—श्यामाचरण दुबे
मार्क्सवादी दर्शन—वी० अफनास्येव
मार्क्सवाद—यशपाल
मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त—एल० लियोन्तीव
मार्क्स एंजिल्स संकलित रचनाएँ (खण्ड २)—मास्को १९५८
मानव समाज—किंग्सले डेविस
मेरी कहानी—पंडित नेहरू
यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायक
राजसत्ता और क्रान्ति—लेनिन
राजनीतिक दर्शन का इतिहास—जार्ज एच० सेबाइन
राजनीतिक ज्ञान के बुनियादी सिद्धान्त—वी० वी० कुजिन
राजनीतिक विचारों का इतिहास—डॉ० पी० डी० भार्गव
राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध—नन्ददुलारे वाजपेयी
लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त—स्तालिन
वृन्दावनलाल वर्मा—आचार्य बटुक
वृन्दावनलाल वर्मा—डॉ० रामदरश मिश्र
वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व—
डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
विचार और वितर्क—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
विवेचना—इलाचन्द्र जोशी
विश्लेषण—इलाचन्द्र जोशी
बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य—'नये संदर्भ'—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
वैज्ञानिक भौतिकवाद—राहुल सांकृत्यायन
वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी—सूत्र १३७६
शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (भाग २)—गोविन्द त्रिगुणायत
शिक्षा और समाज-व्यवस्था—राजसिंह भण्डारी
शिक्षा और समाज-व्यवस्था—बर्ट्रेंड रसेल
शिक्षा मनोविज्ञान—लालजीराम शुक्ल
समाज—मैकाइवर तथा पेज
समाजवाद—डॉ० सम्पूर्णानन्द
समाज शास्त्र की रूपरेखा (भाग २)—एम० एस० गोरे
समाजवाद वैज्ञानिक और काल्पनिक—फ्रैडरिक एंजिल्स
समाजवाद से सर्वोदय तक—डॉ० धर्ममित्र
समाजवादी चिन्तन—डॉ० के० एल० कमल

समाज का विकास—रमेश विद्रोही
समाज की आर्थिक व्यवस्था—एल० लियोतीव
समस्यामूलक उपन्यासकार प्रमचन्द—डॉ० महेन्द्र भटनागर
समाज मनोविज्ञान—तुलसीराम पालीवाल
समाज मनोविज्ञान—एस० एस० माथुर
समाजशास्त्र—टी० वी० बाटोमोर
समाजशास्त्र के सिद्धान्त—डॉ० ओमप्रकाश जोशी
सरल मनोविज्ञान—श्री दिनेशचन्द्र भारद्वाज
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास – डॉ० रामगोपालसिंह चौहान
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य सक्रमण—डॉ० हेमेन्द्र पानेरी
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना—डॉ० ज्ञानचन्द्र गुप्त
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासो मे व्यक्ति प्रतिष्ठा—
डॉ० हेमेन्द्र पानरी
सग्रहीत रचनाएँ (खण्ड ३८)—लेनिन
सस्कृति और सास्कृतिक क्राति—लेनिन व्लादीमीर
सस्कृति-मानव कर्त्तव्य की व्याख्या—यशदेव शल्य
समसामयिक हिन्दी साहित्य उपलब्धियाँ—श्री मन्मथनाथ गुप्त
सामन्तवाद—रामप्रसाद मिश्र
सामाजिक परिवर्तन—आनन्द कश्यप
सामाजिक मानवशास्त्र—कुसुम नारायण
सामाजिक विघटन—सत्येन्द्र त्रिपाठी
सामाजिक समस्याएँ और सामाजिक परिवर्तन—डॉ० राम आहूजा
सामूहिक विवाह—राज केसरवानी
साहित्य चिन्तन—इलाचन्द्र जोशी
साहित्य नया परिप्रेक्ष्य—डॉ० रघुवश
साहित्य निबन्ध—डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त
साहित्य तथा साहित्यकार—डॉ० देवराज उपाध्याय
साहित्य सहचर—हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्यानुशीलन—शिवदानसिंह चौहान
साहित्य सिद्धान्त और समालोचना—डॉ० देवीप्रसाद गुप्त
साहित्य श्रेय और प्रेय—जैनन्द्र
सोवियत सघ का सक्षिप्त आर्थिक इतिहास—अ० पोदकाल्निन्
सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास—
अनु० रामविलास शर्मा

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास—अनु० राजवल्लभ ओझा
हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन
हिन्दी उपन्यास—श्री शिवनारायण श्रीवास्तव
हिन्दी उपन्यास उद्‌भव तथा विकास—डॉ० बेचन
हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव तथा विकास—डॉ० सुरेश सिन्हा
हिन्दी उपन्यास · एक अन्तर्यात्रा—डॉ० रामदरश मिश्र
हिन्दी उपन्यास · एक सर्वेक्षण—डॉ० महेन्द्र चतुर्वेदी
हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—डॉ० त्रिभुवनसिंह
हिन्दी उपन्यास कला—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन
हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव तथा विकास—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन
हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन
हिन्दी उपन्यास मे वर्ग-भावना—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन
हिन्दी उपन्यास मे चरित्र-चित्रण का विकास—डॉ० रणवीर रांग्रा
हिन्दी उपन्यास मे पारिवारिक चित्रण—डॉ० महेन्द्रकुमार जैन
हिन्दी उपन्यास मे नारी-चित्रण—डॉ० बिन्दु अग्रवाल
हिन्दी उपन्यास . शिल्प और प्रयोग—डॉ० त्रिभुवनसिंह
हिन्दी उपन्यास शिल्प · बदलते परिप्रेक्ष्य—डॉ० प्रेम भटनागर
हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ—डॉ० सुरेश सिन्हा
हिन्दी उपन्यास मे कथा-शिल्प का विकास—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन
हिन्दी उपन्यास रचना-विधान और युग-बोध—वसन्ती पन्त
हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन—श्रीनारायण अग्निहोत्री
हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्‌भव तथा विकास—डॉ० लक्ष्मीकान्त सिन्हा
हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा—डॉ० मक्खनलाल शर्मा
हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अध्ययन—डॉ० गणेशन
हिन्दी उपन्यास साहित्य का सास्कृतिक अध्ययन डॉ० रमेश तिवारी
हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी
हिन्दी उपन्यासो का शास्त्रीय विवेचन—डा० महावीर लोढा
हिन्दी उपन्यासो का मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन—डॉ० रामचरण महेन्द्र
हिन्दी उपन्यासो मे नायिका की परिकल्पना—डा० सुरेश सिन्हा
हिन्दी उपन्यासो मे प्रेम और जीवन—डा० शान्ति भारद्वाज
हिन्दी उपन्यासो मे वर्ग-भावना—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन
हिन्दी उपन्यासो मे मध्य-वर्ग—डा० मजुलतासिंह
हिन्दी उपन्यासो मे यथार्थवादी परम्परा—डा० जयनारायण मण्डल
हिन्दी उपन्यासो मे नये प्रयोग—ब्रजविलास श्रीवास्तव

हिन्दी कथा-साहित्य—गगाप्रसाद पाण्डेय
हिन्दी कथा-साहित्य पर सोवियत क्रान्ति का प्रभाव—
डॉ० पुरुषोत्तम वाजपेयी
हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद—विजयशकर मल्ल
हिन्दी काव्य मे मार्क्सवादी चेतना—डॉ० जनेश्वर वर्मा
हिन्दी का गद्य-साहित्य—डॉ० रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी की प्रगतिशील कविता—डॉ० रणजीत
हिन्दी के उपन्यासकार—यज्ञदत्त शर्मा
हिन्दी के आंचलिक उपन्यास—राधेश्याम कौशिक 'अघोर'
हिन्दी के आंचलिक उपन्यास—प्रकाश वाजपेयी
हिन्दी के आचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि—
डॉ० आदर्श सक्सेना
हिन्दी के कथा-साहित्य विकास मे महिलाओं का योग—
डॉ० उर्मिला गुप्ता
हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार—डॉ० नलिनविलोचन शर्मा
हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो का अनुशीलन—
डॉ० बृजभूषणसिंह 'आदर्श'
हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास—डॉ० कमलकुमारी जोहरी
हिन्दी उपन्यास के अस्सी वर्ष—श्री शिवदानसिंह चौहान
हिन्दी भाषा एव साहित्य का इतिहास—
डॉ० रामेश्वरनाथ भार्गव
हिन्दी महाकाव्य : सिद्धान्त का मूल्याकन—डॉ० देवीप्रसाद गुप्त
हिन्दी भक्ति साहित्य मे लोक-तत्त्व—डॉ० रवीन्द्र भ्रमर
हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
हिन्दी साहित्य समस्याएँ और समाधान—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—डॉ० हरवशलाल शर्मा
हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष—शिवदानसिंह चौहान
हिन्दी साहित्य के उपन्यासकार—यज्ञदत्त शर्मा
हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष—ओकारनाथ श्रीवास्तव
हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी—नन्ददुलारे वाजपेयी
हिन्दी साहित्य के विविध वाद—डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
हिन्दू सस्कृति के मूल तत्त्व—आचार्य रमेशचन्द्र शास्त्री
हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर—के० एम० पनिक्कर
हिन्दी रिव्यु मैगजीन—डॉ० देवराज उपाध्याय

Social change in Modern India—M N Shrinivas
Studies in European Realism—George Lucas
Social Class and Sociologinal Theory—L F Ward
The English middle class—Laud and Maud
The enjoyments of Literature—Boas
Theories of History—Patrick Gardiner
Trade Union Movement in India—A S Mathur
The Psychology of Sex—Allan Fromme
The Psychological Novel—Leon Edel
The Psychodynamics of Abnormal behaviour—Brown
Text book of Psychology—Willian James
The Socialistic tradition—Alexander Gray
The chnique of karl marx—Lenin
The Theory and Practice of Communism—
R N Carewhunt
The Poverty of Philosophy—Karl Marx
The State and Revolution—V I Lenin
The Theory and Practice of Socialism—John Strachy
The Theory and Practice of Communism—
R N Carewhunt
The poverty of Philosophy—Karl Marx
The State and Revolution—V I Lenin
The Theory and Practice of Socialism—John Strachy
The Problem of teaching Social Problem—
C Richard Fuller
The Psychology of every day life Appetites and instincts—
James Drever
The teachings of Karl Marx—Lenin
The English Middle Class—Leud and Maude
What life should mean to you—Adeler

(ई) कोश एवं विश्वकोश

१

हिन्दी

आदर्श हिन्दी बृहद् कोश—स० आर० सी० पाठक
बृहद् अंग्रेजी हिन्दी कोश—स० डॉ० हरदेव बाहरी
बृहद् अंग्रेजी कोश—डॉ० हरदेव बाहरी
शब्दार्थ दर्शन—रामचन्द्र वर्मा
शब्दार्थ ज्ञान कोश—रामचन्द्र वर्मा
हिन्दी बृहद् कोश—स० कालिका प्रसाद
हिन्दी विश्व कोश—स० कमलापति त्रिपाठी
हिन्दी शब्द सागर—स० श्यामसुन्दर दास
हिन्दी साहित्य कोश—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
हिन्दी भाषा बृहद् कोश—स० श्यामसुन्दर दास
हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश—स० श्रीवास्तव एण्ड चतुर्वेदी
मानविकी पारिभाषिक कोश—साहित्य खण्ड, मनोविज्ञान खण्ड, दर्शन खण्ड—स० डॉ० नगेन्द्र
नालन्दा विशाल शब्द सागर—नवलजी
पाणिनीय वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी—
मनोविज्ञान पारिभाषिक कोश—निर्मल सेरजग
अभिनव हिन्दी कोश—प० हरिशंकर शर्मा
हिन्दी उपन्यास कोश—डॉ० गोपाल राय
विश्व साहित्य कोश—डॉ० चन्द्रराज भण्डारी
अमीय शब्द कोश—भाग १, खण्ड २
वैदिक कोश—सूर्यकान्त
राजनीति कोश—सुभाष कश्यप तथा विश्वप्रसाद गुप्त

अंग्रेजी

Encyclopaedia Britannica—Vol I, IV, X, XVI, XXIII
Encyclopaedia Religion and Ethics—Vol III
Encyclopaedia of Social Sciences—Vol II, III, IV, VIII, X
The Authentic Sr Dictionary—B C Pathak
A Dictionary of Sociology—
A Dictionary of Psychology—James Drever

(ई) पत्र-पत्रिकाएँ

हंस
आलोचना (त्रैमासिक)

कल्पना
जागरण
प्रावदा
साहित्य सदेश
दि ट्रिब्यून
अमेरिकन जनरल ऑफ सोशियोलोजी
कम्युनिस्ट सदेश
सोवियत दर्पण
आपात-स्थिति क्यो ?
धर्मयुग
वातायन
साप्ताहिक हिन्दुस्तान
गंधदीप